॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

सर्व परीक्षक, पारखनिष्ठ, सत्यन्यायी पारखी सन्त—

श्रीगुरुदयालसाहेब विरचित—

श्रीकबीरपरिचय साखी तथा एकादश शब्द सद्ग्रन्थः।

[पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रमविध्वंशिनी सरल टीका सहित।]

टीकाकार-लेखकः—

रामस्वरूपदासजी।

[आचार्य कबीरपन्थ, गद्दीस्थान-श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरी बुरहानपुर, (निमाड़, मध्यप्रदेश)।]

प्रथम संस्करणः— १००० प्रति। | मूल्य ४॥) (डाकखर्च अलग।) | वि० सम्वत् २०११ ॥ ईसवी सन् १९५४ ॥

प्रकाशकः—
रामस्वरूपदासजी ।
काशी ।

॥ ❀ ॥ साखी ॥ ❀ ॥

जिन्ह पारख परिचय दियो । कबीर सद्गुरु श्रेष्ठ ॥
गुरुमुख निर्णय बीजक । सत्यज्ञान वरेष्ठ ॥ १ ॥
सकल सिद्धान्त निर्णय । सारासार विचार ॥
कसर खोट दरशावई । बीजक ज्ञान सुधार ॥ २ ॥
कबीरपरिचय ग्रन्थ सो । बीजकके आधार ॥
गुरुदयाल दया करी । परखाये सत सार ॥ ३ ॥
काया वीर कबीर है । जड़ सम्बन्ध भुलान ॥
निजस्वरूप सुधि ना करी । चारखानि बन्धान ॥ ४ ॥
मानन्दीके जालमें । जहँड़े मानुष सोय ॥
नाना मत औ पन्थमें । फँसे फँसाये सोय ॥ ५ ॥
पारख बिन भव धारमें । खानी वाणिके बीच ॥
भटक रहे दुःख पायके । लपटे विषयन कीच ॥ ६ ॥
दया दृष्टि गुरुकी भई । पारख ज्ञान बताय ॥
बन्धन छुड़ाये जीवके । बन्दीछोर कहाय ॥ ७ ॥
कबीरपरिचय साखी औ । ग्यारह शब्दके माहि ॥
पारखि गुरुका ज्ञान है । गहै सुखी हो जांहि ॥ ८ ॥
बन्दौं पारखी सन्त गुरु ! गहौं सो पारख ज्ञान ॥
रामस्वरूप गुरुकी दया ! नाशै सब अज्ञान ॥ ९ ॥

[दिनाङ्क ६ । १० । १९५४ई० को यह ग्रन्थ छपके पूर्ण हुआ है ।]

मुद्रकः— सहादुरराम ।
हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, नीचीबाग, बनारस ।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

भूमिका

दोहाः— बन्दौं पारखी सद्गुरु ! साहेब कबीर महान ॥
पारख बोध प्रकाशिया । निर्णय साँच गुरु ज्ञान ॥ १ ॥
बीजकके उपदेश करी । भ्रम धोखा कियो अन्त ॥
तरण तारण समरथ । सद्गुरु पारखि सन्त ॥ २ ॥
पारखके परिचय करी । भूल निवारण कीन्ह ॥
स्थिति स्वरूप ठहरायके । जीवन्मुक्ति चीन्ह ॥ ३ ॥
गुरुकी दया पारख भयी । परम्परा प्रचलन्त ॥
जिज्ञासु गुरुबोध लही । भये सो पारखि सन्त ॥ ४ ॥
कबीर परिचय निर्णय । गुरुदयाल सो कीन्ह ॥
रामस्वरूप टीका करी । भाव सोई लिख दीन्ह ॥ ५ ॥

विवेकी सन्त ! सज्जनो !

सत्य निर्णयसे जड़ और चैतन्यके स्वरूपका यथार्थ परीक्षासे विवेक-विचार करनेपर दोनोंके स्वरूप अनादि स्वतः सिद्ध ठहरता है। क्योंकि, जड़ और चैतन्य दोनोंका स्वरूप बिजातीय है। अतः चैतन्य, जड़-स्वरूपको अपनेसे उत्पन्न नहीं कर सकता है, तथा जड़ तत्त्व भी स्वयं अपने स्वरूपसे चैतन्यको उत्पन्न कर नहीं सकता है। यदि वे एक-दूसरेको उत्पन्न कर सकते, तो फिर उनमें बिजातीयरूप भिन्न-भाव

ही न होता; बल्कि स्वजातीय समान गुण-लक्षणवाले ही होते । ऐसा होनेपर जगत्में फिर कोई विषमता, विचित्रता, प्रतिकूलता कुछ भी न रहती । परन्तु, ऐसा तो कहीं भी देखा नहीं जाता है । इसीसे जड़ चारतत्त्व और चैतन्य देहधारी अनन्त जीव स्वरूपसे भिन्न-भिन्न अखण्ड, नित्य, उत्पत्ति, प्रलय रहित अनादिसे ऐसे ही हैं, यह बात स्वयमेव सिद्ध हो जाता है । तहाँ जड़के स्वयं शक्तिसे उसमें कार्य-कारण होनेसे जड़ पदार्थोंका बनना-बिगड़ना प्रवाह अनादिकालसे चला ही आ रहा है । इधर जीव सब भी जड़ाध्यासी होनेसे कर्म संस्कारके अनुसार जन्म-मरणादि चक्रमें पड़ते चले आ रहे हैं । मनुष्य-देहमें आके जीव नवीन कर्म-संस्कार टिकाते हैं, तथा अन्य त्रय खानीमें जाके फल भोग करते हैं । फिर घुम-फिरके मनुष्य-देहमें आनेपर पूर्ववत् कर्म-संस्कारका उपार्जन-सञ्चय करते हैं । इस प्रकारसे अनेकों जन्म व्यतीत हो चुका, निज पारखस्वरूपमें स्थिर होके नरजीव जबतक अध्यासोंका अन्त करके जीवन्मुक्त नहीं हो जाते हैं, तबतक ऐसे ही आवागमनोंमें पड़े रहते हैं । जीवको और किसीने जबरन बन्धनोंमें डाल नहीं रखा है, तथा कोई एकाएक झटपट मुक्ति कर देनेवाला भी नहीं है । जीव अपने-आप ही भ्रम, भूल, आसक्ति, अध्यासवश भव-बन्धनोंमें पड़ा है, और मनुष्य जन्ममें पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग-विचारमें लगकर जड़ाध्यासोंको मिटाके पारख स्वरूपमें स्थिति करनेपर ही मुक्त हो सकता है । यह निश्चित अटल सिद्धान्त है ।

परन्तु, संसारमें पारख बोधदाता पारखी साधु गुरु बिरले ही कहीं-कहीं मिलते हैं । उनके सत्य निर्णयका उपदेश सद्ग्रन्थोंका प्रचार भी अत्यल्प है । उधर गुरुवा लोगोंकी बहुलता होनेसे जहाँ-तहाँ भरमार है, उनके धोखा, कल्पना, भ्रम बढ़ानेवाला ग्रन्थोंका प्रचार भी अत्यधिकरूपसे हो रहा है । इसीसे सब जिज्ञासुओं-को सत्यबोध मिलना दुर्लभ हो रहा है । हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सब मतवादियोंको धोखेसे जगत्कर्ता कोई ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदि होनेका पक्ष अतीव दृढ़ हो रहा है । तहाँ उन्होंके धर्म-ग्रन्थ वेद, कुरान, बाइबिल आदि ग्रन्थोंमें वही कल्पित, अनुमित बातोंकी परिपुष्टि-विशेषरूपसे किया हुआ मिलता है । इसीसे उसके आगे बढ़के निष्पक्ष होकर सत्य वस्तुका यथार्थ विचार करनेमें वे असमर्थ हो रहे हैं ।

निराकार कर्तावाद माननेवाले गुरुवा लोगोंका कथन ऐसा है कि— कोई एक सर्वशक्तिमान् जगत्का कर्ता है, उसका वास्तविक स्वरूप निराकार है, किन्तु, आवश्यकता पड़नेपर साकार देहधारी अवतारीरूपमें भी वह प्रगट होता है, और अपना कार्य पूर्ण होनेपर अन्तर्धान होके फिर निराकार हो जाता है। प्रथम जगत्में जड़ और चैतन्य वस्तु कुछ भी नहीं था, असंख्य समय व्यतीत होनेपर जगत्-कर्तासे एकाएक इच्छा प्रगट हुई कि— "एकोहं बहुस्याम्" फिर उसी स्फुरणाके प्रतापसे आकाश आदि पाँच तत्त्व उत्पन्न हुए, पश्चात् ब्रह्मने स्वयं जीवरूप धारण करके चारखानी चौरासी योनियोंका विस्तार किया। इस प्रकार ब्रह्मकी स्वाभाविक लीलासे जगत् विस्तारसे निर्माण हुई। पश्चात् कल्पान्तमें उसी कर्ताकी इच्छासे एकाएक महाप्रलय होके चराचर सृष्टिका विनाश भी हो जायगा। इसी प्रकार सदैव होता रहेगा। इत्यादि ॥

इस प्रकारके सिद्धान्त वेद, शास्त्र, पुराण और कुरान आदिमें नाना भाँतिसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया हुआ है। परन्तु, उसमें सत्य निर्णयकी विचारका सर्वथा अभाव है। वाहियातका असम्भव कल्पना ही बढ़ाया हुआ है। अतः उससे लाभ कुछ नहीं होता है। दूसरे तरफ बौद्धोंने कर्तावादको छोड़के शून्यवाद, अनात्मवाद माना है, वह भी धोखा ही है। देवी, देवता, ऋद्धि-सिद्धि आदिकी कल्पित भावना, मानन्दी भी बौद्धोंने खूब किया है ॥

जैनी लोग भी षट् द्रव्य, चन्द्रमुक्त शिला, ऋद्धि-सिद्धि आदि मानके, व्रत उपवासादि करके महान् भ्रम चक्रमें पड़े हैं। वैसे ही नास्तिक मत भी बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। उसमें— देहवाद, वीर्यवाद, तत्त्ववाद, स्त्रीवाद, आकस्मिकवाद, शून्यवाद, इत्यादि प्रकारसे नाना मतवाद कायम किया है। वैसे ही बाममार्गियोंने अलग ही कुचाल चला रखा है। तथा दक्षिण मार्गी कहलानेवालोंने षट्-दर्शनोंके अन्तर्गत छियानबे पाखण्ड तथा उसके शाखा-प्रशाखाओंके रूपमें अन्य सहस्रों पाखण्डोंका जाल फैलाके विस्तार कर रखा है। फिर संसारमें जटिल विषय-जालोंका विस्तारके तो पारावार लगता ही नहीं। ऐसे खानी-वाणीकी जबरदस्त महाजालोंमें एक बिचारा जीवको सब प्रकारसे लाचार होके भव-बन्धनोंमें पड़ा हुआ देखकर स्वयं शोध लगाकर, दिव्य-दृष्टि खोलकर, पारखबोध

स्वयं प्रकाश करनेवाले महापुरुष प्रथम सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब हुये। आपने सब प्रचलित सिद्धान्तोंका सत्यन्याय-निर्णयसे परीक्षा किया, उनके कसर-खोट बतलाया, जिज्ञासुओंको सत्यबोध दिया, मुक्ति मार्ग चालू किया, हंस जीवोंको मुक्त किया। ऐसे महान उपकारी सर्व शिरोमणि एक आप ही हुये हैं। आपके निष्पक्ष उपदेशका निर्णय बीजक नामक सद्ग्रन्थमें बताया हुआ है। जबसे बीजक बना, तभीसे आपके अनुयायी पारखी सन्त बीजक ज्ञानका ही प्रचार करते चले आ रहे हैं। मत, पन्थोंके जालोंसे जीवको छुड़ाकर पारख भूमिकामें स्वयं ठहरके हंस जीवोंको भी ठहरनेके लिये कह रहे हैं। तहाँ शुभ संस्कारी हंस जीव पारखबोधको पाकर निर्वन्ध सुखी हो जाते हैं।

श्रीकबीरपरिचय साखी और ग्यारह शब्द यह दोनों भागका ग्रन्थ पारखी सत्यन्यायी सन्त श्रीगुरुदयालसाहिबने रचना किये हैं। इन दोनों ग्रन्थोंमें बीजक सिद्धान्तके आधारसे न्याय-निर्णय करके यथार्थ रीतिसे परीक्षा किया गया है। विविध प्रसङ्गोंपर दृष्टिपात किया हुआ है, तहाँ कर्तावाद आदिका खण्डन भली विधिसे किया गया है। सो सब ग्रन्थ अवलोकन करनेपर सबोंको विदित होगा।

बहुत वर्षोंसे स्थान नागझिरी, बुरहानपुरमें इन सद्ग्रन्थोंका सन्तोंमें अर्थ पढ़ाई, तथा पठन-पाठन होता चला आ रहा है। विद्यार्थी सन्तोंके विनयपूर्वक आग्रह करनेसे हमने पढ़ाईके अनुसार ही टीका लिख दिया है। शुभ संयोग मिलनेसे अब इसे छपाके प्रकाशित भी कर दिया गया है। तहाँ प्रेसके कर्मचारियोंकी असावधानीसे ग्रन्थमें जहाँ कहीं भी अक्षर-मात्रादियोंकी त्रुटि रह गई हो, तो उसे पाठकगण सुधारके पढ़ लेवें। अन्तमें सद्ग्रन्थके सार भागको ग्रहण करके, पारखबोधको दृढ़कर, कल्याण-पथगामी बनें, यही कहना है॥ इति भूमिका समाप्तः॥

हाल निवास—महमूरगञ्ज, काशी ॥
दिनाङ्क १२। ९। १९५४ ईसवी ॥ } —रामस्वरूपदास।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

श्रीकबीरपरिचय साखी तथा एकादश शब्द दो ग्रन्थोंका सूचीपत्र वर्णन

॥ * ॥ विषयानुक्रमणिका, प्रारम्भः ॥ * ॥

॥❀॥ अथ श्रीकबीरपरिचय साखी, पञ्चम ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ५ ॥❀॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीकबीरपरिचय साखी ग्रन्थः समाप्तः ॥ ५ ॥ ❀ ॥

॥ ❋ ॥ अथ एकादश शब्द, षष्ठ ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ६ ॥ ❋ ॥

॥❀॥ इति एकादश शब्द ग्रन्थः समाप्तः ॥ ६ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीकबीरपरिचय साखी तथा एकादश शब्द ये दो सद्ग्रन्थोंका सूचीपत्र— विषयानुक्रमणिका वर्णन पद्याङ्क सहित सम्पूर्णम् समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरो अर्पणमस्तु ! ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥ दयागुरुकी ॥ ❀ ॥

॥ ❋ ॥ सत्यन्यायी पारखनिष्ठ पारखी सन्त, साधु शिरोमणि—॥ ❋ ॥

सद्गुरु श्रीगुरुदयालसाहेब विरचित—

श्रीकबीरपरिचय साखी पञ्चम ग्रन्थः प्रारम्भः

[पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम् श्रीसद्गुरुपद वन्दना ॥ ❀ ॥

साखीः— कबीर साहेब सद्गुरु ! बन्दीछोर महान् ॥
पारख ज्ञान प्रकाशते । हिय तम सकल नशान् ॥ १ ॥
प्रभु उपकार अनन्त है । जाने बिरले सन्त ॥
गुरु पदमें नित बन्दगी । हितकर पारखी सन्त ॥ २ ॥
पारख बोध लखायके । बन्धन कीन्हा अन्त ॥
मुक्तरूप गुरु साहेब ! साधु समाज महन्त ॥ ३ ॥
कबीर कायावीर हो । मुक्ति चलायो पन्थ ॥
सत्यशब्द टकसार कही । सोई बीजक ग्रन्थ ॥ ४ ॥

साखीः— जाने बिरले पारखी । परिचय गुरुका ज्ञान ॥
जो जाने सो मुक्त हो । ना जाने बन्धमान ॥ ५

छन्दः— गुरु पारखी पहिचानकर, सतसङ्ग जो कीन्हें सही ॥
सब मर्म सो जाने भले, पारख स्वरूपमें स्थित रही ॥
तरण-तारण होवई, जियत मुक्ति सो लही ॥
रामस्वरूप सोइ धन्य है, सत्य साधु सो कही ॥ ६

साखीः— श्रीकबीर गुरु पारखी । प्रथम भये जगमाहिं ॥
परखायो सब जालको । हंस रहनि दरशाहिं ॥ ७
उपदेश सत् गुरु बीजक । मूल अमोलिक सार ॥
श्रीपूरण गुरु साहेब । टीका सरल विस्तार ॥ ८
मूल हता तब सन्त जन । परिचय पावै नाहिं ॥
जाने बिन गुरु ज्ञानको । भ्रम धोखा भटकाहिं ॥ ९
सोई लखि विपरीत जग । पारखी सन्त दयाल ॥
समझायो सब हालको । काल कल्पना टाल ॥ १०
गुरुदयाल साहेब भये । पारख निष्ठ प्रवीन ॥
कबीर परिचयसाखि सब । यह रचि दीन्हा चीन ॥ ११
निर्णय कीन्हा सत असत । सार असार लखाय ॥
खानि वाणि बतलायके । पारखमें ठहराय ॥ १२
यदपि बीजक भाव कहा । कबीर परिचय माहिं ॥
तदपि साखी सो गूढ है । बिन गुरु सो न लखाहिं ॥ १३
साहेब लाल गुरुमुख सुनि । रामस्वरूप चितलाय ॥
विधिवत पठन प्रथम करी । हृदय मनन ठहराय ॥ १४
सन् उन्निस बयालिस । माह दशमके साल ॥
रामस्वरूपदास पढ़ा । गुरु कि दया तत्काल ॥ १५
दिना सातमें पूर्ण करी । मनन विधिवत कीन्ह ॥
दया गुरु श्री लालकी । याहि रहस तब चीन्ह ॥ १६
समयान्तर पश्चात् पुनि । हम सब सन्त पढ़ाय ॥
सत निर्णययुत वर्तई । गुरुपद शीश चढ़ाय ॥ १७

देह यही क्षणभङ्ग है। याका नियम न कोय ॥
गुरुजन तन छूटा जस। हमरे छुटि हैं सोय ॥ १८ ॥
याका भाव न लुप्त हो। जानु सन्त सब लोग ॥
याते टीका सार यही। लिख हूँ आज निरोग ॥ १९ ॥
पारख सिद्धान्त दर्शिनी। भ्रम ध्वंशिनि परचण्ड ॥
टीका सरल यामें करूँ। रामस्वरूप अखण्ड ॥ २० ॥
श्रीकबीर गुरु पूरण। काशी बालक लाल ॥
गुरुदयाल पारखी सकल। बन्दगी करूँ त्रयकाल ॥ २१ ॥
रामस्वरूपदास नित। गुरु गुण गाऊँ सोय ॥
पारख रहनि रहस्ययुत। वर्तें मुक्त सो होय ॥ २२ ॥
गुरु बिन भेद न पावई। करत रहो सतसङ्ग ॥
पढ़ि गुनि हिय धारे भले। त्यागी सकल कुसङ्ग ॥ २३ ॥
युग सहस्र वसु सम्वत। शुक्लषष्ठि शनि आश्विन ॥
प्रभात शुरू छः अकटूबर। एक्यावन उनईस सन ॥ २४ ॥
रामस्वरूप टीका लिखौं। जस गुरु कीह्ना बोध ॥
सार यथार्थ प्रकाश करौं। सतसङ्गत करि शोध ॥ २५ ॥
पढ़िये गुनिये सन्त जन। लीजे सार विचार ॥
रामस्वरूप पारख अटल। होवो भवसे पार ॥ २६ ॥

॥ ❀ ॥ इति टीकाकारकृत गुरु वन्दना तथा गुरु महिमा आदि समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ ✻ ॥ अथ मूल ग्रन्थः सटीक प्रारम्भः ॥ ✻ ॥

साखीः— कबीर काहू अस कही। कान काग लिये जाय ॥
कान न टोवै बावरा। खोजै दहुँ दिश धाय ॥ १ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता पारखी श्रीसद्गुरु गुरुदयाल साहेब कहते हैं:— जैसे दृष्टान्तमें किसी मसखराने कोई भोंदू पुरुषके पास जायके ऐसा कहा कि— अरेभाई! तू देखता है कि नहीं, देख! यह काग

(कौवा) तेरे दोनों कानोंको उड़ाये लिये जाता है— ऐसा कहके उड़ते हुए कौवेको इशारा करके दिखा दिया। ऐसा वचन धूर्तका सुन, कागको उड़ता देख, उस मूर्खने भी विश्वास कर लिया कि, मेरा कान कहीं वह काग ले जा रहा होगा। तब वह मूढ़ बावरा या पागलवत् हो गया। क्योंकि, अपने कानको टोयके देखे बिना ही, मिथ्या वाणीमें विश्वास करके उस कागके पीछे-पीछे दौड़ा। इसतरह दशों-दिशाओंमें दौड़-दौड़के कानको खोजा, परन्तु कहीं उसे कान गिरा हुआ नहीं मिला। अन्तमें वह निर्बुद्धि अभागा ठोकर खायके गिरकर मर गया। अविचारसे ऐसे ही दुर्दशा होती है॥ यह तो दृष्टान्त है॥

अब इसी प्रकार सिद्धान्तमें इसका अर्थ ऐसा है:—कबीर = संसारी अबोध नरजीवोंको, काहू = कोई एक भ्रमिक धूर्त गुरुवा लोगोंने, असकही = ऐसे कल्पित शब्द कहे, कि— हे मनुष्यो! तुम्हारे ऊपर कर्ता-धर्ता, मालिक, परमपिता-परमात्मा, जगदीश्वर कोई एक सर्व-शक्तिमान् कर्ता पुरुष है। उसके दर्शन प्राप्ति होनेसे ही तुम्हारे हित, कल्याण गति-मुक्ति होवेगी। इसलिये तुम लोग सब कोई ईश्वरके भक्तिमें लगो, देखो! वे कागरूप षट् दर्शनोंके भेषधारी गुरुवा लोग सब तुम्हारे, कान = कल्याणकारी भक्ति, योग, ज्ञानमार्ग लिये हुए सीधे परमेश्वरके पासमें चले जाते हैं। अतएव तुम लोग भी अब झटपट उनके पीछे लगो, किसी एक गुरुजीके शिष्य बनो, साधना करो, इसीमें तुम्हारी भलाई है। इत्यादि प्रकारसे रोचक, भयानक वाणी नाना तरहसे उपदेश देके, अबोध मनुष्योंके कानमें सुनाये, और कल्याण प्राप्तिके वास्ते, गुरुवा लोग मनुष्योंको तीर्थादि करानेको जहाँ-तहाँ लिये जाते भये। ऐसे-ऐसे भ्रमिकोंके वचन सुन-सुन करके मनुष्य विचारसे-हीन, बावले या पागलकी नाईं हो जाते भये। इसीसे कान = अपना कल्याण कहाँपर है, ऐसा सोचके गुरुवा लोगोंने जहाँ कल्याण बताये, वहाँ कल्याण होनेवाला है कि नहीं, ऐसा न टोवै = विचार

करके विवेकदृष्टिसे ठीक-ठीक देखते तो नहीं हैं, और भ्रमिक बौराहा होके दशों दिशाओंमें जहाँ-तहाँ ईश्वर, खुदादि कल्पित इष्टदेवको खोजते फिरते हैं, तो भला! वह कहाँसे उन्हें मिलेगा? और कैसे कल्याण होगा? किन्तु, जड़ाध्यासो होके चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होंगे।

अथवा मनुष्योंको किसी पण्डित गुरुवाने ऐसा कहा कि, देखो! तुम्हारे कान= जीवको, काग= काल या यमदूत नर्क लोकमें लिये जारहे हैं, अथवा अन्तमें वहाँ ले जावैंगे, उसके लिये शब्द प्रमाण, वेद, शास्त्रोंमें लिखा है, चाहे वहाँ देखो, वा हम जो कहते हैं, सो सुनो! तो पता चलेगा। यदि स्वर्गप्राप्ति, मुक्ति प्राप्ति, आदि चाहते हो, तो वेद, शास्त्रादिको पढ़के भक्ति, योगादिसे परमेश्वरके खोजी करो। ईश्वर प्राप्ति होनेपर नर्कादि सब दुःखोंसे छुटकारा हो जायगा। इत्यादि वाणी गुरुवा लोगोंसे सुनके, प्रतीत करके, बावरे बने। अपने चैतन्य जीवको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गद्वारा विवेक-विचारकर यथार्थ देखते या टोवते तो नहीं हैं, उसके विपरीत दहुँदिश= दशोंदिशारूप चार वेद, षट् शास्त्र आदि वाणीके जङ्गलमें ही भटकके धाय-धायके ब्रह्म, ईश्वरादिके खोजी करते हैं, और बिना पारख भ्रमिक जड़ाध्यासी हो, आयु बिताकर आवागमनमें ही पड़े रहते हैं; अतएव पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग करके मिथ्या भ्रम, धोखाको त्यागना चाहिये ॥ १ ॥

साखीः—चोर चले चोरी करन। किये साहुका भेष ॥
गल्ले सब जग मूसिया। चोर रहा अवशेष ॥ २ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—जैसे कोई चोर, चोरी करनेके वास्ते चले, सो दिनमें तो वे लोग साहुकारका भेष सदृश रूप बनायके इधर-उधर धनिकोंकी कोठी, ताकते-झाँकते देखते-भालते, खरीद-बिक्रीके बहानासे भीतर घुसते गये। इस तरह सबका भेद लेकर, रातमें सब जगत्के बड़े-बड़े सेठोंके गल्ला तथा धन-सम्पत्ति चुराय ले गये, और उसे छिपाय दिये। अब फिर प्रगटमें जो चोर बाकी

रहा, सोई श्रेष्ठ बने फिर रहे हैं। तब कहो, लोगोंकी भलाई कैसे होगी ? कभी नहीं होगी ॥ तैसे ही सिद्धान्तमें पक्के चोर बने हुए गुरुवा लोग, अपस्वार्थी बने हैं। वे जीवोंके हंसपद्को छिपानेवाले बने हैं। ऐसे ठग-चोर गुरुवा लोग, संसारमें, चोरी करन = लोगोंके तन, मन, धनादि पदार्थ नाना तरहसे हरण कर, चोरी करनेके वास्ते कपटरूप धारण करके, जहाँ-तहाँ चले गये, या चल पड़े। किन्तु उन्होंने बाहर दिखानेको भेष तो साहुका-सा बना लिया, अर्थात् त्यागी, वैराग्यवान्, साधु गुरुके समान स्वाङ्ग बनाये, संन्यासी, उदासी, वनवासी, वैरागी, नागे, निर्वाणी, नाथ, निरञ्जनी, इत्यादि प्रकार-से षट् दर्शनमें अनेकों भेष बनाये; खाक लगाय, मृगछाला, बाघम्बर आदिको पहिर लिये, बड़े-बड़े जटा बढ़ा लिये हैं। इस तरहसे बन-ठनके, जीवोंके बुद्धि, विचार चुरानेको संसारमें चले, रामत करते फिरने लगे। ऐसे उन्हें त्यागी साधुके भेषमें देख करके, मनुष्योंको बड़ी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हुई। सब उनके भक्त, शिष्य-शाखा बनते गये। और ऋद्धि, सिद्धि, धन, धान्य, संसारके सुख, ऐश्वर्य प्राप्ति, स्त्री, पुत्र, धन, राज्यादि प्राप्ति, स्वर्ग, सात लोक, चार फल, चार मुक्ति, और ईश्वर, ब्रह्म आदि प्राप्तिकी आशा, भरोसा, देके उपदेशके खरीद-बिक्री करने लगे। सबको भ्रमायके धोखेमें डाल दिये। आखिरमें सब जगत्के मनुष्योंकी गलेमें महा अज्ञानका पर्दा डालकर अविद्यारूपी रात्रिमें उन चोर गुरुवाओंने सबोंके गल्ले = द्रव्यरूप तन, मन, धन तथा सत्य, विचार, शील, दया, विवेक आदि सद्गुण संयुक्त चैतन्य जीवके जमापद या हंसपदको घटोंघटसे, मूसिया = चुरा लिया, छिपा दिया वा हरण कर लिया। और उन्हें निर्धन, दरिद्र, भ्रमिक, अविचारी, बनायके धोखेके साधनाओंमें लगाकर नष्ट-भ्रष्टकर दिया। किन्तु, इस तरह दुर्गति करनेपर भी अबोध मनुष्योंको उनका कपट भेद मालूम नहीं होता है। अब संसारमें वे ही चोर, गुरुवा लोग, अवशेष = अब बाकीके सबसे श्रेष्ठ हो रहे हैं।

अथवा चोर गुरुवाओंने एक कल्पित ब्रह्मपदको ही अवशिष्ट सारपद बताके जीवोंको भुला रखा है । यथार्थ गुरु पारखके बोध बिना यह भेद किसीको जाननेमें नहीं आता है । इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके उन चोरोंको ठीक तरहसे पहिचानकर, उन्हें भगा देना चाहिये । उनके फन्दोंमें कभी पड़ना न चाहिये ॥ २ ॥

साखीः—अवशेषै जग मूसिया । सेंध जो दीन्हों कान ॥
ब्रह्मादि सनकादि जग । दुखिया भये निदान ॥ ३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसा चोर तो बाकी रहा, किन्तु, पकड़ा नहीं गया, तो वह बार-बार लोगोंके दीवाल वा भीत आदि फोड़कर, सेंध लगाके, रास्ता बनाकर, भीतर जाके, जो कुछ बचा हुआ मिलता है, सोई चुराकर भाग जाता है । आखिरमें उनसे तङ्ग आके सब साहु लोग दुःखी होते हैं । तैसे ही संसारमें अब बेपारखी लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ महात्मा योगी, ज्ञानी, भक्त बने हुए या श्रेष्ठ माने गये गुरुवा लोग ही अविवेकी होनेसे परमार्थमें चोर बनके अवशेषै = बाकी, श्रेष्ठ, सारपद ब्रह्म-परमात्मा कोई हैं, ऐसा दृढ़ाकर, उसीके आड़में जगत् जीवोंको लूटने लगे । उन्होंने मनुष्योंके कानमें ही सेंध लगा दिये । अर्थात् नाना प्रकारसे भ्रमाकर पहिले कान फूँक-फूँकके चेले बना लिये । तहाँ दीक्षाके नामसे "ॐ रामाय नमः" फुस ३ "ॐ नमः शिवायः" फुस ३ "ॐ ब्रह्मणे नमः" फुस, फुस, फुस, करके एक-एक कानमें तीन-तीन बार फूँक मार दिये । बस, इस तरीकेसे उसे अन्धा बनाय, वाणीके प्रहारसे फोड़कर भीतर हृदयमें जाने-आनेका द्वार, कानमें सेंध लगाकर, मार्ग तैयार बना लिये । फिर रोचक, भयानक आदि अनेकों वाणीकी उपदेश जो उन्होंने दिये, सो उसे अविवेकी लोगोंने भी सत्य मान लिये । इस प्रकार उन प्रवीण चोरोंने जगत्में युक्तिपूर्वक घुसके विवेक, विचार, बोध, आदि मुक्तिदाई सद्गुणरूपी धनको चुराकर कल्पनामें छिपायके

नष्ट-भ्रष्ट कर दिये। और मन-मानन्दी कल्पनारूपी चोरने संसारमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि गुरुवा लोगोंके और सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद, वशिष्ठ, व्यास आदि उनके अनुयायी शिष्य वर्गों-के भी बुद्धि-विचार सहित सर्वस्वको लूटके हरणकर लिये। वे सब लोग बिना पारख 'अहं ब्रह्म' बनके जगत्रूप व्यापक ही हो रहे। अतएव निदान = अन्त या आखिरीमें जड़ाध्यासी होनेसे जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयतापादि दुःख भोगकी भवचक्रमें पड़के, दुःखिया = परम बेहाल या अत्यन्त दुःखित होते भये। अभी उनके अनुयायी चौरासी योनियोंमें पड़के वैसे ही दुःखी हो रहे हैं। उन्हें जीवन्मुक्तिका सुख कभी प्राप्त नहीं भया। अतएव उनके पक्ष छोड़के पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगना चाहिये। तभी नर जन्म पाया हुआ सफल होगा, सो जानिये! ॥ ३ ॥

साखीः—कानते मुखमें मुखते करमें। चुटकी चमकै नूर ॥
तीहटा खेती चोरवा। सब पण्डित भये मञ्जूर॥ ४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— तीन प्रकारसे खेती, धन्दादि करके चोरी करनेका उद्योग करनेवाले, गुप्त चोर यहाँपर वे ही धूर्त बेपारखी गुरुवा लोग हैं। वे कानसे घुसके चुराते हैं, तो मुखसे निकली आते हैं। फिर मुखसे हाथोंमें आकरके भी चोरी करते हैं, चोरबत्ती जलानेके समान चुटकीसे नूर चमकाते हैं। वे चोर तीन-प्रकारके खेती करने लगते हैं, तहाँपर सब पण्डित लोग मञ्जूर करके उनके मजदूर या नौकर होते हैं। अर्थात् ये चालाक गुरुवा लोग अपने-अपने आचार्य गुरुवोंसे जो-जो बात कानसे सुने या सुनते गये, सो-सो मुखमें रटन करके कण्ठाग्र करते गये। फिर मुखमेंसे भी विस्मृत न हो, उसके लिये मुखमेंसे हाथोंमें ले आये। फिर चुटकी = हाथकी अंगुलियोंसे कलम पकड़कर काली, नीली आदि स्याहियोंसे सफेद कागजोंपर अक्षरोंको लिखकर उसीका

नूर या प्रकाशसे संसारमें कल्पित महिमा चमकाने लगे। सो कैसे कि— वही कल्पित वाणी लिखी हुई वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि पुस्तकोंको पुनः हाथमें पकड़कर उसे देख-देखके मुखमें-से शब्द उच्चारण करने लगे; गुरुवाओंके मुखमेंसे निकली हुयी वाणियोंको शिष्य लोग कान द्वारा मन लगायके सुनने लगे और सब पण्डितोंने भी उसे मञ्जूरी या स्वीकारकर लिया। तदनन्तर गुरुवा लोगोंने चेलोंके कानोंमें गायत्री मन्त्र, दीक्षा मन्त्र, ॐ, और त्रयदेवोंके नामके मन्त्र, सप्तबीज मन्त्र, और अनेकों मिथ्या कल्पित मन्त्र फूँक दिये। और कहे कि— इसे मन लगायके जाप करो, जिससे तुम्हारे सब मनोकामनादि पूर्ण होंगी, इत्यादि आशा लगा दिये। तब उन अबोध मनुष्योंने कानोंसे सुना हुआ, मन्त्र-वाणियोंको मुखमेंसे जीभ हिलाय-हिलायके जाप करने लगे, और उसकी संख्या-हिसाब रखनेके लिये कोई हाथमें अंगुलियाँ-कोष्ठक गिनने लगे, कोई एकसौ आठ दानोंकी माला या हजारीमाला करमें लेकर चुटकीरूप अंगुलियोंसे दानोंको फिरायके नूर चमकाते हुए खटाखट-खटाखट माला फेरने लगे—इस तरहसे जाप करने-कराने लगे। चोरवा = ये गुरुवा लोगोंने, तीहटा = कान, मुख, और हाथ, यह तीन जगह रहनेवाला शब्दके द्वारा जगत्‌में, खेती = उपदेश, धन्दा, शिष्य-शाखा बनानेकी कृशानी करने लगे। तहाँ सब वेद-शास्त्रादि पढ़े हुए पण्डितोंने भी उसी बातको मञ्जूर करते भये। कर्म, उपा-सनादिसे ईश्वर मिलनेको बतलाते भये। अतः वे पण्डित लोग ही वाणी कल्पनाके दास होकर मजूरवत् लोगोंकी गुलामी करने लगे। ग्रह शान्ति आदिमें बहुतेरे जाप, पाठ, पूजादि, करके मजूरीरूप दक्षिणा लेके वे सब पण्डित-ब्राह्मण लोग ही वह कर्म करते हैं, कथा सुनाते हैं, तो भी मजदूरी लेते हैं, सब स्वार्थ लेके धन बटोरनेके लिये ही प्रयत्न करते हैं। इसलिये वे पण्डित लोग कङ्गाल मजदूर भये हैं, कल्पनाके बातको ही वे लोग स्वीकार करते हैं, वही वाणी लिख-लिखके मुखसे

कहकर कानोंमें सुनाय-सुनायके लोगोंको भ्रमाते हैं। अतः उन्होंको गुप्त चोर वा ठग ही जानके उनके सङ्गत छोड़ देना चाहिये ॥ ४ ॥

साखीः—हिये मुख नासा श्रवण दृग। कर काख चोरका भौन ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। पण्डित! चीन्हों कौन? ॥५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु जनो! चोर बने हुए गुरुवा लोग और उन्होंके वाणी कल्पनादिको छिपनेका जगह-रूप, भौन = भवन या मकान मुख्यतया शरीरमें सात ठिकाने हैं। कहाँ-कहाँ हैं? सो सुनो! पहिले— तो कल्पना, अनुमान, भास, अध्यास, जीवोंके हृदय या अन्तःकरणमें गुप्तरूपसे छिपी रहती हैं। फिर दूसरे— मुखमें आके वैखरी वाणीरूपमें नाना तरहसे उच्चारण होती हैं। तीसरे— नासिकाग्रमें लक्ष लगायके रहती है। कोई रेचक, पूरक, कुम्भक करते हैं, कोई नाक पकड़कर प्राणायाम करते हैं, कोई नाकसे आने-जाने वाली श्वासरूप प्राणवायुमें लक्ष लगाकर सोहं, ओहं राम नामका जाप करते वा कराते हैं, कोई नाकसे श्वास बन्दकर ब्रह्माण्डमें चढ़ाके शून्य समाधि लगाके बैठते हैं। कोई ज्ञान स्वरोदय साधके नासिकासे आने-जानेवाली वायुपर लक्ष लगाये रहते हैं। चौथे— श्रवण = कानोंमें नाना उपदेश सुनाते हैं, कोई दोनों कानोंको अंगुलियोंसे वा ठेड़ीसे बन्द करके अनहद नादका दश बाजा सुनते-सुनाते हैं। पाँचवाँ— दृग = नेत्रोंसे वेद, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थोंके अक्षरोंको देखते वा दिखाके पढ़ते-पढ़ाते हैं। कोई अष्ट प्रतिमाके जड़ मूर्तियोंको इष्टदेव बताके, दर्शन कराते हैं। कोई योगी लोग त्राटक, मुद्रादि करते-कराते हैं, और नेत्र मूँदकर भीतर ज्योति देखके उसे ही ईश्वर-दर्शन मानते हैं। छठवाँ— कर = हाथोंसे नाना कर्तव्य करते-कराते हैं। समस्त वाणी-पुस्तकें हाथसे ही लिखी गई, सब ग्रन्थ हाथोंसे ही तैयार हुये हैं। और सातवाँ— काख = बगलमें वेद, शास्त्र, कुरान, आदिकी पुस्तकें दबायके पुरो-

हित, वा मौलवी लोग यजमानोंके घर-घर जायके फिर वही ग्रन्थ खोलके सुना-सुनाकर उन्हें भ्रमाते हैं। पीछे दक्षिणा लेकर ग्रन्थोंको बगलमें दबाये हुए ही घर चले जाते हैं। यही सब चोरका भवन है या भ्रमानेका घर है। यहाँ श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैंः—हे पण्डित! हे बुद्धिमान्! तुम लोग चीन्हों, पहिचानो कि— वह चोर कौन है? जो उपरोक्त सात स्थानोंमें रहता है। यदि तुम लोग नहीं जानते हो, तो सुनो! सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने पुकारके बीजकमें कहे हैं कि— ये पण्डित कहलानेवाले ब्राह्मण लोग और उन्होंके वाणी-कल्पना वही पक्के चोर बने हैं। तहाँ कहा हैः—

रमैनीः— "बड़ सो पापी आहि गुमानी। पाखण्डरूप छलेउ नर जानी॥ १॥
ब्राह्मण ही सब कीन्हीं चोरी। ब्राह्मण ही को लागल खोरी॥" ३॥
॥ बीजक, रमैनी १४॥

पण्डित भूले पढ़ि गुनि वेदा। आप अपनपौ जानु न भेदा॥ बी० र० ३५॥
पण्डित! बाद वदे सो झूठा॥ १॥
रामके कहै जगत गति पावै। खाँड़ कहे मुख मीठा॥ बी० शब्द ४०॥

इस प्रकारसे सद्गुरुने प्रख्यात करके कहे हैं, अब तुम लोग भी चीन्हों या जानो कि— ये पण्डित कौन है? अरे! भाई! जीवपद्को चुराने-छिपाने वाले वे पण्डित ही चोर बने हैं, ऐसा जानो॥ ५॥

साखीः—त्याग करनको सब चले। हुआ नहीं वैराग॥
जो चोरवा जग मूसिया। सो सबके पीछे लाग॥ ६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— मुक्ति प्राप्तिकी आशासे बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, राजे, महाराजे, श्रीमान् मनुष्य आदि बहुतेरे लोग संसार-बन्धनको त्याग करनेके वास्ते घर-बार, स्त्री, पुत्र, धन, कुटुम्ब, राज्यादि मोटी-मायाको छोड़कर सब वनमें तो चले गये। परन्तु झीनी मायाका परित्याग न होनेसे पूर्ण सारवाला यथार्थ गुरुमुख कथित दृढ़ वैराग्य उन्होंको नहीं हुआ है। इसलिये ये सब झीनी रागमें लगके

भवबन्धनोंमें ही उलट-पुलटके गिर पड़े। काम, क्रोधादि, कल्पना, अनुमानादि, जिन चोरोंने जगत्-जीवोंको लूट लिया है, सो योगी, ज्ञानी, भक्तादि उन सबोंके पीछे भी लगी ही रही, छूटी नहीं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने बीजक साखी १४० में कहा है:—

साखी:— "माया तजे क्या भया ? जो मान तजा नहिं जाय ॥
जेहि माने मुनिवर ठगे, सो मान सबनको खाय ॥" बी० सा० १४० ॥
"मोटी माया सब तजे, भीनी तजी न जाय ॥
पीर पैगम्बर औलिया, भीनी सबको खाय ॥" पं० ग्र० ट० २१५ ॥

अतः सब कोई त्याग करके साधु होनेके लिये तो चल पड़े, किन्तु, उनके हृदयमें शुद्ध वैराग्यका उदय नहीं हुआ। घर-गृहस्थी खानी जालको छोड़के मठ-मन्दिर, आश्रम, और वाणी-जालमें जाके जकड़ पड़े। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी, देवता, सात स्वर्ग, ऋद्धि, सिद्धि, आदि कल्पनामें विशेष उन्होंके राग बढ़ा। सम्पूर्ण मानन्दी, कल्पना, भ्रम परित्याग करके, सच्चा वैराग्यकी प्राप्ति नहीं हुयी। जो चोरवा = मन-मानन्दी कल्पना, विषय वासनादिने जगत् जीवोंकी मुक्ति-धनको मूसिया = चुरा लिया या लूट लिया है, सोई मन कल्पना, मानन्दीरूपी चोर सब बेपारखी साधु भ्रमिकोंके पीछे भी जाके लगा है। उन सबोंके सर्वस्व हरण करके बेहालकर रहा है। इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके उन चोरोंको पहिचान-कर उन्हें कैद करना चाहिये ॥ ६ ॥

साखी:—पूरण कला होयके। चोर देखाई देत ॥
सुर नर मुनि जग आँधरा। चीन्ह न कोई लेत ॥ ७ ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अबोध नरजीव स्वयं ही अपनी कला-कल्पनासे परिपूर्ण या सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्म आप ही होयके या अपनेको ब्रह्म मानके जीवपदको चुरानेवाले चोर होते हैं। और चोर गुरुवा लोग ही "अहं ब्रह्मास्मि" कहके वे बाहर ब्रह्मज्ञानीके रूपमें दिख-

लाई देते हैं। अर्थात् पूर्णकलाधारी चैतन्य जीव ही अपने कल्पनासे आप ब्रह्म होयके चोर भये हैं। ऐसा विवेक पारखसे ही दिखलाई देता है। पारखहीनको यह कुछ दिखाई नहीं देता है। इधर, सुर = देवता वा सत्त्वगुणी मनुष्य, नर = रजोगुणी साधारण पुरुष, मुनि = तमोगुणी मनुष्य वा मननशील तपस्वी लोग और जग = संसारी अबोध अज्ञानीजन, ये सब तो जगत्में, आँधरा = पारख दृष्टिसे रहित पक्के अन्धे ही बने हैं, उन्हें सत्यासत्यका यथार्थ विवेक तो है नहीं। इसलिये वे योगी, ज्ञानी, भक्त, जनादि कोई भी ब्रह्म, ईश्वर कर्तादि माना हुआ, तो मिथ्या जीवके ही कल्पना है, जीव ही सत्य है। ऐसा विवेक करके कोई चिह्न लेते नहीं, सत्यासत्यको पहिचानते नहीं। इसलिये जड़ाध्यासी होकर आवागमनोंके चक्रमें ही पड़े, और पड़ रहे हैं। उसे परखकर पहिचानना चाहिये ॥ ७ ॥

साखीः—साहु भरोसे चोरके। सदा करैं इतबार ॥
कहहिं कबीर तिहुँ लोकमें। चोर भया करतार ॥ ८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे चोरके भरोसेमें साहु रहै, उसका विश्वास करता रहे, तो उधर चोर शक्तिमान् श्रेष्ठ बनके साहुको ही दबा बैठेगा। तैसे ही साहु = सत्यस्वरूप चैतन्य नरजीव, चोर = मन, स्त्री, गुरुवा लोग और कल्पित ईश्वर, ब्रह्म आदिकोंके भरोसे = आशा-भरोसा, विश्वास, आसरा, निश्चय करके निश्चिन्त रहते हैं कि— ये हमको विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादिके सुख-देगें, और हमारा हित, भलाई, कल्याण ही करेंगे, ऐसा समझके उनसे गाढ़ी मित्रता कर लिया, और सदा-सर्वदा उन्हीं चोर, डाकू, ठग लोगोंका ही इतबार = पूरा विश्वास या निश्चय करते हैं। उनके वचनोंका ही प्रतीत करते हैं। इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है कि— तीहुँ लोक = स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, अथवा तीन गुण, वा

कामी, क्रोधी, मोही, वा योगी, ज्ञानी, भक्त, इत्यादि त्रिगुणी माया जालोंमें ही सब जीव पड़े हैं, उसमें स्त्री, और गुरुवा आदि चोर उनमें कर्ता, धर्ता, मालिक, सर्वश्रेष्ठ भये या हो रहे हैं।

अथवा साहुरूप नरजीव, चोर = मनःकल्पित ईश्वर, ब्रह्म, आदिको अपना रक्षक, वा अन्तिम गति निश्चय करके उसीके भरोसे नाना साधनाएँ करने लगे। वेद, कुरान आदिके वाणी कल्पनाको सदा विश्वास करने लगे। इसवास्ते सद्गुरु कहते हैं— कर्मी, उपासक, योगी, इन तीनों लोकोंमें चोर ब्रह्मज्ञानी जगत् कर्ता ब्रह्मस्वरूप अपनेको ही श्रेष्ठ कहनेवाले होते भये। इस प्रकार वाणी कल्पनाका कर्ता जीव भ्रमसे आप ही ब्रह्म करतार भया, धोखामें पड़ा।

साखीः— "तीन लोक चोरी भई। सबका सरबस लीन्ह ॥
बिना मूँड़का चोरवा। परा न काहू चीन्ह ॥" बी० सा० १२८ ॥

ऐसा सद्गुरुने कहा है। वाणीके प्रमाणसे माना हुआ ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या भ्रम, भूल है, उसे परखकर मानन्दीको त्यागना चाहिये ॥ ८ ॥

साखीः— शब्द करावै साधना। शब्द न चीन्हा जाय ॥
योग जप तप आदि ले। मरै कमाय कमाय ॥ ९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— माना हुआ ॐकार शब्द ब्रह्मके प्राप्ति या साक्षात्कार करनेके वास्ते गुरुवा लोग वेद, शास्त्रादिका शब्द नाना कल्पित वाणीका उपदेश सुनाय-सुनायके मनुष्योंको भक्ति, योग, ज्ञानादि मार्गोंका अनेकों साधनाएँ कराते हैं, वे अपने भी साधनाएँ करते जाते हैं। परन्तु उसे परख करके चीन्हते नहीं कि— प्रणव शब्दरूप ॐकार ब्रह्म, चारों वेद, छहोंशास्त्र एवं पुराण, कुरानादि समस्त शब्दरूप वाणी नरजीवोंकी ही कल्पना किया हुआ मिथ्या धोखा है। उससे जीवोंका कल्याण तो कुछ भी होता नहीं, बिना विवेक ऐसा यथार्थ चीन्हा या पहिचाना नहीं जाता है। इसीसे भ्रमिक होकर मनुष्य सब नाना साधनाएँ करने-करानेमें लगे और

लगा रहे हैं। तहाँ कोई अष्टाङ्ग-योग साधना कर रहे हैं, कोई षट्क्रिया, दशमुद्रा, धारणा, ध्यान, समाधि लगा रहे हैं। कोई तैंतीस कोटि देवताओंके नाम जप करके माला फेरनेमें लगे हैं। कोई तपस्या करनेमें—पञ्चाग्नि तापना, जल-शयन करना, अरण्य-निवास, उर्ध्वबाहु, मौनी, दिगम्बर, ठाडेश्वरी, निराहारी, फलाहारी, इत्यादि नाना प्रकारसे कठोर तपश्चर्या करते-कराते जन्म बिता रहे हैं। कोई तीर्थयात्री, व्रत, उपवास करनेवाले-कर्मकाण्डी, उपासक, ज्ञानी, विज्ञानी, इत्यादि एक-एक कल्पनाको ले-ले करके जीवन भर जड़ाध्यास, भ्रम, कल्पना, भूल, धोखा, हङ्कार, काम, क्रोधादि और वासना-संस्कार इसी सबको यथेष्ठ खूब कमाय-कमायके अत्यन्त अध्यासी होके मरते हैं। फिर शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही घुमा करते हैं। बिना पारख धोखेका शब्द न चीन्हके भवबन्धनोंमें पड़ते हैं। अतः पारखी साधु गुरुके सत्सङ्गमें रहकर उक्त शब्द जालोंको चीन्ह लेना चाहिये ॥ ९ ॥

साखीः— कोटि साधना करि मरै । ब्रह्म आप जो होय ॥
शब्दके मारे सब मरे । शून्यमें गये बिगोय ॥ १० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— आप जीव अपने स्वयंस्वरूपका बोध पारख न होनेसे कल्पनासे एक ब्रह्म व्यापक मानकर फिर आप ही वह ब्रह्म होनेके लिये गुरुवा लोगोंके भ्रमानेसे करोड़ों-करोड़ों नरजीव या जीवकोटि यहाँ करोड़ों प्रकारके नाना साधनाएँ कर-करके मरे, जड़ाध्यासी भये, हंसपदसे मृतक, पतित हुए, वा हो रहे हैं। इत्यादि साधनाएँ करके अन्तमें जो आप ही ब्रह्म अधिष्ठान होते हैं, तो क्या ब्रह्म पीछे भया, पहिले नहीं था? यदि ब्रह्म प्रथमसे ही व्यापक ही है, तो फिर नाना साधनाएँ करनेका क्या काम? जब ब्रह्म अधिष्ठान ही है, तो तुम्हें ब्रह्म बनना क्या है? सरासर धोखा ही है। और आप ही ब्रह्म भी हुआ, तो जगत्

चौरासी योनियोंके स्वरूप ही तो बना। इससे क्या फायदा हुआ? कहाँ आवागमन छूटी? जन्म-मरणके चक्रमें ही तो पड़े। हे सन्तो! विचार करिये, उन धूर्त गुरुवा लोगोंके कल्पित वेद, शास्त्रादिकी धोखाके शब्दके मारे चोटलगनेसे, यानी नाना उपदेशके शब्द बाण हृदयको लक्ष करके कान द्वारा गुरुवा लोगोंने मनुष्योंको ताक-ताकके मार दिये। जिससे विवेक-विचारकी चेतना गमाय करके सब नरजीव मरे वा जड़ाध्यासी भये। चराचरमें परिपूर्ण व्यापक आकाशवत् शून्य ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा मानकर हंसपदसे बिगड़ कर शून्य धोखामें पड़ गये। इस प्रकार नर-जन्म कर्म-भूमिकामें स्थिति बिगाड़ करके, अन्तमें देह छोड़कर चौरासी योनियोंकी शून्य स्थान गर्भवासमें ही वे चले गये। बिना पारख॥ इससे पहिले ही उसे परख करके परित्यागकर चैतन्य स्थितिमें स्थिर हो जाना चाहिये॥ १०॥

साखीः— ब्रह्म ईश जग आदिलों। हित माने सब कोय॥
शब्दके मारे सब मरे। चीन्है बिरला कोय॥ ११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो! अविचारी लोगोंने कल्पना करके भिन्न-भिन्न प्रकारसे अपने-अपने इष्टको हितकारी माने हैं। तहाँ कोई असिपद, विज्ञान ब्रह्म, झाँईंको ही कल्याण-स्वरूप परमतत्त्व परमात्मा मान रहे हैं। कोई ईश = तत्पदवाच्य ईश्वर ज्ञानी, सर्वशक्तिवान् षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त, जगत्कर्ता परम-पुरुष ठहराकर उसे इष्ट मान रहे हैं। और कोई जग = जगत्में त्वंपदवाच्य अल्पज्ञ जीव अज्ञानी, असक्त मानकर उसके हितके लिये ब्रह्म, ईश्वरादिकी ध्यान आदि नाना साधनोंमें लगा रहे हैं। और कोई विषयी, पामर बाममार्गी लोग पञ्चमकार सेवन, भैरवी चक्र आदि कुकर्मको ही हित मानते हैं। कोई शून्यवादको, कोई तत्त्व-वादको, कोई देहवादको, क्षणिकवाद, हिंसावाद, नास्तिकवाद,

चार्वाक आदिसे लेकर षटदर्शन-९६ पाखण्डतक सब कोई अपने-अपने मान्यताको हितकारी समझ करके ही मानते जाते हैं। परन्तु पूर्ण पारखबोध हुए बिना सब धोखामें पड़के, निज पदसे नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। ब्रह्म, ईश्वर, जगत्-विषय भोग, आदितक हित माननेवाले वे सब अविवेकी लोग गुरुवा लोगोंके रोचक, भयानक मिश्रित कल्पना, भ्रमके हलाहल विषसे बुझाई हुई शब्दरूपी बाणके मारसे घायल हो-होके, चोट खाके गिर पड़े, सब मरे, वा जड़ाध्यासी होते भये। फिर देह छूटनेपर अध्याशवश चारखानोंको प्राप्त भये। इसके पूर्ण भेदको तो कोई बिरले ही सत्यन्यायी, विवेकी पारखी सन्त, पारखके प्रतापसे चीन्हते हैं, और उससे न्यारा होकर हंस रहनी संयुक्त निजपद पारखमें ही स्थित हो मुक्त होते हैं। अतः पारखी साधु गुरुकी शरण, सत्सङ्गको प्राप्त करके बन्धनोंसे मुक्त होना चाहिये ॥ ११ ॥

साखीः— बिन पग परकी चीड़िया । भूतल नभ उड़ि जाय ॥
सब कोई लगे बझावने । बागुर तोरि पराय ॥ १२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— जैसे कोई पैर और पङ्ख न दिखै, ऐसी चिड़िया पृथ्वीसे आकाशतक उड़ जाय, फिर जहाँ-तहाँ बैठे, उसे बिचित्र देखके सब कोई पकड़नेके मनसूबासे उसपर जाल डालें, किन्तु, वह चालाँक पक्षी जालोंको तोड़-तोड़कर ही भाग जाय, तो सब पछतावैं। तैसे ही यहाँ सिद्धान्तमें वाणी-कल्पनाकी पैर और पङ्ख तो है नहीं, तो भी चीड़िया=पक्षीवत् मनकी चञ्चलतासे, भूतल=नीचे पृथ्वीरूप स्थूल-सूक्ष्म शरीरसे उड़ करके नभ= आकाशरूप ऊपर ब्रह्माण्ड पर्यन्त चली जाती है। तहाँ वाणी कल्पनासे आकाशवत् सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मकर्ता निश्चय किये हैं। कोई भ्रमरगुफामें उसको ढूँढ़ते हैं, कोई वेदवाणी आदिमें उसकी तलाश करते हैं। कोई जहाँ-तहाँ तीर्थादिमें जाके ईश्वरादिकी तलाश करते हैं। इस प्रकार मनकी कल्पना उड़-उड़के सबके पास जाके बैठी।

उसे सुन्दर देख-सुन करके इधर सब कोई उसे बझानेका या फँसाके पकड़नेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने सुना कि— कर्ता पुरुष परमात्मा हृदयमें वा मस्तकमें तथा ब्रह्माण्डमें सब जगह रहता है। तो उसके दर्शन-प्राप्तिके वास्ते सब कोई नाना साधनाएँ करने लगे। जप, तप, व्रत, उपवास तीर्थयात्रा, यज्ञ, दान, योग, ध्यान, उपासना, ज्ञान, विज्ञान, समाधि इत्यादि वाणीजाल फैलाके मन-कल्पनाको पकड़नेका दाव सब कोई अपने-अपने इच्छानुकूल कार्य करने लगे। परन्तु वह वाणी-कल्पना, मन-मानन्दी किसीकी पकड़नेमें नहीं आई। बल्कि उन्होंका डाला हुआ बागुर=वाणी-जालको भी तोड़-ताड़के वह बलिष्ठ कल्पना, पराय=भाग गई। तहाँ मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य आत्मा बन गई। गर्भवासको उड़ा ले गई, और लापरवाहीसे कोई पकड़ने आया, तो वह भागी चली जाती है। मौका पाते ही हृदयमें आकर सब सद्गुणोंको चुन-चुनकर खा जाती है। ऐसी यह मन-पक्षी बड़ी दुष्ट और चालाँक है। सब बेपारखी जनोंको मन कल्पनाने चक्कर खिलाया, चौरासी योनियोंमें डाला। केवल पारखी सन्तके आगे ही उसका कुछ वश नहीं चलता है। पारखी सन्त मनको पकड़के स्वाधीन किये रहते हैं। इसलिये कल्पनाका दाव उनपर नहीं चलता है। अतएव पारखी सद्गुरु द्वारा वही युक्ति सीख करके मनको पकड़कर वाणी कल्पना और विषय वासनाको नष्ट करना चाहिये ॥ १२ ॥

साखीः— शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध। विषय बतावै वेद ॥
उपदेशै एक ब्रह्म पुनि। केहि विधि विषय निषेध ॥ १३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! आकाश तत्त्वरूप समान वायुका शब्द विषय है, सो कानोंद्वारा सुना जाता है। चञ्चल वायुतत्त्वका स्पर्श विषय है, वह त्वचा द्वारा शितोष्ण आदि जाना जाता है। अग्नितत्त्वका रूप विषय है, नेत्र द्वारा देखा जाता है। जलतत्त्वका रस विषय है, जिह्वा द्वारा षट्रस चाखा जाता है।

और पृथ्वीतत्त्वका गुण गन्ध विषय है, नासिका द्वारा गन्ध-सुगन्ध सूँघा जाता है। इस प्रकारसे पाँच तत्त्वोंके मुख्य गुण वा विषय पाँच हैं, सो वे पञ्चज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण होते हैं। औरवे दमें भी ऐसे ही भिन्न-भिन्न करके इन्हें पाँच विषय बताया है। तथा वेदवेत्ता वेदान्ती लोग भी उक्त पाँचों विषयोंको जड़ पञ्चतत्त्वोंका गुण कहके ही बताये हैं और बता रहे हैं। इस प्रकार शब्दादि पाँचों तो जड़ विषय बन्धनरूप ठहरा। फिर उसी विषयरूप शब्द द्वारा अद्वैत एक ब्रह्म है, ॐकार या प्रणवरूप वह ब्रह्म है, "शब्दब्रह्मेति श्रुतिः" इत्यादि कथन कह करके ब्रह्मज्ञानी लोग जीवोंको एक शब्द ब्रह्मका उपदेश देते हैं। तहाँ विचार करिये, फिर किस प्रकारसे विषयका निषेध या त्याग हुआ? जब विषय, तत्त्व, ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच-पाँच हैं, उसे पहिले मानकर पीछे उसके तरफ कुछ भी ध्यान न देके आँखें मूँद, एक ही अद्वैत ब्रह्म है, और जगत् त्रिकालमें नहीं है, ऐसा कहा, तो वह कैसे साबित होगा?। विषय और जगत् तो सबको प्रत्यक्ष है। और जिस ब्रह्मको तुम सत्य बतलाते हो, उसकी प्रतीति तो किसीको भी नहीं होती है। कैसी मिथ्यावाद करते हो। जब वेदने पञ्चविषय बताया है, तो फिर एक ब्रह्म है, ऐसा तुम शब्द द्वारा ही तो कहते हो, तब वह ब्रह्म भी शब्द विषय हुआ कि नहीं? प्रणव ब्रह्म कहा है, तो वह शब्द विषय हुआ ही। अब कहो! विषयका निषेध ब्रह्मज्ञानमें किस तरहसे हुआ? अतएव माना हुआ ब्रह्म कथन शब्दका विषयमात्र होनेसे मिथ्या कल्पना है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे यथार्थ सत्यासत्यको जान लेना चाहिये॥ १३॥

साखीः— विषय कहै चीन्है नहीं। विषय बतावै ईश॥
सो विष विषयको पान करि। बड़े-बड़े मुये मुनीश॥ १४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये वेदान्ती गुरुवा लोग कहनेको तो शब्द आदि पाँचोंको विषय विकार है, उसे त्यागना

चाहिये, ऐसा कहते हैं। परन्तु उसके अन्तर्गत कौन-कौन हैं, उसका घेरा विषय कहाँतक रहता है। इस रहस्यको यथार्थ रीतिसे वे चीन्हते या पहिचानते ही नहीं। तभी तो वाणी कल्पनासे कोई एक जगत् कर्ता ईश्वर, परमात्मा है, ऐसा बताते हैं। जो ईश्वर बताये, सो भी शब्दका ही विषय हुआ। क्योंकि, ईश्वर-ब्रह्मको निराकार माना हुआ होनेसे उसका साक्षात्कार तो किसीको हो सकता ही नहीं। इससे बताया हुआ वाणीका विषय ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या कल्पना ही है। परन्तु सोई कल्पित ब्रह्म, ईश्वरादिकी मानन्दी विष मिश्रित वा हलाहल विषरूप वाणी-विषयको यथेष्ट पान करके, यानी उसे भाँगके प्याला सरीखी खूब पी करके वा ग्रहण करके पक्ष पकड़कर बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, ब्रह्मादि, सनकादि, वशिष्ठ, व्यास, शुक, दत्त, शङ्करादि बिना पारख, मुये = भ्रमिक जड़ाध्यासी भये और जगत्‌रूप ब्रह्म बनके देह छूटनेपर मर-मरके चौरासी योनियोंमें गर्भ-बासको ही प्राप्त भये। अतः उसे मुमुक्षुओंने यथार्थ परखके त्यागना चाहिये। मिथ्या मानन्दीको छोड़देना चाहिये॥ अर्थात् पाँचों विषय बन्धनरूप हैं, उसे त्यागना चाहिये, तभी मुक्ति होगी, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं। और शब्द विषयसे ही ईश्वरादिको कर्ता बतलाते हैं, उस कल्पनाको चीन्हते नहीं। सोई विषरूप वाणीका विषय नाना सिद्धान्तोंको ग्रहण करके बिना पारख बड़े-बड़े मुनीश्वर जड़ाध्यासी होके मरि गये। आवागमन चक्रमें पड़े। अतः पारखबोधको ग्रहण करके उस भ्रम धोखामें कदापि नहीं पड़ना चाहिये ॥ १४ ॥

साखीः—— शब्द विषय कहि ब्रह्म उदय। गुरुवन कीन्हा फेर ॥
मातु सुतहि विष देइ जो। तो क्या बसि बालक केर॥ १५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! अब देखिये! वेदान्तियोंने पहिले तो शब्दको विषय कह करके उसे बन्धनका कारण, विकारी ठहराया। और फिर पीछे उस बातको भूलकर

शब्द द्वारा ही ब्रह्मज्ञानका उदय या प्रकाश किया। तथा शब्दस्वरूपी ही ब्रह्म ठहराया। इस प्रकार उलट-फेर करके गुरुवा लोगोंने ढिंढोरा पीट-पीटके लोगोंकी बुद्धि फिराकर संसारमें वाणी-कल्पना फैला दिये हैं। यह तो ऐसा हुआ कि— जैसे कोई निर्दयी माता ही स्वयं अपने पुत्रको जोकि विष खिला देवे, तो उसके अबोध बालकका क्या वश चलेगा? वह तो विषके प्रभावसे अवश्य ही मर जायगा। इसी तरह यहाँपर मातावत् रक्षक बने हुए गुरुवा लोग, अपने पुत्रवत् अबोध शिष्योंको विषरूप वाणी, कल्पना, भ्रम, धोखा, ब्रह्म, ईश्वरादिको ही सत्य बता करके जो नाना प्रकारसे उपदेश देते हैं, वही बात दृढ़ा देते हैं या दृढ़ा रहे हैं; तब बालकवत् अज्ञानी अबोध संसारी मनुष्योंका वश ही क्या चले? कैसे भवबन्धनोंसे बचें, कैसे सत्यबोध हो? अज्ञानी जीव तो लाचार हो, उसी भ्रम, चक्रमें ही पड़ जाते हैं। अर्थात् शब्दको विषय भी कहे हैं, फिर शब्दसे ब्रह्मका प्रकाश भी किये हैं। ऐसे गुरुवा लोगोंने बुद्धि फिराके जीवोंको फेरा या घनचक्रमें डाल दिये हैं। गुरुवालोग ही धोखा देके शिष्योंको कल्पनामें डाल रहे हैं, तो अबोध मनुष्योंकी क्या शक्ति चले कि, वे भ्रम, कल्पना छोड़ सकें? अतएव गुरु, शिष्य, दोनों ही जड़ाध्यासी हो, आवागमनमें घूम रहे हैं, बिना पारख ॥ १५ ॥

साखीः—शब्द आदि पाँचों विषय। करैं आचार्य बखान ॥
शब्द विषय ठहरायके। भजन कहैं भगवान् ॥१६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! सुनो! वेद-वेदान्तके ज्ञाता व्यास, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, शङ्कर आदि आचार्योंने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, ये पाँचों विषय जड़, विकारी, तथा जीवोंको बन्धनदाई हैं; ऐसा वेद-वेदान्त आदि शास्त्रोंमें बखान या वर्णन किये हैं, और पण्डित, आचार्य लोग भी अभी वैसे ही वर्णन करते हैं। इस प्रकार एक तरफ तो शब्दको विषय ठहरायके त्याज्य

बतायके निषेध किये हैं। दूसरे तरफ शब्दको प्रणव या ॐकार ब्रह्म, परमात्मा, षट्गुण-ऐश्वर्य संयुक्त भगवान् वा वेद भगवान्, ठहरायकर उनके शब्दोच्चार द्वारा नाम स्मरण, भजन, कीर्तन, पाठ, प्रार्थना, आदि करनेको कहे हैं; और ब्रह्म उपासना, ध्यान, धारणा, आदि ॐकारको शब्द ब्रह्म मानके करते-कराते हैं। इस तरह यहाँ शब्दको ही विधि-विधान किया है। विवेकसे देखिये! उन्होंकी कितनी उल्टी समझ हुई है। अगर शब्द विषय तथा बन्धनकारी है, तो उससे स्थापित किया हुआ ब्रह्म, ईश्वरादि समस्त सिद्धान्त भी बन्धनरूप ही होते हैं। माना हुआ भगवान् भी शब्द विषयका विकार ही ठहरता है। उसका कल्पनासे भजन, कीर्तनादि तथा जापादि करनेको जो कहे हैं, सो सब भी वाणी जाल ही है। अतएव इनके सिद्धान्तमें मिथ्या धोखाके सिवाय और कुछ भी सार नहीं है। उनके सङ्गत, तथा पक्ष त्यागनेमें ही मुमुक्षुओंकी भलाई है, ऐसा जानिये! ॥ १६ ॥

साखीः—अपने मुखकी बारता। सुनै न अपने कान॥
जो ठहरै शब्द विषय। तो विषय ब्रह्म भगवान्॥ १७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये वेदान्ती लोग तो पक्के बहिरे, मूढ़ ही हो गये हैं। क्योंकि, वे लोग स्वयं अपने मुखसे बोली हुई वार्ताको भी अपने कानसे सुनते तक नहीं। केवल दूसरोंको ही सुनाते हैं। मैं क्या बोल रहा हूँ, उसके तात्पर्यको भी वे कुछ समझते नहीं। मानो पागल ही बन गये हैं। अपने ही मुखसे तो शब्दको प्रथम विषय ठहराये हैं, विषय निषेध करना, ब्रह्मको निर्विषय कहना, यह उनके अपने मुख्य वार्ता या मुख्य सिद्धान्त है। किन्तु, पश्चात् उसे अपने ही कानसे सुनते नहीं। अर्थात् सत्य, असत्यका विचार, विवेक करनेमें कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं। पहले खण्डन करके पीछे उसीको मण्डन भी करते हैं। ब्रह्मको मन, बुद्धि,

वाणीसे परे अवाच्य कहते हैं। फिर उन्हीं शब्द-मनादिके द्वारा ब्रह्मका प्रतिपादन भी करते हैं। कैसी इनकी उल्टी समझ है। जो कि, यदि असलमें शब्द विषय अग्राह्य बन्धनरूप ठहरा, तो उस शब्द द्वारा निरूपित ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, भगवान्, खुदा, आदि सब भी मिथ्या वाणीकी कल्पना खाली कहने-सुननेमात्रका निरर्थक शब्द विषय ही सिद्ध हुआ। तुम्हारे यावत् कथन, सिद्धान्त शब्द विषय ठहरनेसे दोषयुक्त बन्धनकारी ही हुए, अतएव यह तो महान् बन्धनका जाल ही हुआ। ऐसा जानके उसे त्यागनेमें ही कुशल है। अर्थात् ये पक्षपाती लोग अपने मुख्य सिद्धान्तकी पहिली वार्ताको पीछे अपने ही कानोंसे सुनते नहीं। यानी उसपर कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, विचार नहीं करते हैं। जो पहलेके कथनसे शब्द तो विषय ठहर ही गया, फिर शब्द द्वारा भगवान्, ब्रह्म, परमात्मा, आदि कहा हुआ क्या विषय नहीं हुआ? वह सब कथन भी वाणीका विलास सरासर शब्द विषय ही साबित हुआ। अतएव वह माना हुआ ब्रह्म आदि सत्य चैतन्य सार वस्तु नहीं है। सत्यासत्यको परखके उसे पहिचानकर भ्रम, भूलको त्यागना चाहिये ॥१७॥

साखीः—कबीर व्यापक पदमिनी। व्याप रही संसार ॥
ते सुत जाये ब्रह्म एक। ताहि कहै कर्तार ॥ १८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! कबीर = कायाबीर चैतन्य नरजीवोंके हृदयमें पहले एक कल्पना स्फुरित हुई। सोई परा, पश्यन्ती, मध्यमा, होते हुए वैखरीमें आयके एकपाद उच्चारित हुई कि— कोई एक व्यापक पद है। सोई मुखके पादने बाहर वाणी या शब्दके आकार धारण किया। फिर तो वह पदमिनी = वाणी धीरे-धीरे सारे संसारमें व्याप्त होके फैल रही। यानी कल्पना सब ठिकाने प्रचार हो गया। पीछे उसी पदमिनी, वाणीरूप लक्ष्मी स्त्रीने पुरुष नरजीवके संसर्गसे एक अनूपम वा अद्भुत पुत्रको कल्पनाकी योनि

द्वारा ही उत्पन्न किया। जिसका नाम ब्रह्म, परमात्मा रक्खा। जब वह सिद्धान्त क्रमशः परिपुष्ट होके बड़ा हुआ, तब सारे गुरुवा लोग उसे चराचरके कर्ता, विश्वपति, विराट पुरुष, परमेश्वर, परब्रह्म, निरञ्जन, निराकार, निर्गुण, अद्वैत, व्यापक कहने लगे। आजतक उस कल्पनाकी ऐसे ही मिथ्या प्रशंसा होती चली आ रही है। सब कोई ब्रह्मको कर्ता पुरुष कहते हैं, परन्तु उसका कहीं ठौर-ठिकानाका पता ही नहीं लगता है। इससे हे नरजीवो! वाणीकी संशय, कल्पना ही ब्रह्म होके अनुमानसे सब संसारमें व्यापक मानी जा रही है, उस ब्रह्मको ही कर्तार कहे हैं, सो तो वाणी कल्पनासे उत्पन्न हुआ, मिथ्या धोखा है। सो उसे यथार्थ जानके भ्रमको त्यागो ॥ १८ ॥

साखीः— कबीर पदारथ पदमिनी। माने तीनों लोक ॥
सोई पद चीन्हें बिना। देत पदारथ शोक ॥ १९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! कबीर = भ्रमिक नरजीवोंने, पदमिनी = कल्पित वाणीके प्रमाणसे पदारथ = पदका अर्थ करके नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, निराकार, निर्गुण व्यापक एक ब्रह्म पदार्थ निश्चय किये। तब उसे तीनोंलोक = योगी, ज्ञानी, भक्त वा त्रिगुणी साधक आदि सब लोगोंने मन-मानन्दीसे, स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, ये तीनों लोकोंमें पूर्ण भरा हुआ ब्रह्मको मान लेते भये। परन्तु सो ऐसा पद-पदार्थ भी कहीं है? कहीं भी नहीं। किन्तु सोई ब्रह्मपद ही तो नरजीवोंकी मानन्दी मिथ्या वाणीकी कल्पना, भ्रम, धोखा है। यथार्थ विवेकसे उसे परीक्षाकर मुख्य बातको चीन्हें बिना या जाने-पहिचाने बिना धोखासे सब भूलमें पड़े हैं। इसी कारण माना हुआ वह कल्पित ब्रह्म पदार्थ जो है, सो सब साधक मनुष्योंको हर तरहसे, शोक = दुःख ही दे रहा है। यानी वही डबल दुःखका कारण हो रहा है। जीतेतक ब्रह्म प्राप्ति आदिके लिये नाना साधना करके दुःख पाते हैं, जड़ाध्यास वश हो, अन्तमें शरीर छोड़के चारखानीके गर्भवास, जन्म, मरण तथा त्रय तापादि दुस्सह दुःख भोगते रहते

हैं। बिना पारख वाणी कल्पनासे तो ब्रह्म, ईश्वरादिको तीनों लोकोंका कर्ता सर्वश्रेष्ठ सब गुरुवा लोगोंने मान लिये हैं। परन्तु निज पदको जाने बिना, धोखामें पड़के जड़ाध्यासी भये हैं। इसीसे जीवको वह अध्यास ही जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त शोक, कष्ट, दुःख, त्रयताप आदिमें डालके दुःख देता ही रहता है। अतएव जीते ही परखकर खानी, वाणीकी अध्यासोंको छोड़ देना चाहिये, तभी यथार्थ सुख होगा॥१९॥

साखीः—कबीर पदारथ पद विषय। चीन्हैं नाहीं कोय॥
अन्ध हाथ जस दर्पण। दिनहिं अँधेरा होय॥२०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— कबीर = हे नरजीवो! तुम्हारा माना हुआ एक ब्रह्म पदार्थ जो है, सो तो पद = शब्द या वाणीका कथन उच्चारित विषय ही है। बिना विवेक तुम लोग कोई भी उसे चीन्हते या पहिचानते नहीं हो, यही तुम्हारी बड़ी भारी भूल है। पदसे ही तो पदार्थकी सिद्धि होती है। किन्तु वस्तु सत्य हो, तो उसका नाम भी सत्य होता है, यदि वस्तु ही मिथ्या हो, तो नाम कैसे सत्य होगा? वह तो सहज ही मिथ्या ठहरेगा। तैसे गुरुवा लोगोंने ब्रह्म, ईश्वरादि जो पदार्थ माने हैं, निराकार, निर्गुण, आदि ठहरानेसे वह असली कोई पदार्थ ही नहीं ठहरता है। वह तो सिर्फ पदका विषय वाणीकी कल्पनामात्र है। इसलिये कल्पना करनेवाला जीव सत्य है, और ब्रह्म, ईश्वरादि असत्य है। परन्तु पारख बिना यह कोई भी गुरुवा लोग चीन्हते नहीं। इसीसे भ्रमचक्रमें पड़े हैं। जैसे अन्धेके हाथमें दर्पण या ऐना भी हुआ, तो वह क्या मुख देखेगा? अरे! उसे तो दिनमें सूर्यके महाप्रकाशमें भी कुछ नहीं दिखता है, दिन ही में भी धुन्ध अँधेरा है, तब रात्रिमें चन्द्रमाके या दीपकके प्रकाशमें दर्पणको हाथमें लेके अन्धा क्या रूप देखेगा? कुछ नहीं। तैसे ही पक्का जन्मान्ध पारख दृष्टि हीन गुरुवा लोग काँच या शीशाके दर्पणवत् वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानकी वाणी लिखित पुस्तक अपने

हाथोंमें लेके जिस-तिस प्रकारसे पढ़कर उसमें अपने स्वरूप देखना चाहते हैं। अर्थात् वेदादि पढ़कर स्वरूप ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं ? तो कैसे होगा ? अरे ! उन्हें तो दिनरूप चैतन्यजीवकी ज्ञान प्रकाशमें ही, अन्धेरा = महा अज्ञान भ्रम गाफिली हो रही है। तो वे अपने स्वरूपको क्या जानेंगे ? इतना भी तो वे जानते नहीं कि— वेदादि वाणी सब नरजीवोंने कल्पना करके बनाया है ? किन्तु, वेद-वाणीको गुरुवा लोग ईश्वरकृत मानते हैं, यही दिनमें अँधेरा हो रहा है। क्योंकि, वे अन्धे पक्षपाती बने हैं। इसलिये उन्हें यथार्थ बात मालूम पड़ता ही नहीं। सद्गुरुने बीजकमें कहा है:—

रमैनीः— "अन्ध सो दर्पण वेद पुराना। दर्बी कहाँ महारस जाना ॥ १ ॥
जस खर चन्दन लादेउ भारा। परिमल बास न जानु बगाँरा ॥ २ ॥
कहहिं कबीर खोजे असमाना। सो न मिला जो जाय अभिमाना ॥ ३ ॥"
॥ बीजक, रमैनी ३२ ॥

इसलिये यहाँ रहस्यको कहा कि— हे जीव ! ब्रह्म कोई पदार्थ नहीं है। किन्तु, पद या वाणीकी कल्पित शब्द विषयमात्र है। यह कोई चीन्हते नहीं। अन्धे मतवादियोंने स्वरूप देखनेको दर्पणवत् वेदादिको हाथोंमें पकड़ लिया है। तो भी दिन = ज्ञान, समझ, बोधमें आवरण पड़के अन्धेरा छाया है, गाफिल पड़े हैं। इसलिये सत्य पारख बोध उन्हें होता नहीं। अतः भ्रमिकोंके सङ्गत करनेमें कोई लाभ नहीं है, पारखी सन्तोंका ही सत्सङ्ग करना चाहिये ॥ २० ॥

साखीः—कबीर पदार्थ पद अर्थ जो। सो तो विषय देखाय ॥
और पदारथ कौन है ?। पण्डित ! कहो बुझाय ॥२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो ! यहाँपर पद या शब्दका जो अर्थ निकलता है, वही पदार्थ या शब्दार्थ ठहरता है। इसलिये सो माना हुआ ब्रह्म, ईश्वरादि तो पदरूप वाणीका अर्थ या पदार्थ, सरासर विवेक करनेसे प्रत्यक्ष वाणीका विषय ही दिखाई देता

है। फिर उसके अतिरिक्त पदके अर्थको छोड़के और पदार्थ है, तो कौन है ? कैसे है ? कहाँ है ? हे पण्डित ! बुद्धिमानो ! मैं तुम लोगोंसे ही पूछता हूँ, निष्पक्ष होके पदार्थ बात निर्णय करके समझाय, बुझायके तुम मुझसे कहो। फिर मैं उसे विचार करके सत्य, मिथ्याका पहिचान, फैसला करके बतलाऊँगा। अर्थात् नरजीवोंने जो ब्रह्म पदार्थ एक अनूपम निर्गुण, निराकार, पूर्ण आदि लक्षण वर्णन करके माने हैं, सो पदका अर्थमात्र अनर्थ कल्पित शब्दका विषयमात्र दिखता या दिखलाता है। फिर वाणीको छोड़के अवाच्य कहा हुआ और ब्रह्म पदार्थ कौन है ? उसके जितने भी लक्षण कहा गया है, सो सब तो निषेध सूचक है। वह तो कोई पदार्थ सत्य नहीं है। हे पण्डित ! जरा समझ-बूझके कहो ? मिथ्या पक्ष धोखाको छोड़ो ॥ २१ ॥

साखीः— कबीर अपने रूपको । कहै जो प्राप्ति होय ॥
ऐसा भ्रम जेहि ऊपजा । सो जियरा गया बिगोय ॥ २२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! कायावीर कबीररूप चैतन्य नरजीवोंसे जो गुरुवा लोग ऐसा कहते हैं कि— हे जीव ! तुम्हें अपने स्वरूपको प्राप्त कर लेना चाहिये। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा आदि इनमेंसे कोई एक तुम्हारा स्वरूप है, उनसे तुम पृथक् हो गये हो, अब उपासना, योग, ध्यान, ज्ञान आदिकी साधना करो, तो तुम्हें फिर निज ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति होगी, इत्यादि जो कहते हैं, और अपना स्वरूप कहीं भिन्न है, साधना द्वारा उसकी प्राप्ति होगी, ऐसा महाभ्रम-भूल जिसमें उत्पन्न हुआ, सो नरजीव अपने हंसपदसे बिगड़के जड़ाध्यासी हो गया, वह शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ जायगा, ऐसा जानो। जैसे बाँशमें फूल, और चींटीके पङ्ख आनेपर वे विनष्ट हो जाते हैं, तैसे भ्रम उपजनेपर जीव भी मुक्तिपदसे गिर पड़ते हैं। एक कथामें कहा हैः— एक बन्दर और मगर या ग्राहमें मैत्री हो गई, नदी तटमें जामुनके वृक्षमें फल पके थे।

बन्दर अपने फल खाता, कुछ नीचे गिरा देता, जिसे ग्राह भी खाता, कुछ घर ले जाके स्त्रीको देता। इस तरह कुछ दिन बीतनेपर मगरकी स्त्रीने कहा, ऐसे मीठे फल खानेवालेका मैं तो कलेजा ही खाना चाहती हूँ, तुम उसे पकड़ करके लाओ, ऐसा कहके स्त्रीने हठ पकड़ ली। लाचार हो मगर आके कहा— बन्दर भाई ! तुम तो मेरे पक्के मित्र हो, चलो तुम एक दिन हमारे घर देख आओ, आओ ! तुम मेरे पीठपर बैठो, मैं तुम्हें नदी पार करा देता हूँ, वहाँ बहुत अच्छे-अच्छे फल मिलेंगे, इत्यादि कहा। उसकी बात सुन, विश्वास करके बन्दर जाके मगरकी पीठपर बैठ गया, नदीके बीचमें ले जाके मगर डूबने लगा। उस बन्दरने कहा— अरे ! मित्र ! यह क्या करते हो ? मगरने कहा— मेरी स्त्री तुम्हारा कलेजा खाना चाहती है, इसीसे मैं तुम्हें डुबा रहा हूँ ! बन्दर सम्हलके झट बोला— अरे ! इतनेके लिये ही है, तो सुनो ! मैंने अपना कलेजा निकालके तो उसी वृक्षमें टाँग रखा हूँ, अब वह मेरे पासमें कहाँ है ? वहीं किनारेमें कहा होता, तो मैं अपना कलेजा उतारके तुम्हें वहीं दे देता। मेरे पासमें कलेजा नहीं है, तभी तो मैं उछल-कूद करता हूँ, वृक्षपर चढ़ता हूँ ! चलो, जल्दी वहाँपर पहुँचा दो, तो वृक्षसे उतारकर कलेजा तुम्हें दे दूँगा, फिर उसे लेते जाना। मगरने भी उसकी बातमें विश्वास करके, फिर बन्दरको किनारेमें ला दिया, बन्दर कूदके वृक्षपर चढ़ गया। ऊपरसे उसपर विष्ठा गिरा करके बोला— देखो ! यही मेरा कलेजा है, कहके जङ्गलमें भाग गया॥ तैसे ही सिद्धान्तमें बन्दररूप गुरुवा लोगोंने नाना उपदेशरूप फलको संसार नदीमें गिराया, जिसे मगररूप अज्ञानी मनुष्योंने सुन-सुनके ग्रहण किया। तब किसीको गुरुके स्वरूप वा अपने स्वरूप कलेजावत् केवल ब्रह्म प्राप्तिकी इच्छा हुई, गुरुवा लोगोंसे वह स्वरूप प्राप्ति करानेको कहे, तो उन्होंने कहा, ठीक है, तुम्हारा-हमारा स्वरूप तो ब्रह्मवृक्षमें लटका है, चलो घर-बार त्यागके नदी तटमें, वनमें, बैठके साधना करो, तो आत्मस्वरूपकी प्राप्ति

होगी। ऐसा सुनके जिज्ञासु नरजीव उनके पीछे लगे, तो अन्तमें अपने सिद्धान्तके स्थानमें आके गुरुवाने विष्ठावत् कल्पित वाणी छोड़ा कि— ब्रह्म सर्वव्यापक जगत्रूप है, सो तुम ही हो, इत्यादि कथन करके वे भाग खड़े हुए, विचार छोड़ दिये। इधर ये धोखेमें पड़के पछताते रह गये, हाथ कुछ न आया, इत्यादि ॥

इस दृष्टान्त-सिद्धान्तसे यही सिद्ध हुआ कि, अपना स्वरूप कहीं बाहर नहीं, जो कि प्राप्त होगा। निज स्वरूप तो स्वयं प्राप्त; सर्वदा नित्य, सत्य ही है। स्वयं स्वरूपको प्राप्त ही क्या करना है? जो भी वस्तु प्राप्त होगी, सोई अपनेसे भिन्न होनेसे जड़कार्य ही होगा। वह निजस्वरूप कदापि नहीं हो सकता है, और ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, खुदा आदि जो माने हैं, सो तो मिथ्या धोखा वाणीकी कल्पनामात्र है, तब प्राप्ति तो भी क्या होगी? कुछ नहीं, फिर ब्रह्मको व्यापक कहा है, तो प्राप्त होता है, कहना बड़ा भ्रम है। ज्योति आदि भास, तत्त्वोंका प्रकाश जड़ है, सो निजस्वरूप नहीं। इसलिये जो जीव अपने स्वरूपको अप्राप्त बतलाकर अन्य उपायद्वारा प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। सो भ्रमिक बेपारखी, अविचारी ही हैं। जिसको ऐसा भ्रम, संशय उत्पन्न होके दृढ़ होता है, सो जीव निश्चय ही मनुष्यपदसे बिगड़कर, अध्यासी हो, चौरासी योनियोंको गया और जाता रहेगा। अतएव पारख करके स्वयं प्राप्त निज स्वरूपको समझना चाहिये ॥ २२ ॥

साखी:— अपनेको जाना चहै। कहै जो ऐसा बोल ॥
कहहिं कबीर सो जीयरा। भया सो डामाडोल ॥ २३ ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ! ये भ्रमिक गुरुवा लोग तो पञ्चविषयसदृश अपने स्वरूपको भी भिन्न बतालाकर, उसे जानना-जनाना चाहते हैं, तथा मैं अपने स्वरूपको प्रत्यक्ष देखके जानना चाहता हूँ, ऐसा अविचारकी बोली या वाणी जो

बोलता है, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है कि— सो जीव बड़ा भ्रमिक है, अतः सो डामाडोल = पारखस्वरूपकी स्थिति हुए बिना, चञ्चल, डोलायमान्, जड़ाध्यासी हो गया है। इसलिये वह आवागमनके चक्रमें पड़ गया है, बार-बार देह धरता, छोड़ता हुआ, दुःख ही भोगता रहेगा। क्योंकि, उसने अपने स्वरूपको क्या जड़-वस्तु या पाँच विषयके सरीखी भिन्न समझ रखा है? तो जो ऐसा समझ रखा है, तो वह अनित्य नाशवान् ही है। उसे जान भी लिया, तो क्या लाभ हुआ? जो कहता है कि— मैं अपनेको जानना चाहता हूँ, इससे तो वह और सबको जाननेवाला, जनैया स्वयं ज्ञानस्वरूप द्रष्टा साबित हो गया। फिर वह अपनेको जानेगा क्या? और कैसे? ध्यानमें दिखता हुआ ज्योति, अग्नितत्त्वका प्रकाशरूप विषय है, अनहद, शब्द विषय है, आनन्द, अमृत रस, तथा कमलका गन्ध क्रमशः स्पर्श, रस और गन्ध विषय हैं। उसको जानकर जीव तो न्यारा ही रहा, बिना पारख इस भेदको या स्व-स्वरूपको कोई समझकर जान नहीं सकते हैं, और अपनेको भ्रमसे ब्रह्म, ईश्वर, वा उसके अंश मानकर जो कोई ऐसा बोली कहते हैं कि— "अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि. अयमात्मा ब्रह्म", इत्यादि वेदके महा-वाक्यके प्रमाणसे ब्रह्मस्वरूप ही अपनेको जान लेना चाहिये, तो निश्चयसे सो नरजीव डामाडोल या बिना स्थितिके चञ्चल, बद्ध, आवागमनका अधिकारी हो गया है। ऐसे जड़ाध्यासी जीवके मुक्तिकी कोई आशा नहीं है। सत्यन्यायी श्रीकबीरसाहेबने यही निर्णय करके कहे हैं। अतः पारखबोधसे सब कसरको परखना चाहिये ॥ २३ ॥

साखी— पूर्व आचार्य वेदान्तके। निरूप करें अद्वैत ॥
केहि निरूप उपदेशहीं। भीतर भासे द्वैत ॥ २४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते कहते हैं:— हे जिज्ञासुजनो! पूर्व

या प्रथम प्राचीनकालमें बड़े-बड़े वेदान्त शास्त्रके अधिष्ठाता आचार्य व्यास, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि हुए हैं। तत्पश्चात् शंकराचार्य आदि कयीएक वेदान्ताचार्य हो गये हैं। उन्होंने वेद-वेदान्तके प्रमाणसे अद्वैत ब्रह्मका निरूपण किये हैं। उसी प्रमाणसे अबके वेदान्ती लोग भी एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है, ऐसा निरूपण करते हैं। अब उसमें विवेक करिये कि— अगर एक अद्वैत ही है, एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं। तब वे लोग अद्वैत ब्रह्मका निरूपण करके किसको उपदेश देते हैं। क्या ब्रह्म अपने आपको उपदेश करता है ? कि दूसरेको ? अपने आपको मैं एक हूँ, या ब्रह्म अद्वैत है, कहकर बतानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। इसलिये यह सिद्ध हो गया कि— उनके भीतर अन्तःकरणमें द्वैतकी दुगदुगी भ्रान्ति लगी ही थी। बाहर अद्वैत एक ब्रह्म है, कहते हुए भी भीतर द्वैतकी भास उन्हें भासता ही था। अगर अपनेसे भिन्न दूसरा कोई न भासता, तो वे अद्वैत निरूपण करके उपदेश ही किसको देते। दूसरे मनुष्योंको देखके ही तो उपदेश दे रहे हैं। अतः वे सब भ्रमिक मिथ्यावादी ही भये हैं ॥ २४ ॥

साखीः— व्यास कहै जग है नहीं। हुवा न कबहूँ होय ॥
कहहिं कबीर उपदेश केहि। कारण कहिये सोय ॥ २५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! वेदान्त शास्त्रके कर्ता व्यासजी ऐसा कहते हैं कि— जगत् या संसारके नाम-रूप वास्तवमें कदापि सत्य नहीं है। जो कुछ सत्य है, सो ब्रह्म ही एक अद्वैत है। पूर्वमें न कभी ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति हुई है, और न कभी पश्चात्में ही जगत्की उत्पत्ति होगी। अर्थात् त्रयकालमें जगत्का अस्तित्व ही नहीं। चराचर द्वैत जगत् नहीं है ! नहीं है !! नहीं है !!!

"एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति"—"ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या"— नेत्र मूँदकरके ऐसा वाक्य कहा है। तहाँ पारखी सन्त श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—

अगर असलमें ऐसा ही तुम्हें निश्चय है, तो यह बताओ, वेद, वेदान्तका उपदेश, ब्रह्मज्ञानका कथन तुम किसको और किस कारणसे कहते हो ?। एक ब्रह्म है, दूसरा कोई नहीं है; तब उपदेश देनेका क्या काम ? गुरु-शिष्य होनेसे क्या काम ? ब्रह्मको विधि-विधानसे निरूपण कर जगत्को मिथ्या कहकर निषेध करनेका क्या काम ? ब्रह्म सत्य है, और जगत् नहीं है, ऐसा तुम किससे कहते हो ? जब तुमने अन्य लोगोंको उपदेश दिया, तो द्वैत सहज ही सिद्ध हो गया। ब्रह्मको तुम क्या समझते हो, जड़ कि, चैतन्य ? जड़ कहोगे, तो पाँच तत्त्व जड़का विस्तार संसार प्रत्यक्ष ही दृश्य है। यदि चैतन्य कहोगे, तो अनन्त देहधारी जीव चैतन्य प्रत्यक्ष मौजूद ही हैं। अगर चराचरमें व्यापक ब्रह्म कहोगे, तो वह असम्भव बात होनेसे तुम्हारा भ्रम मिथ्या धोखा ही है। सब एक होता, तो उपदेश कौन, किसको देता ? उपदेश देनेका क्या कारण है ? सो कहो ? जब तुम जगत्में रहके, फिर जगत् जीवोंको ही उपदेश दे रहे हो, फिर भी जगत् है नहीं, ऐसा कहना, कितना मूर्खतापूर्ण अविचारकी बात है। जैसा कोई वाचाल कहै— देखो भाई ! मेरे मुखमें जिभ्या तो है नहीं, किन्तु, मैं ईश्वरीय शक्तिसे उपदेश दे रहा हूँ ! सो मेरे वचनको मानो, तो उस वञ्चकका कथन मूर्खताके ही ठहरेंगे। तैसे ही इन वेदान्तियोंकी बात भी व्यर्थ ही है, ऐसा जानिये ! ॥ २५ ॥

साखीः— कबीर दीपक एक जो। लेसकै करै अँधेरी दूर ॥
सब अँधेरी सकेरिके। रही गाँड़ितर पूर ॥ २६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! रात्रिमें जो किसीने एक दीपक जलाया, तो वह, लेसकै = उजियाला, प्रकाश करके उस स्थानके अँधियाराको दूर कर देता है। परन्तु सब अन्धकारको समेटकरके, हटाकर वह अँधेरी उसी दीपकपात्रके गाँड़ितर = नीचेके स्थानपर पूर्णरूपसे छाया रहता है। अर्थात् दीपकका उजियाला

चौतरफ तो प्रकाश करता है, किन्तु अपने नीचे प्रकाश कर नहीं सकता है। इसीसे "दीयाके तले अँधेरा" वा "गाँड़ तरे अँधेरा" ऐसा कहावत प्रसिद्ध है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें वेदान्ती गुरुवा लोगोंने जो कि, वेद-वेदान्त शास्त्रके प्रमाणसे दीपकवत् एक अद्वैत ब्रह्म-सिद्धान्तकी वाणी मुखद्वारा जगत्में चेताये या जलाये। ब्रह्मज्ञानका प्रकाश वा प्रचार कर अज्ञान, अविद्यारूप मायाकी द्वैत भासका खण्डन करके कहनेको तो बाहरकी अँधेरी दूर किये, संसारमें वे ज्ञानी-विज्ञानी कहलाये। परन्तु अँधेरी अविद्यामायारूप सब चराचर जगत्को समेट करके सर्वाधिष्ठान आप ही एक ब्रह्म भये। तहाँ जगत् त्रिकालमें नहीं है, मैं ब्रह्म ही सत्य हूँ, ऐसा कहते भये। इसलिये सारा महाअज्ञान, गाफिली, धोखा, भ्रम, भूल, जड़ाध्यास, इत्यादि समस्त विकार महा अन्धकार उनके गाँड़ितर = हृदयके भीतर ही पूर्णरूपसे जमा होके रहती भई। अधिष्ठान होनेसे सब विकारका मूल बीज वे आप ही होते भये। इच्छामाया पूर्णब्रह्ममें ही गुप्त होके बैठ रही। उसीसे "एकोहं बहुस्याम्" करके जगत् विस्तार होता ही रहता है। अतएव भ्रमरूप ब्रह्म अध्यास चौरासी योनियोंके चक्रमें भ्रमानेवाला है, उस भ्रमको परखके त्यागना चाहिये ॥ २६ ॥

साखीः— माया बैठी ब्रह्म होय। अद्वैत आवर्ण ॥
जग मिथ्या दरशायके। पैठी अन्तःकर्ण ॥ २७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! मायारूपी गुरुवा लोग वेद-वेदान्तकी वाणीके प्रमाणसे आप स्वयं ही ब्रह्म होयके व्यापक मानन्दी करके एक देशमें बैठे हैं। असलमें मायारूप कल्पित वाणी ही-ब्रह्म होयके उनके हृदयमें जाके बैठी है। इसलिये अद्वैत कथनका अवर्ण = अज्ञानका बड़ा परदा उनपर पड़ा हुआ है। वर्णसे रहित निःअक्षर, अवर्ण एक ही सर्वत्र पूर्ण, ऐसा लक्षणवाला अद्वैत ब्रह्म कहा है। तथा मायाको भी अनिर्वचनीय, अचिन्त्य शक्तिवाली

माना है। सो वाणीरूपी माया ही वैसे विचित्र ब्रह्म होके गुरुवा लोगोंके मनमें जमके बैठी है। उसने अपने मिथ्या कल्पना, दुराग्रह, पक्ष, अविवेकसे दृश्य जड़, चैतन्यरूप स्वतः सत्य अनादि जगत्को भी वेदान्त कथनके प्रकरणमें धोखासे मिथ्या रज्जू-सर्पवत् प्रतीतीमात्र, तीन कालमें असत्य ऐसा भ्रम दर्शायके, अधिष्ठान ब्रह्म सत्य है, ऐसा बतलायके पुनः वेदान्तियोंके अन्तःकरणमें जाके घुस पड़ी, उन्हें शून्य, गरगाफ करके जड़ाध्यासी बना दी। अतएव वे बेपारखी भ्रमिक लोग सब अध्यासवश ब्रह्म-जगत्के रहटामें पड़के, जन्म, मरणादिके चक्रमें गिर पड़े, महाबन्धनमें जकड़ गये। बिना विवेक ॥ २७ ॥

साखीः— कबीर माया रामकी। भई रामते शेष ॥
व्यापक सब कहँ राम है। राम रमामय देख ॥ २८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! माया = काया, छल-कपट, वाणी, कल्पना, मानन्दी, ये सब तो, रामकी = चैतन्य जीवोंकी सत्ता-सम्बन्ध देह द्वारा प्रगट होती हैं। परन्तु वही जीवकी माया, मोह, वाणी, अनुमान, आदि संसारमें राम = रमैयाराम चैतन्य जीवसे विशेष शक्तिशाली तथा बाकी सबसे श्रेष्ठ होती भयी। क्योंकि, उसी वाणी कल्पनाके आधारसे सब कोई भ्रमिक गुरुवा लोग और ही कोई एक आत्माराम मानकरके उसे सर्व-व्यापक परिपूर्ण भरा है, ऐसा कहते हैं। इसलिये राम स्वयं चैतन्य-जीव जब खानी, वाणीमें रमा, तब तन्मय होकर या रमामय = वाणी कल्पनारूप ही होकर भ्रमसे जगत्-ब्रह्म सबको एक अधिष्ठान आत्मामें मानकर एक अद्वैतस्वरूप देखने लगा। अर्थात् कबीर = हे जीव! मायारूप खानी, वाणी तो चैतन्य जीवकी शक्तिसे ही उत्पन्न भयी हैं। किन्तु अविवेकके कारणसे संसारमें वह माया, जीवसे भी श्रेष्ठ हो रही है या मानी जा रही है। सब कोई वाणीके प्रमाणसे

एक आत्माराम सर्वव्यापक है, ऐसा कहे और कह रहे हैं। इसलिये नरजीव आप ही कल्पनामें तदाकार हुआ—जगत्को ब्रह्मरूप देखते हैं। वह मिथ्या धोखा है, ऐसा कोई बिरले ही पारखदृष्टिसे परख कर उसे यथार्थ देखते वा जानते हैं ॥ २८ ॥

साखीः— कबीर माया रामकी। चढ़ी रामपर कूद ॥
हुकुम रामका मेटिके। भई रामते खूद ॥ २९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! चैतन्य जीवरूप रामकी शक्तिसे ही अध्यास सम्बन्ध करके मन माया, काया बनी है। फिर तन-मनके आधारसे, विषय-वासना तथा वाणी कल्पना, अनुमान, भास आदि उत्पन्न हुये। पीछे वही खानी, वाणीके अध्यास-रूप माया उछल-कूद करके रमैया राम चैतन्य जीवके अन्तःकरणमें चढ़ी। रामपर ऐसे कूदके चढ़ी कि, उसे धर दबायी। जड़ाध्यासी, भ्रमिक बना दी। जीवसे उठी कल्पनाने जीवको ही धोखा भव-बन्धनमें डाल दिया। फिर तो अज्ञानका ऐसा रङ्ग चढ़ा कि गाफिल हो गये, और वह माया, कल्पना, मन, अज्ञानके नशामें चूर, मदमस्त होनेसे, राम = सत्य चैतन्य जीवके, हुकुम = आज्ञा, स्वरूप स्थिति [जीव सत्य है, स्व-स्वरूपमें स्थिर होकर मुक्त होना चाहिये। यह सद्गुरुकी आज्ञा] को भी मेट-मिटाय करके विस्मृत कर दिया। जीवकी सत्तासे ही मन कल्पना बढ़ते हुए जीवसे भी विशेष प्रधान खुद मालिक कर्ता, धर्ता, हर्ता, जगदाधिष्ठान आत्मा ही हो गया। जीवकी सत्ता प्रवाह मेटके खुद मुख्तियार, सर्वेसर्वा भयी है। इससे जीव लाचार होके मन-मानन्दीके अधीन दबकर, भवबन्धनके कैदमें पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ २९ ॥

साखीः— कबीर अक्षर शुद्धमें। निकसै अर्थ न कोय ॥
मात्रा सन्धि बेकारते। पण्डित अर्थी होय ॥ ३० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! खाली अकेले ही

"क से क्ष" तक शुद्ध एक-एक अक्षरमें तो कोई भी विशेष अर्थ निकल नहीं सकता है, और उन अक्षरोंमें जब मात्राएँ लगाई जाती हैं, तब अ, उ, म, अर्ध, बिन्दु ये पाँच मात्राएँ, सन्धि = सम्बन्ध, मेल, अक्षरोंका जोड़, त्रयलिङ्ग, इत्यादि कई एक विकार संयुक्त होनेसे तब कहीं पण्डित लोग, अर्थी = अर्थ करनेवाले होते हैं। मात्रा-सन्धि संयुक्त शब्द समूह, पदोंको देख करके ही पदच्छेद, अन्वय, टीका, टिप्पणी, भाष्य, शब्दार्थ, भावार्थ, पद-पदार्थ, ध्वन्यार्थ, व्यंग्यार्थ, खुलासा इत्यादि पण्डित लोग कह सकते हैं। उसके बिना कुछ कह नहीं सकते हैं। तैसे ही सिद्धान्तमें शुद्ध अक्षर = शुद्ध, अविनाशी, चैतन्य, जीवमात्रमेंसे कोई भी, अर्थ = मतलब, खानी-वाणी आदिकी विस्तार निकल नहीं सकती है। किन्तु, जीव जड़ाध्यास संयुक्त है, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतत्त्व और उसके विषय वासनाके सन्धि-सम्बन्धमें देहधारी भये हैं। इसीसे विषय-विकार तथा वाणी कल्पनादिकी मानन्दीसे ही बुद्धिमान् लोग नाना अर्थवाद प्रगट करनेवाले, चतुर, पण्डितादि होते हैं। अथवा गुरुवा लोगोंने माना हुआ शुद्ध, अक्षय, अविनाशी, केवल ब्रह्म, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निरीह, सर्व-व्यापक, सर्वाधिष्ठान, एक आत्मा है। विचार करिये! तो उसमें खास कोई अर्थ निकलता ही नहीं। वह सब निषेधकारक शब्द होनेसे अनर्थ ही प्रगट होता है। तब फिर उस कल्पित ब्रह्मकी इच्छासे जगत् कैसे बनेगा? जगत् तो स्वतः अनादि ही है। यदि पहिले जगत् नहीं था, तो पीछे कहाँसे आया? इच्छामात्रसे तो कोई भी वस्तु नहीं बन सकती है। यदि ऐसा कहो कि—पञ्चतत्त्वों-की पञ्चमात्राओंकी सन्धि विकारसे जगत् बना, उसमें ब्रह्म व्यापक हुआ। तो यह भी तुम्हारी कल्पना मिथ्या है। इधर जीव ही अध्यासवश देह धारण करके, वेद-शास्त्रादि पढ़-पढ़कर पण्डित बनके नाना अर्थ करनेवाले होते हैं। अतः जीव सत्य है, ब्रह्म मिथ्या है, ऐसा जानो! ॥ ३० ॥

साखीः— अक्षर मात्रा सन्धि मिलि । भासै अर्थ विचार ॥
मात्रा सन्धि जुदा किये । पण्डित होय गँवार ॥ ३१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जब चौंतीस अक्षरोंमें सोलह स्वर और पाँच मात्रा, तीन सन्धि, तीन लिङ्ग, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, इत्यादि संयुक्त होके परस्पर मिल जाती हैं या ऐसा मिलाया जाता है, तब उस पद समूहका विचार करनेसे नाना प्रकारके अर्थ, तात्पर्य, पण्डितजनोंको भासता है, या मालूम पड़ता है, और अत्तर, मात्रा, सन्धि आदि उक्त सब साधन मिले हुए वेद-वेदान्तादि ग्रन्थोंका अध्ययन करके शब्दका विचारकर कोई एक ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, आदि कर्ता पुरुष निराकार व्यापक है, ऐसा अर्थ भास होता भया । सोई भासको श्रेष्ठ मान करके भासक जीव भूलमें पड़ गये, और जब पञ्चमात्रा, पञ्चतत्त्वकी जड़सन्धिसे या मानन्दीसे चैतन्य जीवको, जुदा = न्यारा वा पृथक किया गया । जड़, चेतनको अलग-अलग निर्णय करके उनसे पूछा गया कि— बताओ, तुम्हारा ईश्वर वा ब्रह्म अब कहाँपर है ? तब तो पण्डित लोग निपट गँवार या मूर्ख ही हो गये । वे कहने लगे चराचरमें परमात्मा व्यापक है, जड़-चैतत्य न्यारा-न्यारा करके तो वह कहीं भी नहीं ठहरता है । इसलिये न्यारा नहीं, वह सबमें भरा हुआ है, ऐसे गँवारी हठ पकड़ने लगे, बिना विवेक ॥

अथवा जीव, पाँच तत्त्व और अध्यासका सम्बन्ध मिलके ही नरदेह बनता है । तब वाणी, खानीका निर्माणकर नाना अर्थका विचार भासता है । यदि मात्रारूप विषयादिसे, सन्धि = सम्बन्ध जुदा किया गया, तो पण्डित जन भी बुद्धि गँवाके मौन हो जाते हैं । मन आदिसे सम्बन्ध विच्छेद होनेपर कोई विचार आदि हो नहीं सकता है ॥

अथवा अक्षर प्रणवरूप ॐकार कल्पित ब्रह्ममें पाँच मात्राओंकी सन्धि मिली, तब मनुष्योंको नाना अर्थ विचारकी भास हुई । अगर

ॐकारमें मिले हुए पाचों मात्राओंकी सन्धि तोड़कर भिन्नकर दिया, तब तो ब्रह्मके कुछ अस्तित्त्व न ठहरनेसे ब्रह्मज्ञानी पण्डित गँवार-मूढ़ ही हो जाते हैं। अतः ब्रह्म कुछ नहीं, सिर्फ जीवकी भ्रममात्र है ॥३१॥

साखीः— बरण सन्धि वाणी रची। मात्रा भरनी दीन्ह ॥
जगत ईशकी चूनरी। पहिरि कबीरा लीन्ह ॥३२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— बरण=वर्ण, अक्षर, चौंतीस अक्षर, सोलह स्वर, त्र, ज्ञ, एकत्र मिलायके ५२ वर्ण प्रगट किये हैं। उसीमें पञ्चमात्रा लगाय, भिन्न-भिन्न सन्धियाँ जोड़कर वाणीकी रचना किये हैं। जिससे ४ वेद, ६ शास्त्र, १८ पुराण, १४ विद्या, ६४ कला, और कुरान, बाइबिल आदि बहुत-सा वाणो समूह, ग्रन्थोंकी रचना होती भई, और जैसे तानामें सूतके भरनी देते हैं और साड़ी तैयार करते हैं, सोई स्त्रियाँ पहिर लेती हैं, तैसे ही अक्षर-समूह वाणियोंको बाँधने, जोड़ने, ग्रन्थ निर्माण करनेके लिये पण्डित गुरुवा लोगोंने अकार, उकार, मकार, इकार और बिन्दु ऐसे पञ्च-मात्राओंकी भरनी जहा-तहाँ लगा दिये हैं। मनकी कल्पना, भाव-कुभाव सब वाणीमें भर दिये, लिख दिये हैं। वेद-शास्त्रादिमें इधर जगत्‌में वर्णाश्रम पालनकी व्यवस्था, उधर ब्रह्म, ईश्वरादिकी महिमा खूब बढ़ा दिये हैं। रोचक-भयानक वाणीका विशेष विस्तार किये हैं। वाणीसे ही कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञान, ये पाँच मार्ग, षट् दर्शन—९६ पाखण्डोंका पसारा कर रखे हैं। सबसे अधिक भक्ति-मार्गकी महिमा बढ़ाये हैं। इसलिये जगत्‌में संसारी मनुष्योंने गुरुवा लोगोंका आधार पकड़कर ईश्वरादि प्राप्तिके लिये नवधा-भक्ति-रूपी चुनरी=चित्र-विचित्र भेषोंकी नाना रूप, नाना रङ्गकी साड़ी सब भ्रमिक भक्त लोगोंने स्त्री-भाव धारण करके, अपने-अपने अङ्गोंमें पहिर लिये हैं। कल्पित ईश्वर पतिको रिझानेके लिये गाय, ध्यायके नाच, तमाशा कर रहे हैं। परन्तु वह तो मिथ्या धोखा मनकी कल्पना

है। उससे लाभ तो कुछ नहीं होता है, व्यर्थ ही जन्म बिता रहे हैं, बिना विवेक। अर्थात् जगत्‌की चुनरी, विषयी लोगोंने पहिरे और भक्तोंने ईश्वरकी चुनरीरूपी भक्तिको पहिरके भूल गये ॥ ३२ ॥

साखीः— सूत पुराना जोड़ते। बैठ बिनत दिन जाय ॥
बरण बीनि वाणी किये। जोलहा परा भुलाय ॥ ३३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे पुराना सूत जोड़ते-जोड़ते बैठकर ताना बिनते-बिनते दिन तो चला जाता है। कपड़ा तैयार होनेपर फटा हुआ ही निकलता है, तो जुलाहा बड़ा भूलमें पड़ जाता है कि—यह क्या हुआ ? मेहनत बेकार गई। इसी प्रकार सिद्धान्तमें पुराण पुरुष सूत्रधारी चैतन्य-जीव वासनावश देह-बन्धनमें पड़ा हुआ है। मनुष्य जन्ममें आया, तो कर्मभूमिका होनेसे अनेकों जन्मों-का पुराना सूतरूप नाना वासनाओंको जोड़ते-जोड़ते देहमें बैठके सङ्कल्प-विकल्प करके कर्मोंको बिनते-बिनते दिनरूप आयु समग्र खतम हो जाती है। तो भी निजस्थितिको प्राप्त नहीं हो सकते हैं, जिन्दे हैं, तबतक वर्ण, आश्रम, जाति, पाँति, मान, बड़ाई इत्यादि सांसारिक आचार-विचारको ही बिनके या चुन-चुनके संस्कार बनाये वा बना रहे हैं। इसीमें जोलहा = जो कल्पनादिको लहा सो जीव निजपदको भूल पड़ा। इसीसे जड़ाध्यासी होकर शरीर छूटने-पर चारखानी चौरासी योनियोंके महाचक्रमें गिर पड़ा। उसका बुना हुआ सब शरीर फटता ही गया, छूटता गया, कुछ भी काममें नहीं आया ॥

अथवा दूसरा अर्थः— सूत पुराना = नरजीवकृत प्राचीन कल्पित वाणियोंको जोड़ते, संग्रह करते, पढ़ते, पढ़ाते, और अनुमान, कल्पनाकी भूमिकामें बैठकर वाणीको बिनते-बिनाते, श्लोक, छन्द, प्रबन्ध, कविता, गद्य, पद्य आदिकी रचना करते-करते तथा भाषामें कवित्त, छन्द, सवैया, छप्पै, अरिल्ल, सोरठा, दोहा, साखी, इत्यादि पद बनाते

कण्ठाग्र करते-कराते, इसी प्रकार सारा दिनरूपी नर-जन्मकी आयु बीती चली जाती है। किन्तु, निजस्वरूपका बोध, बिना पारख कहीं किसीको नहीं होता है। बावन वर्णरूप अक्षरोंको बीन-बीनके अपने मतलबके माफिक शब्द समूह चुन-चुनके वाणी रचना किये। उसीसे चार वेद, षट्शास्त्र आदि बहुतेरी वाणी जाल बनाये, और जो कल्पना भ्रमको लहा, सो जोलहा = मानुष जीव उसीमें निज-पदको भूलके गिर पड़ा। मुक्तिके बदले और महाबन्धनोंमें जा पड़ा। इस प्रकार बिना पारख अनादिकालसे जीव सब वाणी, खानीके जालमें फँसे पड़े हैं। कोई बिरले ही पारखी उससे छूटकर मुक्ति पदको प्राप्त करते हैं ॥ ३३ ॥

साखीः— जो सबके उरमें बसी । ताहि न चीन्है कोय ॥
देवलोकमें उर बसी । ताहूके उर सोय ॥ ३४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जो वाणी, कल्पना, अनुमान, भास, अध्यास, विषयासक्ति सब मनुष्य जीवोंके, उरमें = अन्तःकरणमें दृढ़ होके बैठी है, जिसमें सकल जहान मोहित हो रहे हैं। सो खानी जाल और वाणी जालको तो कोई चीन्हते ही नहीं, कि—वही जीवोंको बन्धन है। तथा स्त्री और गुरुवा लोग एवं ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कल्पनाको भी कोई चीन्हते नहीं कि— वही काल है। परन्तु मूर्ख लोग कहते हैं कि— देवलोक, स्वर्गलोक, वा इन्द्रलोकमें कहीं एक अति सुन्दरी मनमोहिनी उर्वसी नामकी अप्सरा रहती है, उसके रूप क्रीड़ा देखते ही बनता है। अरे! यह कथन तो असत्य है। क्योंकि, जब स्वर्गलोक, देवलोकादि ही कल्पित मिथ्या है, तो वहाँ अप्सरा स्त्री कहाँसे आयेगी? किन्तु, यह सब भ्रम, भूलकी भावना, कल्पनादि मनुष्योंके हृदयमें ही बसी हुई है। स्वर्गादि सात लोकोंमें तैंतीस कोटि देवताओंकी मानन्दी लोक-लोकादिका अनुमान, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, खुदा आदिकी भ्रम, विषय-वासना, इत्यादि सम्पूर्ण विकार

सो तो उसी मनुष्योंके अन्तःकरणमें बीजरूपसे गुप्त होके टिके हुए हैं। जो उरमें बसी है, सोई समय पायके, देवलोक=कण्ठस्थानमें आयके मध्यमा वाचासे, कर्मलोक=वैखरी वाणीमें आयके उतरती है। उसी वाणीको देख-सुन करके, सब मोहित-आकर्षित हो जाते हैं। इसलिये जिसने वेद, पुराणादि ग्रन्थ बनाया, उसीके हृदयमें भी सोई भ्रम-कल्पना ही बैठी रही। उसे न चीन्हके सब भूलसे धोखामें पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ ३४ ॥

साखी:— कबीर सब घर अपछरा। देवन दै बरताय ॥
आपको छरै सो अपछरा। चितवत मोहा जाय ॥ ३५ ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! गुरुवा लोगोंने कहा है कि— देवलोक, वा स्वर्ग लोकादिमें सुन्दरी अप्सराएँ रहती हैं; वे देवताओंको नाच-गाके, रिझाये रखती हैं, और तपस्या भङ्ग करानेके लिये इन्द्र आदि उन्हीं अप्सराओंको भेजते हैं, इत्यादि कथन तो कपोलकल्पित, मिथ्या ही है। असल बात तो यह है कि, बाहर सबोंके घर-घरमें अप्सरारूपी स्त्रियाँ घुस-घुसके पुरुषोंको हाव, भाव, कटाक्षसे छलकर वश कर रही हैं। प्रथम ब्रह्मादि त्रिदेवोंने भी वही विषय-भोगकी प्रेरणा, प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा, संसारमें बरताय दिये या बाँट दिये हैं, प्रचार कर दिये हैं। जो आप पुरुषोंको छले या अपने पतिसे भी छल, कपट करे, सो स्त्री ही अप्सरा है। जिसे देखते ही वा चिन्तवन करते ही विषयी पुरुष तुरन्त मोहित हो, आसक्त हो जाते हैं। अतः बन्धनका मूल कारण स्त्री ही है ॥

अथवा कबीर=देहधारी मनुष्य जीवके, सब घर=सबोंके घटोंघटमें, अपछरा=अपने जीवको छलनेवाली कल्पना, वाणी, अभिमान, मानन्दी, अध्यास, भ्रम, भूल, बैठ रही है, और देवन= गुरुवा लोग उपदेश देनेवालोंने भी, दै=नाना प्रकारके वाणी वेद,

शास्त्रादिके उपदेश दे-देकरके संसारमें वाणी कल्पना आदिको ही बरताय दिये हैं, यानी उपदेश बाँट-बाँटके प्रचार कर दिये हैं। अब वे पूर्वके गुरुवा लोग, अभी देवता कहलाते हैं, किन्तु, वे ही यमराज बने थे, और जो अपने-आप जीवको छलै, धोखामें डालै, बन्धनमें पाड़ै, सो वाणीजाल कल्पना ही डाँकिनी, अपछरा है। वेद, वेदान्त, पुराण, कुरान, आदिकी वाणीको देखते ही, तथा ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिका चिन्तन करते ही मनुष्य भ्रमिक होके मोहित हो जाते हैं। अपने सुधि-बुधि खोके धोखामें गरगाफ हो जाते हैं। बिना विचार उसे ही सत्य मान-मानके मूढ़, पतित हो जाते हैं। इसवास्ते मुमुक्षुओंको चाहिये कि— पारखी सत्यन्यायी साधु गुरुके सत्सङ्ग, विचार, विवेक द्वारा खानी, वाणी जालको भलीभाँति परखकर परित्याग कर देवें। कहीं भूले नहीं, पारखस्वरूपकी स्थिति करे, तो बन्धनोंसे रहित हो जायेंगे ॥ ३५ ॥

साखीः— परी श्रवण द्वारे सोई। ताको परा बखान ॥
बसी हियेमें आयके। सोइ पश्यन्ती जान ॥ ३६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! गुरुवा लोगोंने चार वाचाका स्थान इस प्रकार माने हैं कि— परावाचा नाभि स्थानमें, पश्यन्तीवाचा हृदयमें, मध्यमावाचा कण्ठमें और वैखरीवाचा मुखमें कहे हैं। परन्तु विवेकदृष्टिसे निर्णय करिये, तो उसका स्थान दूसरा ही मालूम पड़ता है, सो कैसे कि— गुरुवा लोगोंके मुखसे निकला हुआ शब्द, उपदेश नाना प्रकारसे जो शिष्योंके श्रवणद्वारमें सुनाई पड़ा, उसीसे ब्रह्म, ईश्वरादिका निश्चय हुआ। सो उसीको बाहर सबसे परे परावाणी, आध्यात्मिक उपदेश, ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, ऐसे नामसे वर्णन किये हैं। अर्थात् जो कल्पितवाणी कानमें पड़ी, उसे ही परा वा परात्पर ब्रह्म बखान करते हैं, और वही वाणी कल्पना, भ्रम, वाणी सुननेके पीछे जब हृदयमें आयके, दृढ़ निश्चय होके बैठ

गई कि— एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, सो ब्रह्म मैं हूँ, मन-ही-मनसे ऐसे कल्पित स्वप्न देखने लगा, सोई पश्यन्ती वाणी जानना चाहिये। फिर निज कल्पनाको हृदयमें देखते हुए उसे ही सत्य जानना या मानना, पश्यन्तीवाचा कहलाता है, ऐसा जानिये ! ॥ ३६ ॥

साखीः—पश्यन्तीसों निश्चय भई। मध्यमा कहिये सोय ॥
बोलै जिभ्या द्वार होय। सो तो वैखरी जोय ॥ ३७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और जो बात अपने ही अन्तःकरणसे निश्चय हो जाती है, सो पक्की होती है। इससे पश्यन्ती वाणीसे मैं ब्रह्म या आत्मा सर्वत्र चराचरमें परिपूर्ण व्यापक, ओत-प्रोत हूँ ! वेद प्रमाणसे अधिष्ठान आत्मा मैं ही हूँ ! तो मैं विधि-निषेधसे न्यारा हूँ ! ऐसा जो निश्चय दृढ़ भया, अपरोक्ष हुआ, सोई मध्यमा वाणी कहलाता है। जीव और जड़के मध्यमें वह मानन्दी रहती है, इसीसे उसे मध्यमा कहते हैं। कण्ठ-स्थानमें उसे माने हैं। पश्चात् जिभ्या द्वारा तालु, दन्त, ओष्ठादि स्थानोंका स्पर्श करके मुख खोलके, जो शब्द बाहर उच्चारण करके बोला जाता है, सोई तो वैखरी वाणी है। उसीसे सारा पिण्ड-ब्रह्माण्ड एक ब्रह्म स्वरूप ही बतलाकर दिखलाते हैं। वाणी तो सत्य ही बोलना चाहिये, किन्तु, गुरुवा लोग खोटी या झूठी वाणी ही बोलते हैं। अपने भ्रममें पड़े हैं, दूसरोंको भी भ्रमा-भ्रमाके धोखामें डाल देते हैं। अतः उनके चारों वाचा जीवोंको बन्धनकारी हैं, ऐसा विवेकसे देखिये ! ॥ ३७ ॥

साखीः—परा पश्यन्ती मध्यमा। वैखरी भई जो तीन ॥
कहहिं कबीर यह वैखरी। चीन्है सो परबीन ॥ ३८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! चार वाचाका निर्णय यही है कि— कानमें जो वाणी पड़ी, सो परा कही गई, वह वाणी हृदयमें स्थित हुई, सो पश्यन्ती भई, और हृदयमें दृढ़ निश्चय होनेके उपरान्त कण्ठमें आई, सो मध्यमा बनी, ये तीन वाणियोंको

छोड़के जो बोलकर मुखसे प्रकाश करता है, सोई चतुर्थ वैखरी वाचा प्रगट भई। जो कि, उन तीनोंके सहायक तथा जनक होता है। इसलिये वैखरीके बिना परा, पश्यन्ती, मध्यमा, इन तीनोंकी कुछ भी शक्ति चल नहीं सकती है। यदि पहिले वाणी सुना ही नहीं, तो क्या विचार करेगा? क्या निश्चय करेगा? और क्या कहेगा? और वैखरीको छोड़के तो तीनों वाणी पंगु हैं, वे आगे कोई विशेष कार्य नहीं कर सकती हैं। कह-सुनकर ही सब कार्य सम्पादन होता है, बोध होता है, सत्यासत्यकी विवेक-विचार निर्णय होता है। इसलिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने यही वैखरी वाणीको पहिचान करनेके लिये कहा हैः—

दोहाः— "बोल तो अमोल है, जो कोइ बोलै जान ॥
हिये तराजू तौलिके, तब मुख बाहर आन ॥" २७६ ॥
"वाणी ते पहिचानिये! शब्दहिं देत लखाय ॥" बी० सा० २८१॥
"अन्तर घटकी करनी, निकरे मुखकी बाट ॥" बी० सा० ३३०॥

अतएव कोई प्रवीण विवेकी पारखी सन्त ही इस वैखरी वाणीके भेदको गुरुमुख निर्णयसे यथार्थ चीन्हते हैं, और जो पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्गद्वारा यह वैखरीको चीन्हते या पहिचानते हैं, सोई प्रवीण, बुद्धिमान्, विवेकी होते हैं। वेदादि सब वाणियोंको वे जीवकी कल्पना ही समझते हैं, अतः भ्रम, भूलमें नहीं पड़ते हैं ॥३८॥

साखीः—श्रवण मनन सो वैखरी। निजध्यासन साक्षात् ॥
परा प्रकाशके ज्ञानको। स्वयं कहै वेदान्त ॥३९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और पहिले, सो वैखरी वाणीको ही सद्गुरु द्वारा श्रवण करके फिर भीतर मनद्वारा मनन या विचार, चिन्तन होता है, फिर बुद्धिद्वारा बार-बार ठहरानेसे निदिध्यासन या दृढ़ निश्चय होता है, तत्पश्चात् निश्चयके अनुसार ही साक्षात्कार भास होता है। इस तरह सबका मूल वैखरी ही हुआ, और वैखरीसे

बोला हुआ शब्द कानमें पड़ा, तो श्रवण हुआ, मध्यमामें मनन, पश्यन्तीमें निदिध्यासन, और परामें जाके साक्षात्कार हुआ। अथवा कोई श्रवण, मनन, ये दोनोंको वैखरीमें लेके, निदिध्यासनको मध्यमामें तथा साक्षात्कारको पश्यन्तीमें कहते हैं, और फिरपरा वाचासे प्रकाशित हुआ ब्रह्मज्ञानको वेदान्ती लोग स्वयं है, या स्वयं प्रकाश ब्रह्म है, ऐसा कहते हैं। परन्तु उनके कानमें जब गुरुवा लोगोंकी वाणी पड़ी, तभी ब्रह्मको व्यापक प्रकाशरूप मानके ब्रह्मज्ञानको संसारमें प्रकाशकर प्रचार किये, और कहने लगे— मैं स्वयं ब्रह्म हूँ। वही बात वेद-वेदान्तमें भी लिख दिये हैं, अब उसीका पक्ष पकड़के वेदान्ती लोग कहते हैं कि— वेद, वेदान्त = उपनिषद् आदिमें भी कहा है कि— परा ज्ञानका प्रकाश स्वयं है। वह अपरोक्ष आत्मज्ञान पराविद्याका हृदयमें प्रकाश होते ही सकल अविद्या नष्ट होकर जीव ब्रह्मस्वरूप ही हो मुक्त हो जाता है। ऐसी महिमा बढ़ाये हैं, सो भ्रम कल्पना ही है। गुरुनिर्णय द्वारा उसे परखकर भूल मिटाना चाहिये ॥ ३९ ॥

साखीः— श्रवण मनन निजध्यासन। साक्षात्कार जो होय ॥
परा प्रकाशको ज्ञान यह। चीन्है बिरला कोय ॥ ४० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! वैखरी वाणीको श्रवण करके उसीको मननकर अपनेमें अध्यास संस्कार जमायके निदिध्यासन द्वारा, जो कुछ दृढ़ निश्चय कर लेते हैं, सोई पीछेसे भास, अध्यासरूपमें साक्षात्कार होता है। इस प्रकार पहिले गुरुवा लोगोंकी वाणी सुनकर, मनमें गुनकर, निश्चय करके, जो "अहं ब्रह्मास्मि वा सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का साक्षात्कार या दृढ़ मानन्दी भी हुआ, तब भी मिथ्या धोखा ही है। क्योंकि, उनका माना हुआ श्रेष्ठ पराविद्या आत्मज्ञान तो जब कानमें वाणी कल्पना पड़ा, तब जाके कहीं यह ब्रह्मज्ञानका प्रकाश हुआ। पढ़े-सुने बिना तो ब्रह्मज्ञान

किसीको भी प्रकाश नहीं हुआ था, इसलिये यह कानोंका शब्द विषयमात्र ठहरा, और जड़-चेतनमें पूर्ण व्यापक ब्रह्म, आत्मा वा ईश्वरादि तो कोई नहीं है, और वेदान्ती लोग एक अद्वैत सर्वव्यापक ब्रह्म अपनेको मानते हैं, सो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे असिद्ध होनेसे मिथ्या धोखा ही है। यदि ब्रह्म एक ही होता, तो ब्रह्मबोधके लिये श्रवण, मनन आदि करनेका क्या काम? जब श्रवणादि साधना करनेके पश्चात् ही जो ब्रह्मज्ञानका साक्षात्कार होता है, तो यह परम्परासे प्रकाश होनेवाला, पराज्ञान परोक्ष तथा कल्पित है, अतः उनका बोध मिथ्या है, उससे जीवका कुछ भी कल्याण हो नहीं सकता है। इस ब्रह्मज्ञानकी कसर-खोटको कोई निष्पक्ष सत्यन्यायी, विवेकी, पारखी सन्त बिरले ही परखकर निर्णय करके यथार्थ चीन्हते या पहिचानते हैं कि— ब्रह्म मानना मिथ्या धोखा है। जो उनके सत्सङ्गमें आते हैं, उन्हें भी वे परखाय देते हैं, भ्रम-भूल मिटाय देते हैं। अतः पारखज्ञान सत्य है, और ब्रह्मज्ञान मिथ्या है, ऐसे निर्णयसे जानना चाहिये ॥ ४० ॥

साखीः— अन्धे परम्परायके। देखो तिनको न्याव ॥
राते शब्द शब्दार्थ करि। गुण अकाशको भाव ॥ ४१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और अन्धे लोगोंकी परम्परा या परिपाटी चाल यही है कि, देखनेवालोंका भी दोनों आँखें फोड़के अन्धा बना देना। नकटोंका परम्परा नाक कटाके नकट्टा बनाना है। तैसे ही अन्धे = पारख दृष्टिहीन इन ब्रह्मज्ञानी आदि गुरुवा लोगोंके यहाँ, परम्परा = पीढ़ी, दरपीढ़ी, पुस्तनपुस्ता पूर्व-प्राचीनके गुरुवा लोगोंके समयसे अर्वाचीन या अभी वर्तमान समयतकके समस्त वेदान्ती गुरुवा लोग बड़े भारी भ्रम-धोखेमें पड़े, और पड़ रहे हैं, अब विवेकदृष्टिसे उन्होंके न्याव = न्याय, निर्णय वा वास्तवमें अन्यायको तो देखिये! कि— आकाश = शून्य, पोल, जिसमें भाव,

गुण, आकार, धर्म, शक्ति, क्रिया, सम्बन्ध इत्यादि कुछ भी नहीं है। तहाँ मिथ्या भावनासे एक तो शब्दको आकाशका गुण वा विषय ठहराकरके कर्ण ग्राह्य माने हैं। फिर ब्रह्मको आकाशवत् निराकार, निर्गुण माने हैं। जब आकाश निराकार है, तो सूक्ष्माकारवाला उसके शब्द गुण होना ही असम्भव है। फिर उसी शब्दद्वारा अर्थ करके शब्दार्थमें ॐकारको शब्द ब्रह्म निश्चय करके उसीमें राते = प्रेम करके रत, गाफिल, आसक्त होते भये। तो भी तो उनके पूर्व कथनके अनुसार भावनासे आकाशका गुण माना हुआ शब्द एक विषय है, सो प्रणव ब्रह्म भी माना, तो शब्द विषय ही वह ठहरा। अब कहो, उसके जनैया जीव तो उससे सदा न्यारा ही है। फिर वह शब्दरूप ब्रह्म स्वयं ही कैसे हो सकता है ?। अथवा ब्रह्मका अंश जीव भी कैसे होगा भला ? पारखहीन अन्धे वेदान्तीजन परम्परासे ही अन्याय, अविचारसे जीवको ब्रह्मरूप या उसका अंश ठहराते आ रहे हैं। किन्तु उस ब्रह्मका तो कहीं पता ही नहीं लगता है। अतः कहीं जगत्-रूप ही ब्रह्म ठहराकर, कहीं ॐकार शब्दस्वरूप ब्रह्म मानकर, कहीं आनन्दरूप ब्रह्म ठहराकर उसी धोखामें मगन भये। आकाशका गुण शब्द वही ब्रह्म, ऐसे कुभावना करके भ्रमिक जड़ाध्यासी भये हैं। बिना पारख चौरासी योनियोंमें गोता लगाते भये। इसे परख करके त्यागना चाहिये ॥ ४१ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। भई सो पूरण ब्रह्म ॥
सुर नर मुनि भरमायके। कोइ न जाने मर्म ॥ ४२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— महाकाली, भगवती, आदिमाया स्वयं ही पूर्णब्रह्म होती भई, तहाँ उसने सुर, नर, मुनि आदिको भ्रमायके खानी, वाणीके जालोंमें फँसाई, परन्तु उसकी मर्म पारख बिना कोई जानते नहीं। अथवा हे कायाबीर-कबीर ! नर-जीवो ! पूर्ण ब्रह्म होनेवाली काली कलूटी सुन्दरी नारी कौन है ? क्या तुम

उसे जानते हो ? यदि नहीं जानते हो, तो सुनो ! मैं बतला देता हूँ। कबीर = नरजीवोंके कल्पनासे उत्पन्न, काली सुन्दरी = काली-स्याहीसे सफेद कागजपर लिखी हुई वेद-वेदान्त आदिकी वाणी है, जिसे लेखकने सुन्दर गोल-गोल अक्षरोंमें लिख रखा है। उसमें महिमाका शृङ्गार बहुत सजाया है। जिसे देख-सुनके सबकोई मोहित, लुब्ध, आकर्षित हो जाते हैं। सो वही कल्पित वाणी बाहर परिपूर्ण ब्रह्म होती भई, और उस काली सुन्दरी वाणीको आलिंगन करके उसके पतिरूप नरजीव भी साथ ही कल्पना, भ्रमसे एक अद्वैत पूर्णब्रह्म अपनेको ही मान लेता भया। अर्थात् एक कोई पूर्ण ब्रह्म है, ऐसा वेदान्तकी वाणीमें ही तो लिखा है। इससे केवल वाणी ही ब्रह्म होती भई। नहीं तो ब्रह्म कोई वस्तु नहीं, भ्रममात्र है। परन्तु उस वाणी कल्पनाने, सुर = देवतारूप सत्त्वगुणी मनुष्य, ज्ञानी, नर = रजोगुणी मनुष्य, कर्मी, भक्त और मुनी = मननशील तमोगुणी मनुष्य, तपस्वी-योगीलोग, इत्यादि सकल सिद्ध-साधक मनुष्योंको भ्रमायके महाधोखा, भ्रमचक्र, महाबन्धनमें डाल दी, नीचे गिरा डाली। तथापि पारख बोध बिना इस बन्धनकारी वाणी कल्पनाके मर्म = भेद या रहस्यको, कि—यह सब प्रकारसे त्याज्य है, उसे कोई विवेक करके जानते, पहिचानते नहीं। इसलिये वाणी प्रमाणसे ब्रह्म बन-बनके चौरासी योनियोंके चक्रमें भटक रहे हैं, बिना पारख ॥ ४२ ॥

साखीः—कबीर काली सुन्दरी । भई जगतकी ईश ॥
ब्रह्मादि सनकादि जग । सबै नवावैं शीश ॥ ४३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! आदिमाया सबपर स्वयं मालिक होके बैठी, उसीके चरणोंमें ब्रह्मादि सबोंने शिर नवायके मानते भये ! अथवा, काली सुन्दरी = कागजमें काली स्याहीसे लिखी हुई कल्पित वाणी जो है, सो दूसरे तरफ जाके वही जगत्कर्ता परमेश्वर, परमात्मारूप भी वर्णन होती भई। अर्थात् कोई

ईश्वर जगत्का कर्ता है, ऐसा वेद, शास्त्रादिकी वाणीमें लिखा है। किन्तु जड़-चैतन्ययुक्त जगत् तो स्वतः अनादि स्वयं सिद्ध है, इसको बनानेवाला कर्ता ईश्वर तो कोई है नहीं। इसलिये वह रोचक वाणी कल्पना ही जगत्में ईश्वर या सर्वश्रेष्ठ होती भई। अतएव ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ये अगुवे गुरुवा लोग और सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद, भृगु आदि सप्तऋषि इत्यादि उनके पछुवे, अनुयायी शिष्य लोग तथा जगत्में मौजूद योगी, ज्ञानी, भक्तवर्ग आदि वे सब लोगोंने महामाया, भगवती, सरस्वतीरूप वाणी, कल्पनाको ही झुक, झुकके अपने-अपने शिर नवाये। उसके सामने सब दीन, हीन, मलीन, हतबुद्धि होगये। वेद-पाठ, गायत्री-जाप, नित्य, नैमित्यिक षट्कर्मों-का आचरण, चारवर्ण, चार आश्रमोंके नियम पालन करते रहे। अर्थात् ब्रह्मादि, सनकादिकोंने भी कोई एक जगत्कर्ता निराकार, निरञ्जन परमेश्वर मानके, शिर नवायके आदिमायाकी स्तुति किये। बिना पारख वाणी कल्पना और खानीके ही फन्देमें वे सब पड़े। जड़ाध्यासी हो आवागमनमें पड़े। कोई पारखी ही उसको पहिचानते हैं ॥ ४३ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी । बैठी ईश्वर होय ॥
ब्रह्मादि सनकादि जग । जोवैं मुख सब कोय ॥ ४४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— आदिमाया ही सर्वोपरि ईश्वर होके बैठी तहाँ ब्रह्मादि सबोंने दीन होके उसके मुख ताकते भये। अथवा हे नरजीवो! काली सुन्दरी = काली स्याहीसे कागजमें लिखी हुई वाणी ही कल्पनासे बाहर कोई एक सृष्टिकर्ता ईश्वर होयके बैठी है। सोई वाणी पढ़-सुनके सब नरजीव बिनाविचारे ईश्वरकर्ताको मान रहे हैं। और पहले जगत्में ब्रह्मादि गुरुवालोग तथा सनकादि चेलेलोग जो उत्पन्न हुए, उन्होंको पारख बोध नहीं हुई। इसलिये उन सबोंने भी कल्पित ईश्वर, ब्रह्म आदिकी दर्शनकी आशासे आँखें, मुख

खोल-खोलके चारों वेदोंको पढ़े, जोवैं = देखे, सुने, गुने और नाम-स्मरण, पाठ, पूजा, धारणा, ध्यान, समाधि आदि नाना उपाय करके सब कोईने पिण्ड, ब्रह्माण्डमें लक्ष लगायके देखे, शून्य आकाशमें त्राटक करके टकटकी लगाये, जगत्‌में दशों-दिशामें ढूँढ़े, परन्तु वह निराकार ईश्वर कहीं किसीको भी नहीं मिला। और वेदमें उसके नाम, महिमा लिखा हुआ देखे। अन्तमें हारकर अगम, अथाह, अपार, ऐसा मान करके महा गाफिलीमें पड़े। तैसे ही अभी गुरुवालोग शिष्यसहित धोखेमें ही पड़े हैं। बिना पारख ॥ ४४ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। बैठी अल्लह होय ॥
पीर पैगम्बर औलिया। मुजरा करे सब कोय ॥ ४५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और उसी प्रकारसे वह काली सुन्दरी आदिमाया-नारी मालकिन होके बैठी, तहाँ उसने सुन्नति आदि करनेकी हुकुम प्रदान करी, सोई बात मानके पीर, पैगम्बर, औलिया आदि सबकोईने उसके मुजरा किये वा बन्दना करते भये, और वही स्त्रीने शुरूसे ही— मुसलमान आदि सबोंके घरमें भी घुसके उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करडाली है। अथवा हे नरजीवो! तुरुकोंके यहाँपर भी वही काली स्याहीसे कागजपर लिखी हुई हुरूफ या अक्षर सुन्दरी वाणी, कलाम, कल्माके वचन भई, जो कि, कुराने शरीफके प्रमाणसे दुनियाँमें एक अजब अल्लाह होयके जमके बैठ गई। अर्थात् कुरानके कलाम (वाणी) से कोई एक अल्लाह है, ऐसा कल्पना मुसलमानोंके अन्तःकरणमें दृढ़ होके बैठ गई है। अतएव पूर्वमें भये हुये पीरसाहब = गुरुवा लोग, पैगम्बर = मूसा, ईशा, मोहम्मद आदि धर्माचार्य लोग और औलिया = सिद्ध फकीर लोग आदि उनमें जो बड़े-बड़े गुरु-चेले भये, उन सब कोईने भी अल्लाह या खुदाको जगत्-कर्ता या दुनियाँका मालिक मान करके उसको प्रसन्न करनेके वास्ते नाम जप, रोजा, बाँग, निमाज, जाकात, हज्ज, आदि नाना उपाय

करने लगे, और मुजरा = झुक-झुकके अल्लाहमियाँको सलाम, बन्दगी, सब कोईने करते भये। इस प्रकार मुजरा करके अपना फर्ज अदा वा चुकता किये। अब उनके अनुयायी कट्टर मुसलमान लोग भी कितेब-कुरान आदिको पढ़करके, काली सुन्दरीको देखके मोहित होकर, एक मालिक अल्लाहको मानकर पीर, पैगम्बर, औलिया लोगोंकी तरह अभी सब कोई खुदाको मुजरा या सलाम करके अपना-अपना हिसाब चुका रहे हैं। बिना पारख सब धोखेमें ही पड़े हैं ॥ ४५ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। बैठी होय अल्लाहिं ॥
पढ़े फातिया गैबकी। हाजिरको कहै नाहिं ॥ ४६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! काली स्याहीसे लिखी हुई कुरानकी वाणी, खाली नरजीवोंकी कल्पनामात्र ही है। किन्तु, उस काली-कलूटीको ही मुस्लिमोंने बड़ी सुन्दरी मानके ग्रहण किये हैं। जैसे कीचड़ मल-मूत्रसे लथ-पथ सूअरीको देखके मूर्ख सूअर उसे बड़ी सुन्दरी मानके कामासक्त हो जाता है। तैसे ही विषयी कामी पुरुष भी अन्धे होके काली कुरूप, फोहरी, मैली-कुचैली, घृणित स्त्रियोंको भी बड़ी सुन्दरी मानकर विषयोंमें रत हो जाते हैं। उसी-तरह वाणी कल्पना निकम्मी, काली, भ्रमके दाग लगानेवाली काजल-की गोली है। किन्तु अविवेकी मनुष्य उसे सुन्दर सुखद मान रहे हैं। वही कल्पना अल्लाह होके मुसलमानोंके हृदयमें जाके बैठ गई है। अतएव तुरुक लोग भ्रमिक होकरके धोखामें पड़कर गैबकी फातिया पढ़ने लगे। अर्थात् गैब = जहाँ कुछ भी नहीं शून्य आकाशमें खुदाको गोयमगोय, अनुमान करके उसे प्रसन्न करनेकी कल्पनासे जिन्दा बकरा मारके पीरको चढ़ाते हैं, उस वक्त जो कुरानकी वाणी बोलते हैं, उसे 'फातिया पढ़ना' कहते हैं। और हाजिर-हजूर प्रत्यक्ष चैतन्य जीव है, उसको तो कुछ भी जानते या मानते नहीं। कहते हैं, जीव कुछ नहीं, जो कुछ है सो खुदा ही सत्य है। खुदाके कुदरतसे

दुनियाँ बनी है, उस खुदाके वास्ते बकरा, मुर्गा, भेड़ी, गाय, आदि मारके फातिया पढ़के बली चढ़ाना चाहिये। यही इस्लाममतका धर्म है। इस प्रकार वे निर्दयी काल-कसाई ही बने हैं। प्रत्यक्षमें जीव हत्या होती है, उस हाजिर बातको तो वे नहीं कहते हैं, और जो शून्य मिथ्या है, उसको बड़ा खुदा मानते हैं, ऐसे मूढ़ बने हैं ॥ ४६ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। कल्मा किये कलाम ॥
पीर पैगम्बर औलिया। पढ़ै सो करे सलाम ॥ ४७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! कालीसुन्दरी = कुरानकी कल्पित वाणीसे, कलमा = मन्त्ररूप कुरानके वाक्य— "लाहे-लाहे ईल्लिलाह, मुहम्मदरसूलिल्लाह" ऐसे रीतिसे पाँचकलमा बनाये हैं, उसे ही उन्होंने, कलाम = सही मानके निश्चयसे यकीन किये हैं। मुसलमानोंने कल्मा पढ़ना, स्वधर्म माने हैं। इसलिये पीर = उनके गुरु लोग, पैगम्बर = धर्मोपदेशक अवतारी माने गये लोग, औलिया = सिद्धमाने हुए फकीर लोग, इत्यादि सब कोई बड़े प्रेमसे पाँच कल्माको पढ़-पढ़के सो गोयमगोय वा लामुकाम माना हुआ खुदा या अल्लाहको झुक-झुकके, सलाम = बन्दना किये और अभी वैसे ही सलाम कर रहे हैं। बिना विचारे धोखेमें ही पड़के गरगाफ हो रहे हैं। जैसे अरण्यरुदन करनेसे कोई फायदा नहीं होता है, तैसे शून्यको सलाम, प्रार्थना करनेसे भी कोई लाभ नहीं होता है, किन्तु अविवेकसे वे सब लोग मिथ्या प्रपञ्चमें ही गाफिल पड़े हैं ॥ ४७ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। भई सो अल्लह मीयाँ ॥
पीर पैगम्बर सुनि शिया। दगा सबनको दीया ॥ ४८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! कुरानकी कल्पित वाणी सोई काली सुन्दरी मुसलमानोंके यहाँ, मीयाँ = सबसे श्रेष्ठ जगत्के मालिक अल्लाह होती भयी। अर्थात् वाणीको पढ़-सुनकरके कल्पनासे कोई एक अल्लाहमीयाँको मुस्लिमोंने श्रेष्ठ मानते

भये, और उसीकी खोजी प्रार्थनामें वे सब लोग लगे। पीर=गुरुवा-लोग, पैगम्बर=अवतारी पुरुष, सुनि = कर्ममार्गी सुन्नी लोग, शिया=उपासक शिया आश्रमी लोग (तुरुकोंमें शिया, और सुन्नी, यह दो आश्रम माने हैं), गृहस्थ, फकीर आदि उन सबोंको वाणी कल्पनाने, दगा=धोखा, प्रपञ्चमें डाल दिया है। अर्थात् भ्रमिक पीर, पैगम्बर, सुनि, शिया, बने हुए वही भ्रमिक लोगोंने अन्य सब मुसलमानोंको कितेब-कुरान आदिकी वाणी सुना-सुनाकरके अल्लाह या खुदाकी मानन्दी दृढ़ा-दृढ़ाकर सबोंको धोखा दिया है, मनुष्यपदसे उन्हें नष्ट-भ्रष्टकर दिया है। अतः वे धोखेबाज हुए हैं। बिना पारख जीव उसी धोखामें भूल रहे हैं, बद्ध हो रहे हैं ॥ ४८ ॥

साखीः— झूठ जवाहिरको बनिज। परै सो तबलग पूर ॥
जबलग मिलै न पारखी। घनपै चढ़ै न कूर ॥ ४९ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे झूठा जवाहिरात, खाँड़का नकली बनावटी हीरा, पन्ना, लाल, मोती, आदि खोटे काँचके टुकड़े रत्नके नामसे तभीतक पूरा पड़के व्यापारमें चलता रहता है, झूठे व्यापारी नकली जौहरी लोग भी तभीतक खूब अकड़के फूले रहते हैं, धोखा-धड़ी चलाया करते हैं, और जबतक पारखी असली जौहरी उसे नहीं मिलते, तभीतक उसके रत्न, घन=अहिरनपर नहीं चढ़ता है। इसीसे हीराकी पूरी परीक्षा नहीं होती है, और जब पारखी मिल जाते हैं, तब रत्नोंकी खरी-खोटी परीक्षाके लिये अहिरन-पर चढ़ायके घनसे ठोंकके देखते हैं। तब नकली होगा, तो चकनाचूर हो जायगा, यदि असली होगा, तो फिसलके दूर गिर पड़ेगा। यह परीक्षा देखके झूठोंका मुख उतर जाता है, कायल हो जाते हैं। इसी प्रकार सिद्धान्तमें भी झूठा जवाहिरातवत् खाँड़का हीरा कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, अल्लाह, देवी, देवता, भूत-प्रेत, ऋद्धि-सिद्धि, इत्यादि मानन्दीको बड़ा श्रेष्ठ रत्नवत् बता-बताकर

झूठे गुरुवा लोग संसारमें कपटका व्यापार कर रहे हैं, नाना प्रकारसे मिथ्या आशा-भरोसा दे-देके उपदेश दे रहे हैं। उनके शिष्य लोग भी ग्राहकी कर रहे हैं। सो झूठा प्रपञ्च उनके ठगाई तभीतक पूरा पड़ता है या प्रचार होता है, अविवेकी लोग ही उसे मानते हैं। जब-तक जिज्ञासुओंको सत्यन्यायी, सत्यबोधदाता पारखी सद्गुरु नहीं मिलते हैं, और उनके घनपै=सत्य निर्णयरूप खण्डन, मण्डनकी घनपर कूर-कपटी गुरुवा लोगोंके मिथ्या सिद्धान्त चढ़ते नहीं। यानी जबतक पारखी सद्गुरु मिलते नहीं, तबतक पारख बोध जीवोंको होता नहीं; इसलिये अनुमान, कल्पना, धोखाको ही सत्य समझते रहते हैं, ठग गुरुवा लोगोंको ही बड़े सिद्ध महात्मा मानते रहते हैं, और मुमुक्षु लोग जब पारखी सद्गुरुके शरण सत्सङ्गमें आजाते हैं, तो उन्हें गुरुमुख निर्णयसे यथार्थ बोध हो जाता है। ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या भ्रम मनकी मानन्दी मालूम हो जाती है। गुरुवा लोगोंको छली, कपटी, धोखेबाज जान करके पहिचान हो जाती है। निर्णयमें गुरुवाओंका एक भी सिद्धान्त ठहर नहीं सकता है, चकनाचूर हो जाता है। अतः पारख निर्णयकी सर्वोपरि विशेषता है ॥ ४९ ॥

साखीः—जो इन्द्रिय सो हैं नहीं। हुई न कबहूँ होय ॥
ताको इन्द्रिय ज्ञान करि। पावन चाहैं लोय ॥५०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! वेदान्ती लोग कहते हैं कि— ब्रह्म, परमात्मा, विषयादिसेरहित मन, बुद्धि, वाणीसे परे है। इसलिये जो पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाँ तथा चित्त चतुष्टयादि स्थूल, सूक्ष्म इन्द्रियाँ एवं उनके विषय जो हैं, सो ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा नहीं है, और न कभी ब्रह्म-परमात्मा इन्द्रिय ग्राह्य विषयवत् हुआ है, और न कभी वह इन्द्रियादियोंसे ग्रहण ही हो सकेगा। क्योंकि—

"यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह ॥"— ब्रह्म या परमेश्वर वाचा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ इत्यादिकोंसें जाना नहीं जाता है॥ ऐसा तैत्तिरीय

उपनिषद्के ब्रह्मानन्द वल्ली, अनुवाक ४ में कहा है ॥ इससे निराकार, निर्गुण, अगम, अगोचर, अथाह, व्यापक माना हुआ उस ब्रह्म वा ईश्वरको पुनः अविवेकी गुरुवा लोग भीतर-बाहर इन्द्रिय ज्ञान करके पञ्च विषयवत् प्राप्त करना चाहते हैं। अर्थात् नेत्रसे ज्योति आदि साकार दर्शन, कानोंसे अनहद नाद वा तत्त्वमसि, आदि महावाक्य श्रवण, त्वचासे आनन्द प्राप्ति, जिभ्यासे अमृतपान, नाकसे मूर्धनी कमलकी सुगन्ध ग्रहण इत्यादि प्रकारसे इन्द्रियजन्य ज्ञान करके ही वा वाणी कह-सुन करके ही ब्रह्म, ईश्वरादिकी साक्षात्कार करके उसे पाना चाहते हैं। कहिये! अब वे लोग कितने मूढ़ अविचारी हैं। जैसे आकाशके फूल तथा शशाशृङ्ग नहीं है, तो उसे पाना असम्भव है। तैसे ही सो ब्रह्म कोई वस्तु नहीं है, न हुआ, न कभी होगा, फिर ऐसे अभाव, असम्भव भी कहीं प्राप्ति हो सकती है? कभी नहीं। किन्तु पारखहीन मूढ़ लोग ऐसे ही धोखासे दुविधा, भूलमें पड़ा करते हैं, उसे परखके जान लेना चाहिये ॥ ५० ॥

साखीः— अविनाशी पूरण कहै। व्यापक चेतन जोय ॥
या सब इन्द्रिय ज्ञानके। प्राप्ती इन्द्रिय होय ॥५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! वेदान्ती लोग मनमानन्दी कल्पनासे एक कोई ब्रह्म या आत्मा मानके उसे अविनाशी = तीन कालमें कभी नाश न होनेवाला, सनातन तथा पूरण = परिपूर्ण भीतर-बाहर सर्वत्र भरा हुआ, व्यापक = आकाशवत् ओत-प्रोत जो ऐसा एक अद्वैत सामान्य चैतन्य है, कहते हैं। अब विवेकदृष्टिसे देखिये! तो ऐसा ब्रह्मका कहीं भी किसीको प्रतीति नहीं होती है। ऐसा कल्पना भीतर मनादि इन्द्रिय द्वारा होता है, और बाहर मुख इन्द्रियसे शब्द निकलता है, सो कान इन्द्रियद्वारा सुनाई देता है, फिर चित्त, बुद्धि आदिसे वह ग्रहण होता है, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँचों विषयें सब तो इन्द्रियज्ञानके द्वारा ग्रहण होते हैं। तथा पाँचों ज्ञानेन्द्रियों-

को अपने-अपने विषयोंका सम्बन्ध ही परस्पर प्राप्ति होती हैं, सोई चित्त चतुष्टयसे भोग होता है। जो इन्द्रियोंसे परे अविषय है, बुद्धिसे भी अत्यन्त परे आत्माको माने हैं। फिर मन, बुद्धि आदि इन्द्रियद्वारा ब्रह्म या आत्माकी प्राप्ति कैसे होगी? कभी न होगी; व्यापक, पूर्णचेतन, ऐसा तो कहीं नहीं है। चैतन्य जीव तो एकदेशीय देहधारी प्रत्यक्ष नित्य प्राप्त ही है, उसे निजस्वरूप प्राप्ति करनेकी आवश्यकता, तो कुछ भी है ही नहीं। और ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या कल्पना है, वह कुछ प्राप्ति होनेवाला ही नहीं है। अतः गुरुवा लोगोंके ज्ञान सब इन्द्रियजन्य विषय ही हैं, विषय इन्द्रियोंको प्राप्त होते ही हैं। किन्तु परिणामी विकारी होनेसे बन्धनरूप ही हैं, उसे परखके त्यागना चाहिये। ब्रह्मज्ञान जो है, सो शब्दका विषय, विकारी, परिणामी होनेसे अविनाशी, पूर्णव्यापक, चेतन कहा हुआ सिद्ध नहीं हुआ है। उससे उल्टा विनाशी, अपूर्ण, एकदेशीय, जड़ ही ठहरा। क्योंकि, ब्रह्म अनुभव इन्द्रियगम्य होनेसे, सरासर विषय ही साबित भया। अतएव उसके मानन्दीसे जीव भवबन्धनमें ही पड़े और पड़े रहेंगे। इससे पूरा पारख करके भेदको जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

साखीः— कबीर इन्द्रिय ज्ञानकी। सब कोइ करे भरोस ॥
सुर नर मुनि छलि मारे। बड़े-बड़े बातफरोस ॥५२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! संसारमें योगी, ज्ञानी, भक्त आदि सकल सिद्ध-साधक जीव सब कोई प्रथम भी इन्द्रियके विषय ज्ञानकी ही भरोसा किये; और अभी भी वही इन्द्रियजनित विषय अनुभवका ही भरोसाकर रहे हैं। सो कैसे कि— कोई 'शब्दब्रह्मेति श्रुतिः' कहकर प्रणवरूप ॐकारको शब्द ब्रह्ममाने हैं, सो कानोंका शब्द विषय है। सच्चिदानन्द सुखरूप ब्रह्ममाने हैं, सो त्वचाका स्पर्श विषय है। ज्योतिस्वरूप परब्रह्म माने हैं, सो नेत्रका रूप विषय है। अमृत रसवत् जो ईश्वर माने हैं, सो जीभका रस विषय है।

गन्धवत् ब्रह्ममाने, सो नासिकाका गन्ध विषय है, और आकाश-वत् निर्विकल्प ब्रह्म, अन्तःकरणका विषय है। वायुवत् सहविकल्प ब्रह्म, चित्तका विषय है। अहं ब्रह्मास्मि, हङ्कारका विषय है। सगुण ब्रह्म, मनका विषय है। ज्योंका-त्यों परिपूर्ण सर्वाधिष्ठान आत्मा, यह बुद्धिका विषय है। इस प्रकार इन्द्रियसे होनेवाला ज्ञान, इन्द्रियोंके विषयोंको ही आत्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि इष्टदेव मान करके सब कोईने उसकी भरोसा किये कि— वे हमारी मुक्ति करेंगे। परन्तु उस भ्रम कल्पना धोखाने, सुर = सत्त्वगुणी, नर = रजोगुणी, मुनि = तमोगुणी मननशील करनेवाले ऐसे त्रिगुणी मनुष्यवर्गः और योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मी आदिसे लेकर, बड़े-बड़े ऋषि लोग, वेदान्ती, सिद्धान्ती, चतुर्वेदी, षट्शास्त्री, पौराणिक, इत्यादि बातफरोस = वक्ता, बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें बनानेवाले, बकवादी, वाक्पटु, इन सब जनें तो वाणीके छल-छिद्रमें पड़के मारे गये। अर्थात् वाणीसे वे सब छले गये, तो जड़ाध्यासी भये। उन्होंने और सब मनुष्योंको भी छलके मारे, भ्रमाये हैं। कल्पनाका विस्तार कर-करके मारे गये, तो अन्तमें चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होते भये ॥ ५२ ॥

साखीः— बातफरोसी करि मुये। सरा न एकौ काम ॥
बातफरोसी ब्रह्म एक। बातफरोसी राम ॥ ५३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— बातफरोसी = कल्पित वाणीका विस्तार या लम्बी, चौड़ी बातें बढ़ायके आकाश-पातालकी, सातस्वर्ग, अपवर्ग, चार मुक्ति, चार फल, कर्ता—ईश्वर, खुदा आदिका वर्णन, महिमा कथन कर-करके ऋषि, मुनिगण, पण्डित लोग, जड़ाध्यासी होके मर गये, गर्भवासमें कैद भये। किन्तु उनकी कल्पित वाणीसे किसीका एक भी काम या कार्य सिद्ध नहीं हुआ। न ईश्वर मिला, न स्वर्ग मिला, न मनोकामना पूर्ण हुई, न जीव-ब्रह्मकी एकता हुई, और न मुक्ति ही मिली, भवबन्धन भी नहीं छूटी। इस तरह जीवका एक

काम भी सफल होके पूरा नहीं हुआ, खाली गप्प-सप्प करते-करते आयु बिताके मर-मरके गये, और एक अद्वैत ब्रह्म जो माना, सो भी बातफरोसी = बातूनी पण्डित लोगोंकी, बकवाद कल्पनामात्र ही है। तथा घट-घटमें व्यापक अधिष्ठान अत्माराम या 'रमेतीरामः' जो माने हैं, सो भी बातफरोसी = बकवाद वाणी कल्पना पण्डितोंके जाल ही है। अतएव पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसे यथार्थ पहिचानके न्यारा होना चाहिये ॥ ५३ ॥

साखीः—माया बैठी शेष होय । कहै सो ज्ञान अतीत ॥
नेति नेति उपदेश कहि । भई सो शब्दातीत ॥ ५४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! मायारूप गुरुवा लोग तो अपनी माया = छल, कपट, वाणी कल्पनादिकी जाल चौतरफ फैलायके सब जगत्को निषेध करके बाकी अपने ही स्वयं सर्वश्रेष्ठब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, या खुदा होयके बैठी है। संसारमें सो कल्पित वाणी ही श्रेष्ठ शेष = बाकी या विशेष शक्तिशाली होकर मनुष्योंके अन्तःकरणमें बैठी है, वही मानन्दीसे गुरुवा लोग, अतीत = सबसे परे पूर्ण त्यागी निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, सोई ब्रह्म अद्वैत है। ऐसे ब्रह्मज्ञान कहते हैं, ब्रह्मको अधिष्ठान बताना, सोई अतीतज्ञान कहते हैं। अक्षरातीत = अक्षरसे परे या रहित निःअक्षर है। तुरियातीत = साक्षी अवस्थासे रहित, उससे परेको कहते हैं। यहाँ अतीत = सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मको कहा है और वेदमें "नेति नेति या न इति-इति" अर्थात् ब्रह्मका अन्त नहीं है, असीम, अपार, बेहद्द, अथाह, जो परमात्मा है; सो तू ही है "तत्त्वमसि" ऐसा उपदेश कह करके जगत्- ब्रह्मको एक ठहराय "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" ऐसा बता करके सो बहुरूपिणी माया = वाणी आखिरमें शब्दातीत = सकल शब्दोंसे परे या शब्दसे रहित अवाच्य, अकथनीय मौन होती भयी। मन, बुद्धि, वाणीसे परे ब्रह्मको मान करके ब्रह्मज्ञानी, लोग जड़, उन्मत्त, गाफिल हो, जड़ाध्यासी बद्ध होते भये। बिना

पारख यह धोखा छूट नहीं सकती है ॥ ५४ ॥

साखीः— कबीर बरण फेरिके। अबरण भई छिनार ॥
बैठी आप अतीत होय। किये अनन्त भ्रतार ॥ ५५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— जैसे दृष्टान्तमें छिनार-स्त्री अपने जातिसे पतित होके, जातिसे उलटके, कुजात वेश्या बननेपर कहीं कोठेपर अलग नीच पेशा लेके बैठ जाती है, तहाँ अनेकों पुरुषोंको पति बनाके भोग-विलासमें फँसी रहती है। तैसे सिद्धान्तमें— हे नर-जीवो! गुरुवा लोगोंने छल-कपटसे, बरण=वर्ण या अक्षरोंको फेर-फार करके या उलट-पुलट वा औंधा-सीधा करके, उलटायके अक्षरा-तीत ब्रह्मको माने हैं। तहाँ छिनार=उनके कल्पित वाणी व्यभि-चारिणी बनके, अवरण=अवर्ण या निःअक्षर शून्य आत्मा होती भयी। और बाहर कहने सुननेके लिये तो वह वाणी अपने-आप नरजीवोंके हृदयमें आके, अतीत=सबसे परे, विरक्त, असङ्ग, स्वयं ब्रह्म होके बैठी। किन्तु दूसरे तरफ वही वेश्या बनके अनन्त भ्रतारके सङ्ग रमण करी और कर रही है। अर्थात् कहीं तो वाणीसे असङ्ग, अवर्ण, निर्गुण ब्रह्म कथन करते हैं। कहीं जीवोंके ऊपर अनन्तों मालिक — ब्रह्म, ईश्वर, तैंतीस कोटि देवी-देवता, भूत, प्रेत, खुदा, इत्यादिको इष्ट-देवता, भ्रतार=पति मानकर उन्हींकी आराधना किये और कर-करा रहे हैं। इस तरह कुटनी गुरुवाओंकी वाणी ऐसी दुष्ट, छिनार भयी वा हो रही है। वह तो देखने-सुननेमात्रको अच्छी लगती है, नहीं तो असलमें कल्पना बड़ी खराब है, दुःखदाई है। अतः परख करके इसे परित्याग करना चाहिये ॥ ५५ ॥

साखीः— कबीर बैठी शेष होय। बिना रूपकी राँड़ ॥
गाल बजावै नेति कहि। किये भ्रतारहि भाँड़ ॥ ५६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— जैसे पर्दानशीन स्त्री रूप छिपाके श्रेष्ठ होके बैठती है, तहाँ भीतरसे ऐसा नहीं, वैसा नहीं, ऐसा-वैसा

करो, कहकर पतिको भाँड़वत् बनाती है। तैसे सिद्धान्तमें— और हे नरजीवो ! बेपारखी मनुष्य जीवोंके अन्तःकरणमें वही कल्पित वाणी, शेष = विशेष, बाकी या अवशेष, सर्वश्रेष्ठ मुख्य ब्रह्मपद अधिष्ठान मानन्दी दृढ़ होयके बैठी है। आखिरमें वह, राँड = वाणी कल्पना बिनारूपकी = निराकार, निर्गुण, आकाशवत् निरञ्जन ब्रह्म बनी है। जब उसकी रूप-रेख नहीं, आकार-प्रकार कुछ नहीं, तो मिथ्या धोखा ही है। परन्तु उसे ही सत्य मानके वाचाल धूर्त गुरुवा लोग ब्रह्म वा ईश्वरकी बड़ी महिमा बढ़ायके, वेद-प्रमाणसे "न इति न इति" कह करके अर्थात् उसके इति वा अन्त, भेद, पता पाया जा नहीं सकता है, असीम है, ऐसा कथन कर-करके गाल बजाते हैं, मिथ्या बकवाद करते हैं। हे सन्तो ! असलमें सबका भ्रतार या स्वामी, श्रेष्ठ मालिक तो चैतन्य जीव ही है। उसीको ये राँड = वाणी कल्पनाने, भाँड़ वा भडुवे किया है। अतएव गुरुवा लोग भाँड़वत् बकवादी, मिथ्यावादी भये हैं। उन्होंने शिष्य वर्गोंके भी बुद्धि भ्रष्ट करके उन्हें भाँड़ बनायके जड़ाध्यासी किये हैं। इसीसे सब भवबन्धनमें पड़े और पड़ रहे हैं। पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्गद्वारा उसे निर्णय करके जिज्ञासुओंने पहिचान कर लेना चाहिये ॥ ५६ ॥

साखीः— कबीर चञ्चल नारिको। मोहि नहीं इतबार ॥
शेष बतावै नेति कहि। बैठी होय हुशियार ॥ ५७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो ! इस चञ्चल स्वभाववाली चपला स्त्रियोंका तो कुछ भी भरोसा नहीं होती है। स्त्रियाँ सती वा पतिव्रता रहती हों, मन, वचन, कर्मसे परपुरुषकी चाहना न करती हों, ऐसा होना अशक्य है। मुझे तो इन दुष्ट स्त्रियोंका रत्तीभर भी विश्वास नहीं होती है। चाहे ये कैसे ही रूप बनावें, विश्वास करने लायक नहीं होती हैं। छोटी-छोटी लड़कियोंसे ले करके अतिवृद्ध तक स्त्रियाँ पुरुषोंके मनको विकारी बनाके

विचलित कर देती हैं। अतः लड़की, बूढ़ी, तरुणी, गृही, भक्तिनी, ब्रह्मचारिणी, साधुनी, इत्यादि सब प्रकारसे स्त्री-जातिमात्रसे दूर ही रहनेमें मुमुक्षुओंके लिये कुशल है। नहीं तो समय पायके वही स्त्री साथमें रहनेवाले पुरुषको भग-भोगमें फँसायके नष्ट-भ्रष्टकर जीवन बर्बाद कर देती हैं, यह निश्चय है। क्योंकि, ऐसी घटना बहुत जगहोंमें हो चुकी हैं। अतः सर्वत्र सावधान रहना चाहिये। पहिले तो स्त्रियाँ अपनी विशेषता बतलाती हैं, फिर पुरुषोंको फुसलाके फँसाती हैं। और साथ होनेपर आभूषणादि कितना भी दो, तो भी इतनेमें पूरा नहीं हुआ, और लाओ-और लाओ, ऐसा कहती ही रहती हैं। और बड़ासे-बड़ा पाप कुकर्म करके भी पूछनेपर उसे छिपायकर झूठ बोलके कहती हैं—नहीं, ऐसा मैंने नहीं किया, मैं कभी ऐसा नहीं कर सकती हूँ, सच कहती हूँ, तुम्हारे शिरकी कसम! इत्यादि कहकर रोय-गायके पुरुषके आँखोंमें धूर झोंक देती हैं, और दुराचार करके कोई जानने न पावें, इसके लिये घरमें हुशियार होके बैठी रहती हैं। इस प्रकारसे अनन्त दुर्गुण स्त्रियोंमें भरा रहता है। अतएव कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंने सदा स्त्रियोंकी कुसङ्गसे दूर ही रहना चाहिये। उसीमें भलाई होगी॥ [स्त्रियोंका दोष, विस्तारसे वैराग्यशतककी टीकामें लिखा है चाहे वहाँसे देख लीजिये!] अब दूसरा अर्थ वाणीमें कहता हूँ, सो सुनिये!

कबीर = जीवरूप हे मनुष्यो! मनकी चञ्चलतासे बनी हुई नारी कौन है? सो वाणी कल्पना ही है। पारखी सन्त कहते हैं— मुझे तो उस कल्पित वाणीका कुछ भी इतबार = विश्वास या भरोसा नहीं होता है। क्योंकि, जब शुरूमें ही वह भ्रम-कल्पना है, तो उसके कथन और अर्थ कहाँसे सत्य हो सकते हैं? और वाणीके प्रमाणसे कहीं तो गुरुवा लोग, ब्रह्मको शेष = अवशिष्टपद वा विशेष मुख्य सारपद सर्वोपरि कर्ता परमात्मा बतलाते हैं। और कहीं "नेति नेतीति श्रुतिः" कहकर बेअन्त, अपार, अथाह, अवाच्य या निःअक्षर, परिपूर्णव्यापक ठहराते हैं। फिर कहीं उसका ठिकान नहीं लगा, तो आपही ब्रह्म बनके,

वही वाणी कल्पना हुशियार होयके, हृदयमें जमके बैठ गई। अब बताओ, ऐसी चञ्चल वृत्तिका क्या विश्वास करना। अविचारी मनुष्य ही वाणीके पुष्पित सौन्दर्यतामें मोहित होकर जड़ाध्यासी गाफिल होते हैं। शेष बताके नाकसे बोलती है, तो नेति-नेति कहती है। हुशियार होके गुरुवा लोगोंके मनमें जाके बैठी है। उन्हें भ्रम चक्रमें डाल रही है। तुम उसे परखो, उसका विश्वास मत करो ॥ ५७ ॥

साखीः— अध्यारोप जाके जवन। ताहि गले अपवाद ॥
अध्यारोप अज्ञानकी। कोइ न जाने आद ॥ ५८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जिसके जैसा-जैसा अध्यारोप = जो वस्तु नहीं है, उसका मिथ्या आरोपसे निरूपण करना, अर्थात् वाणीकी प्रमाणसे विधिपूर्वक ब्रह्म, आत्माका स्थापन या निरूपण, सिद्धान्त प्रतिपादन करना होता है, फिर उसीके गले-में या उसके भीतर ही, अपवाद = एक-दूसरेका खण्डन, निषेध या सिद्धान्त तोड़ना भी लगा रहता है। यानी जैसे रस्सीमें सर्प नहीं है, तो भी मिथ्या भ्रान्ति करके भासता है, तहाँ अध्यारोप-मिथ्या सर्प प्रतीति हुआ। फिर पूर्णप्रकाश होनेपर उसमें ही अपवाद हुआ कि— अरे! यह तो सर्प नहीं, रस्सी है, ऐसा मालूम हुआ। इस तरह मण्डनमें साथ ही खण्डन भी लगा रहता है। तैसे वेदान्ती लोग कहते हैं— एक अद्वैत ब्रह्ममें नानात्त्व जगत् भासना अध्यारोप है। सो तो मृगजलवत् मिथ्या प्रतीतिमात्र है। अविद्या करके ही जगत् भास हो रहा है। जब ब्रह्मज्ञानका पूर्ण बोध हो जायगा, तब उसीके गलेमें अपवाद आ जायेगा कि— "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो-ब्रह्मैवनापर"— ब्रह्म ही वास्तवमें सत्य है, जगत् प्रतीतिमात्र मिथ्या है, जीव–ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है, एक है, "अहं ब्रह्मास्मि" इस तरह जगत्का निषेध करके एक ब्रह्मको सत्य बतलाते हैं। इसीसे जिसके जैसे अध्यारोप होता है, उसके भीतर वैसे ही अपवाद भी उनके गलेमें

लटका रहता है। अब विचार करिये! जब माना हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अज्ञान, माया, अविद्यारूप इस जगत्की; अध्यारोप = मिथ्या आरोप या निरूपण हुआ, यानी चराचर जगत् भी सत्य है, ऐसा कहा, सुना, देखा गया, तो प्रथमसे जगत् मौजूद ही था, तभी तो इसकी प्रतीति होकर भास होता भया। यदि जगत् त्रिकालमें कहीं न होता, तो भास ही कैसे होता? खपुष्प, शश शृङ्ग, बाँझ पुत्रादिकी तो आजतक कहीं किसीको भी भास हुआ ही नहीं। और रज्जू सर्प, मृगजल आदिके दृष्टान्त जो देते हो, उनमें सर्प वा जल दूसरे देशमें सत्य ही मौजूद हैं, पूर्वमें उन्हें देखा, सुना, अनुभव किया हुआ भी था, इससे कहीं पश्चात् उपयुक्त जगह मिलनेसे वैसे ही भ्रमसे भास होते हैं। तुम्हारे सिद्धान्तमें यह दृष्टान्त कुछ भी लग ही नहीं सकता है। तुम वेदान्ती लोग मिथ्यावादी बने हो। अरे भाई! अध्यारोप होनेवाला अज्ञानकी आदि तो मनुष्य ही है और कोई नहीं। मनुष्य जीव न होते, तो ब्रह्म-जगत्का भ्रम और किसको होता? किन्तु, वेदान्ती लोग किसीने भी आजपर्यन्त उस आदिको जाने नहीं। इसलिये भ्रम-चक्रमें पड़े रहे और अभी पड़ रहे हैं। जड़-चैतन्यरूप जगत् स्वयं अनादि है। माना हुआ ब्रह्म ही मिथ्या धोखा भ्रममात्र है। गुरु पारखसे ऐसा यथार्थ जानना चाहिये ॥ ५८ ॥

साखीः— अध्यारोपी ब्रह्मको। करे ब्रह्म अपवाद ॥
वाणी ब्रह्म न लखि परे। मिथ्या कीन्हों बाद ॥ ५९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! विचार करिये! जब वेदान्ती लोग एक अद्वैत ब्रह्मके सिवाय दूसरा और कुछ भी नहीं मानते हैं। तब उस ब्रह्ममें जगत् नामका मिथ्या आरोप कहाँसे आया? कैसे आया किसने आके लगाया? क्या ब्रह्मको ब्रह्मने ही पुनः जगत् होनेका अध्यारोप लगाया? और फिर उस अध्यारोपी ब्रह्मको ज्ञानप्रकाश करके अपवाद कौन करता है कि, जगत त्रिकालमें

नहीं है, एक ब्रह्म ही सत्य है। क्या वही ब्रह्म पीछे आप ही अपवाद या जगत्का खण्डन करता है? बड़ी विचित्र बात करते हो। एक ब्रह्म, दूसरा जगत्, तीसरा दोनोंका द्रष्टा साक्षी, ऐसे त्रिपुटी सिद्ध हुई। इसलिये जड़ पाँचतत्त्व और देहधारी अनन्त चैतन्य-जीव सहित संसार स्वतः ही अनादि ठहरता है। तहाँ मनुष्योंने ही कल्पना कर-करके वेद, शास्त्र, पुराण आदि नाना वाणी रचना करके बनाये हैं। फिर जगत्को देखके जगत्के कर्ताका अनुमान किये, तो किसीने— ब्रह्म, आत्मा, कहे, कोईने ईश्वर वा खुदा आदि कर्ता माने। किन्तु सो वाणी और ब्रह्म आदि मनुष्योंके मिथ्या मानन्दी भ्रम कल्पनामात्र है, उसमें जरा भी सत्यता नहीं है। बिना पारख उन भ्रमिकोंको यह कुछ लख नहीं पड़ता कि— वाणी और ब्रह्मका मानन्दी करनेवाला उसका कर्ता तो मैं जीव ही सत्य हूँ, यह भेद न जान करके धोखामें पड़के मिथ्या ही ब्रह्मवाद किये और कर रहे हैं। पक्ष पकड़कर वाद-विवाद करके महाबन्धनमें जकड़ पड़े हैं। अतः परख करके उस मिथ्या वादको परित्याग करना चाहिये ॥ ५९ ॥

साखीः— अव्याकृत दुःखरूपको। सब माने मनमोद ॥
ब्रह्मादिकसे बालका। खेलहिं जाके गोद ॥ ६० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! अव्यक्त-गुप्त माना हुआ मूल प्रकृति माया जब प्रगट हुई, तो दुःखरूप अव्याकृत बनी। अर्थात् अव्या = मायारूप वाणीसे, कृत = कल्पना करके बनाया हुआ कृत्तिम-ब्रह्म, ईश्वर या परमात्मापद जो है, सो दुःखरूप जगत् या जन्म-मरणादिका कारण बीजरूप है। परन्तु सब भ्रमिक लोग उसीको परमपद परमानन्द समझके धोखासे, मनमें मोद = अत्यन्त आनन्द मानते भये, और आनन्द मान ही रहे हैं। हे भाई! और छोटे-छोटे अप्रसिद्ध लोगोंकी तो बात ही क्या करना? जो बड़े कहलानेवाले प्रसिद्ध, त्रयदेव = ब्रह्मा, विष्णु, शिव और उनके

अनुयायी शिष्यवर्ग सनकादिसे लेकर ऋषि-मुनिगण सब ही ऐसे-ऐसे पण्डित, योगी, ज्ञानी, भक्तादि समेत् बालकवत् अज्ञानी, अविचारी, हठी, अविद्या ग्रसित, भ्रमिक होकर जिस वाणीके गोदरूप ब्रह्म सिद्धान्तमें ठहरकर नाना साधनाओंमें खूब खेलते भये। और अनुमान, कल्पनामें ही जन्म बिताकर आवागमनके चक्रमें पड़ते भये। अब उसी वाणीकी नाना सिद्धान्त मतवादरूप गोदमें टहलकर सबगुरुवा लोग लुकी-चोरी, ठगाई, धूर्ताईका खेलकर रहे हैं। भेद न जानकर बहुतेरे नरजीवोंकी हानि हो रही हैं। सत्सङ्ग द्वारा परखके उसे यथार्थ जानना चाहिये ॥ ६० ॥

साखीः—डाइन सर्व शक्ति यह। लरिकन कियो बेहाल ॥
सुख कलेजा काढ़िके। गाड़े सबहिं पताल ॥ ६१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! जैसे जनश्रुतिके अनुसार डाइन मानी गई स्त्रियाँ, टोना-टोटका करनेवाली बड़ी निर्दयी, घातकी होती हैं। वे चुड़ैल, युक्तिसे लड़कोंको फुसलाकर जहर खिलाके बेहाल करके सब शक्ति हरणकर बालकोंको मार डालती हैं। फिर कलेजा काटके निकालकर उसे जमीनमें गाड़ देती हैं। उसके घेरेमें पड़नेवाले सबको ऐसे ही घात किया करती हैं। वे राक्षसी बड़ी पापिनी होती हैं॥ तैसे ही सिद्धान्तमें यह डाइन = कल्पित वाणीमें मनुष्योंको भ्रमाने, भुलाने, फँसानेकी सर्वशक्ति छल, बल, कपट, प्रपञ्चका जाल बहुत होता है। डाँकूवत् गुरुवा लोगोंने इसी डाइनी वाणीकी सहायतासे, घेरघारके, लरिकन = अज्ञानी, अबोध, अविवेकी नरजीवोंको नाना मत-मतान्तर षट्दर्शन-९६ पाखण्डमें फँसा-फँसाके बहुत-सी लालच, आशा भरोसा दे देकर अनेकों कठिन साधनोंमें लगाके, बेहाल या परमदुःखी किये हैं, और जीवोंके विवेक-विचार, सत्य, शील, दयादि सर्व शुभ सद्गुणोंकी शक्ति हरण कर लिये। कल्पनाका जहर खिलाकर उन्हें बेहोश करके

हंसपदको मार डाले। और सुख कलेजा = नरजीवोंकी साक्षीदशा, तथा जीवन्मुक्तिका शुद्ध सुख एवं हृदयरूप जीवकी पारख स्थिति ठहरावको भी काढ़िके या निकालके बहुत दूर फेंक दिये और जड़ाध्यासी अचेत बना दिये। तदनन्तर श्वासमें लक्ष लगाकर, पताल = नाभि या भ्रमरगुफामें लक्ष लगाके शून्यमें गड़ गये, तथा भ्रम-कूपके नीचे पातालमें लेजाके जीवको गाड़ दिये, गाफिल किये। देह छूटनेपर गर्भवासमें जाके गाड़े जाते हैं। इस प्रकार सब अध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें गाड़े गये, और गड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ ६१ ॥

साखीः— तिलई काठ जराइके। कोइलामें अंकूर ॥
तैसे संसृति जीवको। अव्याकृत भरिपूर ॥ ६२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और एक तिलई नाम करके वृक्ष होता है। जङ्गलमें कोइला बनाने वाले तिलई झाड़के डालियोंको हरी-हरी ही काटकर अन्य सूखी लकड़ियोंके साथ उसके, काठ = लकड़ी भी जलायके कोइला बनाते हैं। उसमेंसे कोई अधजला हुआ लकड़ी बाहरसे झुलस गया हो, कोइलावत् दिखता हो, उसे निकाल के फेंक दिया, सो जमीनमें पड़ा रहा; मिट्टी-पानीका संयोग पायके उस कोइलावत् झुलसा हुआ डालीमेंसे भी उसके समयमें अंकुर फूट पड़ता है। फिर वह समयान्तरमें वृक्षाकार हो जाता है। तैसे ही बाहर संसारमें चाहे जप, तप, तीर्थ व्रत, योग, उपासना, ज्ञान, ध्यान आदि करके कितने भी स्थूल शरीरको जलाओ, तपाओ, दुःख दो, दुबला-पतला करो, बहुरूपको धारण करो, तो भी कोइलावत् साधनोंमें झुलसा हुआ शरीरके भीतर मनमें अंकुररूप खानी, वाणी-की, वासना अध्यास टिका ही रहता है। पूर्ण पारख स्थिति हुए बिना और किसी भी उपायसे उसका नाश नहीं होता है। तैसे ही उसके लिये उपयुक्त समय आनेपर वह भी फूटके निकलता है। और संसृति = संसारके अध्यास कर्मसंस्कार ही जीवको चौरासी योनियोंमें

ले जाके डाल देता है। मन-मायाकृत वासना अन्तःकरणमें भरपूर हो रही है। वही जीवको प्रारब्धानुसार दुःख-सुख भोगाता है। और कोई ईश्वरादि, चारखानियोंमें जीवोंको लेजाके, दुःख-सुख भोगानेवाले नहीं हैं। जीव सब अपने आप ही नाना संस्कारके वशीभूत होके चौरासी योनियोंमें जाते हैं, जन्म-मरण आदि चक्रमें पड़ा करते हैं। मनुष्य जन्म कर्मभूमिका है, यहाँ जैसा संस्कार टिकाया जाता है, पशु आदि खानीमें जाके वैसे ही भोग होता है। अर्थात् तिलई काठके कोइलामें अंकुरवत्— तैसे भ्रमिक मनुष्योंके हृदयमें भी वाणी कल्पनाके दृढ़ संस्काररूप संसृति या संशय, दुविधा, भ्रान्तिके अंकूर फूटा करते हैं। चाहे उन्हें कितना भी समझायके पारख निर्णयका बोध करो, ब्रह्ममें कसर दिखाओ, तथापि उनकी मानन्दी नहीं छूटती है। अव्याकृत=वाणी माया कल्पनाकृत ब्रह्म-परमात्मापद चराचरमें भरपूर-व्यापक है, सो अधिष्ठान ब्रह्म मैं हूँ। ऐसी ही भावना उनके मनमें ठसी रहती है। क्योंकि, बहुत समयसे वही मानन्दीको उन्होंने दृढ़ कर रखा है, तो सहजमें वह नहीं निकलती है। अतः बिना पारख जड़ाध्यासी होके आवागमनमें ही पड़े रहते हैं। तैसे सम्पूर्ण विषय अध्यास भी जीवोंको नाना योनियोंमें नचाती है। अव्या=माया, काया, मनादिके सम्बन्धमें किया हुआ कर्म संस्कार हृदयमें भरपूर या पूर्ण हो रहता है। जैसे-जैसे वह सन्मुख आता-जाता है, तैसे-तैसे फल भोगजीव भुगतते जाते हैं। अतएव मुमुक्षुओंको चाहिये कि, पहिलेसे ही पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहण करके खानी-वाणीके सकल अध्यासको जीते ही परित्याग करके सद्गुण रहनी सहित पारखस्वरूपमें एकरस स्थिति कायम कर जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। तभी यथार्थ मुक्ति होवेगी ॥ ६२ ॥

साखीः— भास जहाँ जहाँ जो करै। तहाँ तहाँ तम अधिकाय ॥
अव्याकृत दुःख रूपको। बोधे सुख दरशाय ॥ ६३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! जो-जो मनुष्य जहाँ-

जहाँपर जैसा-जैसा भास, भावना दृढ़ करते हैं, तहाँ-तहाँपर तैसा-तैसा ही, तम = अज्ञानरूप अन्धकार, अविद्या, माया-मोहकी आसक्ति, अध्यास विशेष-विशेष अधिक ही होता जाता है। भ्रम-भूल बढ़ता ही जाता है। कर्मके भास भोग आदि काम प्राप्ति, सालोक्य मुक्तिके लिये तीर्थ, व्रत, तपस्या, मन्त्र, जाप, स्नान, सन्ध्या वन्दन, होम, हवन आदि जो करते हैं, तहाँ जड़ाध्यास ही विशेष बढ़ता जाता है। उपासनाके भास धर्म प्राप्ति, सामीप्य मुक्तिके लिये नाम स्मरण, सगुण-निर्गुण-उपासना, ब्रह्म, ईश्वर, तैंतीस कोटि देवता, देवी, भूत, प्रेत, आदिके आराधना भक्ति जो करते हैं, तहाँ कुसंस्कार ही विशेष बढ़ता है। योगके भास अष्टसिद्धि आदि अर्थ प्राप्ति, तथा सारूप्य मुक्ति प्राप्तिके लिये अष्टाङ्ग योग साधना, षट्कर्म, दशमुद्रा, यम आदि आठ अभ्यास, तथा ध्यान, समाधि लगाय, ज्योति देख, शून्यमें गाफिल होते हैं। तहाँ अविद्या ही अधिक होती जाती है। ज्ञानके भास सूत्रमणि न्याय, साक्षी-आत्मा मानकर, सायुज्य मुक्ति प्राप्तिके लिये साधन चतुष्टयकी अभ्यास, सप्तज्ञान भूमिकाकी बढ़ाव आदि करते हैं, मानन्दीरूप बन जाते हैं, तहाँ तमरूप अध्यास ही ज्यादा बढ़ जाती है। और विज्ञान मार्गके भास चराचर परिपूर्ण एक ब्रह्म सर्वाधिष्ठान आकाशवत् शून्य मानन्दी करके तहाँ जड़ अजगरादिवत् वृत्ति बनाय, विशेष गाफिल मूढ़ ही हो जाते हैं। और जो संसारमें विषयादिकी भास दृढ़ करते हैं, तहाँ अज्ञान, अध्यास ही अधिक हो जाती है। इस प्रकारसे मनुष्य जहाँ-जहाँपर जा-जाकर जो-जो भास दृढ़ करते हैं, वहाँ-वहाँपर तम-रूप महा अज्ञान ही बढ़ जाता है। और अव्याकृत = वाणी कल्पनाकृत ब्रह्म-परमात्मा-पद जो माने हैं, सो तो वास्तवमें दुःखरूप जगत् या जन्म-मरणादिके कारण बीज ही है। परन्तु उसी ब्रह्मको भ्रमिक गुरुवा लोग सच्चिदानन्द सुखस्वरूप है, ऐसा कल्पना दरशायके, उपदेश देके जीवोंको बोध करते हैं। और उसकी बड़ी महिमा बताकर वेद-वेदान्तका प्रमाण दरशाकर ब्रह्मज्ञानका बोध करते हैं। जीव-ब्रह्मकी

एकतामें परमानन्द सुख बतलाते हैं। इसीसे अविचारी मनुष्य सब उसी धोखामें फँसके बद्ध हो जाते हैं। अतएव पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचारद्वारा परख करके जिसको अव्याकृत दुःखरूपका भेद जानकर यथार्थ पारखबोध हो जाता है। फिर उसे सकल भास, अध्यासका परित्याग कर निजस्वरूप स्थितिमें ही नित्य सुख प्राप्त हो जाता है। सो गुरुबोधसे दरशाता है। इसीसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥ ६३ ॥

साखीः— ज्ञानी हत्या पापको कहैं। मानत लागै सोय ॥
जल करि मानै अग्निको। तो शीतल काहे न होय ॥६४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! ब्रह्मज्ञानी-वेदान्ती लोग अविचार या मूर्खतासे ऐसा कहते हैं कि— जीव हत्या=हिंसा आदि पाप कर्तृत्त्व, भोक्तृत्त्व अपनेमें उसको माननेवाले अज्ञानी लोगोंको ही पाप लगता है। आत्मज्ञानी मैं अकर्ता, अभोक्ता ब्रह्म हूँ, ऐसा जानते हैं, वे पाप-पुण्यको कुछ मानते ही नहीं; इसलिये ज्ञानीको पाप-पुण्य भी कुछ लगता ही नहीं ॥ भगवद्गीता अध्याय ३, श्लोक २७ तथा ३० में कहा हैः—

श्लोकः— "प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥" ३० ॥

—हे अर्जुन! वास्तवमें सम्पूर्ण कर्म प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये हुए हैं, तो भी अहङ्कारसे मोहित हुए अन्तःकरणवाला पुरुष, मैं कर्ता हूँ, ऐसे मान लेता है ॥ हे अर्जुन! तूँ ध्याननिष्ठ चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें समर्पण करके, आशारहित और ममतारहित होकर, सन्तापरहित हुआ युद्ध कर ॥

और भी भगवद्गीतामें श्रीकृष्णने बहुत प्रकारसे कहा है कि— स्वधर्मआचरण करके युद्ध करनेवाले क्षत्रियको हत्याका कोई पाप नहीं

लगता है। हे अर्जुन! तूँ युद्ध कर, इन सबको मार, तूँ कर्मका हंकार मत ले, तो तुझे कुछ भी पाप नहीं लगेगा। ज्ञानी मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा समझके अनासक्त चित्तसे निष्काम कर्म करते हैं। और कर्मके सब फल ईश्वरार्पण करते हैं। इसलिये उन्हें जीव-हत्या आदिका पाप नहीं लगता है। जो अपनेको कर्म करनेवाला मानके हंकार लेता है, उसीको सब प्रकारसे पाप लगता है। सारांश; माननेसे ही हत्या आदिका पाप लगता है, और न माने, तो कुछ भी पाप नहीं लगता है; ऐसा वेदान्ती ज्ञानियोंका कथन है। तिसपर पारखी सन्त उनसे पूछते हैं कि—यदि ऐसा ही है, तो हे भाई! प्रज्ज्वलित प्रचण्ड अग्निको यह बरफके समान ठण्डा वा पतला जल है, ऐसा कल्पनासे यदि दृढ़ करके माने, तो क्या वह शीतल हो जायगा? कभी नहीं होगा। कहो, अग्नि शीतल क्यों नहीं होता है? उसे जल करके तो मान लिया था न? फिर शीतल हुआ क्यों नहीं? जब यह संभव नहीं है, तो अग्निवत् जीव हत्यादि पापको, जलवत् मैं आत्मा अकर्ता, अभोक्ता हूँ! ऐसा माननेसे क्यों नहीं दोष लगेगा?। यदि तुम पाप-पुण्यसे न्यारे हो, तो अभी दुःख-सुखको क्यों भोग रहे हो? जैसे अभी पूर्व संस्कारको भोग रहे हो, तैसे ही किया हुआ शुभाशुभ कर्मका फल फिर भी देह धारण करके अवश्य भोगोगे। चाहे मानो या न मानो, किन्तु कर्म संस्कार तुम्हें अवश्य भोगना ही पड़ेगा। अरे! वे ब्रह्म-ज्ञानी तो धूर्त रहे, अपने स्वार्थसिद्धिके लिये ही ऐसा वचन उन्होंने कहे थे। सो अन्याय-अविचारकी बात है। जो वस्तुका गुण जैसा है, वह वैसा ही रहता है, न माननेसे उसके गुणमें फरक नहीं पड़ सकता है। रातको दिन माननेसे प्रकाश नहीं होता है, अग्निको जल माननेसे ठण्डा-पतला नहीं होता है। वैसे ही पापको न माननेसे भी उसका भोग नहीं छूटता है। अतएव मिथ्या मानन्दी भ्रमको छोड़कर सत्यबोधको ग्रहण करके जीवन सुधार करना चाहिये ॥ ६४ ॥

साखीः— और वृक्ष कहै कल्पतरु । कै माने अनुमान ॥
सकल पुरावै कामना । तो साँच एकता ज्ञान ॥ ६५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! वेदान्ती लोग जो जीव-ब्रह्मकी वा जगत्-ब्रह्मकी एकता कथन करते हैं, सो सरासर असत्य है, न घटनेवाला या साबित न होनेवाला है। क्योंकि, ऐसी एकता तो कहीं किसीको दिखाई देता ही नहीं। जैसे गुरुवा लोगोंने ही कल्पना किया है कि— स्वर्गलोक-इन्द्रपुरीमें एक कल्पवृक्ष है। उस वृक्षके नीचे जाके उसे पकड़कर जो भी सङ्कल्प करके इच्छा या चाहना जैसा करे, तो वहाँ वही चाही हुई वस्तु मिलके अपने-आप चाहना पूरी होती है। इत्यादि कल्पना करके उस कल्पवृक्षको विशेष करके माने हैं। सो मिथ्या भ्रम ही है। यदि उसे भी थोड़ी देरके लिये मान लें, तो और जङ्गलमेंके दूसरे सब वृक्षोंको भी अनुमान करके वैसे ही कल्पवृक्ष है कहैं, फिर उसके नीचे जाकर, झाड़को पकड़कर मनमाने नाना इच्छाएँ करें, तो क्या वह मनुष्योंके मनकी सम्पूर्ण कामना या चाहना पूरा कर सकता है? कभी नहीं कर सकता है। यदि सब वृक्ष सब प्रकारकी कामना या इच्छा पूर्ण कर दें, तब तुम्हारी एकताज्ञान सच्चा है, ऐसा जाना जायगा। नहीं तो अद्वैत ज्ञान सरासर झूठा है, ऐसा दृढ़तासे माना जायगा। अर्थात् जैसे तुमने ब्रह्मको माने हो, वैसे ही और जड़-चैतन्य सबको भी ब्रह्म अनुमान करके माना, एक ही ब्रह्म व्यापक है, ऐसा कहा— तो भी क्या चराचरमें उस ब्रह्मका लक्षण निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, निरीह, आदि कहीं घटता है? कहीं नहीं। इसीसे ऐसे ब्रह्म मानते ही जीवकी सब इच्छा निर्मूल होवे, ऐसा तो कहीं नहीं होता है। अतः ब्रह्मज्ञानका एकता कथन भी सच्चा नहीं ठहरता है। वह मानन्दी भ्रम-धोखामात्र होनेसे असत्य है ॥ ६५ ॥

साखीः— कबीर सम्मल जहरको । मानै खोवा दूध ॥
जो खायेपर गुण करै । तो एकै है सूध ॥ ६६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! सम्मल =

हलाहल तीक्ष्णगुण एकत्र, जहरको = कालकूट विषको, भिगायके, गीला करके उसे यदि, दूध गाढ़ा करके बनाया हुआ खोवा या मावा मानकर खा लेवें। तब वह जहर खानेपर जो खानेवालोंको दूध वा खोवाके समान अच्छा गुण करे, फायदा करे, शरीरमें शक्ति बढ़ायके हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ट करे, ताकत बढ़ावे, तन, मनमें सुख होवे। तब तो तुम्हारा एक ब्रह्म शुद्ध सत्य पूर्ण व्यापक है, ऐसा कहा हुआ एकताका प्रत्यक्ष पता भी चले। जब ऐसा नहीं होता है, किन्तु, जहर खाते ही बहुत कष्ट पाके, तड़प-तड़पकर प्राणान्ततक हो जाता है। तब कहो तुम्हारे एकताका पता कहाँ, कैसे लगेगा? वैसे ही जहररूप जड़-तत्त्व तथा विषयोंको, और दूधरूप चैतन्य जीवोंको एकमें मिलायके उनके भिन्न-भिन्न गुण-लक्षणोंको खोयके, या मिटायके उसे न मानकर एक ब्रह्म माने हैं। जो ऐसे भ्रमकी समझ ग्रहण करनेपर यथार्थमें बन्धन निवृत्ति-का गुण करता, मुक्ति मिलती, तब तो एक ब्रह्म है, कहना भी सत्य ठहरता। परन्तु ऐसा नहीं होता है, ब्रह्म बनके जीव भ्रम चक्रमें पड़ जाते हैं, और ब्रह्म बननेपर जीव जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रके फेरामें पड़ जाते हैं। अतः एकताका सूध असत्य भ्रमपूर्ण है। परीक्षा करके धोखाको हटाना चाहिये ॥ ६६ ॥

साखीः— तो मैं जानों एकता। लो आगीसों नहाय ॥
जल छूये जो अङ्ग जरै। तो सकलों एक पतियाय ॥ ६७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! बिना प्रत्यक्ष-प्रमाणके एकता कथन करनेपर कैसे विश्वास हो?। अगर जड़-चेतन सर्वत्र एक ही ब्रह्म भरा है, ऐसा तुम्हें दृढ़ निश्चय है, तो हे ब्रह्मज्ञानी! तुम लोग धध-कती हुई अग्निकी चिनगारी समूह अङ्गारोंको अपने शिरपरसे डालके उससे अच्छी तरहसे स्नान कर लो। अथवा नदीमें गोता लगानेके सरीखी प्रज्ज्वलित अग्निकुण्डमें प्रवेश करके गोता लगाके निकल आओ। तब तो मैं तुम्हारी एकताका ज्ञान या जीव-ब्रह्म-जगत्की एकता मान्यताको

ठीक जानूँगा। अगर ऐसा नहीं कर सकोगे, तो मैं तुम्हें पाखण्डी धूर्त ही समझूँगा। क्योंकि, साँच-झूँठकी पहिचान अग्नि परीक्षासे होती है, ऐसी बात लोकमें प्रचलित है। सो अब तो तुम अपनी मतकी परीक्षा दिखा दो, अग्निसे नहा लो। और ठण्डा बहती हुई जलको छूते ही हाथ आदि अङ्ग जल जावैं, फफोला पड़ जाय, जो ऐसा होवे, तुम ऐसी परीक्षा मुझे प्रत्यक्ष दिखा सको, तो मैं भी तुम्हारे सिद्धान्त— स्थावर-जङ्गम सकल संसारमें पूर्ण भरा हुआ एक अद्वैत परमात्माका अनुभव करके प्रतीत कर लूँगा। अगर अग्निके स्नानसे शीतलता हो, जलके स्पर्शसे उष्णत्त्व होके अङ्ग जरै, तब तो ब्रह्मकी एकतापनाको संसारमें सब कोई विश्वास कर लेंगे। जब ऐसा होना सम्भव नहीं है, तब तुम्हारे मिथ्यावाद एकता कथनको कौन विवेकी पतियायेंगे ? कोई भी प्रतीत नहीं करेंगे। उसे महान् असत्य ही समझेंगे ॥ ६७ ॥

साखी:— आतम ज्ञान उत्तम किये। झूठनके सरदार ॥
कृतमको कर्ता कहैं। पढ़ि गुनि भये लबार ॥ ६८ ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे जिज्ञासुओ! झूठोंके सरदार या महा झूठे, मिथ्यावादियोंमें अग्रगण्य वेदान्ती गुरुवा लोगोंने संसारमें सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ आत्मज्ञान = आत्मा एक सर्वाधिष्ठान परिपूर्ण व्यापक, अद्वैत, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन है, इत्यादि वर्णन किये हैं। सबसे उत्तम संसारमें वही आत्मज्ञान है। ऐसा दृढ़निश्चय किये-कराये हैं। विवेक करिये! तो वह लक्षण सब कपोल-कल्पित, झूठा ही है, ऐसा मालूम हो जायगा। कृतमको = बनावटी, नकली वाणी कल्पना, भ्रमको ही वे लोग श्रेष्ठ मानते हैं, और वेद-शास्त्र आदि ग्रन्थोंको अपने बनाते हैं। उसके प्रमाणसे ईश्वर, परमात्मा कोई जगत्कर्ता है, जड़, चैतन्य सृष्टि और चारोंवेद भी उसी कर्ता पुरुषने बनाया है, वह सर्वशक्तिमान् है, जो चाहे, सो कर सकता है, इत्यादि कहते हैं। वे तो कृत्तिमको ही

कर्ता कहते हैं, बड़े अन्यायी, अविचारी बने हैं। अरे! वे भ्रमिक गुरुवा लोग तो वेद, शास्त्र, पुराण, आदि कल्पित वाणीको ही पढ़के पढ़ाके और उसे ही गुनि = मनन, हृदयङ्गम, दृढ़ निश्चय करके-कराके अन्तमें, लबार = मिथ्यावादी या झूठे, दुराग्रही मिथ्यापक्ष पकड़नेवाले हठी, शठी, बकवादी भये और वैसे ही लबार हो रहे हैं। अपने कल्पनाको ही कर्ता, ईश्वर कहते हैं। मनुष्योंकी बनाई हुई वेदादि वाणीको ईश्वरकृत कहते हैं। ऐसे अविवेकी भये हैं ॥ ६८ ॥

साखीः—केहि उपदेशे आतमा। को कहै आतमज्ञान ॥
कृतम बड़ा कि कर्ता। कहु पण्डित! परमान ॥ ६९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे ब्रह्मवादी पण्डित! तुम लोग जब आत्माको सर्वत्र व्यापक एक ठहरायके "आतति सर्वत्र व्याप्नोतीति स आत्मा"— सर्वत्र व्यापक होवे, सोई आत्मा है— ऐसा कहते हो। जब एक आत्माके सिवाय अन्य दूसरा कोई नहीं है, तब कहो, वह आत्मा किसको कैसे आत्मज्ञानका उपदेश देता है? तथा आत्मज्ञानको कौन, कहाँ रहके किस तरह कहता है? और कौन, कैसे सुनके जानता है? क्योंकि, यह सब व्यवहार तो अनेक देहधारियोंमें होता है, एक निराकारमें ऐसा कार्य हो ही नहीं सकता है। इससे द्वैत जगत् जड़-चैतन्यकी अनादि सिद्धि स्वयं ही हो गई। आत्मज्ञान, उसके उपदेशदाता गुरु, श्रोता— ग्रहण करनेवाला शिष्य, भिन्न-भिन्न होनेसे एक आत्माका कथन सरासर मिथ्या ही ठहरा, और कृत्तिम वाणी कल्पना तथा ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, इत्यादि मानन्दी बड़ा श्रेष्ठ है कि— अथवा उसे बनानेवाला, मानन्दी करनेवाला, वाणी, कल्पना, अनुमान, आदिका निर्माणकर्ता नरजीव बड़ा है? कृत्तिम— वाणी ब्रह्म और कर्ता जीव, मनुष्य इन दोनोंमें कौन बड़ा है? सत्य श्रेष्ठ कौन है? हे पण्डित! बुद्धिमान् लोगो! मैं तुमसे पूछता हूँ! तुम्हारे समझमें कैसे आता है? सो प्रत्यक्ष प्रमाण सहित निष्पक्ष

होके कहो। अपना विचार प्रगट करो। मिथ्यापक्ष, धोखाको परित्याग करो, जड़ पाँच तत्त्वके संसार तथा देहधारी अनन्त चैतन्य जीव स्वतः ही अनादि हैं। ब्रह्म, ईश्वर, व्यापक, आत्मा आदि मानन्दी मिथ्या है, इसका यथार्थ पारख विचार करके जीवन सुधार करो ॥ ६९ ॥

साखीः— नास्तिक-नास्तिक सब कहैं। नास्तिक लखै न कोय ॥
कृतमको कर्ता कहै। नास्तिक कहिये सोय ॥७०॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे सन्तो! संसारमें पक्षपाती भ्रमिक गुरुवा लोग सब कोई अपने मत खण्डन करनेवालेको युक्ति-प्रयुक्ति, न्याय-निर्णयसे परास्त कर न सकनेके कारणसे हार मानके आखिरमें उन्हें तुच्छ बताकर शिष्योंको अपने कब्जेमें रखे रहनेके लिये कहते हैं कि— अरे! सज्जनो! वे तो पक्के नास्तिक हैं, तभी तो ईश्वर, ब्रह्म, वेद आदिको झूठा बताकर खण्डन करते हैं। वे नास्तिक हैं, उनके सङ्गतमें नहीं जाना, नहीं तो तुम लोग भी वैसे ही नास्तिक हो जाओगे। सावधान रहो, वेदके सनातन मतसे बाहर नहीं जाना। इत्यादि प्रकारसे दृढ़ा कर सब कोई मतवादी एक-दूसरेको नास्तिक हैं, नास्तिक हैं, कहते हैं। परन्तु नास्तिक किसे कहते हैं? उसका खास लक्षण क्या होता है? यह भेद तो वे गुरुवा लोग खुद ही लखके कोई भी नहीं जानते हैं। तो और को क्या लखावेंगे? क्या बतावेंगे? पारखी सन्तोंके बिना पक्के नास्तिकको और कोई लख नहीं पाते हैं। विवेक-दृष्टिसे देखिये! तो कृत्तिम = मनुष्योंका बनाया हुआ वाणी— कल्पना, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, आदि नकली मनकी मानन्दी मिथ्या धोखाको ही कर्ता = जगत्कर्ता, परमात्मा, चैतन्य, सुख-दुःखका दाता, परमेश्वर, इत्यादि झूठ ही महिमा बढ़ाके कहते हैं। जो सत्यन्याय निर्णयसे भ्रम, धोखाके सिवाय और कुछ भी वस्तु नहीं ठहरता है; और वाणीके कर्ता जीवोंको कल्पित ईश्वर वा ब्रह्मका अंश कहते हैं, उसे ही

कल्याण कर्ता ठहराके उसके आशा लगाके भूलमें पड़े रहते हैं, और दूसरोंको भी भुलाके भटकाते हैं, भवबन्धनमें डाल देते हैं, वास्तवमें सोई तो पक्के बड़े नास्तिक कहलाते हैं। नास्ति-कल्पनाको माने-मनावे, सोई नास्तिक है। कहिये! वे मिथ्यावादी नास्तिक नहीं हैं, तो कौन है? अतः गुरुवा लोग ही नास्तिक हैं, ऐसा जानिये! ॥ ७० ॥

साखीः—जाको इष्ट प्रत्यक्ष नहीं। लीन परोक्षहिं होय ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। नास्तिक कहिये सोय ॥ ७१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— क्योंकि, जिन्होंके इष्ट देवता= ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, खुदा, राम, रहीम, इत्यादि जो कुछ भी इष्ट, प्रिय, दृढ़ करके अपनाके माने हैं, सो तो प्रत्यक्ष दृश्य और विवेकमें ठहनेवाला भी ऐसा कोई वस्तु नहीं है। सिर्फ मिथ्या मानन्दी, कल्पनाको ही इष्ट मान करके व्यर्थ ही परोक्ष कही-सुनी हुई वाणीकी मिथ्या भावनामें ही लवलीन होते हैं। तो भला! उस भ्रमसे जीवकी क्या भलाई होवेगी? कुछ भी हित नहीं होगा। प्रत्यक्ष इष्ट-देवतारूप पारखी सत्यन्यायी साधु गुरु और उन्हींकी पारख दृष्टि स्वरूप ज्ञान और यह चैतन्य जीव ही नित्य, सत्य, अखण्ड स्वरूप है; इससे परे और कोई सत्य वस्तु नहीं है; ऐसे अपरोक्ष बोध जिनको कुछ भी नहीं है। अप्रत्यक्ष ईश्वर, खुदा, आदि कोई एक कर्ता मानके वेद, कुरान आदिकी परोक्ष कल्पित वाणीमें ही लीन, गाफिल होते हैं। ऐसे अविवेकी, भ्रमिक, पक्षपाती, अन्यायी, पाखण्डी, मतवादी गुरुवा लोग सोई असली नास्तिक कहलाते हैं। क्योंकि, उनके स्थिति कुछ नहीं है। पारखी सद्गुरुश्रीकबीरसाहेबके सत्य-सिद्धान्तके ज्ञाता पारखी सन्तने पुकारके कहा है कि— जीवको न माननेवाले गुरुवा लोग वे ही नास्तिक हैं, ऐसा निर्णयसे ठहरता है ॥ ७१ ॥

साखीः—है ताको जाने नहीं । तासों बेमुख होय ॥
नाहीं को जाना चहै । नास्तिक कहिये सोय ॥ ७२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! जो निज स्वरूप जीव-सत्य, चैतन्य, अजर, अमर, अविनाशी, अखण्ड, हाजिर-हजूर है; और पारखबोधदाता, सत्यन्यायी, सद्गुरु जीवोंके हितकारी मुक्ति प्रदाता हैं । उनके शरण-सत्सङ्गमें जाके, निज पारखस्वरूपको तो नहीं जानते, और जाननेके प्रयत्न भी नहीं करते हैं । बल्कि पारखी सद्गुरु और चैतन्य-जीवकी स्वयंस्वरूप पारखबोधसे विमुख-उल्टे, विरोधी, पक्षपाती, द्वेष करनेवाले होते हैं, और उसके विपरीत माना हुआ आकाशवत् निर्गुण, निराकार, असीम ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, इत्यादि जो कुछ कहे हैं, सो वस्तु ही नहीं है। मिथ्या भ्रान्ति धोखाकी मानन्दी भूल ही है । उसे योग, जप, तप, धारणा, ध्यान, समाधि, ज्ञान, विज्ञान, आदि नाना साधनाएँ करके जानना चाहते हैं, उसके दर्शन करना, मिलना, तदाकार होना, उसीमें एकता करके लय होना चाहते हैं । उसके लिये जन्म भर नाना तरहसे प्रयत्न करते-करते गाफिल जड़ाध्यासी होके मर जाते हैं । किन्तु, पारख बोधको नहीं जानते हैं । वास्तवमें सोई पक्का या कट्टर नास्तिक या मूढ़, असत्य-को माननेवाले हैं, वे ही नास्तिक कहलाते हैं । यह यथार्थ पारखी सद्गुरुकी निर्णय है ॥ ७२ ॥

साखीः—है ताको जाने नहीं । नाहीं को करे मान ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । सो नास्तिक अज्ञान ॥ ७३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! प्रत्यक्ष सत्य चैतन्य-जीव ही है, और मनुष्योंको पारखबोध देनेवाले दयालु बन्दीछोर पारखी सद्गुरु हैं । उसको या उन्हें तो ठीक तरहसे जानते, पहिचानते भी नहीं । पक्षपाती अविवेकी गुरुवा लोग जो कुछ सत्य वस्तु नहीं है, शून्य मिथ्या है । उसे ही आकाशवत् पूर्णव्यापक

निर्गुण, निराकार ब्रह्म-परमात्मा, ईश्वर, खुदा, कोई कर्ता पुरुष है, ऐसा कहकर जो नहीं है, उसीको सत्य मानते हैं; और देवी, देवता, भूत, प्रेतादि मानके जीव हिंसा करते हैं, वही मानन्दी दृढ़ करते-कराते हैं। सत्यासत्यको न जाननेवाले सोई महा अज्ञानमें पड़े हुए भ्रमिक लोग बड़े नास्तिक हो रहे हैं। सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके अनुयायी पारखी सन्त पुकारके कहते हैं कि— बेपारखी जीवके स्वरूपको न समझनेवाले जो हैं, सोई अज्ञान ग्रसित नास्तिक हैं। यानी नास्ति कहिये वस्तु कुछ न हो, उसीको कल्पना करके सत्य माने, उसे ही नास्तिक-महामूढ़ जानना चाहिये; और जो सत्य वस्तुको सत्यबोध सहित जाने-माने तथा मिथ्या मानन्दीको न माने, सो यथार्थमें आस्तिक हैं, इस प्रकार गुरुमुख निर्णयको सत्सङ्ग विचार द्वारा ठीक तरहसे पहिचानना चाहिये ॥ ७३ ॥

साखीः—माया जाको इष्ट है। दाहिन पन्थ नहिं सोय ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। बामते बामिक होय ॥७४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! जिसको या जिन-जिन मनुष्योंको माया=काया, विषय-भोग, स्त्री, गुरुवा लोग, वाणी, कल्पना, अर्थ या द्रव्य इत्यादि इष्ट है, प्रिय है, उसमें प्रेम, आसक्ति, मोह, पक्षपात, हठ, दुराग्रह लगा रखा है। जिन्होंने मायाको ही इष्ट देवी मान रखा है, और वाणी कल्पनामें ही गाफिल पड़े हैं; विवेक करके देखो! तो वास्तवमें वे लोग कट्टर बाममार्गी हैं। उल्टे मार्गसे ही चलनेवाले हैं। अतः सो ऐसे लोगोंके पन्थ कदापि कभी भी दाहिन पन्थ या दक्षिणमार्ग=शुद्ध न्याय निर्णयकी हंस चाल रहनी-रहस्यकी रास्ता हो नहीं सकती है। वे सत्य-पन्थी कभी हो नहीं सकते हैं। क्योंकि, उनके इष्ट तो खानी-वाणी है, फिर भला! वे शुद्ध मोक्षमार्गी कैसे हो सकते हैं? कभी हो नहीं सकते हैं। इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीर साहेबके पारख निर्णयके ज्ञाता

पारखी सन्तने पुकार करके कहे हैं कि— जैसे स्त्रीकी सङ्गत करके पञ्चमकार = मीन, मांस, मुद्रा, मद्य, और मैथुन, इसका सेवन करनेसे वह बाममार्गी होता है या लोकमें बाममार्गी कहलाता है। तैसे ही बाम = वाणी, वेद, वेदान्त, ब्रह्म, वाद-विवाद, ये पञ्च "व" वकारके सेवन करनेवाले गुरुवा लोग सब भी बायाँ चालसे चलनेवाले बामिक = बाममार्गी, उल्टे बन्धनमें जानेवाले हुए और हंसपद्से उलट-उलटकर कल्पना लेकर बद्ध हो रहे हैं। अतएव पारख-दृष्टिसे उन्हें ठीकसे पहिचानकर उपरोक्त दोनों प्रकारके बाममार्गियोंके कुसङ्गसे दूर रहना चाहिये। भूल करके भी कभी उनके सोहबतमें नहीं लगना चाहिये, तभी कल्याण होवेगा ॥ ७४ ॥

साखीः—हृद्या भासे सर्प जो। रज्जुमें कलपे सोय ॥
रज्जु लखि मिथ्या कहत है। पुनि रज्जु अहि सत होय ॥७५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जिसने पहलेसे सर्प देखके उसके गुण-अवगुण समझ लिया है, तो उसे ही सर्प सम्बन्धी संस्कार पुष्ट होता है। फिर हृदयमें जो सर्पका भास दृढ़ है, जैसा भासा है या भासता है। सो मनुष्य कालान्तरमें कहीं रज्जु या आड़ी-टेढ़ी पड़ी हुई रस्सीको मन्द प्रकाशमें देखके, वहाँ उस रस्सीमें पूर्व दृष्ट-श्रुत सर्परूपका कल्पनाका आकार खड़ा करता है। इससे सो कल्पना करनेवाला तब डरता, काँपता भी है; हिचकिचाके पीछे हट जाता है। फिर पश्चात् दीपक आदिके द्वारा विशेष प्रकाशमें उसे देखनेपर वहाँ तो रज्जु या रसरी पड़ी हुई देखकर उसे उठाकर अरे! इसमें माना हुआ सर्प तो मिथ्या था, भ्रमसे ही मैं डर रहा था, ऐसा कहता है। फिर पूर्वभासित साँपके जगहमें रस्सी ही सत्य साबित हुई। इस तरह भी देखिये! तो रज्जु और सर्प अपने-अपने जगहमें दोनों ही सत्य हुए। यदि सत्य सर्प कहीं देखा न होता, तो फिर रस्सीमें ही वह कहाँसे दिखाई देता! सर्प सत्य प्रथमसे था, उसे देख-सुन-

कर हृदयमें भास भी टिका लिया था, तभी रज्जुमें भी सर्पकी कल्पना हुई और उपयुक्त समयमें सादृश्यता पायके वह भास हुई। इसलिये भी सर्प सत्य ही हुआ। सिद्धान्तमें वेदान्ती लोग यही दृष्टान्त देके "रज्जु सर्पवत्" जगत् मिथ्या भ्रान्ति है, अधिष्ठान आत्मा ही एक सत्य है, ऐसा कहते हैं। तहाँ सर्पके समान जो जगत्को ठहराये, सो जगत् त्रयकालमें देखे, सुने, अनुभव किये हुए प्रत्यक्ष ही है, और रज्जुवत् आत्माको माने हैं। जो जगत् जड़-चैतन्यरूपका भास हृदयमें भास रहा है, सोई अत्मामें कल्पना करते हैं। यानी मनमें एक आत्मा व्यापक है, ऐसा कल्पना करते हैं, तो भी जगत् भासता ही है। वेद-वेदान्त पढ़, सुन, गुनके जब वाणीका प्रकाश भया, तब वेदमें आत्मा अधिष्ठान सत्य है, ऐसा लिखा हुआ देखके आत्मज्ञानको लखके, जगत् मिथ्या है, तीन कालमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। तो भी फिर उन्हें रज्जुवत् आत्मामें अहि= सर्पवत् मिथ्या माना हुआ जगत् बारम्बार सत्य हो करके भासता या दिखाई देता ही है। यदि नहीं भासता, तो निषेध ही क्यों कर सकते थे। इस कारणसे सिद्ध हुआ कि— इन वेदान्तीके दृष्टान्त-सिद्धान्त विषम होनेसे असम्भव है। जगत् तीन कालमें सत्य है। जिसको भासता है, सो जीव भी सत्य है। माना हुआ आत्मा, ब्रह्म, ही कल्पना होनेसे मिथ्या है। जड़ और चैतन्यका सम्बन्धमें मनुष्योंको भ्रम होता है। पारख विचार होनेपर वह भ्रम-भूल मिट सकता है। फिर आत्मा आदि मानन्दी असत्य है, जड़-चैतन्यरूप जगत् सत्य है, सो बोध हो जाता है ॥ ७५ ॥

साखीः– जो अहि कबहुँ देखा नहीं। तेहि रज्जुमें नहिं दरशाय ॥
सर्पज्ञान जाको भयो। जहाँ-तहाँ देख भयाय ॥७६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जो कभी भी जिस किसीने जीवित या मृतक किसी भी प्रकारके सर्पको अपने

नेत्रोंसे देखा नहीं है तथा सुना भी नहीं है; यानी जिसे सर्प कैसा होता है ? उससे क्या हानि होती है ? यह बात बिलकुल मालूम ही न होवे, तो तिसको कहीं पड़ी हुई जड़ रस्सी आदिमें भी सर्प दिखाता नहीं है। अर्थात् उसे रज्जुमें भी सर्पका भास नहीं दरशता है। अतएव छोटे-छोटे अबोध बालक कभी-कभी कहीं अनायास ही जहरीले सर्प हीको भी निर्भय होके पकड़ लेते हैं, और पकड़े ही रखते हैं। दूसरे लोग पीछे युक्तिसे उसे छुड़ा देते हैं। (यह घटना बहुतोंने देखा वा सुना भी है, कई लोग जानते भी होंगे)। इससे यह सिद्ध हुआ कि, जन्मसे कभी सर्प न देखा हो, तो उसे रस्सीमें सर्प कदापि नहीं भासेगा, और जिसको सर्प तथा उसके जहरसे होनेवाली हानिका ज्ञान हो गया है कि— "सर्पके काटनेसे शरीरमें उसका जहर चढ़कर प्राणी दुःख पायके मर जाते हैं, यदि कदाचित् सर्प मुझे काटेगा, तो मैं भी पीड़ित होके मर जाऊँगा" ऐसा सोच-समझ दृढ़ होनेसे वही सर्प ज्ञानवालाने पहलेसे सर्पको देखा-सुना भी है, इसलिये जहाँ-तहाँ मन्द प्रकाशमें रस्सी आदि जड़ पदार्थ पड़ा हुआ देखके, उसे सर्प होनेका कलपना करके भ्रमसे सर्प भास होनेके कारणसे भयभीत होकर डर जाता है, तब चिल्लाके पीछे भागता है, डरके मारे काँपने लगता है, ऐसी विकार उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। फिर अच्छी तरहसे दीपकके प्रकाशमें उसे देखके, रस्सी जाननेपर भ्रम मिट जाता है। उसी प्रकार सिद्धान्तमें जो कभी भी स्थावर-जङ्गमरूप— जड़-चैतन्य-वाला जगत् जिसे वेदान्तीने सर्पवत् मिथ्या, भ्रम प्रतीतिमात्र माना है। यदि उस जगत्को पहिले कभी न देखा होता, तो फिर यह संसार प्रपञ्च रज्जुवत् आत्मा अधिष्ठानमें भी किसीको दिखाई नहीं देता। जगत् था ही नहीं, तो आत्मामें वह कहाँसे, कैसे दिखेगा ? अत्यन्त अभावका कभी भाव हो नहीं सकता है। जब जगत् दिख रहा है, तो फिर उसे मिथ्या बताना, कितनी बड़ी भारी भूल है। बल्कि आत्मा व्यापक ही नहीं दिखता है, तो वही, मिथ्या धोखा है। सर्प

ज्ञानवत् जगत्का ज्ञान जिस जीवको हुआ, और हो रहा है, सो प्रत्यक्ष है। फिर यदि वह वेदान्ती बनके आत्मा वा ब्रह्मकी भावना, मानन्दी करके स्वयं ब्रह्म बनके जगत् निषेध भी किया; तथापि जहाँ-तहाँ जड़, और जीवका पसारा जगत्को ही देख-देखकर भयभीत या भ्रमिक ही होता रहेगा। अतः वह जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंमें ही भ्रमता रहेगा, बिना पारख यह भ्रम छूटता नहीं है ॥७६॥

साखीः—– कबीर जीवको देह करि। माने सो अज्ञान ॥
तन जड़ जीव जाने नहीं। जीव देहको जान ॥ ७७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जो कोई मनुष्य अखण्ड, अविनाशी, नित्य, सत्यस्वरूप जीवको न पहिचान करके स्थूल-सूक्ष्मादि जड़ देहको ही जीव समझके मानता है। खान-पानसे शरीरको पुष्ट बनाय, विषय भोगादिमें ही आसक्त हो रहता है। सो देहवादी महा अज्ञानी नरपशु ही बना है। उसे कुछ भी जड़-चैतन्य, सत्यासत्यका विवेक नहीं है, ऐसा जानो। क्योंकि, शरीर जड़-तत्त्वोंका बना हुआ कार्य होनेसे निर्जीव या जड़ है, और जीवकी ज्ञानगुणकी जाननेकी शक्ति जड़देहमें नहीं है। वह तो देहसे भिन्न है, और जड़ शरीर चैतन्य जीवके स्वरूपको कदापि जान नहीं सकता है, वह जीवके बारेमें कुछ भी जानता ही नहीं है। उधर चैतन्य जीव देहसे भिन्न विजातीय होनेसे देहको तथा सर्वाङ्गके हालको, रोम-रोमको, सुख-दुःख आदि सभी हालको जीव ही जानता है। अतएव शरीर जड़ है, सो जीव नहीं। चैतन्य जीव शरीरसे न्यारा और ही दूसरा कुछ है, वह ज्ञानस्वरूप द्रष्टा, अमर, एकरस है, ऐसा पारख करके जानना या समझना चाहिये॥ अथवा वे नरजीव, जो अपने स्वयंस्वरूप जीवको देह ही निश्चय करके मानते हैं, कि— यह शरीर ही मेरा स्वरूप है। सो अज्ञान, अबोध, देहवादी पामर नास्तिक हैं। शरीर जड़ है, और जीव चैतन्य, दोनों विजातीय हैं। फिर देह ही

जीव कैसे हो सकता है? परन्तु बिना विवेक यह भेद वे जानते ही नहीं हैं। इसीसे मूढ़ता, अज्ञानता करके बुद्धि उनके मोहित हो गई है। अतः स्थूल दृष्टिसे वे शरीर ही को जीव समझके जानते या मानते हैं। परन्तु देहादिसे न्यारा जीव है, उसे विवेकी सत्सङ्गीजन ही जानते हैं ॥ ७७ ॥

साखीः—निर्गुण सगुण करि जीवको। माने मूरख सोय ॥
निर्गुण सगुण देहके। लक्षण जानो दोय ॥७८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और भी जो कोई भ्रमिक लोग, चैतन्य जीवको निर्गुण, निराकार, शून्य आकाशवत् ब्रह्म या उसके अंश करके मानते हैं, अथवा सगुण, साकार, अवतारी ईश्वर या उसके अंश ठहरा करके मानते हैं, अथवा चैतन्य जीवके खास स्वरूप निर्गुण है या होगा। नहीं तो सगुणरूप होगा। ऐसा अनुमान, कल्पनासे जो मानते हैं, सोई तो पक्के मूर्ख हैं। वैसे पठित मूर्ख वा अपठित मूर्ख लोगोंको जीवके सत्यस्वरूपका पता ही नहीं रहता है। तभी बिना विचारके कुछका-कुछ मानके अनर्थ बकते हैं। हे सन्तो! निर्गुण=जिसमें कोई भी गुण, धर्म, लक्षण ही नहीं, ऐसा शून्य निराकार आकाश है, और सगुण = जो रज, सत्त्व, तम, ये त्रिगुण और पञ्च-विषयसंयुक्त हैं, धर्म, आकार, शक्ति, इत्यादि भी जिसमें हैं, सो ऐसे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, ये जड़ चार तत्त्व हैं। उक्त पाँचों तत्त्वोंके पुतला, यह जड़ शरीर कार्यरूपमें बना है। अतएव उक्त निर्गुण-सगुण दोनों लक्षण देहके वा जड़ पञ्चतत्त्वोंके हैं। ऐसा विवेक करके जानिये! और जीव तो द्रष्टा या ज्ञानस्वरूप उक्त जड़ लक्षणोंसे न्यारा है, सो पारखसे पहिचानिये! ॥ ७८ ॥

साखीः— कबीर लक्षण देहके। निर्गुण सरगुण दोय ॥
गुप्त रहै तब निर्गुण। सगुण परगट होय ॥ ७९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! निर्गुण और सगुण

दोनों ही खास करके जड़के लक्षण हैं। आकाश— निर्गुण, निराकार, अक्रिय, पोलमात्र, अन्य तत्त्वोंकी अपेक्षासे वह अवकाश कहा जाता है; और चार तत्त्व सगुण-साकार हैं। उनमें वायु अदृश्य, सिर्फ सूक्ष्माकार है, अग्नि दृश्य स्थूल-सूक्ष्माकारवाला है, परमाणुरूपसे अदृश्य तथा समूहमें दृश्य होता है, तथापि केवल अग्नि पकड़में नहीं आती है, इससे सूक्ष्म माना जाता है, और जल पतला तथा पृथ्वी कठोर, यह दोनों स्थूलाकारवाले हैं। इस प्रकार चारों तत्त्व सगुण हैं। यही तत्त्वज्ञानका निर्णय विचारदर्शन है। उन्हीं तत्त्वोंकी सङ्घातसे शरीर बना है। यहाँ निर्गुण-सगुण दोनों देहके लक्षणमें अनुभव प्रकाश होता है। सो निम्न प्रकारसे जानना चाहिये। योगी वा ज्ञानी लोग साधना विशेष करके वृत्तिको लयकर अन्तर्मुख वृत्ति करके, गुप्त रहै = जब अन्तःकरणमें स्थिर हो शून्य उन्मुनकर निर्विकल्प बेभान हो रहते हैं। तब उसे वे लोग निर्गुण ब्रह्म स्थिति कहते हैं। क्योंकि, वहाँ तीनों गुणोंका अभाव लय-अवस्था रहती है। तथापि वासना बीज हृदयमें गुप्त ही रहता है, और जब समाधि ध्यान टूटके स्फुरणा या इच्छा उठके बहिर्वृत्ति भई, तब सहविकल्प या सङ्कल्प-विकल्प होकर रज, सत्त्व, तम, ये तीनों गुणसहित सगुण स्थूल-भाव प्रगट हो जाता है। तो चञ्चल-वृत्तिसे सारा कार्य होने लग जाता है। सो यह देहके ही लक्षणसे हुआ। अतः यह भी जीवरूप चैतन्य नहीं है, जनैयाजीव अखण्ड उससे न्यारा ही रहता है, सो पारखस्वरूप है, ऐसा जानिये ! ॥ ७९ ॥

साखीः— अन्धा हगै पहाड़ चढ़ि। मोहि न कोई देख ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। आप सरीखे लेख ॥ ८० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जैसे कोई अन्धा मनुष्य पहाड़पर चढ़के हगै = मल-मूत्र त्याग करै, तब वह यह समझे कि— मैं तो इतनी दूर ऊपर चढ़के आ गया हूँ, अब मुझे

तो कोई नहीं देखता होगा, वहाँ धोती खोलके नङ्गा बैठे। सद्गुरु पुकारके कहते हैं— देखो! वह निर्बुद्धि अन्धा अपने समान सबको भी पक्का अन्धा ही लखता है। तभी तो ऐसे उल्टे विचार करता है, नहीं तो ऊँचा पहाड़ या टीलामें चढ़े हुए वा वहाँपर बैठे हुएको तो सब कोई देख लेते हैं। "हगनेवालेको नहीं, तो देखनेवालेको लाज" यह कहावत यहाँ लग जाती है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें पारख दृष्टिहीन अन्धा = ब्रह्मज्ञानी वा योगी, ये लोग योग वा ज्ञानकी साधना करके, पहाड़ = चराचर व्यापक ब्रह्ममें चढ़े वा भ्रमरगुफा सहस्रदल कमल शिखास्थानमें चढ़े, वहाँ चढ़ चुकनेपर हगने लगे, अर्थात् मायाद्वैत दृश्यका अभाव, मल, विक्षेप, आवरणका परित्याग, शुद्ध-बुद्ध, निरञ्जन एक आत्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं हूँ! मैं बहुत उच्चस्थितिमें पहुँच गया हूँ। मुझ ब्रह्मको चित्त-चतुष्टय, प्राण, दश-इन्द्रियाँ, पाँच तत्त्व, पच्चीस प्रकृतियाँ आदि स्थावर-जङ्गम कोई भी देख नहीं सकते हैं। मैं सबको देखता हूँ, सर्वव्यापक हूँ, इत्यादि समझने वा कहने वा मुखसे हगने लगे। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखके ज्ञाता पारखी सन्त पुकार करके कहते हैं कि— देखिये! उन अन्धे बेपारखियोंने और सबको भी अपने समान अन्धे ही समझ लिये हैं। नहीं तो पारख-दृष्टिवाले सन्त दूर रहके उन सबके रहस्य-सिद्धान्तको एक-एक करके देखते हैं। वह देहके भास, प्रकाश, आनन्द आदि सब देहके साथ ही छूट जायगी, बिना पारख जीव जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही जायगा, सो उन्होंने नहीं जाने। इसीसे देहके भास, अध्यास आदिमें गाफिल होके जड़ाध्यासी हो बद्ध भये, आवागमनमें पड़ गये। अथवा अन्धा = विषयी तथा वाचकज्ञानी पहाड़रूप कल्पना, विषय और स्त्री-देहमें चढ़के विषय-भोग करने लगे, निर्लज्ज भये, सोई गहना है। छिपे-छिपे कुकर्म करने लगे, मुझे कोई देखता नहीं, ऐसा समझके मनमाने बुरा बर्ताव करने लगे, और ऐसे पामर, विषयी लोग

मूर्खतासे और सबको भी ऐसे अपने जैसे ही लखते हैं। जो जैसा होता है, सो दूसरे सज्जन, सन्त, महात्मा आदिको भी वैसे ही निगाहसे देखता है, और अपने समान ही वे होंगे, ऐसा समझते हैं। उनकी बुद्धि भ्रष्ट होती है, इससे कुभावना ही किया करते हैं। वैसे लोगोंके संसर्ग नहीं करना ही अच्छा होता है ॥ ८० ॥

साखीः—— कबीर आचार्य सब कहैं। नाम रूपको ज्ञान ॥
नाम रूप चीन्हें नहीं। रूप बखानै आन ॥ ८१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! वेद-वेदान्तके जितने भी आचार्य प्रथम हो गये, उन सबोंने नाम-रूपका ज्ञान कहे हैं। अर्थात् नाम-रूप = शब्द या वाणीका रूप ॐकार ब्रह्म माने हैं, अथवा नाम कहिये शब्दसे रूप सोई ब्रह्मका ज्ञान कहते वा उपदेश करते हैं। कहीं नाम-रूप माया मिथ्या, आत्मा सत्य कहते हैं, कहीं नाम-रूपको ही मानते हैं, और नाम-रूपको यथार्थ निर्णय करके तो चीन्हते ही नहीं हैं या जानते नहीं हैं। बल्कि कल्पना करके ब्रह्म-परमात्माका और ही रूप या निरूप वर्णन करते हैं। मिथ्या धोखामें भूले-भुलाये रहते हैं। नाम और रूप जड़ पदार्थका तथा चेतन सत्य पदार्थका होता है, सो साकारमें ही घटता है, निराकारमें तो वह घटता ही नहीं है। स्थूल-सूक्ष्मरूप जिसका होवे, उसीका नाम सत्य होता है। जिसका रूप ही नहीं, उसका नाम भी मिथ्या है। नाम-रूपमय जगत्को निषेध करके वेदान्तके आचार्योंने ब्रह्म ज्ञानको सत्य कहा है, और ब्रह्मको निराकार माना है, फिर उसका नाम शब्दमें कैसे आया? जब ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर आदि नाम शब्दसे कहा गया, तो वह शब्दका रूप जड़ वा कल्पना ही ठहरा। अरे! नाम-रूप, वाणी आदिका कल्पना करनेवाले तो नरजीव ही हैं, यदि जीव न होवें, तो उसका वर्णन कौन करेगा?। बिना पारख सत्यनिर्णयको तो पहिचानते नहीं हैं। ब्रह्मका रूप और ही शब्दस्वरूप वा ज्योति-

स्वरूप आदि अथवा निराकार है, ऐसा बखान करते हैं । सोई बात अभीके गुरुवा लोग भी वर्णन कर रहे हैं, बिना विवेक धोखामें ही भूले पड़े हैं ॥ ८१ ॥

साखीः— बिना रूपका नाम जो । अबतक सुना न कान ॥
बिना रूपको नाम सो । कैसे जगमें जान ? ॥ ८२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और मतवादी गुरुवा लोग जो कि— वेद-शास्त्रोंके प्रमाणसे ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा आदिको सर्वथा रूप-रहित, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, कहते वा मानते हैं । फिर उनके नाम कथन करके शब्द द्वारा बतलाते भी हैं। अब हे सन्तो ! देखिये ! जिसके रूपका या आकार स्वरूपका तो कहीं ठिकाना ही नहीं है, जो वैसे बिना रूपवालेका नाम सत्य भया हो, ऐसा तो अबतक भी कहीं किसीने कानसे सुना नहीं होगा; न कहीं देखा, जाना ही होगा ? किन्तु, ये भ्रमिक वेदान्ती लोग वैसे ही असम्भव बात कहे हैं और कह रहे हैं । अच्छा ! तो यह बताओ कि, बिना रूपके निराकार माना हुआ परमात्माका— ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, इत्यादि सो वह नाम किसने रखा है ? और जगत्में नरजीवोंने कैसे करके या किस प्रकारसे जाने कि— उसका नाम ब्रह्म या ईश्वरादि ही है, और उसका रूप नहीं है । रूपके बिना भी कहीं नाम रखा जा सकता है ? वह तो सरासर भ्रम वाणीके कल्पना ही होता है, सो निरर्थक बेफायदेका होता है । अतः परखकर उस धोखा, भ्रमको मिटाना चाहिये । सत्य बोधको ग्रहण करना चाहिये ॥ ८२ ॥

साखीः— छिनमाहीं बोधिक भये । ज्ञान कथे अधिकाय ॥
छिनमाहीं संशय भये । दे ठगनी हुदकाय ॥ ८३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! गुरुवा लोगोंकी स्थिति बड़ी विचित्र दुर्दशाग्रस्त रहता है । क्षण-क्षणमें उनकी मति बदलती ही रहती है। क्योंकि, वे ठग-ठगिनियोंके साथमें

अलमस्त हो रहते हैं, इससे कभी स्थिर होने नहीं पाते हैं। वेदान्ती लोग एक क्षणमें तो बोधिक = बोधवान् या बुद्धिमान्, ज्ञानी बनके स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। अपनेको नित्य मुक्त, नित्य तृप्त, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, मान लेते हैं। जब ज्ञानी भये, तब ब्रह्मज्ञानकी अधिकाय = बहुत ही विशेषता, अत्यधिक महिमा कथन करते हैं, बहुत उपदेश भी देते हैं। फिर क्षणभर बादमें ही एक ऐसा संशय उत्पन्न हो जाती है कि— ब्रह्म तो मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य है, अब कुछ बोलो ही मत, बस चुप हो जाते हैं। फिर तब भी ठगनी = वाणी कल्पना मनमें, हुदकाय = सङ्कल्प उठाय देती है। फिर उनसे चुप रहा ही नहीं जाता, तब तो ज्ञान-विज्ञानका उपदेश देने लग जाते हैं। इसी तरह कभी ज्ञानी और कभी अज्ञानी तथा कभी वक्ता, कभी गूँगा, हो जाते हैं; स्थिति कुछ भी नहीं पाते हैं। अथवा वेदान्ती लोग जब कभी बोधस्वरूप ब्रह्म बनते हैं, तब क्षणभरमें ही द्वैत दृश्य नाम-रूपमय जगत्का बाध या निषेध करके द्वैत कुछ है ही नहीं, कहकर अद्वैत एक ब्रह्म आप ही हो जाते हैं। तब तो अधिकतासे ज्ञानका कथन करते हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्म भये, तो शून्य ही हो रहते हैं! पुनः ठगिनी कल्पना जब हुदकाय देती है, तो वृत्ति चञ्चल होके सङ्कल्प-विकल्प उठाने लग जाते हैं और थोड़ी देरमें या क्षण भरमें ही बहिर्लक्ष करके देखते हैं, तो संशयरूप जगत् द्वैत ज्योंका-त्यों ही देखनेमें आ जाता है। इससे बड़ी दुविधामें पड़के भ्रमचक्रमें गाफिल, जड़ाध्यासी हो जाते हैं। बिना पारख किसीकी धोखा नहीं छूटती है ॥ ८३ ॥

साखीः— ठगनीके हुदकावते । छिनमें ब्रह्म स्वरूप ॥
छिनमें संशय ऊपजै । ब्रह्म हुवा भ्रमरूप ॥ ८४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! ठगिनी = वाणी, कल्पनाके वेगसे, हुदकावते = मनमें सङ्कल्प-विकल्प चिन्तनादि चञ्चलता

उठानेसे क्षण भरमें तो जीव आप ही ब्रह्मस्वरूप निर्गुण बना, फिर साधना-के अन्तमें निर्विकल्प स्थिति भई, उसे ही सच्चिदानन्द ब्रह्म माना, और जब सहविकल्प इच्छा या स्फुरणा उठी, तब क्षणभरमें संशय उत्पन्न हुई कि— यह जगत् कहाँसे उत्पन्न भया ? द्वैत क्यों दिख रहा है ? एक है कि, अनेक है ? वास्तवमें सत्य क्या है ? इत्यादि दुविधा खड़ी होती भयी। तब माना हुआ एक ब्रह्म भी मिथ्या भ्रमरूप ही हुआ। गाफिलिमें पड़के हंसपदसे नष्ट-भ्रष्ट, बद्ध हो गये। बिना पारख ॥

अथवा पक्के ठग या ठगकी नारी ठगिनी गुरुवा लोग बने हैं। उन्होंके प्रपञ्चमें हुदकावते, बहकावते, भ्रमावते, भुलावते, नाना प्रकारके वेदान्त-के उपदेश सुनते-सुनाते, वाणी कल्पनाको गुनते-गुनाते मनुष्य-जीव भ्रमिक भये, तो क्षणभरमें ही वे ब्रह्म स्वरूप भये, सर्वाधिष्ठान मैं हूँ, यह निश्चय किये। तो भी जड़-चैतन्य स्वरूपसे संसारमें न्यारा-न्यारा ही रहा, सब जगत् प्रपञ्च दिखता ही रहा। फिर क्षणमें जीवोंको संशय उपजा कि— जगत्को असत्य कहते हैं, सो तो दिखता है, ब्रह्मको सत्य कहा हुआ है, वह तो दिखता भी नहीं ? क्या बात है? क्या निश्चय करना? चलो! अपने गुरु महाराजसे पूछें, कहके गुरुवा लोगोंके पास आके पूछे, संशय प्रगट किये। तब वेदान्तीने कहा कि— नाम-रूप कथनमात्र मिथ्या जगत् है, किन्तु अधिष्ठान ब्रह्म वस्तुतः सत्य है। तुम इसे जगत् मत कहो, और जगत्रूपमें देखो भी नहीं, और इसे ही विश्वरूप व्यापक ब्रह्म समझो, एक अद्वैत ब्रह्म कहो तथा ब्रह्मरूप करके ही सबको देखो। बस! बेड़ापार है, समझ पलटा कि— ब्रह्म हुआ। ऐसा कहते हैं। परन्तु इस प्रकारसे तो मिथ्या भ्रमरूप धोखा ही वह ब्रह्म हुआ। किन्तु किसी तरह भी सत्य नहीं हुआ। अतः सत्य निर्णयसे परख करके भ्रमको हटाना चाहिये ॥ ८४ ॥

साखीः— कबीर ठगनी भूतनी । भरि भरि आवै गात ॥
कबहुँ संशयते भरी । कबहुँ भरी वेदान्त ॥ ८५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! यह ठगनी = माया,

वाणी, कल्पना, विषय, स्त्री, गुरुवा लोग और मन इत्यादि सब जीवोंको ठगनेवाली महा ठगिनी हैं। यह तो भ्रम भूतके अर्धाङ्गिनी नारी भूतनी=प्रेतनी, चुडैल, डाँकिनी, शाँकिनी, पूरी जबरदस्त मरियल ही बनी है। सो सब नर-जीवोंके शरीर वा हृदयमें प्रवेश करके बैठी है। समय-समयपर अपना जोर दिखलाती है। वाणी विषय और काम विषयादिका वेग या लहरी भर-भरके या उमड़-उमड़के, बढ़-बढ़के, गात=अन्तःकरणमें बढ़ाती ही चली आती है। मुख्य भूतनी, ठगिनी वाणी कल्पना भर-भरके मनमें भ्रम बढ़ाते ही आती है, और कभी तो वह मनमें संशय, दुविधा, भ्रम, आदिसे भरपूर कर देती है। जीवको अज्ञानग्रसित करके नाना सङ्कल्प-विकल्प, चाहना आदिमें डाल देती है। जगत्में नाना मत, पन्थ, सिद्धान्त, आदिकी भिन्न-भिन्न विस्तारकर द्वैत प्रपञ्चको ही भलीभाँति दिखलाती है, और कभी तो वह जब वेद-वेदान्तमतमें जाके भर जाती है, तब वहाँ उधम मचा देती है। सम्पूर्ण दृश्य चराचर जगत्को एकदम निषेध करके, नोच-नोचकर सब सत्य, विचारादि सद्गुण आभूषण, विवेक वस्त्रको फाड़-फाड़के फेंककर भूतनी प्रचण्ड हो जाती है, तो उग्र, भयङ्कररूपको धारण कर लेती है। ये नहीं, ओ नहीं, जगत् नहीं, मैं ब्रह्म हूँ, और सब कुछ चराचर मेरा ही स्वरूप हैं, मैं सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक आत्मा हूँ। इस प्रकार कहके कभी नङ्गी हो जाती है, इधर-उधर नाचती-फिरती है। कभी सब जगत्को अपनेमें ही लपेट लेती है। ऐसी यह कल्पना बड़ी विचित्र जीवोंको भुलानेवाली भवबन्धनके कारण है। उसे ठीक तरहसे परखकर मनसे निकाल, बाहर करके भगा देना चाहिये ॥ ८५ ॥

साखीः— कबीर ब्रह्म पिशाच यह। जबर बड़ा मुँह जोर ॥
बड़े-बड़े ओझा झारन लगे। बकन लगे तेहि ओर ॥ ८६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! यह वेदान्तियोंने माना हुआ ब्रह्म क्या है कि, एक ब्रह्मपिशाच या ब्रह्म-

राक्षस, ब्रह्मदैत्य, ब्रह्मभूत, ब्रह्मप्रेत, खास मनका भ्रम, धोखा ही है। अतः वाणीकल्पनासे कथन कर, दृढ़मानन्दी किया हुआ महा भ्रमरूप यह पिशाच ब्रह्म जिसके सिर वा हृदयमें चढ़ जाता है, फिर सो मनुष्य बड़ा जबरदस्त मुँहजोर या महा बकवादी अविचारी हो जाता है। उसे सारासार, सत्यासत्य, निर्णयका कुछ भान ही नहीं रह जाता है। इस मिथ्या भ्रमभूतका मुख बड़ा जोरदार होनेसे जल्दी थकता ही नहीं है। उस भ्रमने जिसको दबाया, जीता, वह मनुष्य सुधि-बुधिको खोकर जैसे मन मानै, वैसे ही बकने-झकने, सिद्धान्त कायम करने, अद्वैत ब्रह्मबोध देने लग जाता है। जड़ और चैतन्य जीव भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष ही हैं। उसे न मानकर तहाँ "जबरदस्तीका ठेंगा सिरपर" की कहावतके अनुसार एक अद्वैत ही ब्रह्म है, दूसरा द्वैत कुछ नहीं है, सब दृश्य मिथ्या भ्रान्ति है। ऐसे मानन्दी दृढ़ करते-कराते हैं, और बड़े-बड़े ओझा = वाणी, खानीके भूत उतारनेवाले गुरुवा लोग (तान्त्रिक टोना-मोना, झाड़-फूँक करनेवाले ओझेके समान बने), गुरुवाई करने लगे। योगी, ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, या विज्ञानी बड़े-बड़े ब्रह्मवेत्ता कहलानेवाले ऋषि, मुनि, सिद्ध, साधक, इत्यादिकोंने चार वेद, बावन उपनिषद्, षट् शास्त्र, मुख्य वेदान्त शास्त्र आदि ग्रन्थोंके कल्पित वाणी पढ़, सुन, गुनकर उसे ही पक्का दृढ़ निश्चय करके फिर अन्य जिज्ञासु नरजीवोंको भी वही वाणी सुनाय-सुनायके उनके भ्रम, अज्ञान या अबोध, बन्धनरूपी भूत, मायाके विकार, मल, विक्षेप, आवरण भूतकालके अविद्या आदिको झारने-फूँकने, हटाने, निकालनेका प्रयत्न करने लगे। ब्रह्मज्ञानका उपदेश दे-देकर अद्वैत सिद्धान्तका बोध करने लगे। तब उनके ऐसे उपदेश सुन-सुनकरके और उनके शिष्य-शाखारूप मनुष्य-वर्गको भी वह भ्रमभूत चढ़ गया, तो उनकी तरफ मुख करके वे सब भी उनके समान ही मनमाने बकने लगे। आँय, बाँय, काँय, अल्ल, बल्ल, कल्ल, हूम, गूम, सूम—"अहं ब्रह्मास्मि, ब्रह्मैवाहमस्मि, तत्त्वमसि,

अयमात्माब्रह्म, सर्वं खल्विदंब्रह्मनेहनानास्तिकिञ्चन," इत्यादि चिल्ला-चिल्लाकर धूम मचाये। भ्रमभूत उतरनेके बदले और परिपुष्ट होके उनपर चढ़ गई। पक्ष, कल्पना, मानन्दीरूपी वाणीका उग्रभूत और जड़ाध्यास-रूपी खानीकी कठिन भूत गुरुवा लोगोंके प्रयत्नसे नहीं निकली। गुरु-चेले और भी दृढ़ पक्षपाती, अविचारी, अध्यासी बनकर सन्निपात चढ़ा हुआ भ्रमिक मनुष्यके समान "एकोब्रह्मद्वितियोनास्ति,–ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः"— अर्थात् एक ही अद्वैत ब्रह्म चराचरमें व्यापक एकत्त्व सत्य है, और दूसरा द्वैत नहीं है! नहीं है!! नहीं है!!! ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव-ब्रह्ममें कोई भेद है ही नहीं, अभेद है। ऐसे ही बारम्बार पुकारते-पुकारते उसी धोखाकी ओर लगके ही बकवाद करने लगे। वैसे अविवेकी भ्रमिक लोग व्यर्थ ही कल्पनामें लगकर नरजन्मकी आयु खो देते हैं, और जड़ाध्यासी होनेसे चौरासी योनियोंमें जाके आवागमन चक्रमें ही पड़ा करते हैं। अतः पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसे परखकर भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये ॥ ८६ ॥

साखीः— कबीर हिन्दू तुरुक पर। खेलै एकै भूत ॥
पण्डित काजी हारिया। झारें माकी चूत ॥ ८७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! संसारमें सब तरफ एक ही भूतका साम्राज्य शासन फैला हुआ है। तहाँ हिन्दू-धर्मावलम्बी चार वर्ण— ३६ जात माननेवालोंपर और तुरुक = मुसल-मान, शेख, शैय्यद, मोगल, पठान ऐसे चार भेद करके भी एक ही जात माननेवालोंपर और ईशाई, पारसी, बौद्ध, जैन, इत्यादि सकल मतवादियोंपर, एकैभूत = वाणीका एक ही अनुमान, कल्पना, भ्रम, भूल, धोखा, कर्ता, ब्रह्म, ईश्वर, अल्लाह, खुदा, गॉड़, सुगत, शून्य, निर्वाण, अरिहन्त, इत्यादि मानन्दी सोई भूत, भविष्य, वर्तमानमें एक समान खेल रही है, उन्हें नाना साधनोंमें खेला-कुदा, नचा रहा

है । अर्थात् एक ही भ्रम कल्पना वाणीका पक्ष सोई भूत होके नाना रूपमें खेल-खेला रहा है । पण्डित, काजी, पोप, भिक्षु, यति, इत्यादि भूतरूपी अपने-अपने इष्टदेवताकी खोजीके लिये पीछे पड़े, नाना प्रयत्न करने लगे । किन्तु मनकी कल्पना पकड़नेमें नहीं आई । अन्तमें वे सब हार गये, थकित जड़ाध्यासी भये, तब माकी = माया, स्त्री, वाणी, कल्पनादिकी ही सेवन करके जीवकी बन्धन दुःख आदिको झारने, मिटानेका प्रयत्न करने लगे । तो भी वह कुछ भी झरा नहीं, उल्टी और ज्यादा ही जड़ाध्यास उनपर चढ़ी । अतः हंसपद मुक्तिसे चूत = च्युत या पतित होके कर्मकी चुकीसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये । जब देह छूटी, तो मायाकी अध्याससे स्त्रीकी गर्भवासको ही जाते भये वा जा रहे हैं, बिना पारख ॥ ऐसे जब बड़े-बड़े अगुवा लोग ही खानी-वाणीकी नशा, मन भूतकी बन्धन, झार नहीं सके, बिना पारख मनुष्य पदसे च्युत होके आप ही माँकी योनि द्वारा गर्भवासमें गिर गये । तब उनके अनुयायी भ्रम भूतकी बन्धनको क्या मिटायेंगे ? देह छूटनेपर ये सब भी अध्यासवश चारखानीकी नाना योनियोंके गर्भवासको ही प्राप्त होवेंगे । अतः पूर्ण पारख स्थिति हुए बिना किसीका बन्धन मिटता नहीं है, ऐसा जानिये ! ॥ ८७ ॥

साखीः— ज्ञाता ज्ञेय अरु ज्ञान जो । ध्याता ध्येय अरु ध्यान ॥
द्रष्टा दृश्य अरु दरश जो । त्रिपुटी शब्दा भान ॥८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! वेदान्तियोंने जीव, ईश्वरकी तीन-तीन त्रिपुटी उड़ायके फिर अद्वैत सिद्धान्तका कथन किया है । तहाँ उन्होंका कथन ऐसा है कि, जीवकी पिण्डमें तीन त्रिपुटी हैं—ध्याता, ध्यान, ध्येय । उसमें ध्याता = स्थूल वा जीव है, ध्यान = सूक्ष्म वा एकाग्रवृत्तिका सम्बन्ध है । ध्येय = कारण वा इष्ट पदार्थ है, जिसका जीव ध्यान करते हैं । ये तीनों त्रिपुटी सहित जीव भावको उड़ायके अद्वैत एकत्व भावना करके जीव-

ईश्वरकी एकता मानते हैं। तहाँ तुरिया अवस्था महाकारणरूप हुआ। फिर कैवल्य ब्रह्म होनेके लिये तहाँ ईश्वरकी त्रिपुटी भी उड़ाते हैं; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, जो कहा है, सोई ब्रह्माण्डमें ईश्वरकी त्रिपुटी माने हैं। ज्ञाता = ईश्वर, ज्ञान = मूल प्रकृति-तुरिया, ज्ञेय = अव्याकृत, सो कारण, और हिरण्यगर्भ सूक्ष्म तथा विराट स्थूल, सोई ईश्वरके तीन देह माने हैं। यह सम्पूर्ण ज्ञेय इसे भी उड़ा देना। इस प्रकार षट्पुटी छोड़नेपर तब एक ब्रह्म वा आत्माकी अखण्ड दशाको प्राप्त होती है; ऐसा वेदान्तियोंने कहा है और माने हैं, और द्रष्टा = चैतन्य जीव, दृश्य = जड़ जगत् जो स्थूलरूपमें दिखाई देता है, और दरश या दर्शन = नेत्र और विषयरूपका सम्बन्ध होना, तैसे इन्द्रियाँ तथा विषयोंका सम्बन्ध, एवं जीव और जड़का सम्बन्ध, इत्यादि जो कुछ भी त्रिपुटी गुरुवा लोगोंने बताये हैं, और त्रिपुटीसे रहित ब्रह्म कहे हैं, सो सब शब्द द्वारा भान होनेवाला शब्दका विषय भास ही है। यानी शब्दका कथन मन-मानन्दी मिथ्या भ्रम ही है। जीव, ईश्वर, जगत्की यावत् त्रिपुटी शब्दाभान या वाणी कल्पना-मात्र है। ब्रह्मको सर्वाधिष्ठान कारण माने हैं, तहाँ ईश्वर-पुरुष, तथा प्रकृति, ज्ञान, अज्ञान, जड़, चैतन्य इन्हीं षट् कार्यमें कारण ब्रह्म भरा है। ऐसा वेद वचन बृहदारण्य उपनिषत्का प्रमाण है, सो भान या ज्ञान भी शब्द द्वारा ही हुआ। किन्तु ऐसा ब्रह्म कहीं विवेक-द्वारा ठहरता ही नहीं है। अतएव वह मनुष्योंकी मिथ्या धोखा, भ्रममात्र है। गुरुसत्सङ्गमें परखके उसे यथार्थ समझना चाहिये। सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यसारको ही ग्रहण करना चाहिये ॥ ८८ ॥

साखीः— लाहल पारख शब्दकी। जो परखे सो पाक ॥
तामें जो हल्ला करै। सोई होय हलाक ॥ ८९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! सम्पूर्ण शब्दकी— काल,

सन्धि, झाँईंकी; तत्, त्वं, असिकी; जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख, आदि सब वाणी जालकी, पारख या परीक्षा निर्णय छान-बीन करके सत्यन्यायसे विवेक कर जिन्हें स्वरूप ज्ञान पारखबोध लाहल=प्राप्त हुयी या ग्रहण भयी, सो पारखी सन्त जीवन्मुक्त सर्वोपरि होते हैं। और जो कोई जिज्ञासु नरजीव ऐसे पारखी सन्तके शरण-ग्रहणकर गुरुमुख निर्णय सारशब्दका विचार करके जो कि, सब यम जाल खानी-वाणीको ठीकसे परखते हैं, और उसकी अध्यासोंको त्याग देते हैं, सो पाक=पवित्र, शुद्ध, निर्विकार, निर्बन्ध हो जाते हैं। पारख स्थितिमें ही वे स्थिर रहते हैं। ऐसे निर्णय विवेक-विचार न करके उसमें उल्टा जो उपाधि करते हैं, पारखी सन्तोंकी सत्सङ्ग न्यायमें हल्ला-गुल्ला या शोर-गुल मचाके विरोध, टण्टा, फसाद करते हैं तथा तर्क-वितर्क, निन्दा-चर्चा, खण्डन, करते हैं, गुरुवा लोगोंके मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त, वेद, कुरान, आदिका पक्ष पकड़ते हैं; खैंचातान करते हैं, सोई अविचारी मतवादी, भ्रमिक, जड़ाध्यासी होयके, हलाक=महादुःखी, हैरान, सन्तप्त, होते हैं। बारम्बार चारखानी चौरासी योनियोंके जन्म-मरणके चक्रमें पड़के दुःख ही भोगा करते हैं। अतः पारख बोधको ग्रहण करके निर्बन्ध सुखी हो जाना चाहिये ॥ ८९ ॥

साखीः— कबीर शब्दातीतको । शब्द बतावै भेव ॥
शब्द न चीन्है बावरा ! करै शब्दकी सेव ॥ ९० ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे नरजीवो! ये गुरुवा लोग ब्रह्मको शब्दातीत=शब्दसे परे, निःअक्षर, वाणीसे रहित बतलाते हैं, और फिर वेद-वेदान्तके शब्दद्वारा ही उस ब्रह्म-परमात्माकी भेव=भेद, रहस्य, महिमा, वर्णन करके बतलाते हैं, सो शब्दसे ही कहा, सुना, माना जाता है। फिर शब्दातीत कैसे हुआ? शब्द तो नरजीवोंसे बनता है, वेदादि वाणी भी जीवोंकी कल्पनासे बनी है,

सो विवेक करके ठीकसे तो शब्दको चीन्हते नहीं हैं, बावरा = पागल या दिवाने भ्रमिक बने हैं। इसीसे शब्दको निषेध करके भी बारम्बार उसी कल्पनारूपी शब्दकी सेवन, सेवा, मानन्दी, गुलामी, ही करते रहते हैं। उसका सकल भेद तो पारखी सद्गुरु ही न्याय, निर्णयकी गुरुमुख सारशब्दसे बतायके दरशाते हैं, शब्दातीत माना हुआ कोई एक ब्रह्म जो कहा है, सो तो मनुष्योंकी ही कल्पना है। उसे माननेवाले जीव ही सत्य है, सो मानन्दो मिथ्या है। किन्तु पक्षपाती लोग बावले बने हैं, इसलिये शब्द जालको वे चीन्हते, पहिचानते नहीं हैं। धोखासे ॐकारको ब्रह्म मानके शब्दकी ही सेवा कर-करा रहे हैं। अतः भवबन्धनोंमें ही बद्ध पड़े हैं, बिना पारख ॥ ९० ॥

साखीः— जो-जो सुनै गुनै सोई। देखै कहै बनाय ॥
कहैं कबीर गुण शब्दका। पारख बिन जहँड़ाय ॥ ९१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो! गुरुवा लोग जो-जो कुछ भी सुनते-सुनाते हैं, और गुनते-गुनाते हैं, वह सब शब्दका ही विस्तार है। तथा शब्द समूहरूप ग्रन्थ वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, आदिको देखते हैं; फिर वाणी बनाय-बनायके कल्पित शब्दको ही मुखसे कहते हैं। और कहैं कबीर = गुरुवा लोगोंने जो कुछ भी सिद्धान्त कहे हैं और कहते हैं— कर्ता पुरुष, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा, इत्यादि सो सब भी शब्दका गुण या विषय-कल्पना होनेसे भ्रम, धोखा ही है, और पूर्वमें वा अभी जो-जो बात कानसे सुना गया वा सुन रहे हैं, सो भी शब्द ही कहलाता है। तथा जो-जो बात मनसे मनन या गुनाव किये वा कर रहे हैं, सो भी सोई शब्दका ही सूक्ष्म भाग है, और रूप विषयको देखके वैसी वृत्तिको बनाकर जो कुछ भी कहे वा कह रहे हैं, वह भी शब्द ही है। इस प्रकार गुरुवा लोगोंके कथन, मानन्दी सब शब्दका गुण ही ठहरा, शब्दातीत नहीं हुआ। यथार्थ गुरुनिर्णयसे परीक्षा दृष्टि खोलके पारखबोध हुए बिना वे सब भ्रमिक लोग जहँड़ाय

गये, अर्थात् पारखसे सत्यासत्य जाने बिना, जड़ाध्यासी हो बद्ध हो गये, तो वे चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ गये। बिना विवेक ऐसे ही पतन होता है ॥ ९१ ॥

साखीः— स्वपने सत्य दिखायके। जागे मिथ्या होय ॥
कहहिं कबीर छिनारिकी। कला न चीन्हा कोय ॥ ९२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! इन गुरुवा लोगोंने स्वप्नवत् जगत्को मिथ्या दिखलायके वाणीसे एक ब्रह्मको सत्य कहा है। परन्तु विवेक दृष्टि खुलके नरजीव जागनेपर वह ब्रह्म आदि मानन्दी सरासर मिथ्या भ्रम ही साबित होती है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख सिद्धान्तके ज्ञाता पारखी सन्त कहते हैं कि—छिनारि= वाणी-कल्पना तथा व्यभिचारिणी बुद्धिवाले भ्रमिक गुरुवा लोग इन्होंकी कला=प्रपञ्च, धोखा, कपट, विकार आदिको बिना पारख संसारमें कोई चीन्हते ही नहीं है। अतः अनजान होके महाबन्धनमें ही जकड़ पड़ते हैं। अथवा जैसे अर्धनिद्रित अवस्थामें जाग्रत्की भास, अध्यास, उदय हो करके नाना प्रकारके स्वप्न उस वक्त सत्यवत् दिखाई देते हैं। किन्तु, जाग्रत् होनेपर वे मिथ्या ही होते हैं। उसे सत्य मानना मूर्खता है। क्योंकि, उससे कोई कार्य पूर्ण नहीं होता है, अतः मिथ्या है। तैसे ही उपासना, योग आदि साधना विशेष करनेसे धारणा, ध्यान द्वारा वृत्ति एकाग्र होनेपर मनके भावना अनुसार मूर्ति स्वप्नवत् त्रिकुटीके भीतर दिखाई देती है, और नाद-बिन्दुकी घर्षणसे सो तहाँ ज्योति प्रकाश होता है, किसीको अंगुष्ठमात्र मूर्ति दिखती है, किसीको हीरावत् प्रकाश भासता है। सो तत्त्वोंका प्रकाश, भास, स्वप्नवत् असत्य या मिथ्या ही है। परन्तु गुरुवा लोगोंने साधना द्वारा उसे ही साधकोंको दिखलायके सत्य बतलाये हैं। ज्योतिस्वरूप परमात्माके दर्शन, ईश्वर साक्षात्कार, इष्टदेवका दर्शन प्राप्ति, इत्यादि महिमा बतायकर

उसे ही सत्य ठहराये हैं। परन्तु जब धारणा, ध्यान टूट जाती है, बहिर्वृत्ति हो जाती है, तब जाग्रत् अवस्थामें वह सब दृश्य गायब होके मिथ्या ही हो जाती है। तथापि बिना पारख मनुष्य धोखेमें ही पड़े रहते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं— व्यभिचारिणी बुद्धि, वाणी कल्पना, भ्रम, ये ही छिनारिकी कलाको वे बेपारखी लोग किसीने भी चीन्हें नहीं। अतएव असत्य मनके भासको ही सत्य मान-मानके भूले, भटके भवबन्धनमें पड़े। अतः पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग विचारद्वारा उसे परखके यथार्थ पहिचानना चाहिये ॥ ९२ ॥

साखीः— हिन्दूका गुरु बावना । नित उठि करे प्रणाम ॥
तुरुक मुरीद है तीसका । पाँच बखत करें सलाम ॥ ९३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! इधर हिन्दू = चोटी रखनेवाले, ईश्वर, वेद, शास्त्रोंको माननेवाले, मूर्तिपूजक हिन्दू धर्मावलम्बियोंका, गुरु = आचार्य, श्रेष्ठ, माननीय, वजनदार, महत्त्व, बावना = बावन अक्षर 'क' से 'क्ष, त्र, ज्ञ', तक ३६ तथा 'अ से अः' तक १६ स्वर मिलायके ५२ वर्ण होते हैं। उन्हींसे बनी हुयी वेद आदि पुस्तकोंको हिन्दू लोग वेद भगवान्, अक्षर ब्रह्म, आदि गुरु समझ कर मानते हैं। इसलिये नित्य = रोज-रोज उठ करके प्रातःकालमें तथा सन्ध्यामें भी अक्षररूप वेदको और ब्राह्मणोंको वे हिन्दू लोग प्रणाम = नमस्कार, वन्दना कर भक्तिपूर्वक शिर झुकाते हैं। वैसे ही अपने पुत्रोंको, शिष्योंको भी प्रणाम कराते हैं। इसी प्रकार उधर तुरुक = मुसलमान लोग, चार कितेबके कुरान शरीफको और खुदा, अल्लाह, फरिस्ते, चौदह तबक आदि माननेवाले इस्लामधर्मी लोगोंका पीर या गुरु, तीसका = तीस सिपारा = अलिफ, बे, से हमजा, ये, बैततक ३० अक्षर मुसलमानोंके अरबी वा उर्दूमें बनाये हैं। उसीसे बना हुआ कुरानके चार किताब हैं, तिसीके मुरीद = चेला या शिष्य, शागिर्द तुरुक लोग बने हैं, वे तीस अक्षरके कुरानको पढ़के खुदाके

लिये पाँच बखत सलाम करते हैं, निमाज पढ़के बन्दना करते हैं। पाँच बखत निमाज पढ़ना, साँझ-सबेरे बाँग पुकारना, तीस दिनका रोजे रखना, सालोंसाल हज्ज करनेको जाना, और जाकात कर्म करना, इत्यादिको धर्म-कर्म मानके मुसलमान लोग बड़ी श्रद्धासे करते-कराते हैं? इस प्रकारसे हिन्दु और मुसलमान लोग बिना पारख वाणीके ही दास या गुलाम बनके भ्रमचक्रमें पड़े हैं ॥ ९३ ॥

साखीः— याको आंशिष देत नहीं । वाको दुवा न देत ॥
सुर नर मुनि औ पीर औलिया। रगरें नाक अचेत ॥ ९४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! ऐसी दृढ़तासे वाणीकी मानन्दी करनेपर भी, याको=इन हिन्दु लोगोंको उनके गुरुरूप ५२ अक्षर, वेद, ईश्वरादि कभी भी कुछ आशीर्वाद, दया भाव, शिक्षा, नहीं देते हैं। तथा वाको=उन मुस्लिम लोगोंको भी उनके पीर-रूप ३० हुरूफके सिपारा, कुरान, खुदा, आदि कभी, दुवा=शुभ कामना, आशीर्वाद, तालीम, कुछ भी नहीं देता है। अरे भाई! अक्षर या वाणी कल्पना जड़ तथा भ्रमरूप हैं, तो फिर वह किसको कैसे आशीष या दुवा देवें, नाहक मिथ्या धोखामें पड़े हैं। इसलिये हिन्दुओंमें सुर=देवता, ज्ञानी, सत्त्वगुणी मनुष्य, नर=भक्त, मानव पुरुष, रजोगुणी मनुष्य, मुनि=तपस्वी, योगी, मननशील करनेवाले तमोगुणी मनुष्यवर्ग और मुसलमानोंमें, पीर=गुरुवा लोग, औलिया=सिद्ध फकीर लोग, पैगम्बर, सुन्नी, शिया, आदि सब तुरुक लोग क्रमशः मन्दिर, तीर्थस्थान और मसजिद, मक्का, मदीना आदि हज्जमें जा-जा करके नाक, मुख, सिर, रगड़-रगड़ करके या घसड़-फसड़, नाक घिसाघीस, माथा ठोंका-ठोंक करके बिना विचार, अचेत=गाफिल, बेहोश होते हैं। जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके गर्भवासको जाते हैं। अतएव वे दोनों दीनके पक्ष छोड़कर पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके सारग्राही होना चाहिये ॥ ९४ ॥

साखीः— व्यासदेव वेदान्तमें । अद्वैतका करै बोध ॥
कहैं कबीर निर्गुण भये । होय सत्सङ्ग विरोध ॥ ९५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! वेदान्त शास्त्रके या ब्रह्मसूत्रके कर्ता वेदव्यास या कृष्णद्वैपायन शुकदेवके पिता थे। उन्होंने वेद संहिताको संग्रहकर चार भागोंमें विभाग किये। जो चार वेदोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वेदके अन्त-भाग वेदान्त सोई उपनिषदादि कहलाया, और वेदान्तके आचार्य व्यास हुये। इसलिये उन्हें श्रेष्ठताके कारण 'देव' कहा गया है। सो व्यासदेवने वेदान्त शास्त्रमें भलीभाँतिसे युक्ति-प्रयुक्तिसे अद्वैत व्यापक एक ही ब्रह्म सत्य है, जगत् द्वैत कुछ है ही नहीं, जो भासता है, सो मिथ्या भ्रान्तिमात्र है। "एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति" ऐसा अद्वैत सिद्धान्तका बोध किये हैं। सोई अभीके वेदान्ती लोग भी उपदेश देके परिपुष्टि कर रहे हैं। कहैं कबीर = गुरुवा लोग ब्रह्मज्ञानी तो कहते हैं कि— त्रिगुणसेरहित होके गुणातीत होनेपर ही निर्गुण, निरञ्जन ब्रह्म हो जाता है। निर्गुणब्रह्म अक्षरातीत परिपूर्ण ज्योंका-त्यों है, सो मैं हूँ, तू है, और सब जगत् ब्रह्मरूप एक है, भेद कुछ भी नहीं है। ऐसा माने हैं। अब विचार करके देखिये ! ऐसा माननेपर तो वे अपना ज्ञानगुण विवेकको भी नशाय करके या खो करके निर्गुण ब्रह्म भये, तब तो नीरे पक्के मूढ़ ही हो गये। दुर्गुणी या अवगुणी जिनमें सद्गुणोंका अभाव है, वे ही निर्गुणिया होते हैं। एक ही ब्रह्म निर्गुण मान लेनेसे तहाँ सत्सङ्गका विरोध हो गया। एक अकेलेमें क्या विवेक, विचार, त्याग, वैराग, बोध, आदि सद्गुण हो सकते हैं ? कुछ नहीं हो सकते हैं। सत्सङ्गका विरोध करके कुसङ्गी ही हो गये हैं। भ्रमिक, अविचारी, पक्षपाती, बनके गाफिल भये हैं। अतः सत्य चैतन्य जीवको पारख स्थितिके शुभ सङ्गसे हटाके भ्रमिक विरोधी हो जड़ाध्यासी बद्ध भये, आवागमनमें ही चले गये, बिना पारख ॥ ९५ ॥

साखीः— कबीर वाद अद्वैतका । सत्सङ्ग विरोधी जान ॥
विमुख होय सत्सङ्गते । चाहै निज कल्यान ॥ ९६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु नरजीवो ! इन वेदान्ती गुरुवा लोगोंका या व्यास, शंकरादिका अद्वैत मतका वाद, उपदेश, वाणीका कथन कि— "एक ही ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण व्यापक है, ब्रह्मके सिवाय और दूसरा कुछ भी नहीं है।" जब ऐसी मानन्दी हुई, तब वह तो सत्सङ्ग, विवेक— विचारका विरोधी ही हुआ, निर्णयसे तो ऐसा ही जाना जाता है । क्योंकि, जब स्थावर, जङ्गम सब एक ही ब्रह्म है, तब काहेका सत्सङ्ग होयगा ? वेदान्तियोंने तो गुरु और गुरुके ज्ञानको भी मिथ्या बताये हैं, तब वे पक्के मिथ्यावादी भये कि नहीं ? अतः अद्वैतवाद सरासर सत्सङ्ग-विरोधी है, ऐसा जानिये, और पारखी सद्गुरुके न्याय निर्णयकी सत्सङ्ग, विचारसे तो विमुख हुए ही तथा त्रिकालावाध्य सत्य चैतन्यजीवके स्वरूपस्थिति पारख बोधके सङ्ग, हंस रहनी-रहस्यका सङ्ग, मुक्तिके साधनरूप इन सब सत्सङ्गसे विमुख = उल्टा, विरोधी, दुश्मन होयके अपना कल्याण करना चाहते हैं, तो कैसे सफल होयगा ? जैसे जहर खायके कोई आरामसे जीते रहना चाहैं, तो क्या ऐसा होगा ? कभी नहीं होगा । तैसे सत्सङ्ग-विचार पारखको छोड़कर मूढ़ गरगाफ हो, कल्याण या मुक्तिपदको पाना चाहें, तो भी नहीं पा सकते हैं । वे मिथ्यावादी जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ेंगे । जड़ और चैतन्य जीव दोनों ही स्वरूपसे भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, वे कभी त्रिकालमें एक हो नहीं सकते हैं, उन्हें एक माननेवाले झूठे हैं, उनकी मुक्ति कभी नहीं हो सकती है । अध्यास वश आवागमनमें पड़े और पड़ते रहेंगे ? बिना पारख धोखा नहीं छूटती है ॥ ९६ ॥

साखीः— सत्सङ्गति सुख द्वैत सो । समुझै नहीं गँवाँर ॥
वाद करै अद्वैतका । पढ़ि गुनि भये लबार ॥ ९७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सत्सङ्गी मनुष्यो ! सुखदाई

सत्सङ्ग तो द्वैत है, सो दोमें ही होता है। गुरु-शिष्य होनेपर ही प्रश्नोत्तर होते हैं। ज्ञानी-अज्ञानी या बोधवान् वा अबोधके गोष्ठीमें शङ्का-समाधान होती है। जड़ और चैतन्य दो हैं, इसीसे जड़ाध्यास लेकर बन्धन होता है और परख-परखकर सम्पूर्ण जड़ाध्यास मिटा देनेपर जीवन्मुक्तिके महत् सुखका लाभ होता है। दिन-रात, नर-नारी, जीव-निर्जीव, पाप-पुण्य, बन्धन-मुक्ति, ज्ञान-अज्ञान, सार-असार, नित्य-अनित्य, खण्ड-अखण्ड, सत्य-असत्य, इत्यादि सो सब दो-दो भाग तथा नानात्त्व प्रत्यत्त द्वैत ही हैं। और सत्सङ्ग द्वारा ही भ्रम निवृत्ति होकर जीव सुखी होते हैं। सो जीवन्मुक्तिका सुख द्वैत ही है। द्वैत होनेसे ही सुख-दुःखादि, तथा जन्म-मरणादि होते हैं। एक अद्वैतमें तो ऐसा कभी नहीं हो सकता है। ऐसे स्पष्ट बातको भी कुछ समझते नहीं, तो वे पक्के गँवाँर=निर्बुद्धि, अनसमझ, अविचारी, मूढ़, नालायक ही बने हैं। तभी तो सार-असारको कुछ भी नहीं समझते हैं, और अद्वैत ब्रह्म एक सत्य है, कहकर उसका वाद-विवाद, मतवाद, सिद्धान्त कथन, उपदेश किया करते हैं। एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं, तू, मैं, ये, ओ, सब ब्रह्म ही ब्रह्म है, कहते हुये बकवाद करते हैं। अरे भाई! ये लोग तो वेद-वेदान्त आदिको पढ़, सुन-गुन करके कल्पनाको ही दृढ़ करके, लबार=झूठे या मिथ्यावादी, पक्षपाती, धोखेवाज ही भये हैं। इन गप्पी लोगोंके बातका कौन विश्वास? वे तो जीवकी मसखरी करके एक ब्रह्म बना देते हैं, दुर्दशामें ही डाल देते हैं। इन पठित लबारोंको पहिचानके इनके फन्दोंमें पड़ना नहीं चाहिये ॥ ९७ ॥

साखीः— वाद करै अद्वैतका। ताको भासै द्वैत प्रमान ॥
कहैं कबीर चीन्हैं नहीं। यह सूक्षम अज्ञान ॥ ९८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! जो गुरुवा लोग

एक अद्वैत मतका वाद=वार्तालाप, कथन, उपदेश, वाद-विवाद करते हैं; उन्होंको अवश्यमेव प्रत्यक्ष प्रमाणसे साक्षात् द्वैत ही भासता है। तभी तो कहना, सुनना, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष-निरूपण करना, खण्डन, मण्डन करना, अपनी विशेषता बताना होता है, और ऐसा करते हैं। यदि एक ही ब्रह्म उन्हें भासता होता, तो इतना व्यवहार, उपाधि, मत-पन्थकी स्थापना ही क्यों होती? जब यह सब हो रहा है, तब द्वैत प्रत्यच्च ही सिद्ध है। प्रत्यक्ष प्रमाण ही सत्य होता है। यदि उनको अपनेसे भिन्न दूसरे मनुष्य-जगत् कुछ भी न दिखता, तो ब्रह्म एक अद्वैत सत्य है, जगत् मिथ्या है, ऐसा किससे, कैसे, क्यों कहते? और कहैं कबीर=गुरुवा लोग ब्रह्मज्ञानी वेद प्रमाणसे अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तको सत्य तो कहते हैं, किन्तु, पीछेसे उसी वेद, गुरु आदि सबको भी मिथ्या बताके निषेध करते हैं। जब वे मिथ्या भये, तब उनके कथनसे माना हुआ ब्रह्म कैसे सत्य होगा? परन्तु पारख बिना यह महाभूलको वे चीन्हते या पहचानते ही नहीं हैं। यही सूक्ष्म अज्ञान कारण बीज, महागाफिली, मूढ़ता, अविद्या है, उन्होंने उसे ठीकसे जाने ही नहीं है। इसलिये वेदान्ती लोग भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़े। अतः पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचार करके मुमुक्षुओंने इस झीनी अज्ञान मानन्दीको मिटाना चाहिये ॥ ९८ ॥

साखीः— कबीर वाद अद्वैतका । कल्पै व्यास बहूत ॥
तरु लागे आकाशमें । फल खाय बाँझके पूत ॥ ९९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! वेदव्यासने अद्वैत मतका वाद, कथन करके बहुत ही वाणी कल्पनासे रचना किये हैं। यदि अद्वैत ही सत्य था, तो फिर चार वेदोंका विभाग, वेदान्त शास्त्र-ब्रह्मनिरूपण, और अठारह भिन्न-भिन्न महापुराण, इतना सारा वाणी कल्पना करके व्यासने कैसे बनाये? किसके वास्ते बनाये? दूसरेके

लिये ही तो ग्रन्थ बना, फिर अद्वैतका निश्चय कहाँ रहा ?। सब कार्य तो द्वैतका करें, और बोले अद्वैत, सो अन्याय नहीं तो क्या है ? इनके कल्पित कथन तो ऐसा भया कि— जैसे कोई कहै— देखो भाई ! आकाश मण्डलके शून्य मैदानमें ऊपर कैसे सुन्दर-सुन्दर तरु=वृक्ष या झाड़ लगा है, सो देखते ही बनता है। अहाहा ! उसमें तो सरस, स्वादिष्ट, मधुर, बड़े-बड़े फल लगे हैं, सो सब पके हुए दिखते हैं, जी चाहता है कि— उन्हें हम भी अभी तोड़-तोड़के खायें। परन्तु देखो ! वह सब सुरस फल तो बाँझके पुत्र पहलेसे ही जाके तोड़-तोड़के खा रहा है, वह सब खा जायगा, हमें तो कुछ मिलेगा ही नहीं। यदि यह कथन सत्य होय, तो अद्वैत वाद भी सत्य होवे। परन्तु यह बात तो मिथ्या प्रलापमात्र है। तैसे अद्वैत वाद भी मिथ्या बकवादमात्र ही है। थोड़ा भी विवेक करिये ! तो भी अद्वैत कहना झूठा ही ठहरता है। क्योंकि, एक तो आकाश शून्य-पोल है, दूसरा वैसे ही निराकार ब्रह्मरूप वृक्ष, उत्पन्न होके कल्पनासे लगा। फिर जीव-ब्रह्मकी एकतारूपी सुख फलको भी बाँझ=वाणीके पुत्र अद्वैत ब्रह्म ही बनके मगन होके खाता है। वह तो सब जगत्को खाके अपना ही पेट भरता है। जब अपच होकर पेट फूटके मर जाता है, तब चौरासी योनियोंके भवधारमें गिर पड़ता है, और जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त सदा दुःख ही भोगता रहता है, बिना पारख, ऐसा ही होता रहता है ॥ ९९ ॥

साखीः— कबीर व्यास वेदान्तमें । कहै आतम निर्लेप ॥
उपनिषद् बावन केहि कहा । लगाय-लगाय कलेप ॥ १०० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! वेदव्यासने वेदान्त शास्त्र (उत्तर मीमांसा वा ब्रह्मसूत्र) में विस्तारसे वर्णन करके कहा है कि— आत्मा या ब्रह्म सदैव निर्लेप=किसीमें लिप्त न होनेवाला, असङ्ग, अलिप्त, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, असीम, परिपूर्ण, व्यापक है। अगर यह कथन सत्य है, तो आकारवान्,

विकारी जगत् दूसरा एक देशीय कहाँसे आया? अनेक जीव और पाँच तत्त्वका विस्तार कैसे भया? असङ्गसे इन सबका सङ्ग होना तो असम्भव है। और जीवोंको मिथ्या कल्पना लगाय-लगाय करके बावन उपनिषद् बनाय-बनायके किसने कहा? अतः द्वैत साबित ही हुआ। ५२ उपनिषदोंके नामः—१ ईशावास्योपनिषत्। २ केनो०। ३ कठो०। ४ प्रश्नो०। ५ मुण्डको०। ६ माण्डूक्यो०। ७ तैत्तिरीयो०। ८ ऐतरेयो०। ९ छान्दोग्यो०। १० वृहदारण्य०। ११ श्वेताश्वतरो०। १२ ब्रह्मबिन्दू०। १३ कैवल्यो०। १४ जाबालो०। १५ हंसो०। १६ आरुणिको०। १७ गर्भो०। १८ नारायणो०। १९ परमहंसो०। २० ब्रह्मो०। २१ अमृतनादो०। २२ अथर्वशिर०। २३ शिखो०। २४ मैत्रायण्यु०। २५ कौषीतकि ब्राह्मणो०। २६ बृहज्जाबालो०। २७ नृसिंह पूर्व-उत्तरतापिन्यु०। २८ कालाग्निरुद्रो०। २९ मैत्रेय्यु०। ३० सुबालो०। ३१ क्षुरिको०। ३२ यन्त्रिको०। ३३ सर्वसारो०। ३४ निरालम्बो। ३५ शुकरहस्यो०। ३६ बज्रसूचिको०। ३७ तेजो-बिन्दू०। ३८ नादबिन्दू०। ३९ ध्यानबिन्दू०। ४० ब्रह्मविद्यो०। ४१ योगतत्त्वो०। ४२ आत्मबोधो०। ४३ नारदपरिव्राजको०। ४४ त्रिशिखि ब्राह्मणो०। ४५ सीतो०। ४६ योगचूड़ामण्यु०। ४७ निर्वाणो०। ४८ मण्डल ब्राह्मणो०। ४९ दक्षिणामूर्त्यु०। ५० शरभो०। ५१ स्कन्दो०। ५२ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्॥ इस प्रकारसे ५२ उपनिषद् बनाये हैं, मुक्तिक उपनिषद्में सब १०८ नामसे उपनिषदोंकी संख्या लिखी हैं; और "ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः" नामक ग्रन्थमें मूल–११२ उपनिषद् छपे हैं। उनमें उपरोक्त ५२ प्रधान माने हैं, उससे भी कममें २७ और फिर दश उपनिषद् तो सर्वश्रेष्ठ मुख्य ही ठहराये हैं। उसे सब वेदान्ती और सनातनी लोग मानते हैं।

श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैंः— जब कि, वेदान्तमें व्यासने आत्माको एक निर्लेप या असङ्ग-निराकार अद्वैत कहा है। फिर उक्त बावन उपनिषद् पृथक्-पृथक् करके नरजीवोंको कलेप =

कल्पना लगाय-लगायके किसने, कैसे, किस तरह, क्यों कहा? जब इतना सारा वाणी कल्पना किया है, तो निर्लेप अद्वैत कहाँ रहा? बिना पारख मिथ्या भ्रम चक्रमें ही गोता लगाकर डूब मरे। अतएव इस अद्वैत सिद्धान्तमें कोई सार नहीं है। मिथ्या धोखा ही लगाये हैं। सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें यथार्थ निर्णय करके भ्रमकी मानन्दीको त्याग देना चाहिये। जड़, चैतन्यका निरुवारा करके जड़ाध्यासको छोड़कर निजपदमें स्थिर होना चाहिये ॥ १०० ॥

साखीः—जो आतम निर्लेप है। तो उपदेश मिथ्यान्त ॥
बिना रोगके औषधी। भयो वैद्यको भ्रान्त ॥ १०१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे गुरुवा लोगो! जो तुम्हारे कथनके अनुसार आत्मा या ब्रह्म निर्लेप = अलिप्त, असङ्ग, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, निराकार एक ही सर्वत्र भरा हुआ व्यापक है, तब तो तुम्हारा सब उपदेश— शिक्षा-दीक्षा अन्तमें मिथ्या ही हुआ कि नहीं?। क्या तुम अपने आपको उपदेश देते हो? कि दूसरेको देते हो? एक आत्मा है, ऐसा किसको बताते हो? जब उपदेश दिया गया, तो द्वैत, ज्ञान, अज्ञान, बन्धन, मुक्ति साबित भया कि नहीं? निर्लिप्त आतमा ठहराके दिया हुआ उपदेश मिथ्यान्त ही है। यदि कोई वैद्य निरोगी मनुष्योंको भी औषधि देता फिरै, तो बिना रोगके भये ही दवाई देनेवाले वैद्यको भ्रान्ति, धोखा, भूल भया है, ऐसा जानना चाहिये। यदि जान-बूझके ऐसा किया गया हो, तो उसे मूढ़ ही भया जानो। बिना रोगके औषधि खिलाके उल्टा रोग ही बढ़ायेगा, नाश करेगा, घातकी होगा। तैसे ही सिद्धान्तमें जब जगत् तीन कालमें नहीं है, तो जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयताप आदि भी कुछ ठहरता नहीं है। एक ही आत्मा निरोग, नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, निरामय, निर्बन्ध, सदासे ज्योंका-त्यों है। तब बिना आवागमन और जगत् देहादि बन्धनोंके रोग भये बिना ही, तुम लोग औषधि-रूप ब्रह्मज्ञानके उपदेश किसे, कैसे, क्यों देते हो? जब यों ही

बेप्रयोजन जबरदस्ती अद्वैत ज्ञानका उपदेश देते फिरते हैं, तब वैद्य बने हुए ये वेदान्तियोंको बड़ी भ्रान्ति भयी है । तभी ऐसे उल्टे काम करके अपने गाफिल होके भवबन्धनोंमें जकड़ पड़ते हैं । और दूसरे मनुष्योंको भी धोखामें डालके चौरासी योनियोंमें भटकाते हैं, बिना पारख ॥ १०१ ॥

साखीः— कबीर चेतन द्वैत है । अद्वैत मुवा जड़ होय ॥
चेतन मुवा कि जड़ मुवा । पण्डित ! कहिये सोय ॥१०२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! वास्तवमें तो कायावीर कबीररूप चैतन्य जीव तो अनन्त देहधारी असंख्य होनेसे द्वैत या नाना ही कहे जाते हैं । और बोधदाता सद्गुरु तथा बोध ग्रहणकर्ता शिष्य भिन्न-भिन्न मनुष्यरूपमें चैतन्य जीव हैं । वे दोनों द्वैत ही होते हैं, और जो जड़, चेतन आदि सबको एकमें समेट करके अद्वैत आत्मा मानते हैं, सो मनकी मिथ्या कल्पना मानन्दी-मात्र होनेसे, मुवा = निर्जिव भ्रम भास निष्प्राण या मरा हुआ जड़का अध्यासमात्र ही साबित होता है । अर्थात् ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, अल्लाह, आदिकी मानन्दी करके जो अद्वैत कहा है, सो मुवा, मरा हुआ वाणी कल्पना तथा जड़ विषयोंकी भास, अध्यास ही है । उसमें चैतन्यत्त्वकी कोई शक्ति रञ्चकमात्र भी नहीं है, सो तो एक धोखा ही है । अब हे पण्डितो ! जड़ और चैतन्य दोनोंमें कौन मुवा है ? चैतन्य मुवा है ? कि जड़ मुवा है ? विचार करके सोई निर्णय कहिये ! कौन मरता है ? चैतन्य अविनाशी अजर, अमर, अखण्ड, जीव स्वयं एकरस ही है । अनादि चार जड़ तत्त्व कार्य-कारणरूपसे सदासे मौजूद हैं । इन दोनोंके स्वरूपका कभी नाश नहीं होता है । अतः जो अनुमान, कल्पना, विषयादिमें लगा, सोई मरा, जड़ाध्यासी दुःखी भया । देह छोड़-छोड़के चौरासी योनियोंमें गया । तहाँ सद्गुरुने बीजक शब्द ४५ में कहा हैः—

"कौन मुवा कहो ? पण्डित जना ! । सो समुझाय कहो मोहि सना ॥"

पूरा शब्दका टीका त्रिजामें खुलासा लिखा है। मुवा नाम ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या धोखाका ही है। जो इसको पहिचाने, सोई बुद्धिमान् पारखी हैं। ये भ्रमिक पण्डित लोग इसका भेद क्या जानें? पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग द्वारा ही सत्य, असत्यका पूरा भेद जाननेमें आता है ॥ १०२ ॥

साखीः— कबीर अद्वैत जड़ मुवा। भास जीवको होय ॥
भास बड़ा कि भासकर। पण्डित! कहिये सोय ॥१०३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! ब्रह्मज्ञानी लोगोंने, जो एक अद्वैत माने हैं, सो खास करके जड़ मन, वाणी, कल्पनाकृत मानन्दीमात्र होनेसे, मुवा = मृतक, निर्जीव, जड़ाध्यास ही है। वह चैतन्य नरजीवोंको बुद्धिमें भास होता है। मनुष्योंके अतिरिक्त और किसीको कहींपर ब्रह्मका भास होता भी नहीं है। जो कोई वेदान्तकी वाणी पढ़, सुन, गुनकर उसे सत्य मानके मनमें दृढ़ निश्चय कर लेते हैं, उन्हीं बेपारखी नरजीवोंको ही भ्रमसे ब्रह्म धोखाका भास होता है। अब विवेक करो कि—मन-मानन्दीकी भास ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, ज्योति आदि विषय बड़ा श्रेष्ठ है कि— अथवा उसे भास करनेवाला, जाननेवाला, माननेवाला, द्रष्टा स्वयं प्रकाशी ज्ञाता चेतन जीव बड़ा श्रेष्ठ है? हे पण्डित! बुद्धिमान् मनुष्यो! सोई बात यथार्थ निर्णय करके कहिये! जो इस बातके भेदको जानते हैं, उसे ही पण्डित कहते हैं। ये पक्षपाती पण्डित लोग उसके भेदको जानते ही नहीं, तो निर्णयकी बात क्या कहेंगे? सुनिये! गुरु निर्णयसे भासिक जीव ही सर्वश्रेष्ठ नित्य, सत्य, अखण्ड, प्रत्यक्ष होनेसे वही सबसे बड़ा है, और तत्त्वोंका प्रकाश, भास, वाणी कल्पनाकी मानन्दी जो ठसी है, सो मिथ्या, निकम्मा होनेसे तुच्छ, छोटा है, त्याज्य है। उसे परखकर यथार्थ पहिचान करना चाहिये। भ्रम मिटाय, निज पारखस्वरूपमें ठहरना चाहिये ॥ १०३ ॥

साखीः— एक ब्रह्म अद्वैत जो । व्यास कहै वेदान्त ॥
सत्सङ्गति बिन द्वैतके । कबहुँ न छूटै भ्रान्त ॥ १०४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! एक ही ब्रह्म चराचरमें भरा हुआ, परिपूर्ण व्यापक अद्वैत, सर्वाधिष्ठान है, ऐसा जो कि, वेदव्यासने वेदान्त शास्त्रमें बहुत विधिसे कहा है। परन्तु इतना सारा वाणीका वर्णन— एक निराकार अकेला ब्रह्ममात्र होता, तो कैसे हो सकता था? निराकार, निर्गुण एकमें भी कहीं वाणीका कथन, ग्रन्थ रचना हो सकती है? कभी नहीं। इसलिये वे बड़े कठिन भ्रान्तिमें पड़े हैं। और बिना द्वैतके, यानी गुरु-शिष्य दोके हुए बिना सत्सङ्ग, विचार, निर्णय, प्रश्नोत्तर, शङ्का-समाधान हो ही नहीं सकती है, तथा द्वैत सत्सङ्गके बिना मनुष्योंका दूसरा भ्रम भी छूट नहीं सकता है। इससे द्वैत प्रत्यक्ष सत्य, साबित ही हैं। सद्गुरुके सत्सङ्ग किये बिना यह अद्वैत मिथ्या भ्रान्ति कभी भी छूटती नहीं है। और भ्रान्ति छूटे बिना जीवकी मुक्ति होती ही नहीं है। और अद्वैत ब्रह्मकी मानन्दी महा भ्रम, गाफिली, भूल, धोखाके खाँच ही है। अतएव सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा एक-एक परख करके उस भ्रमको समूल मिटाय, पारखपदमें स्थिर हो रहना चाहिये, यही मुख्य कर्तव्य है ॥ १०४ ॥

साखीः— उपमा व्यापक ब्रह्मकी । जिमि अकाश सब माहिं ॥
और तरुहि कहै कल्पतरु । आश पूजै कि नाहिं ॥१०५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! वेदान्तियोंने माना हुआ ब्रह्मकी व्यापकता ठहरानेके लिये तहाँ आकाशकी, उपमा = शादृश्यता दिये हैं। जैसे निराकार आकाश शून्य, असीम होनेसे सर्वत्र भीतर-बाहर सब ठिकानोंमें भरा है। तैसे ही ब्रह्म-परमात्मा भी निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, बेहद्द है, और वह आकाश, पाताल, पाचों तत्त्वोंमें, अणु, रेणु, परमाणुमें तथा चेतन जीवोंमें, स्थावर-जङ्गमकी भीतर-बाहर, ओत-प्रोत,

परिपूर्ण, सर्व व्यापक हो रहा है, संसारमें ऐसे कोई जगह खाली नहीं कि— जहाँपर ब्रह्म व्यापक न हो। वह तो दशों दिशाओंमें आकाशवत् पूर्ण है। ऐसे मानके वेद-वेदान्तमें प्रमाण कायम किये हैं। घट, मठ, पट, तट आदि सारा जगत्में ब्रह्म भरा है, वह तो सर्वाधिष्ठान है। भ्रम कल्पनासे ऐसा मानन्दी किये हैं! सो सत्य नहीं है। यदि ऐसे माननेसे ही कल्याण होती है, ऐसा समझते होयँ, तो सुनो! मैं तुमसे पूछता हूँ कि— आँक, ढ़ाक, पलास, नीम, बबूर, शीमल, बाँश इत्यादि और दूसरे-दूसरे ही जङ्गली, तरु = वृक्षोंको, कल्पतरु = मनोकामना पूर्ण करनेवाला कल्पवृक्ष कहके मानै, मनसे निश्चय करके वैसे ही समझ लेवें, और आशा लगाके वृक्षके नीचे बैठे रहैं, तो उनकी आशा, इच्छा या मनकी चाहना पूर्ण होगी कि, नहीं होगी? कदापि नहीं होगी। जैसे यह, तैसे वह। यह आशा पूर्ण नहीं होगी, तो वह ब्रह्मकी आशा भी पूर्ण नहीं होगी। क्योंकि, और तरुके समान पाँच तत्त्व जड़, तथा अनन्त चैतन्य जीव विजातीय स्वरूपसे भिन्न-भिन्न या नानात्त्वको कल्पतरुवत् कल्पनासे एक ही पूर्ण ब्रह्म है, ऐसा कहनेसे या माननेसे मुक्ति होनेकी आशा पूरी नहीं हो सकती है। अतः जीव भ्रमिक जड़ाध्यासी होके भव बन्धनोंमें पड़े और पड़ते रहेंगे ॥ १०५ ॥

साखीः— प्यास लगी है जलकी। जल जानै सब माहिं ॥
कहहिं कबीर यह ज्ञानते। प्यास बुझै कि नाहिं ॥१०६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जब तुम्हें प्यास या तृषा लगै, जल पीनेकी चाहना, आवश्यकता होवे, तब तुम सबमें भीतर-बाहर आकाशवत् जल अणुरूपसे परिपूर्ण है, घट, मठ, पटादिमें जल भरा है, व्यापक है, ऐसा जानो या दृढ़ निश्चयसे वैसा मान लो। पारखी सन्त सद्गुरु कहते हैं कि— यह जल सबमें व्यापक है, ऐसा जाना हुआ या माना हुआ ज्ञानसे तुम्हारी प्यास मिटैगी कि नहीं?। कभी नहीं मिटैगी। यदि जलको

सर्वत्र मानकर भी जल पीये बिना प्यास नहीं मिटती है, तो ब्रह्म या आत्माको सबमें व्यापक माननेवालोंकी भी मुक्ति हो नहीं सकती है। ये सत्य हो, तो वह भी सत्य हो। ये सत्य नहीं होती है, तो वह भी असत्य ही है। ऐसा जानो। अर्थात् प्यासवत् इच्छा तो बन्धन छूटके मुक्ति होनेकी लगी है, तहाँ पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचार, हंस रहनी धारण, भ्रम त्याग, पारखबोध प्राप्ति, सारशब्द निर्णयका ग्रहणरूप सच्चा अमृत जल पीना छोड़के वह कुछ भी न करके ब्रह्मज्ञानी लोग भ्रमिक बनके जलरूप आत्माको वाणीके प्रमाणसे सबमें परिपूर्ण व्यापक मानकर उसे जानना, और उसमें मिलना चाहते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोधके ज्ञाता पारखी सन्तगुरु कहते हैं:— यह मनःकल्पित आत्मज्ञानसे जीवोंकी भवबन्धन मिटैगी कि नहीं? सत्य निर्णयसे देखो, तो वैसे भ्रम, महा अज्ञानसे कदापि बन्धन छूट नहीं सकती है। और ज्यादे ही बन्धनोंमें जकड़ जाते हैं। अपरोक्ष पारख स्थिति हुए बिना मुक्ति हो नहीं सकती है। अतः सत्सङ्ग कर पारखबोध लेना चाहिये ॥१०६॥

साखीः— एक ब्रह्म व्यापक जगत। ज्यों सब माहिं अकाश ॥
मैं तोहिं पूछौं पण्डिता! है पदार्थकी भास? ॥१०७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ! वेदान्तियोंने जैसे आकाश निराकार होनेसे सबमें पूर्ण भरा है, तैसे ही एक अद्वैत ब्रह्म जगत्के दशों दिशाओंमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। आकाशके भीतर-बाहर भी ब्रह्म भरा है। वह तो जगत्के अधिष्ठान है, कहीं खाली नहीं है। ऐसे दृढ़ निश्चय करके माने हैं। पारखी सन्त कहते हैं— हे पण्डित! ब्रह्मज्ञानी! अब मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि— आकाशवत् व्यापक माना हुआ ब्रह्म कोई खास सत्य पदार्थ भी है? की = अथवा मन-मानन्दी कृत मिथ्या भास ही मात्र है? सो क्या कैसा है? निर्णयसे खुलासा करके गुण-लक्षण दर्शाकर कहो, बताओ। ये भ्रमिक लोग निर्णयसे तो क्या बतायेंगे, जो उन्हें

मालूम ही नहीं है। मैं ही तुम्हें कह देता हूँ, सुनो ! आकाश शून्य या पोलमात्र होनेसे कोई वस्तु नहीं है। अन्य चार तत्त्व सत्यकी अपेक्षासे मिथ्या शून्य आकाश कहा जाता है। जैसे प्रकाशका अभाव अन्धकार है, किन्तु वह कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि, प्रकाश होनेपर उसका कहीं पता ही नहीं लगता है, और सत्य वस्तुका अभाव कभी नहीं होता है। अतएव नभवत् व्यापक माना हुआ ब्रह्म भी कोई सत्य पदार्थ या वस्तु ठहरता ही नहीं। मिथ्या भास भ्रम धोखा-मात्र है, ऐसा जानो ! ॥ १०७ ॥

साखीः— जो यह ब्रह्म पदार्थ है। काको भासै सोय ? ॥
को उपदेशै को सुनै। बड़ा अचम्भा होय ॥१०८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे वेदान्ती लोगो ! यदि तुम पक्ष पकड़ करके हठसे ब्रह्मको सत्य पदार्थ बताओगे, तो सुनो ! जो कि, यह व्यापक कहा हुआ एक अद्वैत ब्रह्म कोई पदार्थ या वस्तु सत्य है ? तो यह बताओ कि— फिर सो ऐसा ब्रह्म किसको भासता है ? उसे कौन जानता वा मानता है ? तुम्हारे कथनसे और दूसरा तो कोई नहीं है। दूसरा माननेपर तो भयङ्कर द्वैत-रूपी काल आके तुम्हें खा ही लेता है। इस डरसे नेत्र मूँदके एक अद्वैत है, ऐसा चिल्ला रहे हो। परन्तु विवेक करके बोलो— एक ब्रह्म है, ऐसा किसको भास होता है ? अद्वैत ब्रह्मज्ञानका उपदेश कौन, किसको देता है ? उस उपदेशको कौन किस तरह सुनता है ? एकमें कहीं इतना सारा कार्य हो सकता है ? बड़ा अचम्भा = तुम्हारी समझपर बड़ा आश्चर्य होता है। कैसे तुम लोगोंकी बुद्धि मारी गई है ? कहनेवाले गुरु, और सुननेवाले शिष्य, दोनों देहधारी प्रत्यक्ष हैं। जड़-चेतन न्यारा-न्यारा ही हैं, मनुष्यजीव ही वाणी, खानी आदिकी भास अध्यासादि कर रहे हैं। अतः ब्रह्मपद वाणी कल्पनाके निषिद्ध अर्थ होनेसे अनर्थ, अपदार्थ भ्रममात्र है। तो भी बिना विवेक किये तुम लोग ब्रह्मको पदार्थ मान-मानके भूल रहे हो,

धोखामें पड़े हुए हो। इसीसे बड़ा आश्चर्य होता है कि— तुम बड़े अनसमझ बने हो। बिना पारख चौरासी योनियोंमें ही गिर पड़ोगे। अतः कल्याण चाहते हो, तो पारख करके भ्रम-भूलको परित्याग करो, सत्यबोधको ग्रहण करो ॥ १०८ ॥

साखीः— मन बुद्धि वाणीके परे। वाणी करै निरूप ॥
वाणी ब्रह्म न लखि परै। गुण अकाश अनुरूप ॥१०९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! ब्रह्मको ज्ञानियोंने ऐसा माना है कि— मन = सङ्कल्प-विकल्प करनेवाला सूक्ष्म इन्द्रिय, जिससे मनन भी होता है। बुद्धि = हृदयमें निश्चय करनेवाली वृत्ति-रूप सूक्ष्म इन्द्रिय, इससे बोध भी होता है। वाणी = बोलचालका शब्द, सोई मुखसे निकलनेवाली वैखरी वाणी और ग्रन्थोंमें अक्षर-रूपसे लिखी हुई वाणी, इससे भाव, अभिप्राय प्रगट होते हैं। ऐसे मन, बुद्धि, और वाणी उन तीनोंसे अत्यन्त परे अपार आत्मा ठहराये हैं। परन्तु ऐसे आत्मा या ब्रह्मका निरूपण, प्रतिपादन, कथन वाणी-से ही करते हैं। तहाँ मनके सङ्कल्प, बुद्धिके निश्चय, दोनों भी साथ ही लगता है। फिर कहो मन, बुद्धि, वाणीसे ब्रह्म परे कहाँ, कैसे भया? यदि ऐसा ही होता, तो तुम लोग उसे जानकर मान भी नहीं सकते थे। जब तुम वाणी करके जानते, मानते हो, तब वह परे कदापि नहीं हुआ। किन्तु वाणीके कल्पना भ्रम ही सिद्ध हुआ। वाणीसे ब्रह्मज्ञानका कथन तो करते हो, परन्तु वह ब्रह्म क्या चीज है? यथार्थ वस्तु तो तुमको लख पड़ती ही नहीं है, और जब कुछ समझनेमें नहीं आया, तो कल्पनासे निराकार आकाशका गुण शब्द विषय मानके फिर, अनुरूप = उसी आकाशके समान निराकार, निर्गुण प्रणव या ॐकार शब्दस्वरूपी कोई ब्रह्म है, ऐसा सिद्धान्त ठहराये हैं। सो मनुष्य जीवोंका भ्रम ब्रह्म तो वाणीके कल्पना मिथ्या धोखा ही है। बिना पारख सत्य निर्णयको लखके वे नहीं जानते हैं। इसीसे असत्यको ही सत्य मान-मानके भूले, और भूल रहे हैं ॥ १०९ ॥

साखीः— मन बुद्धि वाणीके परे। वाणी करै निरूप ॥
कहैं कबीर पारख बिना। भया भिखारी भूप ॥११०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! ये भ्रमिक गुरुवा लोग पहिले तो ब्रह्म-परमात्माको मन, बुद्धि, वाणी आदि सबसे परे अवाच्य, अगम, अगोचर, पूर्णव्यापक है, कहके अपार ठहराते हैं। फिर पीछे धीरे-धीरे करके उलटके उसी मन, बुद्धि, वाणीके द्वारा ही आत्माके गुण, लक्षण, महिमा विशेषता वर्णन करके कल्पित वाणीसे ब्रह्मका निरूपण करते हैं। तहाँ ब्रह्मनिरूपण नामके ग्रन्थ भी बना रखे हैं। विचारा ब्रह्म मन ही के भ्रम तो ठहरा, जब वेदान्ती लोग निरूपण करते हैं, तबतक वाणीरूपमें प्रकाश होता है, फिर पीछे गायब होके उनके भ्रम उनमें ही घुस जाता है; और बाहर कहीं तो ब्रह्मके अस्तित्व दिखाई देता ही नहीं है। अतः मिथ्या मानन्दो भ्रमभूल ही है। किन्तु, कहैं कबीर = वेदान्ती गुरुवा लोग उसी ब्रह्मको ही सर्वश्रेष्ठ एक अद्वैत सत्य है, ऐसा पहले कहे, और अभी कह रहे हैं, धोखामें पड़े वा पड़ रहे हैं। पारखी सन्त कहते हैं— देखो! यथार्थ गुरु पारखके बोध हुए बिना भिखारी तो राजा हो गया, और असली राजा भिखारी या दरिद्री हो गया। अन्यायसे ऐसे उलट-पुलट हो गया। अर्थात् भिखारी = गरीब, दरिद्र पारख धन हीन, निर्बुद्धि गुरुवा लोग, राजा = ब्रह्मज्ञानी, गुरुमहाराज बनके, श्रेष्ठ होके बैठे, और हंस जीव जो श्रेष्ठ भूपके समान हैं, सो अपने सद्गुण लक्षणको गँवाकर विवेक-विचारको छोड़कर अज्ञानी दरिद्र भिखारी बन गये। गुरुवा लोगोंके द्वार-द्वारमें उपदेश पानेका भीख माँगते फिरते हैं। अथवा सबका राजा मनुष्य बिना पारख भिखारीरूप भ्रमिक बन गये। तहाँ दरिद्रवत् शक्तिहीन ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवता, आदिको श्रेष्ठ भूपवत् ठहराके सुख-दुःख, बन्धन-मुक्तिका दाता मान-मानकर स्तुति, विनय करके उनकी दयाकी आशा करने लगे। अपने भीखमङ्गे हो गये। इस तरह बिना पारख जड़ाध्यासी

हो कठिन बन्धनोंमें जकड़ पड़े। आवागमनमें भटकने लगे ॥ ११० ॥

साखीः— यह जगत् जब ना हता। तब रहा एक भगवान ॥
जिन देखा यह नज़र भरी। सो रहेउ कौन मकान? ॥ १११ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु मनुष्यो! कर्तावादी गुरुवा लोग बिना विचारके कहते हैं कि— प्रथमारम्भमें या सृष्टि-संसार उत्पत्तिके पहले केवल एक भगवान्=निर्गुण, निराकार, निरञ्जन ब्रह्म, षट्गुण ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर योग निद्रामें विलीन, महाशून्य, महदाकाशवत् शान्त स्वयं एक अकेला रहा था। जब यह जगत्की अत्यन्ताभाव रही। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागण, नदी, नाला, समुद्र, वन, पर्वत, द्वीप, खण्ड, चारखानी, चौरासी योनियोंके जीव समूह, और पिण्ड-ब्रह्माण्डके यावत् पदार्थ कोई कुछ भी, ना हता=नहीं था। तब एक ही भगवान् परमात्मा अपने आप रहा था। पश्चात् उसी परमात्माकी इच्छामात्रसे सारा संसार चराचर सृष्टिकी उत्पत्ति भई, इत्यादि बात गुरुवा लोग विस्तारसे कथन करके कहते हैं। उन्हीं लोगोंके प्रति चेतावनी देते हुए सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, रमैनीमें कहा हैः—

रमैनीः— "प्रथम आरम्भ कौनको भयऊ? दूसर प्रगट कीन्ह सो ठयऊ? ॥"र० ३॥
"प्रथम चरण गुरु कीन्ह विचारा। कर्ता गावैं सिरजनहारा ॥र० ४॥
कहाँलों कहौं युगनकी बाता। भूले ब्रह्म न चीन्हैं बाटा ॥र० ५॥
वर्णहु कौन रूप औ रेखा? दूसर कौन आहि जो देखा? ॥र० ६॥
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना। को धरे नाम हुकुमको बरना? ॥र० ६॥
तहिया होते पवन नहिं पानी। तहिया सृष्टि कौन उत्पानी? ॥"र० ७॥

साखीः— "जहिया किर्तम ना हता। धरती हती न नीर ॥
उत्पति परलय ना हती। तबकी कहैं कबीर ॥"बीजक सा० २०३॥

इन सब पदोंका भाव स्पष्ट ही हैं, और टीका सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब-ने खुलासा लिखे हैं। चाहे वहाँसे देखिये! ॥ सद्गुरुके सत्शिक्षा बीजकके वही आशय लेकर श्रीगुरुदयालसाहेब भी कहते हैं कि—

पहले यह जगत् नहीं था, तब एक भगवान् ही रहा, और महाप्रलय होनेपर भी चराचर जगत् नहीं रहेगा, तब भी एक परमात्मा ही रहेगा। ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं, तो अच्छा भाई! यदि ऐसा ही है, तो तहाँ यह बताओ कि— सृष्टिके पूर्वमें तथा प्रलयके बादमें जिसने एक भगवान् या परमेश्वरको खूब नजर भरके या नेत्र गड़ाकर देख करके उस समयकी यह हालको तुम लोगोंसे आके कहा। तो वह भगवान्को अकेले देखनेवाला पुरुष उस वक्त कौन मकानमें या किस मुकाममें कहाँपर रहके आँख भर-भरके परमेश्वरको देखा? जगत्की सृष्टि ही नहीं भई थी, तो वह कहाँ पर बैठके देखता था? फिर महाप्रलय हो गई, पाँचतत्त्व जीव आदि भी कोई कुछ नहीं बचे, तो देखनेवाला कैसे बचा? वह किस स्थानमें रहा? देहके बिना देखना, सुनना, कहना नहीं होता है, जब उसके शरीर रहा, तो देहके गुजारा कैसे चलाया होगा? और अन्धकारमें कुछ देखा नहीं जाता है, प्रकाशमें ही देखा है, तो सूर्य रहा ही, नेत्रसे देखा, तो नेत्र होनेसे स्थूल शरीरधारी जीव रहा ही, और पाँच तत्त्व बिना तो शरीर नहीं बनता है, शून्यमें ठहरता नहीं है। इसलिये पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व रहे ही। निराकार तो दिखाई नहीं देता है, भगवान्को देखा, तो वह भी इसके समान स्थूल देहधारी ही हुआ। फिर कभी जगत् नहीं था, यह कैसे सिद्ध हुआ? अगर कहनेवालेने बिना देखे, बिना जाने, बिना समझे ही मनका घोड़ा दौड़ाके अन्दाजसे ऐसा कह दिया हो, तो उसकी कल्पना झूठी बात हुई। अगर उसने देखा है, तब एक तो वह द्रष्टा=देखनेवाला देहधारी, दूसरा जिसे उसने देखा, वह दृश्य देहधारी दो मनुष्य साबित हुये। फिर उनके होनेसे सारा जगत् स्वयं सिद्ध अनादि ठहर ही गया। इस तरह अद्वैत कहना, और एक भगवान्से जगत्की उत्पत्ति-प्रलयकी बात कहना मिथ्या, कोरी कल्पना होनेसे सरासर खण्डित हो जाती है। द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, त्रिपुटी ठहरनेसे जगत् नहीं था, ईश्वर एक था, ऐसा कथन

झूठी ठहरती है। अतः यह मिथ्यावादियोंके मिथ्या प्रलापमात्र है। जगत् स्वतः सिद्ध अनादिकालका है, किसी समय जगत् नहीं था, ऐसा कहना असम्भव है। ईश्वरादिको जगत्‌का कर्ता मानना मिथ्या भ्रम-धोखा है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ बातको जानना चाहिये ॥ १११ ॥

साखीः— कबीर जब दुनियाँ नहीं। तब था एक खुदाय ॥
जिन यह पेखा नजरसे। सो केहि ठौर रहाय ॥११२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे हिन्दू लोग मानते हैं, उसी प्रकार उधर मुसलमान लोग भी जगत् कर्ता खुदाको एक अकेला मानते हैं। पहले दुनियाँ = आलम नहीं थी, तो खुदा एक था, उसने 'कुन्न' शब्द कहा, तो सारी दुनियाँ बन गई, और जब अल्लाह मीयाँ क्यामतके समयमें 'फैकुन्न' शब्द कहेगा, तो सारी दुनियाँ फना हो जायगी, फिर खुदा एक ही रहेगा, इत्यादि मुल्ला लोग बताते हैं। उन लोगोंसे ग्रन्थकर्ता पूछते हैं— हे मुस्लिम नर जीवो! पहिले जब यह दुनियाँ = चराचर संसार कुछ भी नहीं था, और एक खुदाय = अल्लामियाँ अकेला था। अगर यह बात सत्य है, तो जिसने अपने नजरसे दुनियाँ न रहनेपर भी खुदातालाको खूब गौर करके देखा, सो वह देखनेवाला शक्स तब किस ठौरमें या किस मुकाम, किस जगहमें खड़े रहके देखा था? कहीं तुम्हारे घरके छत ऊपर खड़े होके तो नहीं देखा था? या तो तुम्हारे कन्धेपर चढ़के देखा तो नहीं था? स्वप्नमें देखा था? कि भाँगकी वा अफीमकी नशा खाके उसके पीनकमें देखा था? बताओ, कहाँ रहके, कैसा देखा था? देखा नहीं था, योंही अन्दाजसे कह दिया, तो झूठी बात है। यदि देखा था, तो वह देखनेवाला और दिखाई देनेवाला दो साबित होनेसे सारी दुनियाँ अनादि ही रही। इसलिये खुदा मानना मिथ्या भ्रम कल्पना ही है। उसे परखके सत्यको पहिचानो ॥ ११२ ॥

साखीः––जीव ईश्वर ब्रह्म जो। तत्त्वमसी कहै वेद ॥
कहहिं कबीर यह तीन पद। केहि उपदेशन भेद ॥११३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! सामवेदके महावाक्यमें "तत्त्वमसि" कहा है। इसका यह अर्थ है कि— "वह तू है" भावार्थमें त्वंपदवाच्य जीव, अल्पज्ञ, एकदेशीय, परिछिन्न, शक्तिहीन मायोपाधि संयुक्त कहा है। तत्पदवाच्य ईश्वर, सर्वज्ञ, सर्वदेशी, एक, व्यापक, सर्वशक्तिमान् मायोपाधि-रहित माना है, और उन दोनों तत्, त्वं, की वाच्यांश विकार त्यागकर लक्ष्यांशसे चेतनकी एकता करके असिपद ब्रह्म ठहराया है। इस प्रकारसे जीवको ईश्वरमें और ईश्वर-जीवको पुनः ब्रह्ममें मिलायके जो एकाकार हुआ, सोई वेदमें तत्त्वमसि कहा, और वेद प्रमाणसे वेदान्ती लोग भी अद्वैत सिद्धान्तमें तत्त्वमसि कहते हैं। जगत्–ब्रह्मको एक बतलाते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखके ज्ञाता पारखी सन्त सद्गुरु कहते हैं कि— जब उपरोक्त प्रकारसे एक ब्रह्म ही ठहराया, तब तुमने यह तीनपद = तत्पद ईश्वर, त्वंपद जीव, असिपद एकता ब्रह्म, अलग-अलग बतला करके फिर किसको उपदेश देते हो ? इसका भेद बतलाओ। अर्थात् अद्वैत सत्य है, तो वेदका कहा हुआ तत्त्वमसि तीनपद द्वैत होनेसे असत्य हुआ, द्वैतके बिना उपदेश नहीं होता है। इसीसे तीन-पदकी द्वैत सत्य है, अद्वैत मिथ्या हुआ, और पहिले किसने, किसको यह तीन पद बतलायके उपदेश दिया ? ब्रह्मने जीव ईश्वरको शिक्षा दिया, कि जीवने ईश्वर, ब्रह्मको वर्णन किया। अगर इसका भेद जानते हो, तो खुलासा करके कहो। अरे भाई ! नरजीवोंने ही दूसरे मनुष्योंको भ्रमाके धोखा दिया है। ब्रह्म ईश्वरादि कोई वस्तु सत्य नहीं, मिथ्या भ्रमभूल मात्र है। सद्गुरुने बीजक, रमैनी ५० में कहा हैः—

"बंसहि आगि लगि बंसहिं जरिया । भरम भूल नर धन्धे परिया ॥" बी० र० ५० ॥

इसलिये तत्त्वमसिके मानन्दी कर्ता नरजीव ही सत्य है, और एक है, तो उपदेश मिथ्या है, जब तुम लोग ब्रह्मज्ञानका उपदेश देते हो, तो अद्वैत मिथ्या है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके सत्य, असत्यको पहिचानना चाहिये ॥ ११३ ॥

साखीः— जीव ईश माया सहित । कहै अनादिक जोय ॥
कहहिं कबीर यह तीन पद । केहि उपदेशन होय ॥ ११४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो ! जो कोई जीव, ईश्वरसहित माया मिलाके अनादि तीनों नित्य वस्तु हैं, कहते हैं, वे विशिष्टाद्वैतवादी भ्रमिक लोग हैं। क्योंकि, देहधारी चैतन्य जीव और जड़तत्त्वको छोड़कर नित्य ईश्वर और माया कहाँ साबित होती है ? अतः उनकी वह मिथ्या कल्पना मात्र है। जीव, ईश्वर, मायासहित त्रिपुटी मिला हुआ कोई सत्य वस्तु तो संसारमें कहीं कुछ भी दिखाई देता ही नहीं है। अगर तुम उन तीनों पदको सत्य मानते हो, तो, कहो फिर उपदेश किसको कैसे होता है ? अनादि वस्तुका नाश नहीं होता है। इससे माया = अविद्या, अज्ञानका लगा हुआ बन्धन भी छूट नहीं सकेगा ? और ईश्वर निराकार होनेसे बोलके या किसी तरह भी उपदेश देनेमें वह समर्थ नहीं है, तथा माया जड़ होनेसे शक्तिहीन है। रहा जीव, अपने आपको वह क्या कैसे उपदेश देगा ? इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखके ज्ञाता पारखी सन्त पूछके तुमसे कहते हैं कि— कहो भाई ! अब यह तीनपद जीव, ईश्वर, माया, ये वा तत्त्वमसि इसे उपदेश कौन देता है ? और उपदेश किसे होता है ? कैसे होता है ? इसका भेद खुलासा करके, बताओ ! और उन तीनपदको भी जाननेवाला चौथापद होना चाहिये, सो कौन है ? । यदि सो जानते हो, तो कहो, वह पद कौन है ? नहीं जानते हो, तो पक्षपात छोड़कर पारखी साधु गुरुकी सत्सङ्ग विचार,

विवेक करो, तब तुम भी यथार्थ भेदको जान पाओगे ॥ ११४ ॥

साखीः— जीव ईश औ माया जो । कहिये जगत अनादि ॥
कहहिं कबीर ताको भयो । गुरु उपदेशन बादि ॥ ११५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! विशिष्टाद्वैत मतवादमें एक जीव, दूसरा ईश्वर और तीसरा अचिन्त्यशक्तिरूप माया (अविद्या) इन तीनोंकी समुदायरूप जगत्‌को जो अनादि कहते हैं। तहाँ अनादि वस्तुका बाध या नाश न होनेसे उसके लिये तो सद्गुरुकी उपदेश बोध, मुक्तिका साधन आदि सब ही, बादि = व्यर्थ, फजूल ही हुआ। क्योंकि, अनादि मायारूप अविद्या स्वतन्त्र होनेसे वह किसीको मुक्त होने ही नहीं देगी, तब मुक्ति होना असम्भव ही हुआ। फिर ऐसे मतवादी सदा-सर्वदा घोर नर्कमें ही पचा करेंगे। धिक्कार है, ऐसी उल्टी समझवालेको। पढ़-लिखके भी नीरे मूर्ख ही बने रहते हैं। परन्तु अनेक चैतन्य जीव देहधारी और पाँच तत्त्व जड़, यह दो वस्तु तो स्वतः अनादि हैं। परन्तु जड़ाध्यासका सम्बन्ध कोई स्वरूपसे अनादि पदार्थ नहीं, वह तो बदलते रहनेवाला वासना संस्कार अध्यासमात्र है। इससे पारख-बोध होनेसे वह छूट जाती है, तहाँ मुक्ति भी होती है, इसीसे तो सद्गुरुके सत्य उपदेश भी सफल होता है! किन्तु, गुरुवा लोगोंने माना हुआ ईश्वर सिर्फ कल्पनामात्र है, और मायारूप अविद्या कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। तब जो वस्तु ही नहीं, तो वह अनादि वा आदि कैसे होगी? जो यदि हठ करके वे लोग जीव, ईश्वर, माया ये तीनोंको जगत्‌में अनादि कहते हैं, तो फिर कहिये! उनको गुरुका उपदेश व्यर्थ हुआ कि नहीं?। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं— उसको तो बड़ा भ्रम धोखा ही दृढ़ हो गया है। इसीसे सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय न करके पक्ष लेके भ्रम चक्रमें पड़े हैं। ऐसोंको गुरुका उपदेश भी बेकार ही होता है, वे जड़ाध्यासी हो चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं ॥ ११५ ॥

साखीः— एकोहं बहुस्याम कही । ईश करत उपदेश ॥
एक अनेक आपै भये । कासों कहत सन्देश ॥ ११६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और ईश = ब्रह्मज्ञानी गुरुवा लोग मनुष्योंको ऐसा उपदेश करते हैं कि— पहिले संसार वा चराचर कुछ भी नहीं था, ब्रह्म स्वयं अकेला था। तब आप-ही-आप ब्रह्ममें एक इच्छा वा स्फुरणा उठी—"एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायेय"—मैं एक अद्वैत हूँ, अब मैं एकसे अनेकरूपमें उत्पन्न होके बहुत चराचर रूपको प्राप्त होऊँ। बस, फिर क्या था, एक ब्रह्म स्वयं ही अनेक जगत्‌रूपमें परिणत होके उत्पन्न हो गया। तहाँ पहले ब्रह्मसे ईश्वर पुरुष प्रगट हुआ; फिर क्रमशः प्रकृति, महतत्त्व, अहङ्कार, त्रिगुण, तमोगुणसे पञ्चतत्त्व तथा पञ्चविषयका पसारा भया, रजोगुणसे दश इन्द्रियाँ बनीं, सत्त्वगुणसे अन्तःकरण चतुष्टयसहित चौदह देवताएँ पैदा भये, ब्रह्मके अंशसे नाना जीव उत्पन्न भये, प्रकृतिके अंशसे जड़ जगत्‌की सृष्टि भयी। इस प्रकार एक ब्रह्मकी इच्छासे ही अनेक जगत्‌की उत्पत्ति भयी। तहाँ जीवोंको अज्ञानी देख करके सर्वशक्तिमान् दयालु ईश्वरने मनमें प्रेरणा करके वेदका उपदेश कहा; सो ऋषियोंने—अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा, इन चारोंने क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद सर्वप्रथम ग्रहण किये। फिर उन्हीं चारोंसे पीछेसे ब्रह्माने चारों वेद प्राप्त किया। उनसे संसारमें वेद प्रकाश हुआ, इत्यादि कहकरके ब्रह्मवादी और ईश्वरवादी लोग उपदेश करते हैं। तहाँ उनके कथन प्रमाणसे तो एक ब्रह्मसे ही अनेक जगत्‌की उत्पत्ति भई। इससे एक-अनेक ब्रह्म आप-ही-आप जब भये, तब फिर दूसरा कोई तो नहीं रहा, और एक अकेलेमें वेद-वेदान्तका सन्देश = खबर, हाल, समाचार कि, उपरोक्त 'एकोऽहं बहुस्याम्' का वार्ता कौन-किससे कैसे कहता है? क्यों कहता है? एकमें कहीं कहना-सुनना, सन्देश देना-लेना होता है? फिर एक ब्रह्म वा ईश्वर व्यापक है, और कोई नहीं, यह जाना

किसने ? और फिर वह एकसे अनेक हुआ, तो खण्ड-खण्ड होके नाश हो गया, फिर वह एक रहा भी नहीं, अखण्ड हुआ भी नहीं। अतः यह तुम्हारी कल्पना सरासर असत्य है। ऐसे-ऐसे मानन्दी करनेवाले नरजीवसहित संसार स्वतः सिद्ध है, ऐसा जानो ॥११६॥

साखीः— आपुहि एक अनेक होय। बोलैं ईश सुजान ॥
उपदेशन काको करै। काहि लगा अज्ञान ? ॥११७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! वेदान्तके कथनसे आप स्वयं ही एक अद्वैत ब्रह्म, अनेक जगत्‌रूपमें परिणत होयके फैला है। एक-अनेकरूप ब्रह्म ही है, ऐसा ईश्वर पुरुषने वेदमें बोला या कहा है, कहकर ईश सुजान = ईश्वर-ब्रह्मको अच्छी तरहसे जाननेवाले वेदवेत्ता या वेदाध्ययनमें पारङ्गत ब्रह्मज्ञानी पण्डित लोगोंने बोले हैं और वही बात बोलकर बता रहे हैं। तहाँ विवेक करिये कि— फिर कौन, किसको, कैसे, उपदेश करता है? या करेगा? किसने, किसको उपदेश किया ? और अज्ञान तो भी किसको, कैसे लगा ? एक अद्वैतमें इतनी सारी उपाधि तो नहीं हो सकती है। जब जगत् प्रपञ्चमें अज्ञान लगा, उपदेश हो रही है, तो इससे अद्वैत कहना मिथ्या भूल ही ठहरता है। अद्वैत कथन करनेवाले सुजान ज्ञानी नहीं हैं ? बल्कि अजान महाअज्ञानी ही बने हैं। एक ब्रह्म तो धोखा भ्रम है, अनेक जड़-चैतन्यरूप जगत् ही सत्य है। सत्य-न्यायसे जड़-चैतन्यके भेदको ठीक-ठीकसे जान लेना चाहिये ॥ ११७ ॥

साखीः— एकोहं बहुस्याममें। काहि लगा अज्ञान ? ॥
को मूरख को पण्डिता ? केहि कारण बहुबान ? ॥११८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! "एकोऽहं बहुस्याम्"—मैं ब्रह्म एक हूँ, सो एकसे अनेकरूपमें विस्तार होऊँ! ऐसी ब्रह्मकी इच्छासे सृष्टिकी उत्पत्ति भयी है, ऐसा वेदान्ती लोग कहते हैं, ब्रह्मको विज्ञानरूप बतलाते हो, तो बताओ— किसको

अज्ञान, अविद्या लगी? कैसे लगी? क्यों लगी? और कौन मूर्ख, अनसमझ भया? कौन पण्डित बुद्धिमान् भया? तथा किसके लिये किस कारणसे बहुत-सी वाणी वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि बनी हैं? किसने क्यों बनाया है? इन सब बातोंका उत्तर तो ब्रह्मज्ञानी लोग यथार्थ दे नहीं सकेंगे, इससे उनकी मानन्दी भ्रम है। द्वैतरूप जड़-चैतन्य ही यथार्थमें सत्य है। उसे सत्सङ्ग द्वारा ठीकसे जानना चाहिये॥ अर्थात् एकमें अनेकता होना, असम्भव है, जब अनेक दिख ही रहा है, तब एकसे इच्छामात्र करके अनेक सृष्टि हुयी कहना, अन्याय तथा मिथ्या कथन है। कोई अज्ञानी मूर्ख बने हैं, कोई पण्डित होके नाना वाणी बना रहे हैं, इस कारणसे जीव ही सत्य है, किन्तु, ब्रह्म नरजीवोंकी कल्पनामात्र होनेसे, असत्य है। सो पारख निर्णयको समझ लेना चाहिये॥ ११८॥

साखीः— एकोहं दुतिया नहीं। महापुरुष कहैं बाक॥
जो दिलमें दुतिया नहीं। कासों बोलतहिं ताक॥११९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— एकोऽहं = मैं एकब्रह्म निरञ्जन, परिपूर्ण अद्वैत हूँ, और दुतिया = द्वैत जगत् दूसरा कहीं कोई कुछ भी नहीं है। ऐसा बाक = वाक्य, शब्द, उपदेश, महापुरुष कहलानेवाले व्यास, वशिष्ठ, वामदेव, दत्तात्रेय, शङ्कर आदिकोंने पूर्वमें कहे हैं, तथा अभीके ब्रह्मवेत्ता लोग भी ऐसे ही "एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति" कह रहे हैं। जो ऐसा ही होता, यदि उनके, दिल = अन्तःकरणमें दूसरा द्वैत कुछ भी नहीं भासता है, तो वे ब्रह्मज्ञानी, ताक = देख-देख करके, लक्ष लगाके, सम्बोधन करके, फिर किससे बोलते हैं, किसको सुनाते, बतलाते हैं कि—मैं ब्रह्म एक हूँ, और दूसरा कोई नहीं है। उन्हींके कथनसे यह मालूम हुआ कि,—द्वैत जगत् था, दूसरे उनके वचन सुननेवाले मनुष्य भी थे, तभी तो उन्हें ताक-ताकके झाँसा देके, आश्चर्यमें डालनेके लिये "एकोऽहं दुतिया नहीं" ऐसा वाणी भ्रमिक गुरुवा लोगोंने कहे हैं। इस प्रकार मनुष्योंको धोखामें

ही डालके भटकाये हैं। वास्तवमें एक होता, तो वे कभी बोल भी नहीं सकते थे। जब वे बोलते, कहते-सुनते हैं, तो द्वैत अवश्य प्रत्यक्ष है। तो भी वे अद्वैत मानते हैं, सोई उनकी अनसमझ, मूर्खता है ॥ ११९ ॥

साखीः— एकोहं आपुहि भये। दुतिया दीन्हों काटि ॥
एकोहं कासों कहै। महापुरुषकी झाँटि ॥१२०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"— मैं एक अद्वितीय या अद्वैत ब्रह्म हूँ। "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति"— एक अद्वैत ब्रह्म है और दूसरा द्वैत कुछ नहीं है। "एकोऽहं, अहंब्रह्मास्मि"— मैं एक हूँ, मैं ब्रह्म हूँ। ऐसे-ऐसे वचन कह करके आप अपने ही मनसे एक ब्रह्म भये। फिर तहाँ दुतिया = दूसरा द्वैतको काँट-छाँटके सत्यानाश कर दिये। जगत्को निषेध करके ब्रह्म सिद्धान्तको ही श्रेष्ठ ठहराये। परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि—एकोहं कहके वे पुकारते, शब्द सुनाते भी हैं, अब बताइये! वे ब्रह्मज्ञानी लोग, मैं एक हूँ, ऐसा उच्चारण करके किससे कहते हैं? अपने आपसे तो कोई कहता नहीं, कहते हैं, तो सुननेवाला दूसरा रहा ही। अतः महा-पुरुष = ब्रह्मवेत्ता, अद्वैत मतवादी बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, व्यास, वशिष्ठादि पुरुषोंकी झाँटि = झटकारी हुई, या फटकारी हुई, युक्ति-प्रयुक्तिसे वर्णनकी हुई वेद-वेदान्तकी वाणी कल्पित, असत्य, भ्रमपूर्ण, अन्याय, अविचारसे बनी हुई होनेसे निकम्मी, तुच्छ, अग्राह्य, त्याज्य है। मुमुक्षुओंने ऐसे भ्रम चक्रमें कभी नहीं पड़ना चाहिये। पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग करके सत्यासत्यको परखना चाहिये। अन्यायी लोगोंका पक्ष पकड़नेसे कल्याण नहीं हो सकता है ॥ १२० ॥

साखीः—कबीर पाँचहु तत्त्वको। पाँच स्वभाव परधान ॥
तामें जो करै एकता। सो निर्गुण अज्ञान ॥१२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! संसारमें—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और समान वायुरूप आकाशतत्त्व यही पाँचों

तत्त्वोंकी पाँच स्वभाव=पृथ्वीका स्वभाव कठिनत्त्व, गुण-गन्ध विषय है, सो नाशिका द्वारा ग्रहण होती है। जलका शीतल स्वभाव, रस विषय है, सो जिभ्याद्वारा ग्रहण होती है। अग्निका उष्णत्त्व स्वभाव, रूप विषय है, सो नेत्रद्वारा देखा जाता है। वायुका कोमलत्त्व स्वभाव, स्पर्श विषय है, सो त्वचाद्वारा जाना जाता है, और समान वायुरूप आकाशका लय स्वभाव, शब्द विषय है, सो कानद्वारा सुनाई देता है। कान बन्द करनेपर भी भीतरी सूक्ष्म शब्द, नाद सुननेमें आता है। इस प्रकार पाँचों स्वभाव, विषय, शक्ति, क्रिया, सम्बन्ध, पाँचोंतत्त्वका भिन्न-भिन्न, प्रधान=मुख्य विशेष करके दिख रहा है। जीवकी सत्तासे देहमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों-द्वारा पञ्चविषयोंका ग्रहण हो रहा है। जड़-चैतन्यके गुण-लक्षण पृथक्-पृथक् ही हैं। फिर अन्धाधुन्ध मूड़-पेलकरके उन सबमेंका विभिन्नताका विचार, विवेक छोड़ करके जो ब्रह्मज्ञानी लोग न्यायको तिलाञ्जलि देके, अन्यायसे हठ करके, पाँचों जड़-तत्त्व और अनन्त देहधारी चैतन्य-जीव इन दोनोंमें या चराचरमें एकता मानकर एक अद्वैत ब्रह्म, अधिष्ठानका निरूपण करते हैं, एकत्त्व ब्रह्म प्रतिपादन करते हैं। वास्तवमें सो तो महाअज्ञानी, गाफिल, भ्रमिक, निर्गुणियाँ=हंसके सद्गुण जिनमें कुछ भी नहीं है, ऐसे अवगुणी या दुर्गुणी, नादान, नालायक ही बने हैं। ऐसे विपरीत समझने-वालेको बारम्बार शत-सहस्र बार धिक्कार है। अपनेको निर्गुण ब्रह्म मानके महा खाँचमें गिर पड़े हैं। चौरासी योनियोंमें भटक रहे हैं। अतः ऐसे भ्रमिक अनसमझके सङ्गमें कभी नहीं लगना चाहिये। पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके परखना चाहिये॥ १२१ ॥

साखीः—षट् द्रव्य जैनी मता। ताको यह निर्धार ॥
जीव पुदगल अधर्म धर्म। कालअकाश विचार ॥१२२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता अब यहाँसे जैनियोंकी कसर-खोट दर्शायके कहते हैंः— जैनियोंके मत या सिद्धान्तमें, षट् द्रव्य=नित्य कभी

नाश न होनेवाले छः पदार्थ माने हैं। उन जैनियोंके मनमें यही बात, निर्धार=निश्चय दृढ़ है। उनके मतसे निर्णय करके माना हुआ षट् द्रव्योंके नाम यह है कि— १ जीव द्रव्य, २ पुद्गल= देह वा परमाणु द्रव्य, ३ अधर्म द्रव्य, ४ धर्म द्रव्य, ५ काल वा समय द्रव्य, और ६ आकाश द्रव्य, इन्हींको सच्चा षट् द्रव्य मानके जैनी लोग विचार किये और कर रहे हैं। परन्तु सत्यन्यायसे निर्णय करके देखिये! तो उनके माना हुआ षट् द्रव्य ही अयुक्त असिद्ध हैं। विस्तार निर्णय तो इसके बारेमें "निर्पक्षसत्यज्ञानदर्शन" में लिखा है। उसीकी संक्षिप्त सार सुनिये! जैन तत्त्वार्थमें लिखा हैः— संसारी और मुक्त दो प्रकारके जीव होते हैं। त्रस और स्थावर दो जातिके संसारी जीव माने हैं। वनस्पतिकाय, स्थावर जीव हैं। जलकाय जीव, तेजकाय जीव, वायुकाय जीव, आकाश-काय जीव कहा है, और सूईके अग्र भागपर किसी हरे पदार्थका जितना भाग ठहरेगा, तिसमें अनन्तकाय जीव रहते हैं, और स्वर्ग, नरकबासी आदि अनेकों जीव कहे हैं, उन सबमें कहीं मनसहित, और कहीं मनरहित, सैनी-असैनी जीव रहते हैं, ऐसा माने हैं। फिर और लिखा है— मट्टीके जुवार जितने कङ्करमें, जल बून्दमें, अग्निकी एक चिनगारीमें तथा वायुके एक झपटमें, असंख्यात जीव रहना माने हैं। वे यदि क्रमसे कबूतर, अण्डा, राई, और बड़के बीजवत् आकारके देह धरके उड़ जायेंगे, तो तीनों लोकमें भर जायेंगे, ऐसा असम्भव कथन किये हैं। इस प्रकार जीवको जड़ तत्त्वोंके परमाणुवत् समझनेवाले वे भ्रमिक बने हैं, और पुद्गलरूप शरीर भी नाशवान होनेसे नित्य द्रव्य नहीं ठहरता है, सिर्फ परमाणु-को ही नित्य द्रव्य कह सकते हैं। तथा जड़ तत्त्वोंके गुण, धर्म और अधर्म हैं, तिनको भिन्न, नित्य द्रव्य मानना अन्याय है। यदि जीवोंके स्वरूप निराकार माने हैं, तो देहरहित अकेले मुक्त जीवोंमें ऊर्ध्व-गमनकी क्रिया मानना और देह छूटे वाद मुक्ति तथा जीतेतक मुक्ति

नहीं, यह माना हुआ भी असम्भव दोषयुक्त वर्णन है। तथा काल स्वयं नित्य द्रव्य नहीं है, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमाके नित्यकी क्रियाओंसे वह समय सिद्ध होता है। और आकाश निराकार, पोलमात्र शून्य होनेसे अपदार्थ है, इससे वह कोई द्रव्य हो ही नहीं सकता है। इस तरहसे इनके माने हुए षट् द्रव्य अनर्थ और व्यर्थ है, सबोंने तो पाँचों तत्त्वोंको जड़ ही माने हैं, परन्तु जैन मतवादियोंने पाँचों तत्त्वोंको स्थावर जीव देहधारी माने हैं, यही उनकी महा अज्ञानता अविचारपना है। सत्य पारख निर्णयको ग्रहण करके इस धोखाको त्यागना चाहिये ॥ १२२ ॥

साखीः—षट द्रव्य यह मानिके । जैनी चित्त हुलास ॥
कहहिं कबीर उपदेश केहि । पूरब केहि भये भास ॥१२३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! षट् द्रव्य= जीव, पुद्गल (शरीर वा परमाणु), धर्म, अधर्म, काल, और आकाश, यह या इसीको सत्य मान करके जैन मतवादी जैनियोंके चित्तमें हुलास=बड़ी भारी आनन्द होती भई। हमने ही खास सत्य पदार्थको जाना है, ऐसा समझके अत्यन्त प्रसन्न, मनमें मगन होते भये। परन्तु पारखी सन्त सद्गुरु चेतावनी कहकर उनसे पूछते हैं कि— हे जैनियो! जब तुम लोग उक्त षट् द्रव्यको ही नित्य-सत्य करके मानते हो, तो फिर किसको, किस लिये उपदेश देते हो? तुम्हारे मतमें तो पाँच तत्त्व आदि अनन्त परमाणु सब जीव-ही-जीव माना है। वास्तवमें जड़ वस्तुका अभाव ही माना है, तब बन्धन काहेका भया? मुक्ति भी क्या होगी? उपदेश किसे होता है? उसका फल क्या निकला? और पूरब=सबसे प्रथम उन छः द्रव्यका भास, साक्षात्कार, बोध, किसको भया? षट् द्रव्य द्रष्टा है कि, दृश्य है? अपने आपको निजरूपका भास तो होता नहीं। इसलिये उक्त षट् द्रव्यको भास करके जाननेवाला सातवाँ सत्य द्रव्य होना चाहिये। बताओ! वह द्रव्य कौन है? यदि नहीं जानते हो, तो पारखी साधु-

गुरुकी सत्सङ्गमें रहके कुछ दिन गुरुमुखसे सत्य निर्णयका विचार करो, तब यथार्थ बात जानोगे ॥ १२३ ॥

साखीः— जैनी साधन बहु किया । मुक्ति न आई हाथ ॥
जेहि दुःखते चाहैं मुक्तिको । सो दुःख उनके साथ ॥१२४॥

टीकाः–– ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ऋषभदेवसे महावीर पर्यन्त जैनियोंके चौबीस तीर्थङ्करोंने और उनके मतवादियोंने मुक्ति प्राप्ति करनेके लिये बड़ी आशा लगाके जप, तप, व्रत, उपवास, ध्यान आदि कष्टकर साधनाएँ तो बहुत-बहुत किये। साधना करके जीते ही बड़े-बड़े दुःख, सन्ताप, क्लेश, तो खूब भोगे; परन्तु यथार्थ मुक्ति स्थिति उनके हाथमें नहीं आई। जीते-जी मुक्तिकी रहनी—रहस्यकी घेरामें वे नहीं आये। भवबन्धनके घेरा मन मानन्दीमें ही वे पड़े रहे। और जिस संसारके दुःख त्रिविधिताप, जन्म, मरण, गर्भवास आदिसेरहित हो, देह बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्ति करना चाहते हैं, यानी जिस शरीरके दुःखसे परे हो, मुक्तिको पाना चाहते हैं, सो दुःखरूप शरीर तो उनके पुद्गल द्रव्य होके अनादिकालसे नित्य साथ ही लग रहा है, और सदा साथ ही बना रहेगा। क्योंकि, पुद्गलको अनादि द्रव्य नित्य माने हैं और जीवन्मुक्ति भी नहीं मानते हैं, मृत्यु होके शरीर छूटनेपर ही मुक्ति माने हैं। परन्तु पुद्गल = देहको अनादि भी कहे हैं। अतः जिस दुःखसेरहित हो मुक्ति चाहते हैं, सो देह तो उनके अनादिका साथी बना है, कभी नहीं छूटेगा, अतः बन्धन भी नहीं मिटेगा, ऐसे महा भ्रममें पड़े हैं ॥ १२४ ॥

साखीः— जैनी साधन मोक्ष हित । करें कष्ट बहु भाँति ॥
जेहि सुख नित साधन करें । होय सो आतमघाति ॥१२५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! जैन-मतावलम्बियोंने मोक्ष प्राप्तिकी आशासे उसके लिये नाना प्रकारकी साधनाएँ

किये, और भाँति-भाँतिसे बहुत तरहसे कष्ट भी किये-कराये। तहाँ चालीस-चालीस रोजतक निराहार रहीके, बहुत ही कष्ट-क्लेश सहके व्रत, उपवास करने लगे। अगर अन्न-जल, खाये-पीये बिना चालीस दिनतक उपवास करके शरीर छोड़े, तो वह साधक मरके सीधे मुक्तिस्थानमें ऊपर चला जाता है; ऐसे कल्पना किये हैं। उसी मानन्दीको दृढ़कर कष्ट करके नाना दुःख सहते हैं। परन्तु बिना विचारका परिश्रम वह सब व्यर्थ हो जाता है। जिस मुक्ति, सुख या आत्म सुखको, प्राप्त करनेके लिये जैनी लोग नित्य अनेक तरहके पीड़ा सहन करके, बहुविधि साधनाएँ करते-कराते रहते हैं। सो अन्तमें चालीस दिनका उपवास करके उसी बीचमें मर जानेसे खास करके, आत्मघाति = अपने आपको मारनेवाले, आत्म-हत्यारे, महापापी हो जाते हैं, फिर ऐसे घातकीको सुख, मुक्ति कहाँसे हो सकती है? कभी नहीं होगी। जीतेतक भी बहुत दुःख भोगते हैं, कष्टपाके मृत्युका दुःख पाते हैं, और जड़ाध्यासी होनेसे चौरासी योनियोंमें जाके दुस्सह दुःख पाते रहते हैं। जिज्ञासुओंने ऐसी धोखामें कभी पड़ना नहीं चाहिये ॥ १२५ ॥

साखीः— जैनी जैन कमाइया। कर्ता ईश विसारि ॥
जो चाहे सो कृतमको। करि-करि कर्म फुसारि ॥१२६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और उन जैनियोंने, जैन = वाणी कल्पनासे भ्रममें पड़कर जैनधर्मको सत्य मान करके कल्पना, अनुमान, अध्यासादिसे कर्मकी कमाई तो खूब किये। बड़ी-बड़ी लम्बी-चौड़ी गप्प हाँके हैं। बहुत भ्रम जड़ाध्यासको ही जमा किये हैं। कर्ता ईशको विसार दिये हैं, तहाँ जगत्कर्ता ईश्वर भ्रम कल्पनामात्र होनेसे उसे न मानना तो ठीक है। परन्तु ईश्वरादि सबके स्थापन-कर्ता, वेद, पुराण, कुरान, तथा जैन ग्रन्थोंके कर्ता— रचयिता, नरजीव मनुष्य ही श्रेष्ठ हैं। इस हंस जीवके स्वरूपको भी उन्होंने भुला दिये हैं। कर्तव्यका कर्ता, वाणी-खानीके स्थापनकर्ता तो मनुष्य

ही हैं, उसके पारखस्वरूपको तो बिलकुल ही विसार दिये हैं, और नाना प्रकारसे कर्म साधनाएँ कर-करके, फुसारि = कर्म करनेका ही उपदेश दे-दे करके "फुस्समफास रहा जहँड़ाई"— फजूलके भ्रम चक्रमें पड़े हैं। वे लोग जो मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, चन्द्रमुक्त शिलामें जाना चाहते हैं, सो भी कृतम = कल्पित वाणी कृत धोखा ही है। अर्थात् मुक्ति चाहनेवालेको, जैन लोग कृतम वाणी कल्पनासे उपवासादि नाना कर्म कर-करके देह त्यागनेका उपदेश देते हैं। सब प्रकारसे, कर्म भ्रममें फँसाके बाँधे हैं और बाँध रहे हैं। ऐसा पहिचानके, उनके भ्रम-बन्धनमें पड़ना नहीं चाहिये ॥ १२६ ॥

साखीः—कबीर जैनी लोभिया। ठगके हाथ बिकाय ॥
मुक्ति अकाशके ऊपरे। सुनि-सुनिके ललचाय ॥१२७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जैनी लोग अविचारी, लोभी, लालची भये। इसलिये, ठग = धूर्त, पाखण्डी, धोखेबाज, गुरुवा लोगोंके हाथोंमें बिकाय गये। भ्रमिकोंके अधीन, परवश हो गये। ठग लोगोंने उन्हें आकाशके सबसे ऊपर मुक्ति स्थान चन्द्रमुक्त शिला होना बतलाये, तो उनके रोचक वाणी सुन-सुन करके सब जैनी लोग ललचाय गये, कि— हम वहाँ कब पहुँच पायेंगे; इसीसे धोखामें पड़के, नाना साधनाएँ करके जन्म बिताने लगे। उनके मुक्ति लोकके बारेमें रत्नसार और प्रकरण रत्नाकरके भाग चारमें कहा हैः— "महावीरजी गौतमसे कहते हैं— हे गौतम! उर्ध्वलोकमें स्वर्गपुरीके ऊपरके शिखरपर या सर्वार्थ सिद्धि विमानकी ध्वजाके ऊपर १२ योजनोंपर एक सिद्ध शिला है। वह ४५ लाख योजन लम्बी तथा उतनी ही ऊँची और आठ योजन मोटी है। वह मोतीके हारवत् उजली या स्फटिक मणिसे भी निर्मल, सोनेके तुल्य प्रकाशमान और चौतरफ मक्खीके पङ्खवत् पतली है। उस शिलाके ऊपर एक योजन अन्तरमें स्वर्ग

लोकोंका अन्त है। वहाँ केवल ज्ञान, सर्वज्ञता और पवित्रता प्राप्त हुए सिद्ध तीर्थङ्करादिकोंकी स्थिति है। वहाँ अलोक आकाश एक ही द्रव्य है" इत्यादि यही कल्पित बात सुन-सुनके लालचमें पड़े। परन्तु विचार करिये, तो सिर्फ वह मिथ्या गप्प ही हाँके हैं। क्योंकि, एक तो मुक्तिका कहीं स्थान विशेष नहीं होता है। कहा है:— श्लोकः—

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तर मेव वा। अज्ञानहृदयग्रन्थी नाशो मोक्ष इति स्मृतः॥
कतहुँ मुक्तिको धाम नहीं, जहाँ बसत कोइ ग्राम। भवबन्धनसे छूटिबो, मुक्ति तिसीको नाम॥

फिर देह छूटे बाद मुक्ति जैनियोंने माना है। देह रहते ही देखे बिना वहाँके वर्णन महावीरने कैसे किये? मुक्त पुरुष लौटके तो नहीं आता है, जीवितमें उनके मतमें मुक्ति नहीं होती है। तब सबसे ऊपर आकाशमें चन्द्रमुक्त शिलाको उन्होंने कैसे जाना? और चारकोशका एक योजन होता है, वहाँ ४५ लाख योजन लम्बी-चौड़ी, ऊँची, ८ योजन मोटी, सफेद शिलाको कैसे देखे? वा कैसे मापे? फिर वहाँ अलोक आकाश मात्र एक द्रव्य है, ऐसा कहते हैं, किन्तु, शिलारूप इतना बड़ा भारी पत्थर, चार तत्त्वको छोड़के क्या वह आकाशके ही बन गई? कितनी बड़ी भारी भूल है। अरे! यह सब कोरी कल्पना मात्र है। यदि देह रहते ही नेत्रसे देखे हों, तो फिर इतना बड़ा शिला सबको दिखाई देना चाहिये, और देहके बिना तो कोई कुछ भी देख-सुन ही नहीं सकते हैं, फिर जैनी ही क्या देख पायेंगे? अतः जैनी लोग मिथ्या धोखामें ही पड़े हैं।

सद्गुरुने कहे भी हैं:—

"ताकर हाल होय अदबूदा। छौ दर्शनमें जैनि बिगुर्चा॥" बीजक, रमैनी ३०॥

इसलिये लोभके मारे जैनी लोग ठगके हाथमें बिक गये। ठगने आकाशके ऊपरमें मुक्ति बताके उनके तन, मन, धनादि ठग लिया। झूठी महिमा सुन-सुनके लालची लोग भवबन्धनमें ही जकड़ पड़े, बिना पारख॥ १२७॥

साखीः——कबीर तीर्थङ्कर जैनिके । चौबीसों भये मोख ॥
मुक्ति कहैं पुद्गल छूटे । ग्रन्थ कियो किमिचोख ॥१२८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! जैनी लोग कहते हैं कि— उनके तीर्थङ्कर = तीर्थ-स्वरूप आचार्य, धर्मगुरु, प्रथम ऋषभदेव, अजितनाथसे लेकरके महावीर स्वामी पर्यन्त सब २४ हुये; पच्चीसवाँ फिर कोई भया नहीं, और वे चौबीसों मोख = मोक्ष हो गये, ऐसे माने हैं; और उनके मतमें जीवित शरीर रहते ही कोई मुक्त हो नहीं सकता है; पुद्गलरूप शरीर छूटनेके पश्चात् हो सब की मुक्ति होती है, ऐसे कहे हैं। महावीर आदिने पुद्गल (देह) छूटनेपर ही मुक्ति होगी, ऐसा कहकर बता गये और ग्रन्थोंमें भी वही बात लिख गये हैं। अब विचार करिये ! उनका बनाया हुआ ग्रन्थ कैसे, चोख = शुद्ध या सच्चा हुआ ? किन्तु, झूठा ही भया। लिख-लिखके काहेको ग्रन्थ बनाये । तुम्हारे समझसे तो शरीर छूटनेपर सहज ही सबकी मुक्ति हो ही जायगी, फिर ग्रन्थका क्या प्रयोजन ? और देह रहते बन्धनमें लिखा हुआ ग्रन्थ सब अप्रमाणिक झूठा ही होगा। देह छोड़के मुक्ति स्थान देखकर आया हो, फिर हाल बताया हो, ऐसी बात तो हो ही नहीं सकती है। इसलिये उनके ग्रन्थ सब सरासर झूठा लेख है। क्या जैनियोंके यहाँ आज पर्यन्त २४ ही तीर्थङ्कर मुक्त हुए ? और कोई मुक्त भया ही नहीं, तो भविष्यत्में भी कोई मुक्त नहीं होगा। फिर साधनोंके दुःख सहना बेकार ही हुआ। जीते ही सकल अध्यास मिटायके निर्बन्ध, जीवन्मुक्त पारखस्वरूपमें स्थिर हुए बिना कोई भी मनुष्य मुक्त नहीं भये, और न हो सकते हैं। यदि शरीर छूटनेपर ही मुक्ति है, तो पशु, पक्षी, आदि सब प्राणियोंकी भी मुक्ति होती ही होगी। फिर बन्धन रहा ही नहीं। तो उनके साधना सब वाहियात हुआ कि नहीं ? । अतः ऐसे भ्रम धोखामें कभी नहीं पड़ना चाहिये। परखकर सत्यासत्यको जानना चाहिये ॥ १२८ ॥

साखीः— भई मुक्ति जेहि जैनिकी। चौबीसों आदिक और॥
पुदगल उनकी छुट गई। वचन कहैं केहि ठौर?॥१२९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ऋषभदेव आदिसे महावीर तक जैनियोंके प्राचीन गुरु जिन चौबीसों तीर्थङ्करोंके मुक्ति देह छूटनेपर ही और मतवादियोंसे विलक्षण प्रकारसे भई, ऐसा कहा है। अब हे जैनियो! यह खुलाशा करके बताओ कि, उन्हीं २४ जैनाचार्योंकी मुक्ति भयी है कि— औरोंकी भी मुक्ति भयी? अच्छा! तुम्हारे कथनसे महावीर इत्यादिक और भी कई लोगोंकी मुक्ति भयी, किन्तु देह छूटनेपर ही तो हुई न? जीवन्मुक्ति तो तुम लोग मानते ही नहीं हो। और देह रहे तक चन्द्रमुक्त शिलाका साक्षात्कार तो किसीको हुआ ही नहीं। और जिनकी मुक्ति भयी, उन्होंकी पुदगल = शरीर तो छूट ही गयी। फिर वे लोग किस ठौर = ठिकान, स्थान, या भूमिकामें रहके "शिष्यो! अब हम मुक्त हो गये, मुक्ति शिलामें पहुँच गये" और तुम्हारी भी शरीर छूटेगी, तो यहाँ आ सकोगे, इत्यादि वचन कैसे, किस जगहसे कहे, क्या तुमने उनके वचनको उनके मुक्त होनेपर सुना? अरे भाई! शरीरके बिना भी कहीं कहा, सुना, जाना जा सकता है? कभी नहीं। यानी उनकी शरीर छूट गई, तो वे मुक्त हो गये। मुक्तिका अनुभव फिर किस ठौरमें बैठके वचन द्वारा कैसे कहेंगे? तुम लोग कैसे सुनोगे? अतः यह सब भ्रम, कल्पना है। सद्गुरुने कहे हैं—

शब्दः— "जियत न तरेहु मुये का तरिहो? जियतहिं जो न तरै॥ ६॥
गहि परतीत कीन्ह जिन्ह जासों। सोई तहाँ अमरे॥" बी० श० १४॥

साखीः— "बिन देखे वह देशके, बात कहै सो कूर॥
आपुहि खारी खात है, बेंचत फिरे कपूर॥" बी० सा० ३४॥
"मुये मुक्ति गुरु कहैं स्वारथी। झूठा दै विश्वासा॥" भ०॥

अतएव इनकी मुक्ति भ्रम, कल्पनामात्र है। पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ बातको पहिचानना चाहिये॥ १२९ ॥

साखीः— ऋषभदेव जेहि बन रहै । तेहि बन लागी आगि ॥
बनहिमें वह जरि मुये । दोष अठारह त्यागि ॥१३०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! ऋषभदेवके मृत्युके बारेमें भागवतमें विस्तारसे वर्णन भया है । नाभि राजाके जेष्ठ पुत्र ऋषभदेव भये । बहुत वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् उन्हें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ, तो सब राज्य पुत्रोंको सौंपकर वे वनको चले गये, परमहंस वृत्तिसे रहने लगे । नङ्ग-धड़ङ्ग, पागलवत् चलते रहे । फिर अघोरी वृत्ति भी धारण कर लिये, पशुवत् वर्तने लगे । और एक समय जिस महावनमें ऋषभदेव स्वच्छन्द हो घूमते रहते रहे, उस घनघोर वनमें दावानल अग्नि लग गई, प्रचण्ड ज्वाला फैलती हुई आई, परन्तु वे उन्मत्त बेभान बने रहे । भागनेका कुछ भी प्रयत्न उन्होंने नहीं किया । अग्नि चारों तरफसे घिर आई, उस वनमें ही ऋषभदेव दावाग्निमें जलके मर गये, उनके देह भी भस्म हो गई । वे भय आदि अठारह दोषोंके त्यागी भये, ऐसा उनके अनुयायी जैनि लोग मानते हैं ॥

अथवा सिद्धान्तमें जैन मतके संस्थापक धर्मोपदेशक प्रथम गुरु-आचार्य ऋषभदेव भये । वे वनरूपी भ्रमिक वनके जिस वाणी कल्पनाकी मानन्दीमें टिके रहे, उसी वनमें या वाणीकी मानन्दीसे नाना साधनाओंके समझ-बूझमें भ्रम, कल्पना, धोखारूपी महा अग्नि लग गई । और वह = ऋषभदेव, बनहिमें = वाणी, कल्पना भ्रमके तीव्र ज्वालामें ही पड़के घिर-घिराके, जरि मुये = विवेक, बोध, विचार आदि हंस गुणोंको त्यागकर पशुवृत्ति बनायके शुभ संस्कारको जराय-बरायके जड़ाध्यासी बद्ध हो गये, बिना पारख आवागमन चक्रमें पड़े । परन्तु उनके मृत्यु होनेपर उनके शिष्योंने उनकी बड़ी महिमा बढ़ाये, अठारह दोष त्यागकर मुक्त हो गये, ऐसा प्रसिद्ध किये । अठारह दोषोंके नामः—१ मिथ्यात्व । २ अज्ञान । ३ मद ।

४ क्रोध। ५ माया। ६ लोभ। ७ रति (राग)। ८ अरति (खेद)। ९ निद्रा। १० शोक। ११ अलीक (झूठ बोलना)। १२ चोरी। १३ मत्सर (प्रभुत्त्व बढ़ानेके लिये अन्यका द्वेष करना)। १४ भय। १५ प्राणि-वध। १६ प्रेमरहित। १७ क्रीड़ा (खेल, कूद, नाच, गाना, बजाना, आदि) और १८ खिलखिलायके हँसना, ये अठारह दोषोंको ऋषभ देवादि चौबीसों तीर्थङ्करोंने परित्याग करके जीत लिये थे, इससे वे सब मुक्त हो गये; ऐसा जैन लोग कहते हैं। परन्तु स्वरूपज्ञान, पारखबोध हुए बिना उन्होंने जड़ाध्यास, मिथ्या मानन्दीको नहीं त्यागे थे, इससे भवबन्धनोंमें ही जकड़ पड़े। वैसे ही उनके अनुयायी सब भी बद्ध भये और हो रहे हैं। अतः मिथ्या पक्षको त्यागकर सत्यबोधको ग्रहण कर लेना चाहिये ॥१३०॥

साखीः—जीभ कमान वचन शर। पनिच श्रवण लगि तान ॥
ऋषभदेवसे धनुष्य धर। मारे हैं षट बान ॥१३१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! पहिले शिकारी लोग धनुष-बाण लेके, वनमें जाकर, धनुषमें डोरी चढ़ाके, उसे कान-तक तानकर जानवरोंका लक्ष-निशाना लगाके बाण छोड़के उन्हें मारकर शिकार करते रहे। वैसे ही सिद्धान्तमें, जिभ्या सोई कमान = तिरछी मुड़ी हुई—धनुष बनाये, उसमें वचनरूपी शर = नाना वाणी सोई बाण चढ़ाये। पनिच = डोरी जो धनुषमें लगाई जाती है, सो मुखसे शब्द उच्चारण करके शिष्योंके कानतक, तान = ताना खैंचके सुनाके उनके लक्ष अपने तरफ ताने या जोड़ने लगाये। शब्दरूपी डोरी कानतक खींचके गया। और ऋषभदेव आदिसे लेकर चौबीस तीर्थङ्कर वे ही ऐसे विचित्र धनुष-बाणको धारण करनेवाले धनुष-धारी, वीर लड़ाका वा शिकारी हुए। उन्होंने जानवररूप अज्ञानी मनुष्योंके छाती, कान, ताक-ताक करके तेज नुकीली षट् बाण मार दिये हैं, जो ऐसी धसी है कि— अभीतक वह निकल नहीं सकी। अर्थात् जीव, पुदगल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश, इन्हीं छः को अनादि

षट् द्रव्य बतायके दृढ़ा दिये हैं। उसी कल्पनाकी मारमें पड़के जैनी लोग भ्रमिक, बुद्धिहीन भये हैं। बिना पारख व्यर्थ ही नर-जन्मको धोखेमें गमाये। वे ही वाणी एक-दूसरेको दृढ़ाके मारामारी कर रहे हैं। कठिन बन्धनोंमें फँसते जा रहे हैं, बिना विवेक ॥१३१॥

साखीः—यहि छौ बाणके लागते। जैनी भये अचेत ॥
लागी मूर्छा कर्मकी। दुःख भोगै सुख हेत ॥ १३२ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और यही छौ बाण=जीव, पुद्गलादि षट् द्रव्यको सत्य बतानेवाली कल्पित वाणीको कानसे सुनके चित्त लगायके हृदयमें जाके लगते ही सब कोई जैनी लोग उसे सत्य मान-मानके, अचेत=गाफिल, बेहोश, बुद्धिहीन भ्रमिक, जड़ासक्त हो गये। अब उन्हें कर्मकी बड़ी जबरदस्त मूर्च्छा लग गई, नाना कर्म साधनोंमें प्रवृत्त हो गये। मुक्ति सुखमें, हेत=प्रेम लगाके जन्म भर साधना करनेमें कठिन-कठिन दुःख-ही-दुःख भोगते रहते हैं। और कितनेक जैनी लोग तो चालीस-चालीस दिनतक निराहार निर्जल व्रत रहके दुःख भोगते हैं। दाढ़ी, मूँछ, शिरके बाल नोचते, नुचवाते हैं, उसमें अति कष्ट सहते हैं, कोई नङ्गे रहके शीत, उष्णके ताप सहते हैं, इत्यादि कई प्रकारके दुःख ही जान-बूझके भोगे और भोग रहे हैं। सुख, सिद्धि, कल्याण, मुक्ति आदिमें मन लगायके उसके लिये जीवन भर दुःख भोगते हैं, फिर मरकर अध्यास वश चौरासी योनियोंमें जाके भी दुःख ही भोगते रहते हैं। बिना पारख उन्हें कभी सुख स्थिति नहीं मिलती है ॥ १३२ ॥

साखीः—काली कुत्ती ऋषभकी। साधन जुत्ती खाय ॥
चोर अठारह दोष पर। षट मुख भूकै धाय ॥ १३३ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! ऋषभदेवकी काली कुत्ती साधनोंके जुत्ती, जूठी खाय-खायके अठारह दोषरूपी चोरोंपर दौड़-दौड़के छः-छः मुखोंसे भूकती है॥ अर्थात् काली स्याहीसे सफेद

कागजमें लिखी हुई, कुत्ती = कूती हुई या आँकी हुई, अन्दाज की हुई कल्पित वाणी ऋषभदेव आदिकी बनाई हुई, पालतू कुतियावत् भई। सो जैनियोंके घर, मठ-मन्दिरोंमें रहके वहाँ आनेवाले साधकोंकी जूती चुरा-चुराके एक कोनेमें बैठके खाती जाती है। यानी उपवास आदि साधनोंमें जुट करके कष्ट खाते हैं, दुःख सहते जाते हैं। और हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, आदि तन, मनके १८ दोषरूपी चोरोंपर खबरदारी करके शिष्यमण्डलीमें जहाँ-तहाँ जैन लोग धाय-धायके कूकुरवत् चिल्लाय-चिल्लायके भूँकते हैं, या उपदेश प्रचार करते-फिरते हैं। और षट् द्रव्यको मुख्य सर्वश्रेष्ठ अनादि बतायके दृढ़ाते हैं। आखिरमें उन्हीं चोरोंके द्वारा मारे जाते हैं। जड़ाध्यासी होके आवागमनके दुःख भोगते रहते हैं ॥ १३३ ॥

साखीः—— काली बिल्ली ऋषभकी। षट पकवान बनाय ॥
आई यति होय जैन घर। भोजन कछू न खाय ॥ १३४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और ऋषभदेव आदिकी बनाई हुई, काली बिल्ली = काली स्याहीसे लिखी हुई कपोल कल्पित वाणी बिल्लीवत् म्याऊँ-म्याऊँ करती है। भ्रम कल्पनाको दृढ़ाती है। और उस वाणीने, षट् पकवान = षट्रस निर्मित व्यञ्जन मिठाईके समान, षट्-द्रव्य = जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, और आकाश, इन छः को अनादि सत्यवस्तु कहकर बड़ी मीठी वाणीमें सुन्दर रोचकता बनाय-बनायके कहे, सुनाये, तैयार किये। वही वाणीके मानन्दी यति = साधु, त्यागीहोयके जैनियोंके घरमें आई, अर्थात् जैनी गुरुवा लोगोंके उपदेश सुन-सुनके कई लोग जैनमतमें प्रविष्ट होके यति भये, खूब कष्टकर साधनाएँ करने लगे। फिर कभी उपदेश प्रचार करनेके लिये जैनी सेवकोंके घरोंमें आये। तो उनसे सेवकोंने कहा— महाराज ! भोजन कीजिये ! यति कहते हैं— आज हमारा व्रत है, अमुक उपवास है, फलाना प्रायश्चित्त है, ऐसा योग नक्षत्र है, वैसा अनुष्ठान है, हमने इतने दिनतक—३। ७। १५। २५। ४० दिनों तकका उपवास-निराहार

रहनेका सङ्कल्प किया है, इसीसे हम कुछ तबतक खायेंगे-पियेंगे नहीं, केवल तुम्हें उपदेश देके जायेंगे, ऐसा कहके भोजन कुछ खाते ही नहीं। मिथ्या भ्रम चक्रमें पड़के नाना कष्ट, क्लेश सहते हैं, जड़ाध्यास न छूटनेसे मुक्ति तो उनकी कुछ होती नहीं है। उल्टे महाबन्धनोंमें बँध जाते हैं। अतः सद्गुणरूप भोजनको वे कुछ ग्रहण नहीं करते हैं, बिना पारख ॥ १३४ ॥

साखीः— कबीर जैनीके हिये। बिल्लीकी इतबार ॥
साधन व्यञ्जन मोक्ष हित। सौंपेउ तेहि भण्डार ॥१३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जैन मतावलम्बी जैनियोंके हृदय या अन्तःकरणमें, बिल्ली = चौबीस तीर्थङ्करोंकी बिल-बिलाई हुई या चिल्लाई हुई कल्पित वाणीका ही बड़ा इतबार = विश्वास या निश्चय प्रतीति हो रही है। जो २४ गुरुओंने कहे, सो अक्षरशः सत्य है, ऐसा समझ रहे हैं। और मुये मुक्ति मान करके उसी मोक्ष प्राप्तिके लिये खूब प्रेम बढ़ाकर, व्यञ्जन = छत्तीस अक्षर वा सोलह स्वर संयुक्त ५२ अक्षरोंसे बनी हुई नाना वाणीके प्रमाणसे, उपवास, ध्यान, धारणा, समाधि आदि नाना कठिन-कठिन साधना, तपस्या करने लगे। ज्ञानखानी सद्गुणका भण्डार यह मनुष्य जन्म है। परन्तु अन्धविश्वाससे कुछ भी विवेक, विचार किये बिना ही उसी वाणी कल्पनामें लगके अपने अमूल्य मनुष्य-जीवनको गुरुवा लोगोंको सौंप दिये। धोखेका साधनाएँ करके जन्म बिताने लगे। मोक्षके लिये साधनोंका व्यञ्जन बनाये, उसी कल्पनाके भण्डार भण्डारी वाणीको सुपुर्द कर दिये। फिर जैसे गुरुवा लोगोंने बताये, वैसे ही साधना करके, आयु बिताके मरे, जड़ाध्यास वश चौरासी योनियोंमें पड़े, बिना विवेक ॥ १३५ ॥

साखीः— काली कुत्ती ऋषभकी। अनादि दन्त खट चोख ॥
साधन बन ही खेदिके। मारै सावज मोख ॥१३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! जैनियोंके पूर्वाचार्य

गुरुवा लोग ऋषभदेव आदिकी, काली कुत्ती = कल्पित वाणी स्याहीसे लिखी हुई ग्रन्थरूपमें रक्षण-प्रतिपालन कर रखे हैं। उसके मुखमें मुख्य अनादि कालसे, दन्त खट = षट् द्रव्य स्वयं नित्य सत्य है, ऐसी कल्पनाके दाँत, चोख = तीक्ष्ण नुकीली भालावत् चुभनेवाली लगी हैं। यानी षट् द्रव्यको सत्य बताना, वही उनके प्रधान सिद्धान्त है। और सावज = वनके पशुवत् संसारी अबोध नरजीवोंको, मोख = मरे उपरान्त मोक्ष प्राप्तिके आशा-भरोसा दे करके, वही काली कुत्ती-वाणी उनके पीछे लग पड़ी, और नाना प्रकारके कठिन-कठिन साधना-रूपी महावन या भारी जङ्गलमें ही खेदिके = खदेड़-खदेड़ करके या दौड़ा-दौड़ा करके बहुत-बहुत कष्ट, क्लेश भोगाके, थकाकर, अन्तमें दाव-घात पाके, जड़ाध्यासी बनाके, सब साधकोंको मार डाले हैं। और वैसे ही अभी भी नष्ट-भ्रष्ट कर-कराके मार रहे हैं। उस शिकारी कुत्तीवत् वाणी कल्पनासे कोई भी जैनी लोग बच नहीं सके, बिना पारख धोखामें पड़े हैं ॥ १३६ ॥

साखीः—कबीर बानी ऋषभकी। रानी भई सरदार ॥
जैनीके शिर मारिया। साधन दुःख पैजार ॥१३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! ऋषभदेव आदि २४ तीर्थङ्करोंकी कल्पित वाणी जैनियोंके यहाँ जाके महारानी साहिबा भई और वही, सरदार = सर्वश्रेष्ठ, प्रधान सबपर हुकूमत चलानेवाली, सर्वमान्य, अगुवा भी होती भई। उसी वाणीरूपी रानीके आज्ञामें सब जैनी लोग चलने लगे। परन्तु उसने जोशमें आके, पैरसे जूता निकालके, साधक प्रजाओंके शिरमें ठोंकने, मारने लगी, सोई जैनियोंके शिरमें कल्पनाके बोझा चढ़वाके, नाना कष्टकर साधना-रूपी, पैजार = जूता ठोंक-ठोंकके खूब मारती भई। साधना कर-करके महादुःख भोगते भये, बेहाल हुये। परन्तु मुक्तिका कुछ कार्य सिद्ध नहीं हुआ। अतः चौरासी योनियोंके गर्भवासमें पड़के अँधियारी कोठरीके कैदी बने। सब जैनी लोग इसी प्रकार बद्ध-कैदी होते जा

रहे हैं। वह दुष्ट रानी अभी पैजार शिरमें मार-मारके साधनोंमें दुःख ही भोगा रही है। अन्तमें कैदी बनाके चौरासी योनियोंमें ही डाल देती है, तो भी उसको नहीं छोड़ते हैं, यही आश्चर्य है ॥ १३७ ॥

साखी:—कबीर चोरवा जैन घर। मारै साधन सेंधि ॥
सुख धन मूसै तिनहिको। रहा सकल दुःख बेधि ॥१३८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे नरजीवो! और उन जैनियोंके घररूपी अन्तःकरणमें, चोरवा=कल्पना, वाणी और गुरुवा लोग कट्टर चोर बनके, सेंधि=सेंध लगाके कानके पासका दिवाल फोड़-फोड़कर उसी कानके छिद्रसे भीतर हृदयमें घुस पड़े और अचेत सोये हुए जैनियोंको पहिले तो साधनोंके मारसे खूब मारे, शिथिल किये। फिर कसकर वाणीकी रस्सीसे धोखेकी खम्बेपर कसकर बाँध दिये, फिर उन्हीं जैनी बनियाँ लोगोंके, सुख धन=जीवन्मुक्ति सुख देनेवाली धनरूप विवेक-विचार, पारखदृष्टि, सत्य, धैर्यादि, सद्गुण लक्षणादि सब रत्न धन सम्पत्ति उन चोररूपी वाणी-गुरुवा लोगोंने मूसै=सर्वस्व चुरा लिये, लूट लिये, हरण कर लिये और भागते समयमें कल्पना भ्रमकी छूरी उनके शरीरमें भोंक गये या घुसेड़ गये। इसीसे अब सकल जैनियोंकी तन, मनमें हाहाकार करके दुःख-ही-दुःख बेध रहा है, छेद रहा है। उसीमें तड़फ-तड़फके व्याकुल हो रहे हैं। त्राहि-त्राहि मचा रहे हैं। अब क्या करें विचारे निर्धन, निर्बुद्धि और जख्मी, दुःखी होके मरे जा रहे हैं। बिना पारख ॥ १३८ ॥

साखी:— ऋषभ आदि जेते जैन। अव्याकृत गुण भूल ॥
जिन षट द्रव्य बुझाइया। हैं सो कारण मूल ॥१३९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे मनुष्यो! जैनियोंके आदि गुरु सर्वप्रथम ऋषभदेव भये, फिर उनके शिष्य परम्परासे महावीर तक २४ तीर्थङ्कर भये। सो ऋषभदेव आदिसे लेकरके जितने भी जैन-

मतावलम्बी उपदेशक गुरुवा लोग भये हैं, वे सबके-सब, अव्याकृत = मायारूप वाणी कल्पना कृत उसके गुण मिथ्या सिद्धान्तरूपी नाना विषय, प्रपञ्च, धोखामें निजस्वरूपको एकदम भूल गये और भूले पड़े हैं। जिन्होंने षट्द्रव्य = जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, काल, और आकाश इन्हें अनादि षट्द्रव्य कहके सत्य बतलायके, समझाये-बुझाये हैं, उपदेश दिये हैं। सो उसका मूल कारण मन कल्पनाकृत वही वाणी ही है। जिन्हें वे सत्य मानते हैं, वही भ्रम, भूल, अविद्या, महाअज्ञान है। बिना पारख धोखामें भूलके, उसी खाँचमें गिर पड़े। अर्थात् सब जैनी लोग वाणीके मिथ्या विषयमें भूले हैं, जिन्होंने षट्द्रव्यको ही सत्य समझायके दृढ़ाये हैं, सो उसका मूल कारण अज्ञानता ही है। और सोई भूल जीवको चौरासी योनियोंके जन्म-मरणादिमें लेजानेका बीज मूल कारण है। अतः परखकर उसे त्यागना चाहिये। पक्षपातको छोड़कर सत्यसारको ग्रहण करना चाहिये ॥ १३९ ॥

साखीः— कबीर जोपै मुक्ति होय । क्षुधा पिपासा छोड़ि ॥
तो पुनि काहे अहार दै । जैनिकी मैय्या भोड़ि ॥१४०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जो यदि जैनी लोगोंके कथन और मान्यताके अनुसार ही क्षुधा, पिपासा = भूखे, प्यासे रहके चालीस दिनतक निराहार, निर्जल व्रत, उपवास करके प्राण छोड़ देनेसे या भूखों मर जानेसे ही जीवकी मुक्ति, बन्धनसे छुटकारा होती होवे, तो फिर जैनियोंकी माता, अपने बच्चोंको, आहार, खुराक दे-दे करके, क्यों जिलाती हैं? पालन-पोषण क्यों करती रही? और इन जैनियोंको अब क्यों आहार-भोजन दिया जाता है? सबके सब निराहार रहके, भूखों मरके, मुक्त क्यों नहीं हो जाते? भोजन खाय-खायके जीकर क्यों बन्धनोंमें पड़ रहे हैं। मुक्तिका सीधा रास्ता जानके भी फिर बन्धनोंमें ही पड़े रहना, क्या यह बड़ी मूर्खता नहीं है? अरे! यह जैनियोंकी माताएँ तो आहार

दे-देकर सन्तानोंको जिलाके बन्धनोंमें डाल देनेवाली बड़ी भोली-भाली महाअज्ञानी मूढ़ ही ठहरीं कि नहीं ? और उनकी वाणी भी अज्ञानकी है। हे भाई! बिना सोचे-विचारे, ऐसी बेहूदी बात क्यों करते हो, भूखों मरनेसे मुक्ति बतानेवालोंको कुछ जरा सङ्कोच, शरम भी नहीं आयी। मनमाने सो वैसे बक दिये। उनकी समझसे तो अकालमें भूखों मरनेवालोंकी तो सहज हीमें मुक्ति हो जाती होगी? फिर त्याग, वैराग्य, ज्ञानका क्या काम है ? महागाफिलीमें पड़े हैं। ऐसे अनसमझ लोगोंसे किसीकी भलाई हो नहीं सकती है ॥ १४० ॥

साखीः—– जैनिकी मैय्या जैन घर । जैनी धर्म कमाय ॥
साधन गुण जानत रही । काहे दूध पियाय ॥ १४१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैनियोंकी माताएँ और वाणी जैनमतवादियोंके घरमें रहके, जैन-धर्मको पालनेवाली हो करके, जैनमतके अनुसार, धर्म-कर्मकी कमाईकर, बटोरके जमा करनेवाली होती हैं। अथवा जैनियोंने जो कुछ धर्मको कमाये हैं, उसे उनकी माताएँ ही सम्हालके रखनेवाली होती हैं। इसलिये साधन, उपवासके बड़े भारी गुणको तो वह अच्छी तरहसे जानती ही रहीं कि—निराहार रहके भूखे-प्यासे मरनेवालोंकी सहज ही मुक्ति होती है। यह उन्हींके मतके सिद्धान्तको वह जानती ही रहीं। फिर अपने-अपने बालकोंको उन्होंने क्यों दूध पिलाया ? खिला, पिला, जिलाके, पालन-पोषणकर, क्यों बन्धनोंमें डाल दीं ? यदि उन्हें जन्मते ही उपवास कराके निराहार रख देतीं, तो वे जल्दी ही मुक्त हो जाते। फिर बड़े होकर उन्हें इतना बड़ा कष्ट सहना न पड़ता। परन्तु उसे बालहत्या समझकर वे वैसा नहीं करतीं, सो तो ठीक है। तो भी वे मूढ़ मतिके लोग भूखों मरके हठसे धर्मके नामसे आत्म-हत्यारूपी महापाप ही करते-कराते हैं। इससे वे बड़े पापी होते हैं, चौरासी योनियोंमें पड़कर, उसीका दुःख-फल भोगते रहते हैं। अतः जान-बूझकर कभी किसी प्रकारसे भी आत्मघात नहीं करना

चाहिये। ऐसे अविचारी महा निर्दयी हिंसकोंका भी सङ्ग, साथ नहीं करना चाहिये ॥ १४१ ॥

साखीः— वेश्या औ जैनी यती । दो पन्थ एकै आहि ॥
मोल खरीदी वेश्या । जति सो मोल बिसाहि ॥१४२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे भाई ! बाजारू व्यभिचारिणी स्त्री-वेश्याओंके और जैन धर्मको पालनेवाले, जैनी यति = साधु, भिक्षु, महन्त आदिकोंकी कहनेको तो दो तरहके पन्थ = मार्ग, चाल, रास्ता अलग-अलग हैं, परन्तु उन दोनोंके मुख्य मतलब, सिद्धान्त, एकै = एक सरीखी ही, आहि = है । सो कैसे कि, इधर वेश्या तो मोल खरीदी करनेवाले भाड़ेके पुरुषोंको तन अर्पण करके विषय कराती हैं । और बहुत-सा रुपया देकरके गरीबोंकी लड़कियाँ खरीदकर उन्हें बड़ी बनाके, अपने समान वेश्या बनाके, फिर धन कमाके जमा करती रहती हैं । तैसे ही उधर जैनी लोग भी गरीबके बालकोंको, मोल = कीमत, धन देकर खरीद लाते हैं, फिर जैन धर्ममें दीक्षित करके सो उसे, यति = साधु बनाते हैं । उसके द्वारा उपदेश कराके पुजवाके धन कमाईकर मठ-मन्दिर आदि बनाते हैं, और उसी प्रकार अपने मतका धर्म प्रचार करते रहते हैं । अथवा पेट पालनेके लिये वेश्या विषयकी व्यापार करती हैं, और इधर, मोल = अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये यति लोग सो अपने मण्डलीमें, विसाही = ज्ञानके व्यापार करते-फिरते हैं । और जैनियोंके एक पन्थमें यति लोगोंने भग भोगनेका कुकर्म भी चलाये हैं । तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक रमैनी ३० में कहा हैः—

"मन्मथ बिन्दु करै असरारा । कल्पै बिन्द खसे नहिं द्वारा ॥
ताकर हाल होय अदबूदा । छौ दर्शनमें जैनि बिगूर्चा ॥" बी० र० ३० ॥

इस प्रकार वेश्यावत् जैनियोंके पन्थमें भी व्यभिचारका प्रचार हो रहा है । उनके यति, महन्त, सेवक सब लोग मिथ्या धोखामें ही गाफिल पड़े हैं, बिना पारख ॥ १४२ ॥

साखीः— मोल खरीदी मुण्डिया । मुये मुक्ति मुकाम ॥
कहहिं कबीर यह जगतमें । जैनिके यती गुलाम ॥ १४३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— हे सन्तो ! जैनियोंके पन्थमें रुपया देकर लड़कोंको मोलमें खरीद लेते हैं, फिर उसे मूँड़ मुड़ायके मुण्डितकर चेला बनाय लेते हैं, जिसे यति या साधु, भिक्षु, मुण्डिया, कहते हैं । पीछे वे मुण्डिया लोग लुञ्चित कर्म = नोच-नोचके बाल उखाड़कर महाकष्ट सहते हैं । मोल खरीदके मुण्डिया बनानेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, ऐसी उल्टी समझ रखते हैं । और मृत्यु होनेपर, मुकाम = चन्द्रमुक्त शिलामें जाके ठहरकर मुक्ति होयगी, ऐसी आशा लगाये रहते हैं, मिथ्या धोखामें ही पड़े हैं, अतएव सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखके ज्ञाता पारखी सन्त कहते हैं— इस जगत्में इन जैनियोंके यति = साधु, भिक्षु लोग तो अविचार मिथ्या मानन्दीसे कल्पनाके, गुलाम = दास, तुच्छ, नीच ही बने हैं । कर्मके गुलामी ही कर रहे हैं । जीतेमें भी उन्हें कुछ सुख नहीं मिलता है, और मरे पर भी चौरासी योनियोंमें पड़के नाना दुःख ही भोगते हैं । मुये मुक्तिकी आशा व्यर्थ ही हो जाती है । बिना पारख, वे कर्मोंके बँधुवे हो रहे हैं ॥ १४३ ॥

साखीः— कबीर तीर्थङ्कर जैनिके । किये अमोक्षी बाच ॥
मुक्ति कहैं पुदगल छुटै । ग्रन्थ किये सब काँच ॥१४४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! जैनियोंके गुरुवा लोग २४ तिर्थङ्कर जो हुए हैं, उन्होंने, अमोक्षी = जहाँ जिसमें मोक्ष या मुक्ति नहीं हैं, ऐसे मुक्तिसेरहित बन्धनके ही बाच = वाणी, उपदेश वर्णन किये और पुस्तकें भी लिख-लिखाके तैयार किये हैं । जब कि वे लोग, पुदगल = शरीर छूटनेपर ही मुक्ति मिलेगी, ऐसा कह गये वा लिख-लिखाके गये, और अभी भी मुये मुक्ति कह रहे हैं, वैसे ही मान रहे हैं, अगर वह बात

ठीक है, तो फिर जितने ग्रन्थ या पुस्तकें उन्होंने तैयार किये हैं, वह सब कच्चा, झूठा, असत्य कथनसे भरा हुआ, बन्धनका ही वाणी जाल ठहरा। क्योंकि, ग्रन्थ लिखने-लिखानेका काम शरीर सहित ही होता है, उनके सिद्धान्तमें देह रहे तक बन्धन है, फिर बन्धनके भीतर रचा हुआ ग्रन्थ सब भी असत्य हुआ। क्योंकि, मुक्ति स्थितिको तो उन्होंने जाने ही नहीं, और यावत् साधनाएँ भी व्यर्थ ही हुयी, बन्धन भीतरके सारे कर्म साधनाएँ भी महाबन्धनमें डालनेवाली ही साबित हुई। इस युक्तिसे तो मरनेपर भी कोई जैनोंको मुक्ति नहीं मिल सकेगी। देहरहित होनेपर उनसे कोई साधना तो हो सकेगी ही नहीं, और बिना देहके उपदेश, तथा ग्रन्थ भी कुछ बन नहीं सकेगा। अतः उनके सब प्रयास व्यर्थ ही हुये। शरीर छूटनेपर मुक्ति कहनेवालेका किया हुआ सब ग्रन्थ, पन्थ ही काँचा (कच्चा) बेकार है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १४४ ॥

साखीः—मोक्ष मुख चुंमन लगे । छौ घुनि घुनि बजाय ॥
मारि तमाचा साधना । पटके जब खिसियाय ॥१४५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! सब जैनी लोग, छौ घुनि-घुनि = षट् द्रव्य अनादि कथनरूप बाजा, घुँघुरू, झाँझ, डमरू, पखावज आदि बजाय-बजायके खुशीके मारे नाचकर नाना कर्म करके मुख्य करके मोक्षका मुख चूँमने, चाटने लगे। अर्थात् मुक्ति प्राप्तिके लिये बड़े प्यारसे—प्रेमपूर्वक जड़मूर्तिका मुख चूमके कर्म धर्म करने लगे। वाणी, कल्पनाका 'बोसा' लेने लगे। उधर कल्पनाने उनके मुखपर एक जोरका, तमाचा = थप्पड़, पञ्जा मारा और अलोयणा-प्रायश्चित्त, उपवास, तपस्या आदि कष्टकर कर्मके साधनाओंमें उन्हें लगाया। साधना करके मरो, तो मुक्ति मिलेगी, ऐसा बताया। जब जैन लोग मूढ़ होके, खिसियाये, तलमलाये, तो शरीर, मनको जहाँ-तहाँ, पटके = पटक करके अपने भ्रम चक्रमें पड़े और दूसरे मनुष्योंको भी भ्रमाय दिये, धोखामें डाल दिये। इसी

प्रकार व्यर्थमें आयुको बिताकर, लाचार होकर, चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होते भये, बिना पारख ॥ १४५ ॥

साखीः— साधन सब लावा लखै । सिद्धि लखै सो बाज ॥
शब्द विवेकी पारखी । सिद्धनके शिरताज ॥१४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— और हे सन्तो! भ्रमिक मनुष्य सब संसारमें साधु भी हो जाते हैं, तो भी अविवेकी होनेसे लावा = बटेर, एक गरीब निर्बल पक्षीकी तरह लक्ष रखनेवाले दीन, हीन, मलीन दिखाई देते हैं। इसीसे साधना करनेवाले, ऐसे साधकोंको सब कोई लावाके समान, निर्बल तुच्छ लखते हैं, और बाज पक्षी जैसा बलवान् हिंसकी क्रूर होता है, वह चिड़ियोंको मार-मारके खाता है। तैसे ही जिस किसीमें बाजीगरी-तमाशावत् सिद्धि करामात, मन्त्र-सामर्थ्य, चटक, मटक, चातुरी, आदि मिथ्या पाखण्ड लखनेमें आता है, सो उसीको संसारी मूढ़ लोग सिद्ध महात्मा समझके, महिमा बढ़ाते हैं। अर्थात् सब लोग साधक अवस्थामें साधनोंमें लगके लावाके नाईं दीन लखाई देते हैं। और जब वे ही सिद्ध बनके सिद्धि आदि करामातके अभिमानी होते हैं, तो सोई बाजवत् क्रूर, कठोर, दम्भी लखनेमें आते हैं। वे सिद्ध-साधक दोनों ही वाणी कल्पनाके चक्रमें बद्ध पड़े हैं। उन्हें शब्दका पारख नहीं है। इसीसे भ्रम चक्रमें पड़े हैं, और काल, सन्धि, झाँईं तत्त्वमस्यादि सकल शब्दोंको निर्णय करके सार-असार, जड़-चैतन्यके विवेक करनेवाले जो सन्त होते हैं, सोई शब्द विवेकी, पारखी कहलाते हैं। ज्ञानी, योगी, भक्त, और सब सिद्ध महात्मा अनुभवी समाजोंमें आप पारखी सन्त ही स्वयं सिद्ध सब सिद्धोंके शिरताज = शिरमौर, शिरके मुकुटवत्, सर्वोपरि, सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, पूजनीय होते हैं। अर्थात् सबसे बढ़कर पारखी सन्त होते हैं। वे ही सब खानी, वाणीके कसर-खोट परखायकर स्व-स्वरूप पारखका बोध

कराय देते हैं। अतः पारखी सद्गुरुके शरण ग्रहण करके पारख पाय, जीवन सफल करना चाहिये ॥ १४६ ॥

साखीः—सेव्य सेव्य सब कोइ कहैं। सेव्य न जानै कोय ॥
सेव्य कहत हैं सेवकहिं। लघुता गुरुता होय ॥१४७॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे अन्य सम्प्रदायमें शिष्टाचारसे अभिवादन करते समय नमस्कार, प्रणाम, दण्डवत्, राम-राम, नारायणहरि, नमोनारायण, सत्यराम, सत्यनाम, वाहे गुरुजी, आदेश—महाराज, चरणस्पर्श, इत्यादि करते हैं, और मुसलमान तथा अंग्रेजोंमें सलामवालेको सलाम, आदाबरत, गुड्मार्निङ्, इत्यादि करने कहनेकी चाल, परिपाटी चलाये हैं। तैसे ही जैनमतवादियोंमें भी परस्पर मिलतेमें "सेव्य-सेव्य" कहनेकी चाल चला रखे हैं। अब देखिये! सब कोई जैनी लोग बारम्बार एक-दूसरेसे मिलनेपर सेव्य-सेव्य तो कहते हैं, परन्तु सेव्य शब्दका अर्थ या खास मतलब को तो वे कोई भी नहीं जानते हैं। अगर जानते होते, तो जो जैन नहीं हैं, उनसे घृणा क्यों करते? सब दीन-दुःखी प्राणियोंकी सेवा क्यों नहीं करते? इसीसे वे सेव्यका भाव कोई नहीं जानते हैं। वास्तवमें सेवा करनेवाले सेवकको ही सेव्य कहते हैं, सेवा-से ही मेवा मिलता है। यदि सेवा करनेवाले न हों, तो फिर सेवा लेनेवाले कैसे सेव्य हो सकते हैं। सेव्य-सेवक भावको ही गुरु-शिष्य भाव कहा है। तहाँ सेव्य=पूज्य, सेवा करने योग्य श्रेष्ठ होते हैं। और सेवक सेवा करनेवाले शिष्य होते हैं। सेवक ही स्वामीके प्रति सेव्य कहते हैं। इसीसे लघुता शिष्यत्त्व करके ही गुरुता-गुरुत्त्वकी सिद्धि वा स्थापित होती है। यानी लघुता करके ही गुरुताकी प्राप्ति होती है। कहा हैः—

साखीः—"सबते लघुता भली। लघुतासे सब होय ॥
जस दुतियाको चन्द्रमा। शीश नावै सब कोय ॥" ॥बीजक, साखी ३२३॥
"लघुतासे प्रभुता मिलै, प्रभुतासे प्रभु दूरि ॥
चींटी ले शक्कर चली, हाथीके शिर धूरि ॥" साखी संग्रह ॥

इसीसे कहा है कि, लघुता, दीनता धारण करके पारखी साधु गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगे रहनेसे ही गुरुपद पारख प्राप्त करनेके अधिकारी होते हैं। परन्तु ये जैनी लोग ऐसे पारखी सन्तोंकी सेवा-सत्सङ्ग विचार तो कुछ करते ही नहीं झूठे ही सेव्य-सेव्य चिल्लाते फिरते हैं, इसीसे उन्हें सत्यज्ञान पारखकी प्राप्ति भी नहीं होती है ॥ १४७ ॥

साखीः— कबीर गुरु बिन सम्प्रदा। देखा और न कोय ॥
और सम्प्रदा जो कहै। ताहूके गुरु होय ॥ १४८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो ! संसारमें जितने भी मत, पन्थ, सम्प्रदाय, मार्ग, मजहब, धर्म, फिरके, इत्यादि चले हैं; उन सबके संस्थापक, प्रवर्तक, प्रचारक, गुरु-गुरुवा लोग भये हैं। गुरुके बिना वैसे ही कहीं कोई सम्प्रदाय प्रगट भया हो, ऐसा तो कहीं देखा नहीं गया है, और कोई है भी नहीं। परन्तु वेदमत निराकार, ईश्वरसे चला, तथा कुरान मत बेचून-बेनमून खुदासे चला, ऐसा कहते हैं। वह बड़ा आश्चर्य और असम्भव होनेसे असत्य कथन है। और गौतमबुद्ध, तथा ऋषभ-देवके भी कोई गुरु नहीं थे, ऐसा कहते हैं। और उन्होंने स्वयं ज्ञान प्राप्त करके सम्प्रदाय चलाया, जो ऐसा कहते हैं। तो सुनो ! उन्होंके भी पहिले शिक्षा-दीक्षाके गुरु, विद्या-गुरु, साधक-गुरु इत्यादि कईएक गुरु हुए ही थे। उन्हीं गुरुओंसे वाणी सीख-सीख करके पीछे अपने मनमें जैसा निश्चय भया, वैसा मन-मानन्दी कल्पनाका उपदेश दे करके वे गुरुवा बन गये थे। इसलिये कायावीर कबीर, जीवके ज्ञानगुणका प्रकाश शरीरमें हुए बिना तो निर्जीवसे कोई सम्प्रदाय नहीं चला। जड़से मत, पन्थ कहीं चला हो, क्या तुमने ऐसा देखा है ? तुम हीं क्या और किसीने भी ऐसा देखा नहीं है। नास्तिक, भौतिकवादी इत्यादि लोग और-और सम्प्रदाय जो कहते हैं, सो उन्होंके घटमें भी गुरु=चैतन्य जीवका बास है, तभी ऐसे-ऐसे

मनमाना कल्पनाकर सकते हैं, एक-न-एक गुरु तो सबके हुए हैं, परन्तु कल्पनामें पड़े हुए भ्रमिक ही सब हुए हैं। पारखी सद्गुरु कोई बिरले ही होते हैं ॥ १४८ ॥

साखीः—— कबीर जो बेगुरुमुखी । तेहि ठौर न तीनों लोक ॥
चौरासी भरमत फिरै । सो गहि नाना शोक ॥१४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! बेगुरुमुखी = वे दोनों हिन्दू, तुरुक मतवादियोंमें जो-जो मनुष्य सद्गुरु पारखी सन्तसे बिमुख, विरुद्ध हैं, पारखबोधसे हीन हैं, और चैतन्य जीवके स्वरूपको सत्य जानते या मानते नहीं, सोई गुरुद्रोही, मन्मुखी हैं। ऐसे मूढ़, पक्षपाती, अविचारी, नरजीवोंको, तीन लोक = स्वर्ग, मृत्यु, पातालमें अथवा तीन गुण, तीन शरीर, भक्ति, योग, ज्ञान, इत्यादि तीनों ठिकानेमें जाकरके भी उसे कहींपर भी ठौर, स्थिति, शान्ति, मुक्ति, मिल नहीं सकती है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक रमैनीके साखी ४३ में कहा हैः—

साखीः— "गुरुद्रोही मन्मुखी । नारी पुरुष विचार ॥
ते नर चौरासी भरमि हैं । ज्यौंलौं चन्द्र दिवाकार ॥" बी० र० सा० ४३ ॥

इस प्रमाणसे गुरु पारखसे विमुख जो हैं, उसे तीनों लोकोंमें कहीं भी ठहराव नहीं मिल सकता है। जड़ाध्यासवश, आवागमनके चक्रमें पड़के सो जीव नाना शोक, सन्ताप, कष्ट, त्रयताप आदिको ही पकड़-पकड़ करके चारखानीके समूह चौरासी योनियोंमें ही भ्रमते या भटकते फिरते हैं। जीतेतक कष्टकर साधना करने-करानेमें दुःख भुगतके शोकमें पड़े रहते हैं, और देह छूटनेपर नाना योनियोंमें जाके दुःख भोगते हैं। जैसे दिनके पीछे रात, फिर दिन निकलनेका क्रम चालू रहता है। तैसे जन्म, मृत्यु, गर्भवासमें ही वह जीव पड़ा करता है। पारखबोधके स्थिति हुए बिना, मुक्ति नहीं मिलती है; यह निश्चय है ॥ १४९ ॥

साखीः–– विधि निषेध दुइ बातमें । वेद औ शास्त्र पुरान ॥
भावै कागज ले कहै । भावै मुख परवान ॥१५०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! संसारमें एक तो विधि वाक्य = मण्डन, प्रतिपादन करके, सिद्धान्त ठहराना होता है, दूसरा निषेध वाक्य = खण्डन विरोध करके, सिद्धान्त तोड़ना होता है। अपने सिद्धान्तको विधिपूर्वक मण्डन करके, दूसरेके सिद्धान्तमें कसर बताके विरोध करके खण्डन करते हैं। विधि और निषेध यही दो बातोंमें अपना मन्तव्य दरशा करके, चार वेद, उसके अनेकों शाखाएँ, उपनिषद् आदि तथा षट्शास्त्र, १०८ स्मृतियाँ, और अठारह पुराण, १८ उपपुराण, चौदह विद्या, इत्यादि अनेकों शास्त्र, ग्रन्थ, पन्थ, बने हैं, उनमें वही मनःकल्पित सिद्धान्त नानारूपमें दर्शाये हैं। परन्तु वहाँ कहीं भी कुछ पारख स्वरूपका यथार्थ बोध नहीं है। भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, यही चार-चार खूटोंमें सब अरुझे पड़े हैं। अब भावै = चाहे तुम या गुरुवा लोग कागजमें लिखी हुई, वा छपी हुई पुस्तकें, और पत्रोंको हाथोंमें लेकरके पढ़कर कहें, अर्थ करें या तुम भी वैसे ही पढ़कर कहो, अथवा देखे, सुने, कण्ठाग्र किये हुए वाणीको ही चाहे तो पुस्तक देखे बिना ही मेरे अनुभवका प्रमाण है, कहके मुख ही से धड़ाधड़ कहते जावें। तो भी सिद्धान्त वही विधि-निषेधका ही आवेगा। अद्वैत ब्रह्मको विधि करके जगत्को निषेध करना, यही वेदान्तका मुख्य सिद्धान्त कथन हुआ है। परन्तु बिना पारख मिथ्या धोखामें ही वे सब गुरुवा लोग पड़े हैं। अतः उन्होंके कुसङ्ग-त्याग करके, पारखी साधु गुरुके ही सत्सङ्ग विचार करना चाहिये ॥ १५० ॥

साखीः— विधि निषेध दुई बातमें । सकल बातको जान ॥
वाक्य विलास जहाँ करै। तहाँ विधि निषेधकी खान ॥१५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! विधि = मण्डन,

निषेध = खण्डन, मुख्य यही दो बातोंमें और सकल बात वाणी ग्रन्थोंकी सिद्धान्त समायी हुई हैं। वेद, वेदान्त, शास्त्र, स्मृति, पुराण, कुरान, कितेब, हदीश, रुवाई, मसला-मसल, दृष्टान्त, सिद्धान्त, इत्यादि सम्पूर्ण मत, पन्थोंकी यावत् पुस्तकें वाणी विस्तार खण्डन-मण्डन द्वारा ही बने हैं, ऐसा जानो, और जहाँपर भी जो कोई वाक्य विलास = बोल-चाल, वार्तालाप, सत्सङ्ग, प्रश्नोत्तर, शङ्का-समाधान, उपदेश, व्याख्यान, कथा, कीर्तन, इत्यादि करेंगे, अवश्यमेव तहाँ ही पर विधि-निषेध या खण्डन-मण्डन, वा प्रतिपादन, विरोधका खानी साबित हो जायगा। अर्थात् जहाँ गुरुवा लोग उपदेश देकर वाक्‌विलास, वचन चातुर्यता प्रगट करते हैं, तहाँपर अपना ठहराया हुआ कल्पित मतवाद, द्वैत, अद्वैत, विसिष्ठा-द्वैत आदि निज-निज सिद्धान्तको युक्ति-प्रयुक्तिसे परिपुष्ट करके फिर अन्यके मतपर कटाक्ष प्रहार करके, खण्डन करते हैं। परन्तु पारख बिना गुरुवा लोगोंका सब कथन भ्रमपूर्ण मिथ्या धोखा ही है, उसमें कुछ भी सार नहीं है। खानी, वाणीकी दोनोंका विस्तार जीवोंको बन्धन है। पारखबोधको ग्रहण करके उसे परखकर, त्यागके न्यारा होना चाहिये ॥ १५१ ॥

साखीः— जैसे पूर्वा पौनसे। फल जल फीका होय ॥
तैसे गुरु उपदेशते। फीका कर्म विलोय ॥ १५२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे या जिस प्रकारसे पूर्वा नक्षत्रमें जल वर्षनेसे तथा वायु चलनेसे उस मौसमके फल एवं जल स्वादहीन फीके हो जाते हैं। अथवा पूर्विया हवा कभी पूर्वदिशाके तरफसे जोर-जोरसे बहने लग जाती है, तो उसके लगनेसे भी फल तथा जल नीरस फीके हो जाते हैं। उसमेंका मिठास जाता रहता है, वायुके परमाणुमें ऐसी ही शक्ति रहती है, उसके स्पर्श होते ही फल-जलमें फीकापन आ जाता है। तैसे या उसी तरहसे सिद्धान्तमें, पूर्व = हंसपदकी, पौन = विचारसे पारखी

सद्गुरुके उपदेश गुरुमुख निर्णयकी वाणी सारशब्द श्रवण, मनन, करनेसे गुरुवा लोगोंकी रोचक, भयानक वाणी तथा चार फल, चार मुक्ति प्राप्तिकी आशा एवं उसके प्राप्तिके लिये बताया हुआ कर्म, उपासनादि साधनादि वह सब ही नीरस, फीका, व्यर्थ, असत्य, मनकी कल्पनामात्र, ठहर गयी। विलोय = छानबीन करके सत्यासत्यका निर्णयकर खानी-वाणीकी मिथ्या मानन्दी छोड़ देते हैं। इस प्रकार पूर्वापौनवत् पारखी सद्गुरुके उपदेशसे पारखबोध होनेपर सारासारके विचारसे सब कर्मको बिलोनेसे गुरुवा लोगोंका बताया हुआ, साधनोंका सब कर्म फीका असार व्यर्थ ही हो गया। सत्यसारको ग्रहण करके हंसजीव सब बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥१५२॥

साखीः— ज्ञान विचारत सकल जग। चौरासी दरशाय ॥
एक वृन्दाबनको चली। एक खड़ी होय जाय॥ १५३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! सब गुरुवा लोग सकल जीवोंको चौरासी योनियोंका डर दिखा-दिखा करके अपने-अपने मत-पन्थके सिद्धान्तोंका ज्ञान, विचार वर्णन करते-कराते हैं, और कोई एक ब्रह्मज्ञानी ज्ञान विचार करने लगे, तो सकल जगत्को ही एक ब्रह्म पूर्ण व्यापक ठहरा लिये। परन्तु उसीके भीतर चौरासी योनियोंका दुःख भी दरशाता है, तब तो बड़े व्याकुल होके बेहोश होते भये। इस तरह द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत ज्ञानका विचार करते-करते सकल जगत्के बेपारखी जीव जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंका दर्शन करनेको चले गये। जब गुरुवा लोगोंने चौरासी योनियोंका दुःख दरशाये, तब मनुष्य घबराके उससे बचनेके लिये नाना साधनाएँ करने लगे। एक तो उनमेंसे वृन्दावनके गलियनमें, कुञ्जोंमें, चार धाम, चौंसठ तीर्थोंमें, सप्तपुरियोंमें, ईश्वर, इष्टदेवता आदिको ढूँढ़नेके लिए चले गये। बाहर जहाँ-तहाँ तीर्थयात्री होके मारा-मारा फिरने लगे। और एक दूसरे बाह्य तीर्थोंमें न जाके कहीं एक स्थानमें खड़े होके ठहर जाते हैं, अन्तर

तीर्थ करते हैं। तहाँ वे वृन्दाबन = वीर्यसे बनी हुई शरीरके भीतर ही लक्ष लगायके सूक्ष्म इन्द्रियाँ, चित्त चतुष्टय आदिसे आनन्द, ज्योति, अनहद, आदिमें विलास करनेके लिये धारणा, ध्यान करते हैं, एक शून्य समाधि लगाके खड़े अचेत हो जाते हैं। कोई ठाढ़ेश्वरी आदि होते हैं। इस प्रकारसे मन कलपना अभ्यासमें पड़के फिर-फिरके चौरासी योनियोंमें ही उलट-पुलटके चले जाते हैं, बिना पारख॥१५३॥

साखीः—— एक ब्रह्म अखण्ड जो। करें आचार्य बखान॥
पूर्व पश्चिमके पण्डिता। केहि उपदेशत ज्ञान॥१५४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! वेदान्तके आचार्य व्यास, वशिष्ठ, दत्त, तथा शङ्कराचार्य आदिने ब्रह्मसूत्र, योगवाशिष्ठ, अवधूतगीता, भाष्य, आदिकोंमें युक्ति-प्रयुक्तिसे जो कि, एक ब्रह्म अखण्ड अद्वैत, व्यापक सत्य है, ऐसा दृढ़तासे वर्णन किये हैं। फिर अगर एक ही ब्रह्म सत्य है, द्वैत कुछ भी नहीं है, तो पूर्व = प्रथमके पूर्वाचार्य, तथा पश्चिम = पीछेके वेदान्ती पण्डित लोग इन सबोंने फिर अद्वैत ब्रह्मज्ञानका उपदेश किसे किये और किसे कह रहे हैं?। और पूर्वके वेदवादी हिन्दू धर्मोपदेशक लोग तथा पश्चिमके कुरानवादी मुस्लिम धर्मोपदेशक लोग भिन्न-भिन्न प्रकारसे ज्ञानका उपदेश किसको कर रहे हैं। एक ब्रह्म था, तो प्राचीन, अर्वाचीन समयमें नानामत, पन्थ, ग्रन्थ, क्यों, कहाँसे, कैसे निकले? इससे अद्वैत-मतका कथन सरासर मिथ्या है। एकमें कहीं उपदेश कहना, सुनना होता है? कभी नहीं। जब वे एक ब्रह्म भी कहते हैं, उपदेश भी दिये वा दे रहे हैं, इसीसे वे मिथ्यावादी भये हैं। यह मत असार मिथ्या होनेसे त्याज्य है॥ १५४॥

साखीः— मन बुद्धि वाणीको कहै। गम्य न ब्रह्ममें होय॥
ब्रह्म एकसो कौन कहै। पण्डित! कहिये सोय॥१५५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे सन्तो! जब कि, वेदान्ती

लोग ब्रह्मको अगम्य बतलाते हैं और मन, बुद्धि, वाणीका कुछ भी गम्य, पहुँच उस ब्रह्ममें नहीं हो सकती है, ऐसा कहते हैं। यानी मनसे सङ्कल्प-विकल्प, कल्पना करके वह जाना नहीं जाता है, निर्विकल्प है। बुद्धिसे निश्चय-निश्चयात्मक करनेमें वह नहीं आता है "यो बुद्धेः परतस्तु सः"—भ० गीता ३।४२॥ जो कि बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है; और वाणीसे वर्णन करके जानने-जनानेमें वह नहीं आता है, निःअक्षर अवाच्य है। इस प्रकार उन तीनोंके ब्रह्ममें गम्य नहीं होता है, ऐसा कहा है। जो यदि ऐसा ही है, तो फिर एक अद्वैत ब्रह्म सत्य है, सो कौन कहता है? किसने, किसको, कैसे कहा? अद्वैत ब्रह्म है, कहनेमें मन, बुद्धि, वाणी लगी कि नहीं? हे पण्डित! सो इसके यथार्थ भेद निर्णय करके कहिये। या तो तुम्हारा ब्रह्म सिद्धान्त मिथ्या हुआ, नहीं तो मन, बुद्धि, वाणीसे अगम्य ब्रह्म है, कहा हुआ यह कथन तुम्हारा मिथ्या हुआ। ब्रह्म ही भ्रमरूप मिथ्या धोखा है, उसे स्थापित करनेवाले मनुष्य जीव ही सत्य हैं, जो इस भेदको जानते हैं, सोई सच्चे पण्डित कहलाते हैं॥ १५५॥

साखीः— वेद नेति जेहि कहत हैं। जहाँ न मन ठहराय॥
बुद्धि वाणीकी गम्य नहीं। ब्रह्म कहा किन्ह आय?॥१५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे वेदान्ती लोगो! जिस ब्रह्मका पता वेदने भी नहीं पाया। जिसे वेद भी, नेति-नेति = न इति-न इति उसका अन्त, आखिरीका पता कुछ लगता ही नहीं, बेअन्त, अपार है, कहता है। वही बात ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं। और जहाँपर मन भी मनन करके ठहर नहीं सकता है। बुद्धिसे निश्चय नहीं होता है, और वाणीकी भी गम्य नहीं है। इस तरह मन, बुद्धि, वाणीसे गम्य करके जिसे जाना जा नहीं सकता है। फिर तहाँपर पहुँचके एक ब्रह्म सर्वव्यापक सत्य है, ऐसा कथन किसने आयके, किसको कहा? कैसे कहा? बुद्धिके बिना निश्चय कहाँपर, कैसे किया? मनके बिना मनन, सङ्कल्प कैसे उठाया? वाणीके बिना वर्णन करके कैसे कहा? अरे! तुम्हारा

ब्रह्म तो आखिरमें मन, बुद्धि, वाणीके विकार, विषय, भ्रमरूप ही ठहरा कि नहीं? उसकी जितनी महिमा बढ़ाये हो, सो सब झूठी है। जीवके बिना ऐसे कपोलकल्पना कौन करेगा? अतः जीव सत्य है, ब्रह्म मिथ्या है, ऐसा जानिये! ॥ १५६ ॥

साखीः— कबीर वाणीके पढ़े। जगमें पण्डित होय ॥
बिना वाणिके पण्डिता। देखा सुना न कोय ॥१५७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! मनुष्य जीव ही अक्षरसमूह आदि वाणी वेद, शास्त्र, चौदह विद्या इत्यादिकोंको पढ़-पढ़ करके जगत्‌में एकसे-एक बढ़ करके पण्डित, बुद्धिमान्, चतुर होते हैं। और बिना वाणी ग्रन्थोंको पढ़े-सुने, सीखे, जाने, बिना योंहीं गोयमगोय, गुङ्गमगूँगा, रहके वाणीसे परे शून्य होयके कोई संसारमें पण्डित भया हो, ऐसा विचित्र पण्डितको तो आजतक भी कोई-किसीने कहींपर देखा और सुना भी नहीं है। फिर तुमने ब्रह्मको वाणीसे परे कहीं देखा है? जबतक गुरुवा लोगोंसे वाणी नहीं पढ़े थे, ग्रन्थ देखे-सुने नहीं थे, तब क्या तुम ब्रह्मका कुछ नाममात्र भी जान सकते थे, कि ब्रह्म है? ब्रह्म कौन चिड़ियाका नाम है, यह भी तुम नहीं जानते थे। जब तुमने वाणी पढ़े-सुने हो, तभी भ्रमसे अद्वैतमतवादी ब्रह्मज्ञानी भये हो। अतः ब्रह्म वाणीकृत कल्पना है, उसे माननेवाले चैतन्य जीव तुम उससे न्यारे हो। वाणीसे परे कोई ब्रह्म नहीं है, किन्तु वाणीका भ्रम ही ब्रह्म बना है। उसे परखके मिथ्या भ्रमको परित्याग करना चाहिये ॥ १५७ ॥

साखीः— कबीर मृग भरमकी नदी। यों अद्वैतको भास ॥
प्यासे दौरत मृग मुवा। करि मृग जलकी आश ॥१५८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जैसे धूपकालमें सूर्यकी प्रचण्ड किरणें, रेतीली जमीन या बालूके मैदानपर पड़नेसे, दूरसे देखनेवालोंको वह टलमल-टलमल नदीमें पानीकी धारा बहती हुई

जैसी दिखाई देती है। गर्मीके दिनोंमें प्यासे मृग जङ्गलसे बाहर निकले, तो उन्हें वही रेतीमें सूर्यकी किरणोंवाली भरमकी नदी दिखाई दी, तो उसे पानी बहता हुआ नदी समझके, मृग उधर ही दौड़ता गया, फिर वह दृश्य भी उतनी ही दूर दिखती गई। मृगकी प्यास-तृष्णा बढ़ती गई, तो भी पानी नहीं मिला। क्योंकि, सैकड़ों कोशोंके विस्तारमें, मरुभूमिकी कान्तार होती हैं। तहाँ जलकी व्यर्थ आशा करके दौड़ते-दौड़ते थकके प्यासमें ही वहाँ मृग मर-मर जाते हैं। अन्ततक उन्हें जल नहीं मिलता है, उसे मृगतृष्णाकी झूठी नदी कहा है। वैसे ही भ्रमिक गुरुवा लोगोंने भ्रम, कल्पना बहाके नदीवत् वाणी विस्तार करके, ग्रन्थ बना दिये हैं। अज्ञानी मनुष्य मृगवत् उस वाणीकी धाराको देख, सुन, पढ़के योंहीं बिना विचारे-अद्वैत ब्रह्मको सत्य मानके हृदयमें मिथ्या भास टिकाय लेते हैं। जैसा मृगजल झूठा है, तैसा अद्वैत ब्रह्मभास भी झूठा है। परन्तु, विवेक न होनेसे उसे सत्य मान लिये हैं। संसारमें दुःखी होके त्रयताप पीड़ित नरजीव परमानन्द प्राप्ति, और जीव-ब्रह्मकी एकता करनेकी आशामें नाना साधना करके, दौड़ते गये, तो भी एकता नहीं हुई। वह उतनी ही दूर रही। अन्तमें साधक जीव थकित हो, जड़ाध्यासी होकर मर गये। उनकी आशा, प्यास पूर्ण नहीं हुई। अध्यासवश मरके चौरासी योनियोंको ही प्राप्त भये हैं ॥ १५८ ॥

साखीः— कबीर मरुस्थलको कुवाँ। यों अद्वैतको बाद ॥
प्यासे मुये मुसाफिर। वर्णत निर्जल स्वाद ॥१५९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! मरुस्थल = रेतीका मुल्क वा प्रदेश या रेगिस्थान, मारवाड़ आदि देश, मरुभूमिका-कान्तारवाला होता है, उसे मरुस्थल कहते हैं। जहाँपर वृक्ष, घास, फूस कुछ भी नहीं होता है। ऐसे जगहमें पानीकी आशासे जो कूआँ खोदते हैं, वे बहुधा धोखा खा जाते हैं, सौ, डेढ़ सौ, दो सौ हाथ नीचेतक खोदनेपर भी वहाँ कुछ भी जल नहीं मिलता है। जहाँ जल

मिला, सो अति थोड़ा होता है। वहाँके कुएँ अत्यन्त गहरे होते हैं। कहीं ऊपर-ऊपर गीली पतली रेतीली मिट्टी मिलनेपर भी भीतर सूखा ही रहता है, खोदनेवालोंको अन्तमें निराश होकर निष्फल ही हो जाना पड़ता है। तद्वत् अद्वैत सिद्धान्तका ब्रह्मवाद भी मरुस्थलका कूआ ही गुरुवा लोगोंने खोदे हैं। आकाशवत् व्यापक ब्रह्म एक अद्वैत है, कहके कल्पनाके कूआँ खोदे। आकाश मिथ्या, निष्फल, असार होनेसे ब्रह्म भी वैसे ही असार मिथ्या हो गया। तहाँ, मुसाफिर = साधक वेदान्ती लोग नाना तरहसे, निर्जल स्वाद = मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य, अक्षरातीत, सच्चिदानन्द, परब्रह्म, परमात्मा पूर्ण ज्योंका-त्यों है, सो ब्रह्म मैं हूँ! इत्यादि वर्णन करते-करते झूठे ही कल्पनाको सत्य मानते-मानते, प्यासे = ब्रह्मानन्द प्राप्तिकी तृष्णा रख-रखके जड़ाध्यासी हुए, अन्तमें मरके आवागमन चौरासी योनियोंके महाचक्रमें पड़ गये, बिना पारख ॥ १५९ ॥

साखीः—प्रतिबिम्ब जीवहि कहैं। व्यास वेदान्त बखान ॥
सुख दुःख जेहि व्यापै नहीं। केहि उपदेशत ज्ञान ?॥१६०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! कृष्णद्वैपायन-वेदव्यासने वेदान्त ग्रन्थ, ब्रह्मसूत्र बनायके, उसमें तथा उपनिषद् आदि व्याख्यामें देहधारी चैतन्य जीवको ब्रह्मका, प्रतिबिम्ब = परछाहीं, अंश ठहराके, वही पुष्ट करके कहे हैं; वेद-वेदान्तका सार वर्णन किये हैं कि— जीव प्रतिबिम्बमात्र है; इसका बिम्ब मूलस्थान ब्रह्म है। अब विचार करिये कि, यहाँ कहींपर भी मनुष्य आदिका प्रतिबिम्ब = छाया जहाँ-जहाँ पड़ती है, वहाँ-वहाँ उस परछाहींको कहीं भी सुख-दुःख नहीं व्यापता है, उसमें जाननेका ज्ञानगुण नहीं होता है, वह निर्जीव, जड़भासमात्र होता है। यदि जीवको भी वैसे ही मानते हैं, तो फिर ब्रह्मज्ञानका उपदेश कौन, किसको देते हैं?। ज्ञान उपदेश देनेका क्या फल निकला? सब निष्फल ही हुआ। किन्तु, जीव तो तन-मनादिके सुख-दुःखादिको सब जानते हैं, स्वयं

ज्ञानस्वरूप हैं। अविवेकसे जीवको प्रतिबिम्ब माननेवाले, मिथ्यावादी, महागाफिलीमें पड़े हैं, बिना विवेक ॥ १६० ॥

साखीः— जो यह जीव है नहीं। भास हुआ कहु सोय? ॥
दुइ अन्धरेके नाचमें। काको मोहित कोय? ॥१६१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और यदि मिथ्यापक्ष पकड़के ब्रह्मवादी ऐसा कहैं कि, जो कुछ है, सो एक ब्रह्म ही सत्य है। यह जीव तो वास्तवमें कुछ ठहरता ही नहीं है। योंही बीचमें ही सो तो नानात्त्व जगत् जीव भासमात्र हुआ है। नहीं तो अधिष्ठान ब्रह्म एक ही है। अब हे ब्रह्मज्ञानी! यह बताओ कि— जीव और जगत्का भास किसको हुआ? निर्जीवको तो भास हो सकता ही नहीं। जीवको तुमने प्रतिबिम्ब माना, ब्रह्मको निराकार कहा है। जैसे नाचनेवाला, और दर्शक बननेवाला यदि दोनों भी जन्म-अन्धे हों, तो फिर दो अन्धोंके नाचमें कौन, किसको देखके कैसे मोहित, आकर्षित होगा? कौन, किसका बड़ाई या वाह-वाही करेगा? तद्वत् जड़, चैतन्य दोनों नहीं हैं, एक ब्रह्म ही है। तो जगत्की प्रतीति किसको, क्यों, कैसे, हो रही है? एक ब्रह्म सबको दिखता क्यों नहीं? वह कहाँ गायब हो गया है? पाँचतत्त्व जड़ और अनन्त चैतन्य जीव, आये कहाँसे? जीव नहीं है, तो जीवका और ब्रह्मका भास कहो किसको हुआ? अतः तुम वेदान्ती गुरु-चेले दोनों पक्के अन्धे हो, महा धोखामें ही पड़े हो, बिना विचार ॥ १६१ ॥

साखीः— अनादि सिद्ध जो कहत हैं। माया जीव अरु ईश ॥
कहहिं कबीर अकर्ता वादी। नास्तिक बिस्वाबीस ॥१६२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! विसिष्टाद्वैत मतवादवाले (रामानुज, दयानन्द, और बाममार्गी आदि) जो ऐसा कथन प्रगट करके कहते हैं कि—संसारमें तीन वस्तु अनादि हैं— एक तो, माया = अज्ञान, अविद्या, वा प्रकृति अर्थात् जगत्के

कारणको। दूसरा, जीव=जो इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ, नित्य है उसको। तीसरा, और ईश्वर=सबका कर्ता, धर्ता, हर्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक हो, उसको— इन तीनोंको अनादि स्वयं सिद्ध नित्य पदार्थ माने हैं। इस प्रकारसे माया, जीव और ईश्वर इसीको अनादि कह करके जो सिद्ध करते हैं; उसके सिवाय और किसी पदार्थको अनादि नहीं मानते हैं। यद्यपि वे जगत् कर्तावादी हठसे कल्पित ईश्वरको वे जगत्कर्ता मानते हैं, तथापि उनके ईश्वर सत्य निर्णयसे कोई वस्तु ठहरता नहीं है, और मायारूप अज्ञानका भी कोई स्वतन्त्र आकार जड़ और जीव चैतन्यके सदृश नहीं है, और जीवको भी ईश्वरके अंशरूपमें परतन्त्र माने हैं। अतः जीवके स्वरूपको भी उन्होंने नहीं जाने। वेदको ईश्वरीय ज्ञान मानके धोखामें भूले पड़े हैं। वेद आदि सब वाणी, खानीका प्रगटकर्ता, संचालक, मनुष्य जीव ही सत्य है। पारख दृष्टिसे ऐसा न जानकर जीवको तुच्छ, अल्पज्ञ समझते हैं, कल्पित ईश्वर आदिकी ही महिमा गाते हैं। उनके प्रति सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोधके ज्ञाता पारखी सन्त कहते हैं कि— वे अकर्तावादी= वाणीके कर्ता मनुष्य जीवको सत्य न माननेवाले और दूसरा ही कोई ईश्वरादि कर्ताको ठहरानेवाले, सोई बिस्वाबीस=पूरे तौरसे या अच्छी तरहसे पक्के नास्तिक बने हैं। जो वस्तु नहीं है, उसको सत्य माननेवाले होनेसे वे कट्टर नास्तिक, मिथ्यावादी, पक्षपाती, हठी, शठी, अविचारी बने हैं। अतः उन्हें पहिचानके, उनके कुसङ्गको सर्वथा त्याग कर देना चाहिये॥ १६२॥

साखीः— जो ठहरा अनादि जगत। तो अज्ञान अनादि॥
गुरु आचार्य केहि कारणे। वेदादिक मतवादि॥१६३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! बेपारखी गुरुवा लोगोंके कथन अनुसार ईश्वर, जीव, माया, यह तीनमात्र ही जो यदि जगत्में अनादि वस्तु नित्य, सत्य, स्वयंसिद्ध ठहरा, तो

मायाको अनादि माननेसे अज्ञान या अविद्या, जड़ाध्यास देहबन्धनादि भी स्वरूपसे स्वयं अनादि ही ठहरा, और स्वतः अनादि वस्तुका अभाव, विनाश कभी कदापि किसी तरहसे भी हो नहीं सकतो है। उस हालतमें अनादि अज्ञानसे होनेवाला भवबन्धन भी अनादि ही सिद्ध हुआ। तथा वह अमिट साबित हो गया। अब बताओ! गुरु, विद्यागुरु, धर्माचार्य, वेदाचार्य, सम्प्रदायके आचार्य, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिके नाना मतवाद, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा, आदि कर्ताकी मानन्दी, योग, जप, तप, ज्ञान, ध्यान, विज्ञान, आदिके अनेकों साधनाएँ मुक्तिकी आशा, भरोसा इत्यादि सबके-सब व्यर्थ निष्फल हो गये कि, नहीं? किस कारणसे इनका प्रचार, विस्तार हुआ? सो क्या काम आया? अनादि अज्ञानको कौन, कैसे मिटायेगा? सारा प्रयत्न बेकार हो गया। इसलिये ऐसे मिथ्या, धोखामें पड़ना नहीं चाहिये। तहाँ निर्णय करो, तो ईश्वर और माया दोनों कोई स्वतन्त्र सत्य पदार्थ नहीं हैं। वह तो नरजीवोंकी कल्पना-मात्र है। वास्तवमें चार तत्त्व जड़ वस्तु कार्य-कारणयुक्त है, तथा अनन्त, अखण्ड, चैतन्य जीव देहधारी हैं, इतना ही सत्य पदार्थवाला संसार स्वयं अनादि है। यहाँ अज्ञानका परमाणु संयुक्त कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं है। सिर्फ जड़ाध्यास, वासना, संस्कारको जीवोंने देह सम्बन्धमें मनमें टिका रखे हैं। प्रवाहरूपसे वह चल रहा है, अदल-बदल होता रहता है। अतः पूर्ण परीक्षा दृष्टि होनेसे अध्यासका विनाश हो जाता है। जीवन्मुक्ति तभी हो जाती है। बन्धनका अन्त हो जाता है। इससे भ्रमिक गुरुवा लोगोंके पक्ष मानन्दी छोड़ करके पारखी सद्गुरुसे पारखबोध प्राप्त करके अपना, कल्याण करना चाहिये। भ्रम, भूलको मिटाना चाहिये ॥ १६३ ॥

साखीः— गोरीपर हरदी चढ़ी। भई सामली रङ्ग ॥
साँई ते परदे सुती। छुवै न देती अङ्ग ॥ १६४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु मनुष्यो! सुनो!

जैसे गोरी स्त्रीके शरीरपर हल्दी चढ़ा दी गई, महावर लगाई गई, सो सुखनेपर साँवली = काली, रङ्गकी होती भयी, और वह पतिसे परदा करके अलग जाके सोती है, अङ्गको छूनेतक नहीं देती है, फिर पुत्र प्राप्ति भी करना चाहती है, तो यह कैसे होयगा ? नहीं होगा। तैसे ही, गोरी = भक्त लोगोंपर, हरदी = कोई सुख-दुःख देनेवाला हर-ईश्वर परमात्मा होगा, ऐसा भ्रम, कल्पना मनमें, चढ़ी = आरूढ़ हुई। सो जीवके शुद्ध हंस स्वरूपपर भूलकी पीलाई चढ़ी, हरि, हर, परमेश्वर, खुदा आदि कोई कर्ता पुरुष मानके उसके प्राप्तिके लिये प्रेम बढ़ी, चाहना हुई। इसीसे गुरुवा लोगोंके सङ्गतमें नरजीव जाके लगे, गुरुवाओंने उन्हें और भी बहुत प्रकारसे भ्रमा दिये। नाना कष्टकर साधनोंमें लगाये, तब सुख-दुःखका आवरण जीवोंपर चढ़ा। इस कारणसे, सामली रङ्ग = काला अज्ञान ग्रसित, जड़ाध्यासी, कुरङ्गी, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, ऐसे स्याह रङ्गवाले होते भये। और भ्रमिक मूढ़ हो करके, साँई = स्वामी सबके मालिक, निज चैतन्य-स्वरूप और उसका यथार्थ पारखबोध देनेवाले पारखी सद्गुरु उनसे परदे = आड़, ओट, अलग, विरुद्ध, हो करके मोहके महा गाफिलीमें अचेत, मूढ़, भ्रमिक होके सो गये। अब वे, अङ्ग = अपने हृदयको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ले जाके कभी छुने ही नहीं देते हैं, और गुरु विचारमें मन लगाते ही नहीं। तब कहो भला! पारख स्वरूपका बोध उन्हें कैसे, कहाँसे होगा ? कभी न होगा। फिर भी वे मुक्ति फल प्राप्तिकी आशा करते हैं, किन्तु वह निष्फल ही हो जाता है, बिना पारख॥

अथवा भ्रमिक गुरुवा लोगोंके ऊपर, साधनोंके सुख-दुःखरूपी हल्दी चढ़ी, तो सामली रङ्गवाले जड़ाध्यासी होते भये। और साँई = झाँईको परमात्मा मानके समाधि अनुभवका पर्दा लगायके गाफिल भये, ऐसे सोये। अब वह कल्पना अहं ब्रह्म अद्वैत अलिप्त बनके किसीको अङ्ग छूने ही नहीं देती है। निर्गुण-निराकार बनके धोखेमें डालती है॥ १६४॥

साखीः— गोरीते कारी भई। सबै मनावै भाग ॥
रूप वर्ण गुण कछु है नहीं। भये सो अचल सोहाग ॥ १६५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! गोरीते कारी भई=जीव शुद्ध ज्ञानस्वरूप पारखको भूलके जड़ाध्यासी, भ्रमिक, मूढ़, गाफिल भया, तहाँ जीवका जानपना-बोध छूटके अनजानपना या अज्ञानग्रसित हो गया। तो कोई भिन्न ही जगदीश्वर मानके कोई भक्त भये, कर्मी, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी भये। सिद्ध, साधक सब ही कल्पना ग्रसित भये, और कोई पण्डित भये, तो गोरीरूपी सफेद कागजपर काली स्याहीसे, नाना अक्षर, वाणी लिखते भये। जिससे वेद शास्त्र, पुराण, कुरान आदि ग्रन्थ बना। उसीको पढ़, सुनकर, गुरुवाओंको देखकर, साधक बनकर, संसारमें सब कोई मनुष्य, उन लोगोंके भाग मनाने लगे। प्रशंसा, महिमा, करने लगे, धन्य भाग है! इन साधक भक्तोंका, ये परमेश्वरके प्यारे हैं, और हमारा भी धन्य भाग्य है! जो ऐसे महात्मा, भक्त, योगी, ज्ञानियोंका दर्शन हुआ, कृतकृत्य हुए। इत्यादि बड़ाई करने लगे। परन्तु जिसको परमपति परमेश्वर कर्ता पुरुष, ब्रह्म-परमात्मा माने हैं, उसका तो कहीं ठिकाना ही नहीं है, वह कहाँ रहता है, कुछ पता ही नहीं है। क्योंकि, न उसका रूप=आकार, प्रकार, स्वरूप है, निराकार-निरूप माना है। न वर्ण=रङ्ग, अक्षर, जाति ही है, उसे अवर्ण, निःअक्षर कहा है, और न तो कोई कुछ गुण ही उसमें है, निर्गुण, निरञ्जन, निरीह, माना है। जब रूप, वर्ण, गुण आदि कुछ भी उसके नहीं हैं, तो वह क्या है? मिथ्या ही है। बस, उसीको सत्य, परब्रह्म एक अद्वैत मान-मानके गुरुवा लोग, अचल सोहाग=अचल, अटल, सौभाग्यवती होते भये। उन्हें वही कल्पना सोहाया, अच्छा लगा, और संसारमें मूर्ख समाजमें आके वे पूरे भक्त, पहुँचे हुए बड़े महात्मा, सिद्ध, परमहंस ब्रह्मज्ञानी बने, ऐसे बड़े माने जा रहे हैं। किन्तु बिना पारख जीव

जड़ाध्यासी राँड, भाँड हो, आवागमनके अधिकारी ही बने हुए हैं ॥ १६५ ॥

साखीः— दिलरी गई देसन्तरे । लाई केतकी फूल ॥
छूवै तो भँवरा मुवा । सुख कारण दुःख मूल ॥ १६६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! जैसे कोई स्त्री केतकी = सफेद केवड़ाके बड़ी महकती हुई सुगन्धिवाली फूल शिरमें लगायके दूसरे देशान्तरमें चली गयी । सुगन्ध भँवराको अतिप्रिय है । यदि भँवरा केतकीरूप केवड़ाके सुगन्धमें आकृष्ट होकर उसे आसक्तिसे आके छू लेता है, या बैठके उसके सुगन्ध लेने लग जाता है, तो भँवरा तुरन्त मर जाता है, उसके लिये वह तीव्र जहर ही होता है । किञ्चित् सुखके कारणसे वह तो बड़ा भारी दुःखका मूल कारण ही हो गया । किसीने कहा हैः— दोहाः—

"सर्व गुणयुत केतकी, रूप रङ्ग अरु बास । एक बड़ा अवगुण यही, भँवर न जावै पास ॥
रूप रङ्ग सुवासयुत, केतकीके गुण तीन । अवगुण याके एक है, भँवर न जाय सुलीन ॥"

इसी प्रकार सिद्धान्तमें, दिलरी = अन्तःकरणकी वासना, मानन्दी, इच्छा, भावना, कल्पित वाणी यही दुलहिन बनके खूब ठाट-बाटसे शृङ्गारकर और केतकीके फूल सदृश विशेष सुगन्धवाला कल्पनाके वासनावाला ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, खुदा आदि निज-निज इष्टदेवसे मिलनेकी चाहना दिलमें लगायके, नरजीवोंके मन निजदेश पारख स्वरूपकी स्थितिको छोड़करके, देशान्तरे = दूर-दूर अन्य मानन्दीके देशमें—सात स्वर्ग, चार मुक्ति, चौदह लोक, चौदह तबक, लोक-लोकान्तर, देश-विदेश, इत्यादि दूर-दूरमें कल्पनाको भटकाने लगे । सो षट् दर्शन— ९६ पाखण्डकी नाना सिद्धान्तोंमें मन चली गयी । सबसे विशेष सुख ब्रह्म प्राप्ति, ब्रह्मानन्दको माने हैं । अब उसके लिये योग समाधि लगायके वा 'अहं ब्रह्मास्मि' निश्चय करके उस कल्पित वाणीके फूल ब्रह्मको छूते हैं, तदाकार होते हैं, तो तहाँ निर्विकल्प शून्यवृत्ति होकर, मनरूपी भँवरा मर जाता है, उन्मुनिमें

लय होके जीव अचेत-गाफिल, जड़ाध्यासी हो जाता है। अतः सच्चिदानन्द, सुख स्वरूप माना हुआ ब्रह्म ही जगत् दुःखका आदि कारण बीज बना, तहाँ मूल हंसपदसे पतित हो गया, तो जन्म, मरण, गर्भवास आदिके दुःख भोगनेका वही मूल कारण जड़ाध्यास हुआ। ब्रह्मानन्दकी आशासे चौरासी योनियोंके चक्रके दुःखमें जीव पड़े हैं। अर्थात् वाणी सुन-सुनके ही दिल, दूर देशमें मालिक माननेको वा ढूँढ़नेको चला गया, तहाँ ब्रह्मज्ञान दृढ़ करके खूब फूल गये, अभिमानी भये! उसी कल्पनाको स्पर्श करके मनसहित जीव अचेत अध्यासी हुआ! जिसको सुखका कारण माना, सोई ब्रह्म, ईश्वरादि आखिरमें दुःखरूप जगत्का मूल आवागमनका हेतु हो गया। अतः उस मिथ्या मानन्दीको परखकर परित्याग करना चाहिये, पारख बोधको ही लेना चाहिये। अथवा विषय वासनाके फूल लगाके मन, देशान्तर = स्त्रीके पास गया, तहाँ भोग करते ही मन मरा, सो विषय सुख ही चौरासी योनियोंके दुःख भोगानेका मूल कारण हुआ, ऐसा जानो ॥१६६॥

साखीः—पन्द्रह तत्त्व स्थूल है। नौ तत्त्व लिङ्ग शरीर ॥
चौबीस मृतुक जेहिसों जिये। सो जिन्दा जीव कबीर ॥१६७॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे सन्तो! पाँच तत्त्वके मुख्य पन्द्रह भाग लेके स्थूल देह बनी है। सो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँः—श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका है। पाँच कर्मेन्द्रियाँः—वाक, हस्त, पाव, उपस्थ, गुदा है। पञ्चविषयः—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है। यही पन्द्रह तत्त्व लेके, स्थूल देह निर्माण भया है। और उसीका बीजरूप, लिङ्ग शरीर=सूक्ष्मदेह मुख्य, नौ तत्त्व = चित्त, बुद्धि, मन, हङ्कार और सूक्ष्म पञ्च विषय सहित होते हैं। अथवा उसे छोड़के पञ्चप्राणः—व्यान, समान, उदान, प्राण, अपान, ये ५ मिलायके नौ भाग होते हैं। इस तरह १५+९ एकत्र मिलानेपर २४ भाग होते हैं। सो ये चौबीसों भाग, मृतुक = जड़, अचेतन, मरे हुए मुर्दावत् निर्जीव हैं। उनमें सुख-दुःखादि जाननेका स्वयं

ज्ञान गुण नहीं है। और जिस चैतन्य वस्तुसे सत्ता पायके उपरोक्त चौबीसों तत्त्वकी कलाएँ जीवित, जाग्रत्, सचेत, सुन्दर, प्रकाश, सञ्चालित होते हैं। तथा जीवित जीवकी सदृश देह भी चेतन दिखाई देता है, सोई जिन्दा = सदा जीते रहनेवाला, कभी न मरनेवाला अमर, अजर, अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य, जीव, चिरञ्जीव, सोई स्वयं कबीर है॥ तहाँ कहा है:—

श्लोकः—"स्थूलं पञ्चदशान्युक्तं लिङ्गं तु नव तत्त्वानि च ॥
यज्जीवन्ति चतुर्विंशास्तज्जीवं कवयो विदुः ॥"

— जो १५ तत्त्वका स्थूल शरीर और ९ तत्त्वका सूक्ष्म शरीर इन २४ तत्त्वको चैतन्य करे, तिसको विद्वान् पुरुष, जीव कहते हैं॥ "जीवितीति जीवः" "न जायते म्रियते"—जो सदा जीवित रहता है, सो जीव है। स्वरूपसे जीवका जन्म-मरण वा उत्पत्ति, नाश नहीं होता है। अतः जीव सत्य है॥ जिन्होंने स्वानुभवसे उसके स्वरूपको परख करके जाने, सोई कायावीर शूर, धीर, माया-मोह विकारसे रहित काम, क्रोधादिको जीते हुए जीवन्मुक्त पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए हैं। आपने सारासारको यथार्थ परखाये हैं। जीवमात्र कबीर वा चैतन्य हैं, किन्तु, ज्ञानी, मनुष्य देहधारी नरजीव ही श्रेष्ठ हैं। मनुष्य ही मुक्तिके अधिकारी होते हैं, ऐसा जान लीजिये!॥१६७॥

साखीः— कबीर पद्धती रामकी। जगमें मानै कोय॥
राम पुरुष कि इस्त्री। पण्डित! कहिये सोय॥ १६८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! जगत्में कोई कितनेक वैरागी लोग राजा रामचन्द्रको ईश्वरके अवतार मानते हैं। और रामचन्द्रके वनवासका भेष, जटा आदि रखते हैं, रामकी पद्धति = उपासना मार्गसे चलते हैं। मुख्यतया वैरागी लोग मस्तकमें भगके आकार-सदृश तिलक बनायके लगाते हैं। उसमें उनसे यही पूछना है कि— हे राम-भक्तो! राम, पुरुष थे कि, स्त्री थी? पुरुष थे, तो तुम लोग भगाकार तिलक मस्तकमें क्यों लगाते हो? और स्त्री थी,

तो तुम लोग पुरुष हो कि, स्त्री हो ? पुरुष हो, तो परस्त्रीके सङ्ग मेल करनेवाले तुम लोग व्यभिचारी ही हुए । स्त्री हो, तो कुलटा ही हुए । हे पण्डित ! सो इसका भेद तुम ही ठीकसे निर्णय करके कहो ॥ अथवा दूसरा अर्थः— कबीर = हे जिज्ञासु जीवो !, रामकी = रमैया राम चैतन्य जीवकी, पद्धति = मन कल्पनाकी पन्थ, मार्ग, चाल-चलन, रीति-रिवाज, वाणी, खानी, विषयादिकी नाना रास्ता जगत्में सब कोई मान रहे हैं । कोई रामके उपासनाके मार्गको, तो कोई दश अवतार, तैंतीस कोटि देवताओंकी भक्ति-मार्गको, कोई कर्म-मार्गको, कोई ज्ञान-मार्गको, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, इत्यादिको मनमाने वैसे मान रहे हैं। अब ये बताओ कि, तुम्हारे माने हुए कल्पित इष्टदेवता, पुरुष = चैतन्य जीव है कि— अथवा इस्त्री = प्रकृति, जड़, वाणी ही स्वरूपी है । वाणीको छोड़के तुम्हारी और कौन पद्धती है ? हे पण्डित ! सोई बात विवेक करके कहिये । खानी और वाणी दोनों जीवको बन्धन हैं । अतः उसे परख करके त्यागना चाहिये ॥ १६८ ॥

साखीः— पारवती ब्रह्मानी अरु । कहत लक्ष्मी जाहि ॥
इनकी करै उपासना । बामिक कहिये ताहि ॥ १६९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो ! शिवकी स्त्री पार्वती रही, ब्रह्माकी स्त्री ब्रह्माणी = सावित्री रही, और विष्णुकी स्त्री लक्ष्मी रही । जिन्हें त्रिदेव, त्रिशक्ति, त्रिदेवी भी कहते हैं । स्त्री विषयासक्त भग-लम्पट ब्रह्मादि तथा भगधारिणी प्रत्यक्ष स्त्रीरूप लक्ष्मी, पार्वती, सावित्री इन्होंकी ही जो कोई ब्राह्मणादि चार वर्ण, कर्मी, उपासक, पण्डित, मूर्ख इत्यादि जो, उपासना = भक्ति, पूजा, आरा-धना, ध्यान, धारणा, नाम स्मरण, भाव, नित्य पूजा किया करते हैं । उसे ही स्त्री विषयके उपासक बाममार्गी कहते हैं । शक्ति उपासक जो हैं, सो शाक्त होते हैं, तथा स्त्री उपासक बामिक कहलाते हैं । वे बाममार्गी, विषयासक्त, जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंको प्राप्त होते हैं । स्त्रीरूपका विशेष अध्यास रहनेपर पुनर्जन्ममें स्वयं स्त्री चोलाको

भी धारणकर लेते हैं। अतः त्याग, वैराग्यके शुद्ध भाव ही मनमें टिकाये रखना चाहिये ॥ १६९ ॥

साखीः—ब्रह्म शब्दको पण्डितन । नपुंसक ही ठहराय ॥
ताकी इच्छाते जगत । कहत न मूढ़ लजाय ॥१७०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! व्याकरणादि शास्त्रज्ञ शास्त्री, पण्डितोंने "ब्रह्म" इस शब्दको, नपुंसक=नपुंसक लिङ्ग वाला, स्त्री, पुरुषका लिङ्ग या चिह्न भेदसेरहित, हिंजड़ा, शक्तिहीन, निरिच्छ ही निर्णय करके ठहराये हैं। जब ब्रह्मका लक्षण ऐसा साबित हुआ, जिसे निराकार, निर्गुण, निरीह, व्यापक माना है। फिर उसी ब्रह्म-परमात्माकी इच्छा या स्फुरणामात्रसे "एकोहं बहुस्याम्" कह करके, सारा चराचर जगत्की उत्पत्ति भयी। गुरुवा लोगोंने ऐसा बताया है। उन अविवेकी, अविचारी मूढ़ पुरुषोंको, ऐसा विरुद्ध वचन कहतेमें जरासा भी सकुच, लज्जा नहीं आती है। वे कुछ भी लजाते नहीं। निर्लज्ज होके मनमाने सो वैसा बकते, झकते हैं। एक तो निराकारमें इच्छा होनेका साधन ही नहीं। देह बिना इच्छा हो नहीं सकती है। सर्वव्यापीसे कुछ बन नहीं सकता है। कोई जगह खाली न होनेसे वह क्या बनाके कहाँ रखेगा? और नपुंसकमें कामके साधन न होनेसे, उसके इच्छामात्रसे कुछ भी उत्पत्ति हो नहीं सकती है। सो ब्रह्म माना हुआ ही भ्रम है। उसको कर्ता पुरुष माननेवाले लोग, निर्लज्ज, पशुवत् मूढ़ ही बने हैं ॥ १७० ॥

साखीः—जाना चाहै आतमा । जानै को है सोय? ॥
कहु पण्डित! यह देहमें । आतम एक कि दोय? ॥१७१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और ये भ्रमिक वेदान्ती लोग निज आतम-स्वरूपको जानना चाहिये, सर्वाधिष्ठान समझना चाहिये, कहते हैं। मैं आत्माको जानना चाहता हूँ, कहनेपर, उसको जानने-

वाला जनैया तो आत्मासे पृथक ही साबित हुआ। आत्मा दृश्य और उसे जाननेवाला द्रष्टा हुआ। आत्माको जाननेवाला जनैया द्रष्टा सो कौन है? हे पण्डित! यह बात विवेक करके बतलाओ कि— इस शरीरमें आत्मा एक है कि, दो है? एक है, तो अपने आपको वह कैसे जानना चाहता है? और कैसे, किसप्र कारसे जानेगा? यदि एक देहमें दो आत्मा हैं। तो कैसे कहाँपर रहा है? फिर अनन्तों शरीरमें अनन्तों आत्मा होनेसे अद्वैत मतवाद भी चकनाचूर हो जायगा। एक ही आत्मा परिपूर्ण व्यापक है, कहा हुआ झूठा होगा। अब बताओ. आत्मज्ञान किसको, कैसे होगा? बिना पारख, भ्रम, धोखामें ही पड़े हैं ॥ १७१ ॥

साखीः— कबीर एकै आतमा। केहि उपदेशन होय? ॥
को जानै एक आतमा। पण्डित! कहिये सोय ॥१७२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— हे नरजीवो! जब ये ब्रह्मज्ञानी लोग एक आत्मा अद्वैत है, ऐसा बतला रहे हैं। फिर कहो उपदेश किसको होता है? हे आत्मज्ञानी! जब एक, आत्माके सिवाय, दूसरा कुछ नहीं है, तब तुम लोग उपदेश किसको, किस तरहसे देते हो? ये नाना मत, पन्थोंका विस्तार क्यों हो रहा है? एकमें कहना, सुनना, उपदेश देना-लेना, कैसा होगा? फिर एक अद्वैत आत्मा ही सत्य है, ऐसा कौन जानता है? कहाँ रहके, कैसे जानता है? नहीं जानता है, तो तुमने कहा कैसे? हे पण्डित जनो! सो उपरोक्त प्रश्नका उत्तर यथार्थ निर्णय करके कहो। यदि आत्मा एक कहोगे, तो तुम्हारा उपदेश देना ही मिथ्या ठहरा। और आत्माको अनेक मानोगे, तो अद्वैत सिद्धान्त जूठा होनेसे, सरासर खण्डन हुआ। अतएव व्यापक आत्मा है, कहना ही भूल है। अनेक देहधारी जीव, तथा पाँच जड़ तत्त्वरूप द्वैत जगत् यही प्रत्यक्ष सत्य है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परखके, भ्रम, भूलको मिटाना चाहिये ॥ १७२ ॥

साखीः— जागृतिरूपी देहमें । करै सकल परमान ॥
कारण सूक्ष्म स्थूल नहीं । तब कहो कहाँ अस्थान ? ॥ १७३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जागृतिरूपी चैतन्य-जीव इस देहमें बैठ रहा है, सोई तीन काल, तीन अवस्था, तीन पन, तीन गुण, तीन देह, तीन मार्ग, तीन लोक, तीन काण्ड, इत्यादि सकलकी मानन्दी कर-करके, प्रत्यक्ष प्रमाणके अन्तर्गत अन्य सात प्रमाणोंका भी स्थापन, वर्णन करता है। नरदेह रहेतक जीव ही देहमें रहके सबको जानता, मानता, कथन करता है। यह तो सबको प्रत्यक्ष ही है। परन्तु हे आत्मज्ञानी ! जीवको छोड़के अन्य तुम्हारा माना हुआ आत्माकी प्रतीति कहाँ होती है ? व्यापकताकी लक्षण कहाँ दिखता है ? और जब शरीर छूट जाता है, तब उस मूर्दामें आत्माकी सत्ता क्यों नहीं दिखाई देती है ? तब आत्मा मुर्दामें रहता है कि, निकल जाता है ? रहता है, तो पूर्ववत् तीन अवस्थाएँ सुख-दुःखादिका व्यवहार क्यों नहीं होता है ? और निकलता है, तो एकदेशी ठहरा, व्यापकताका खण्डन हुआ। फिर स्थूल, सूक्ष्म, और कारण, ये तीनों देहोंका स्थान ही जब नहीं रहता है, तब उस अवस्थामें आत्मा कहाँपर, किस स्थानमें, कैसे, किस रूपमें रहता है ? सो खुलासा करके कहो। एक-एक निर्णयको वर्णन करो, गोलमाल मत करो। नहीं तो घना तमाचा खाओगे, पीछे बहुत पछताओगे। अतएव सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यग्राही होना चाहिये ॥ १७३ ॥

साखीः— योगी बड़ा कि योग बड़ा । ज्ञाता बड़ा कि ज्ञेय ? ॥
द्रष्टा बड़ा कि दरश बड़ा । भेदी बड़ा कि भेय ? ॥ १७४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! योग आदि साधना करनेवाले साधक योगी जीव बड़े श्रेष्ठ होते हैं ? कि— अष्टाङ्ग योग आदि मार्ग बड़ा है ? विवेक करो, योगी नरजीव न होवें, तो योगादि मार्ग, मत, पन्थ, निकम्मा, व्यर्थ ही है। अतः योगी

जीव बड़े हैं, योग नहीं। तैसे ज्ञाता = सुख-दुःखादिको जाननेवाला, जानकार जनैया जीव बड़े हैं, कि ज्ञेय = जो जाननेमें आया, वह वस्तु, विषयादि भास बड़ा है? ज्ञाता न होय, तो फिर ज्ञेय सिद्ध हो नहीं सकता है। अतः ज्ञाता जीव ही बड़ा या श्रेष्ठ है, ज्ञेय नहीं। और, द्रष्टा = चैतन्य, तीन देह, तीन अवस्था, पञ्चविषयादि जगत्‌को देखनेवाला साक्षी जीव बड़ा है, कि— दरश = दृश्य, विषयभास, जड़वस्तु, ज्योति आदि अनुभूत बड़ा है? द्रष्टा न होवे, तो दृश्यको कौन देखे, कौन जाने, माने। अतः द्रष्टा चैतन्य-जीव बड़ा है, दृश्य नहीं। और, भेदी = वाणी, खानी आदिके गुप्त, प्रगट सारा भेदको जाननेवाले विवेकी नरजीव बड़े श्रेष्ठ हैं, कि— भेय = भेद, विषय, कला, कौशल, भक्ति, योग, ज्ञानादिके मर्म बड़ा है? भेदको जाननेवाले भेदी न होवें, तो उसके भेदको कौन बतावे? कौन जाने? इसीसे भेदी विवेकी जीव ही बड़े हैं, भेद नहीं; ऐसा निर्णय करके जानना चाहिये॥ १७४॥

साखीः—दाता बड़ा कि दान बड़ा। कर्ता बड़ा कि वेद॥
मान बड़ा कि मानिक बड़ा। कहु पण्डित! यह भेद॥ १७५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— उसी प्रकार हे सन्तो! और दाता = दान देनेवाले अन्न, जल, वस्त्र, रत्न, फल, फूलादिके तथा ज्ञान, विद्या आदिके दाता नरजीव बड़े हैं, कि— उनका दिया हुआ दान, जड़ पदार्थ, विद्या आदि बड़ा है? यदि दाता मनुष्य न होते, तो दान ही कौन, किसको देता?। अतः दाता बड़े हैं, दान नहीं। वैसे ही, कर्ता = मनुष्य, चारवाणी, चारखानी, विद्या, बुद्धि, मत, पन्थ, ग्रन्थ, कला, चातुर्य आदि यावत् प्रपञ्चोंका निर्माणकर्ता, स्थापनाकर्ता, सञ्चालन, प्रचारकर्ता, नरजीव बड़े हैं, कि— उनका बनाया हुआ, वेद = ज्ञान, अक्षर-समूह, संस्कृत संहिताकी पुस्तक एवं उसकी शाखा, परशाखा, उपनिषदादि बड़ा है? अरे भाई! यदि कर्ता मनुष्य न होते, तो वेद आदि वाणी, विद्याओंको कौन बनाते?

कौन फैलाते ? अतः वेद आदिके कर्ता नरजीव ही बड़े श्रेष्ठ हैं, वेद बड़ा नहीं । और वैसे ही, मान=माना हुआ मानन्दी, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, भूत-प्रेत, खुदा, अल्लाह, ऋद्धि, सिद्धि, करामात, मन्त्र, सामर्थ्य इत्यादि जो कुछ माना गया है, सो मान, प्रतिष्ठा, सम्मान, मर्यादा, अभिमान, गुमान, इत्यादि ये बड़ा है, कि— अथवा मानिक=उसे माननेवाले, जाननेवाले मनानेवाले, मानन्दी, पक्ष, दिलचस्पी, आसक्ति, मोह, अध्यास, करनेवाले अमूल्य मणि, माणिक्यवत् अजर, अमर, अखण्ड, जीव मनुष्य श्रेष्ठ बड़े हैं ? कौन बड़े हैं ? हे भाई ! माननेवाले जीव मानन्दी कर्ता मनुष्य न होते, तो उपरोक्त खानी, वाणीके प्रपञ्च विस्तारको फिर कौन मानता वा मनाता ? इसलिये मानिक नरजीव ही सर्वश्रेष्ठ बड़े हैं, किन्तु, मान-मानन्दी बड़ा नहीं । ऐसा यथार्थ गुरुमुख निर्णयसे जानना चाहिये । और हे पण्डित ! बुद्धिमान्, मनुष्यो ! योग-योगीसे लेकर मान-मानिकतक कौन बड़ा है ? उसमें तुम्हें क्या निश्चय है ? कैसा मालूम होता है ? तुम किसको, कैसे बड़ा मानते हो ? सो खुलासा निर्णय करके अपना मन्तव्य मेरे समक्ष कहो ? इसके भेदको बताओ । अगर तुम्हारे समझनेमें कसर होगी, तो मैं निर्णय दरशा करके उसमेंकी कसर पुनः दर्शा दूँगा । सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें जो निर्णय वचन कहे हैं, सो सुनियेः—

॥ ॥ शब्दः— ११२ ॥ ॥

४झगरा एक बढ़ो राजा राम ! जो निरुवारे सो निर्वान् ! ॥ १ ॥
ब्रह्म बड़ा कि ? जहाँसे आया ? वेद बड़ा कि ? जिन्ह उपजाया ? ॥ २ ॥
ई मन बड़ा कि ? जेहि मनमाना ? राम बड़ा कि ? रामहिं जाना ? ॥ ३ ॥
भ्रमि-भ्रमि कबिरा फिरे उदास ! तीर्थ बड़ा कि ? तीर्थका दास ? ॥ ४ ॥ बीजक ॥

इसकी टीका— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने बीजक त्रीजामें विस्तारसे लिखे हैं; सो वहाँसे देखके जान लीजिये ! ॥ अर्थात् सब प्रकारसे हंस जीव ही बड़ा है, उससे बढ़के दूसरा मानन्दी कोई श्रेष्ठ-बड़ा नहीं है ।

इसलिये पारखी सद्गुरुके शरण, सत्सङ्ग करके पारख बोधसे सकल भेदको जानकर स्व-स्वरूपमें स्थिर होना चाहिये ॥ १७५ ॥

साखीः— पाँचतत्त्व औ काल दिग । मन औ आतम जान ॥
उपदेशत न्याय नौ द्रव्य कहि । बिन ज्ञाताको ज्ञान ॥१७६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! वैशेषिकमत और न्यायमत उन दोनोंमें नौ द्रव्य, निम्न प्रकारसे माने हैं— पाँच तत्त्वः— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश; तथा भूत, भविष्य, वर्तमान ये तीन समय मिलके एक काल; पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, आदि मिलके एक दिशा; सूक्ष्म इन्द्रियरूप मन, और आत्मा; यही नौ द्रव्य सत्य है, ऐसा कह करके न्याय शास्त्रवादी लोग, उपदेश करते हैं। अब विचार करिये ! उसमें ज्ञाता स्वयं चैतन्य द्रव्य तो कोई नहीं है, बिना ज्ञाताके ही झूठी ज्ञान वा अज्ञानका ही उन्होंने उपदेश किये और कर रहे हैं। क्योंकि, न्यायवादी आत्माको स्वयं जड़ ठहराके, मनके संयोग-सम्बन्धसे ही जीवात्माको ज्ञान होना माने हैं; और मनको निराकार कहे हैं। गुण और क्रियायुक्त हो, वैसा द्रव्यका लक्षण माने हैं। तहाँ आकाश शून्य होनेसे वह द्रव्य हो नहीं सकता है। और दिशाएँ तथा काल मुख्यतया सूर्यसे सिद्ध होते हैं। सूर्योदय जहाँ होता है, वहीं पूर्वदिशा मानी जाती है। और दिन, रात्रि, महीना, वर्ष, आदि काल भी मुख्य सूर्यसे ही सिद्ध हो रहे हैं। इसलिये सूर्य, चन्द्र और पृथ्वीके सदैव क्रियाओंसे दिशा और काल ठहरनेसे, वे दोनों भी नित्य द्रव्य सिद्ध नहीं होते हैं। और मन सूक्ष्म जड़के कार्य है, वह भी नित्य द्रव्य नहीं हो सकता है। और माना हुआ सर्वव्यापी ईश्वर वा आत्मा भी कल्पनामात्र ही है, वह भी नित्य द्रव्य ठहरता नहीं । मुख्य तो स्वयं ज्ञानस्वरूप ज्ञाता जीवको तो वे मानते ही नहीं हैं, मनके संयोग होनेपर ही ज्ञान प्रगट होता है, कहनेवाले न्यायमतवादी, अन्यायी, भ्रमिक, झूठे बने हैं। (इनके कसर विस्तारसे निर्णय करके "निर्पक्ष सत्यज्ञान

दर्शन" में लिखा है, वहाँसे देख लीजिये!)। अतः ऐसे बिना ज्ञाताके ज्ञान कथन करनेवालेका मत सर्वथा त्याग करने योग्य है ॥ १७६ ॥

साखीः— मिमांसा बड़ा कि जैमिनि बड़ा। वैशेषिक बड़ा कि कणाद ॥
गौतम बड़ा कि न्याय बड़ा। कहु पण्डित को आदि ॥ १७७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! षट् शास्त्रोंको षट् मुनियोंने पृथक्-पृथक् मत दर्शा करके भिन्न-भिन्न समयमें बनाये हैं। उसमें विवेक करो कि, वह शास्त्र बड़ा श्रेष्ठ होता है कि— उनको बनानेवाले नरजीव श्रेष्ठ होते हैं? निर्जीवसे तो वाणी लिख-लिख करके शास्त्र नहीं बना, सजीवसे ही बना है, तो जीव ही श्रेष्ठ होते हैं। जैमिनी मुनिका बनाया हुआ, बारह अध्यायवाला, पूर्व मीमांसा=कर्म प्रतिपादक शास्त्र, बड़ा या श्रेष्ठ है? कि— अथवा उसके कर्ता, शास्त्र रचयिता मनुष्यरूप जैमिनी जीव श्रेष्ठ या बड़े हैं? जैमिनी न होते, तो मीमांसा शास्त्र ही कहाँसे, कैसे बनता?। अतः जैमिनी बड़े हैं, मीमांसा नहीं। तथा ही वैशेषिक शास्त्र, सूत्ररूपमें दश अध्यायवाला ग्रन्थ बड़ा है? कि— उसका निर्माणकर्ता कणाद मुनि बड़े हैं? कणाद न होते, तो वैशेषिक सूत्र ही कहाँसे, कैसे बनता? अतः कणाद नरजीव बड़े हैं, वैशेषिक नहीं। और वैसे ही गौतम नामक नरजीव तार्किक बड़े हैं? कि— उनका बनाया हुआ पाँच अध्यायवाला न्याय-सूत्ररूप शास्त्र-बड़ा है? यदि गौतम मुनि न होते, तो फिर न्याय-सूत्र ही कहाँसे, कैसे बनता? अतः गौतम बड़े हैं, न्याय-सूत्र नहीं। हे पण्डित! बुद्धिमान्! कहो, तुम लोग इसमें क्या, कैसा समझते हो? कौन, किसके आदि है? कौन, किससे श्रेष्ठ सबसे बड़ा है? शास्त्र बड़ा होता है, कि— रचयिता बड़ा होता है? निर्णयसे हंसजीव बड़ा होता है, निर्जीव ग्रन्थ, वाणी समूह, शास्त्र बड़ा नहीं होता है, ऐसा जानो ॥ १७७ ॥

साखीः— सांख्य बड़ा कि कपिल बड़ा । पातञ्जल बड़ा कि शेष ? ।।
व्यास बड़ा कि वेदान्त बड़ा । दुइमा को अवशेष ? ।।१७८।।

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और उसी प्रकार छैः अध्याय-वाला सांख्यशास्त्र-सूत्र, कारिकाएँ बड़ी हैं ? कि— अथवा उसका रचनाकर्ता कपिल मुनि बड़े हैं ? यदि कपिल मुनि नरजीव न होते, तो फिर सांख्य-शास्त्र ही कहाँसे, कैसे बनता ? अतः कपिल बड़े हैं, सांख्य नहीं । तथा पातञ्जल = चारपादवाला योगशास्त्र बड़ा है ? कि— उसके रचयिता, शेष = पातञ्जलि ऋषि बड़े हैं ? जो पातञ्जलि नामक नरजीव न होते, तो फिर योगशास्त्रके सूत्र ही कहाँसे, कैसे बनते ? अतः पातञ्जलि बड़े हैं, योगसूत्र नहीं । और वैसे ही कृष्ण-द्वैपायन-वेदव्यास नामक नरजीव बड़े हैं ? कि— उनका कल्पना करके बनाया हुआ, वेदान्त शास्त्र = जिसे उत्तर मीमांसा, वा ब्रह्म मीमांसा, शारीरिकसूत्र, वेदान्तसूत्र वा ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं । जो एक-एक अध्यायमें चार-चार पाद करके, चार अध्यायोंमें सम्पूर्ण ग्रन्थ बना है, सो वेदान्त ग्रन्थ बड़ा है ? कि— वेदव्यास बड़े हैं ? किन्तु, वेदव्यास मनुष्य न होते, तो वह वेदान्त शास्त्र-सूत्र कहाँसे, कैसे बनता ? अतः जीवरूप व्यास बड़े हैं, वेदान्त-सूत्र नहीं । अब हे पण्डित ! बताओ, तुम्हारे समझनेमें कैसा आता है ? कर्ता बड़ा होता है कि— कार्य बड़ा होता है ? षट्शास्त्र और उनके प्रगटकर्ता षट्मुनि इन दोनोंमें कौन, अवशेष = अवशिष्ट, बाकी, श्रेष्ठ, सत्य और बड़े हैं ? कृत्तिम वाणी-कल्पना कभी सत्य वा बड़ी नहीं हो सकती है । अतः जीवरूप चैतन्य मनुष्य ही सबसे बड़े हैं । वेद, शास्त्रादि सब वाणी मनुष्यकृत ही हैं । मिथ्यापक्षको छोड़कर सत्यनिर्णयसे यथार्थ विचार करना चाहिये ॥ १७८ ॥

साखीः— जैमिनि कणाद औ गौतम । शेष कपिल औ व्यास ।।
षट ढीमर षट जाल बिने । बाँधेउ जीवन फाँस ।।१७९।।

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैमिनीने पूर्व

मीमांसा शास्त्र बनायके, कर्मवाद सिद्ध किया है। कणादने वैशेषिक शास्त्र रचना करके काल वा समयवाद वर्णन किया है, और गौतमने न्याय शास्त्र बना करके जगत्कर्ता परमेश्वरकी कल्पना किया है, सो ईश्वरवाद पकड़े हैं। शेष = पातञ्जलिने योगशास्त्र कथन करके, योगवादमें ज्योतिस्वरूप ईश्वर माना है। कपिलने सांख्य शास्त्र तैयार करके प्रकृति-पुरुषवाद पकड़ा है, और व्यासने वेदान्त शास्त्र रचना करके, अद्वैत ब्रह्मवाद वर्णन किया है। उपरोक्त वे ही षट्मुनि, ढीमर = मच्छिमार धीमरकी नाईं गुरुवा लोग बने, तथा उन्होंने कल्पित वाणी बीन-बीनके बड़ी मजबूत छः जालरूप षट्शास्त्र सूत्ररूपमें बनाके तैयार किये हैं। जैसे धीमर लोग मजबूत सूतसे जाल बिनके उसे नदी, तालाब आदिमें डालके मछलियोंको फँसा-फँसाके पकड़कर मारके स्वार्थ सिद्ध करते हैं। वैसे ही षट्मुनियोंने भी दृढ़ कल्पनासे वाणी द्वारा संस्कृतमें सूत्र बनाय, वाणीकी छः जाल बनाये। फिर उसे संसारमें छोड़कर नरजीवोंको बझाय, जहँड़ाय, जड़ाध्यासी बना दिये, अपना-अपना मत, पन्थ, बढ़ानेका स्वार्थ सिद्ध कर लिये। उसी फाँसमें सब नरजीवोंको फँसाय, कठिन बन्धन-कल्पनामें बाँध दिये हैं। बिना पारख वह जाल लखनेमें नहीं आता है। अतएव सत्यन्यायी पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसकी कसर, खोटको, परखकर मिथ्या पक्ष भ्रम-भूलको त्यागना, सुधारना चाहिये। पारख बोधको ही लेना चाहिये ॥ १७९ ॥

साखीः— नाम रूप चीन्है नहीं। करै रूपको बाद ॥
कहु पण्डित ! यह दोयमें। को है किसकी आद ? ॥ १८० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! नाम = शब्द, वाणी, कल्पनासे ब्रह्म कहा है, और उसके रूपका तो कहीं पता, निशाना ही नहीं है। रूप = दृश्य, स्वरूप, जगत्में जो कुछ है, सो दिख ही रहा है। सो उस नाम-रूपको तो ठीक-ठीकसे चीन्हते-पहिचानते

नहीं, और जगत्को मिथ्या बताकर जगत्के स्वरूपमें ही रहकर एक अद्वैत व्यापक ब्रह्मवाद कथन करते हैं। ऐसे अविचारी बने हैं। हे पण्डित! नाम-रूप, शब्द-अर्थ, जगत्-ब्रह्म, जीव-शीव इत्यादि इन दो-दोमें कौन, किसकी आदि या प्रथमसे सत्य है? सो निर्णय करके कहो। रूप बिना नाम होता नहीं, शब्द बिना अर्थ नहीं, जगत् बिना ब्रह्म नहीं, जीव बिना शिव नहीं। इसलिये जगत् जीव ही उन सबका आदि है, ऐसा जानके मिथ्या मानन्दी ब्रह्मके भ्रमको त्यागना चाहिये ॥ १८० ॥

साखीः— सन्धिक मात्रा मेल करिके। अर्थ बूझनकी चाव ॥
जिन्ह सन्धिक मात्रा कियो। ताको भयो अभाव ॥१८१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये भ्रमिक पण्डित लोगोंने प्रथम ५२ अक्षर बनाये, फिर परस्पर उन अक्षरोंको, सन्धिक = संयुक्त जोड़-जोड़कर उसमें अ, उ, म, अर्ध, बिन्दु ये पाँच मात्राएँ यथास्थान मिलाय करके वाणी, शब्द समूहका, रचनाकर वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि नाना ग्रन्थ बनाये। फिर उसी शब्दोंका अर्थ करके ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदादि बताकर उसे बूझने या समझने, प्राप्त करनेकी चाहना वा इच्छा करने लगे, वैसे ही भाव मनमें रखते हैं। शब्दार्थ, भावार्थ आदि बूझकर ब्रह्म बननेकी चाव करते हैं, और जिस नरजीवने अक्षर बनाकर शब्द-सन्धि, स्वर-सन्धि, विसर्ग-सन्धि, पञ्चमात्रा वाणीकी सम्पूर्ण कलाएँ निर्माण किया है। उस चैतन्य जीवको या निज सत्यस्वरूपको समझनेकी तो कोई भी भाव नहीं रखते हैं। बल्कि जीवको तो अल्पज्ञ, अंश, तुच्छ, समझके अभाव, लय, शून्य ही किये और कर रहे हैं। इसीसे जड़ाध्यासी बनके चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़े वा पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ १८१ ॥

साखीः— कबीर कर्ताके किये। सन्धिक मात्रा अर्थ ॥
कर्ता बड़ा कि अर्थ बड़ा। कहु पण्डित सामर्थ! ॥१८२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! कायावीर कबीर

चैतन्य जीव मनुष्य कर्ताके कर्तव्य पुरुषार्थ करनेसे कल्पना मानन्दी कियेसे ही शब्द, अक्षर-समूह नाना वाणी बनी, तथा उसीमें, सन्धिक = जोड़, मिलान, वर्ण सन्धि, स्वर सन्धि, आदिमें और पञ्चमात्रादि मिलायके, शब्दके स्थूलाकार बनाये गये। जिससे फिर मनुष्य ही उसे पढ़-पढ़ाकर शब्दार्थमें 'शब्द ब्रह्म', भावार्थमें 'कर्ता ईश्वर', ध्वन्यार्थमें 'नाद ब्रह्म', और व्यङ्गार्थमें 'जगत् मिथ्या, ब्रह्म सत्य', इत्यादि अनेक अर्थ निकाले जाते हैं। यह सब तो कर्ता मनुष्यके ही कार्यसे होता है। अतएव हे पण्डित! तुम्हारेमें विवेक करनेकी शक्ति-सामर्थ्य, यदि होय, तो यह बताओ कि— कल्पनासे वाणी ब्रह्म, अर्थ आदिके निर्माणकर्ता या प्रगटकर्ता मनुष्य-जीव बड़ा हुआ? कि = अथवा उसका कथन किया हुआ, अर्थ = ब्रह्म, ईश्वरादि, तात्पर्य या मतलब, स्वार्थ, मानन्दी आदि बड़ा हुआ? विशेष शक्ति या सामर्थ्य, पराक्रम नरजीवमें हुआ? कि, कल्पित ब्रह्म आदिमें हुआ? सो इसका निर्णय करके कहो। अरे भाई! नरजीवके हुए बिना, तो शब्द, अर्थ, ब्रह्म आदि कुछ भी साबित नहीं होते हैं। अतः जीव ही श्रेष्ठ है ॥ १८२ ॥

साखीः— कबीर लोभीके गाँवमें। ठग नहिं परै उपास ॥
जो जेहि मतको लोभिया। तेहि घर ठगको बास ॥१८३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! जैसे विशेष लोभी, लालची, ऐसे लोग बसे हुए गाँवमें कोई ठग, धूर्त, धोखेबाज आ गये, तो वे वहाँ, उपवास = कभी भूखे-प्यासे नहीं पड़ सकते हैं। कुछ-न-कुछ लोभ बतायके, यथेष्ट उन्हें ठगकर, माल उड़ायके, सहज ही पेट भर लेंगे, और धोखा देके, हाथ मारके, चल देंगे। तैसे ही सब संसारी मनुष्य अत्यन्त लोभी, लालची बने हैं। वे रूप, यश, जय, विषयसुख, स्त्री, पुत्र, धन, राज-काज, नाज, इत्यादिके लोभमें ग्रसित हो रहे हैं। उनके बस्ती, गाँव, शहर, मोहल्ला, कस्बा आदिमें घूमनेवाले षट्दर्शनोंके भेषधारी ठग-गुरुवा लोग, धूर्ताई करनेमें बड़े चतुर हैं। इससे वे कभी, उपास = भूखे, नाकामयाब, खाली,

स्वार्थमें असफल नहीं होते हैं। जो ठगके पालेमें पड़े, वे ठगाय गये। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवता, ऋद्धि, सिद्धि, प्राप्ति, मनोकामना पूर्ण होगी, इत्यादि आशा, भरोसा दे-देके गुरुवा लोग तन, मन, धनादि सहज ही ठगके लूटकर हड़प लेते हैं। षट्दर्शन— ९६ पाखण्डोंमें जो मनुष्य जिस-जिस मत, पन्थ, सिद्धान्तमें लुब्ध या लोभिया भये, उन्हीं अविचारी मनुष्योंके घरमें, आस-पासमें और घटमें ठग गुरुवा लोग तथा उनके भ्रम, धोखा, वाणी कल्पनादिका दृढ़ निवास अड़ा वा टिका रहता है। अतः उसे परखके, न्यारा होना चाहिये ॥१८३॥

साखीः— कर्म इन्द्री जड़ वाक्य जो । ग्रन्थन वर्णन कीन्ह ॥
आगम निगम पुराण पुनि । जड़ उपदेशन दीन्ह ॥१८४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! ग्रन्थ या शास्त्रोंमें ऋषि, मुनि, पण्डित, और सन्तोंने ऐसा वर्णन किये हैं कि— मुख (वाक्), हाथ, पाँव, लिङ्ग, और गुदा, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ जड़-तत्त्वोंके कार्य हैं। उसमें जो मुखसे उच्चारण होनेवाला वाक्य, शब्द-समूह या वाणियाँ हैं, सो भी सरासर जड़ हैं। उसी जड़ वाणीको कथन, लेखन करके समस्त पुस्तकें रचना कर, नाना सिद्धान्त वर्णन किया गया है, और प्राचीनकालमें समय-समयपर मनुष्योंसे ही, निगम = चार वेदादि श्रुतियाँ, संहिताएँ मन्त्र भाग बने हैं, आगम = नाना शास्त्र, स्मृतियाँ, षट्शास्त्र, आदि और, पुराण = इतिहास, जीवनी लिखी हुई मुख्य, अष्टादश महापुराण तथा गौण उप पुराण आदि बहुत-सी ग्रन्थ बनी हैं। फिर वह जड़, कल्पित वाणीका ही तो उपदेश सब गुरुवा लोगोंने नरजीवोंको दिये हैं, और ब्रह्म, ईश्वरादि कोई दूसरा ही कर्ता बतायके भ्रमाये, भुलाये हैं। उपदेश देने-लेनेवाले चैतन्य सत्य हंस-जीवको तो वे जानते ही नहीं, जड़ कल्पित वांणीके प्रमाणसे मिथ्या भास, अनुमान आदिमें ही गाफिल पड़े हैं। जड़ पूजा देवी, देवतादिकी उपासना करनेका कोई उपदेश दे रहे हैं। कोई जड़-श्वासमें सुरति लगाके

ध्यान, समाधि लगानेको बता रहे हैं। कोई जड़-तीर्थ, व्रतादि करनेको कह रहे हैं, इत्यादि प्रकारसे जड़ उपदेश देके नरजीवोंको जड़ाध्यासी बद्ध बना दिये, और अभी वैसे ही जड़ बुद्धि बनायके धोखेमें डाल रहे हैं। चैतन्य-बोध, पारख-ज्ञानका उपदेश पाये बिना, मनुष्योंका भ्रम नहीं छूट सकता है, अतः पारख बोधको ही ग्रहण करना चाहिये ॥ १८४ ॥

साखीः— कबीर शब्दको अर्थ करी। शब्दहि आया हाथ ॥
कहहिं कबीर पारख बिना। जहाँ तहाँ पटकै माथ ॥ १८५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! जीवरूप इन मनुष्योंने कल्पित शब्द समूहसे बनी हुई वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि ग्रन्थोंके शब्दोंका अर्थ करके ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, अल्लाह, इत्यादि जो-जो सिद्धान्त कायम किये हैं, सो-सो तो कुछ भी मनुष्योंके हाथमें नहीं आया, कुछ नहीं मिला। सिर्फ शब्द लिखी हुई पुस्तकें और कल्पना यही उन्होंके हाथ वा साथमें आया। स्वर्ग, ऋद्धि, सिद्धि आदि मिलके भी किसीकी मनोकामना पूर्ण नहीं हुई। शब्दके अर्थ किया तो "शब्द ब्रह्मेति श्रुतिः" कहा, अर्थात् प्रणवरूप ॐकारको ब्रह्म माने हैं। किन्तु, वस्तु तो कुछ मिली नहीं, सिर्फ जड़ शब्दका भ्रम ही हाथमें आया। मिथ्या धोखाको ही ग्रहण किये। अतएव पारखी साधु गुरु कहते हैं कि— सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबका निर्णय यथार्थ पारखबोधको जाने बिना स्व-स्वरूपकी स्थिति इन नरजीवोंकी नहीं हुई। इसलिये भ्रमिक हो करके, जहाँ-तहाँ पत्थर, पानीमें, अनुमान-कल्पनामें, माथ = सिर पटक-पटक करके मर रहे हैं। कर्म, भक्ति, योगादिके नाना कठिन साधनाएँ कर-कराके बुद्धिको भ्रम धोखामें, पटक = ठोंक, पीट करके नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। भ्रमिक जड़ाध्यासी बन, चौरासी योनियोंमें फिर रहे हैं; दुःख भोग रहे हैं। बिना पारख, ऐसे ही भवबन्धनोंमें पड़े हैं ॥ १८५ ॥

साखीः— माया है जग तीनकी । जीव गुरु औ ईश ॥
सकल जीवके अन्तरे । व्यापै बिस्वाबीस ॥१८६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जगत्में जन्म, मरण, गर्भवासमें ले जानेवाली तीन प्रकारकी माया है। अज्ञानी जीवकी त्वंपद अज्ञान माया है। विज्ञानी गुरुवा लोगोंकी, गुरु= अति बड़ा भारी असिपद माया है। और ज्ञानियोंकी, ईश=ईश्वर मानन्दी तत्पद माया है। सोई मानन्दी स्थूल, कारण, और सूक्ष्म जड़ाध्यास ही कहलाता है। वही सम्पूर्ण अविवेकी पारखहीन नरजीवोंके भीतर अन्तःकरणमें, बिस्वाबीस= पक्का, मजबूत होकर पूरी तौरसे दृढ़ हो करके व्याप रही है, वा फैल रही है। वही सब जीवोंको आवागमनमें ले जाके, दुस्सह दुःख भुगा रही है। ये तीनोंकी त्रिपुटी माया बड़ी जबरदस्त बन्धन हैं। सब कोई उसके घेरेमें पड़े हैं, और पड़ रहे हैं, बिना विचार ॥ १८६ ॥

साखीः— जीवकी माया आपदा । ईश्वरकी संसार ॥
गुरुकी माया आवरण । पण्डित! करहु विचार ॥१८७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता उसी तीन मायाकी और खुलासा अर्थ यहाँ कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! अज्ञानी जीवको अज्ञान, अविद्या, अध्याससे बनी हुई कायारूपी मायासे सदैव, आपदा= आपत्ति, उपाधि, माया-मोह, काम, क्रोधादि विकार, स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज्यादिमें नित्य कलह, अशान्ति, राग-द्वेष, त्रयतापके भोग, आवागमन, इत्यादि करके होनेवाली विपद, नाना दुःख, सन्ताप होते रहते हैं। तथा ईश्वररूप ज्ञानियोंकी, माया= वाणी कल्पनासे संसारमें सदैव संशय, दुविधा, भ्रान्ति, धोखा लगी रहती है। उन्होंने वेद-शास्त्रादिमें जगत्कर्ता निराकार ईश्वर कोई एक है, उसीने ही सारा जगत् बनाया है, वही सबको धारण कर रहा है। अन्तमें महाप्रलय करके सब सृष्टिको अपनेमें मिलाय लेवेगा, इत्यादि असम्भव मिथ्या कथन वर्णन किये हैं। इसीसे संसारमें वही पढ़, सुन करके सब मनुष्य संशयग्रसित

हो रहे हैं। और तीसरा, विज्ञानी, गुरुवा लोगोंकी माया, तो महान् आवरणरूप पर्दा जीवोंपर पड़ा है। एक ही ब्रह्म सर्वाधिष्ठान, सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक, महाकाशवत् शून्य, निरञ्जन, अद्वैत, निःअक्षर, ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, ऐसा कह-कह करके, धोखामें मनुष्योंको डाल रहे हैं। वही आवरणरूप पर्दा महागाफिली है। ये तीनों मायाके वशीभूत होकर सब जीव चौरासी योनियोंके चक्रमें नाच रहे हैं, मुक्तिपदसे बहुत दूर हो रहे हैं। हे पण्डित! बुद्धिमान मनुष्यो! तुम लोग इसका यथार्थ विचार-विवेक करो, और तत्त्वमस्यादि माया जालको परखके, परित्याग करो। निज चैतन्य पारख स्वरूपमें स्थिति करो, तभी कल्याण होगा॥ १८७ ॥

साखीः— कबीर लिङ्ग व स्थूल तन । कारण माँहि विलाय ॥
तब आतम कहवाँ रहै । पण्डित! कहो बुझाय ॥१८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे आत्मवादी ज्ञानी लोगो! कायावीर कबीर, चैतन्य-जीव, शरीरमें है, तब ही तीनों देहें भी प्रकाशित हो रहे हैं। जब शरीर छूट जायगी, उस वक्त स्थूल देहकी सब कलाएँ, लिङ्ग = सूक्ष्म देहमें जमा होगी, फिर सूक्ष्म देह भी कारण देहमें विलीन हो जायगी। अध्यासी जीव उसे अपने साथ लेके अन्य खानीमें चला जायगा। इधर स्थूल देह खाली मुर्दा होके पड़ा, सड़ने-गलने लग जाता है। कहो! तब आत्मा कहाँ रहता है? आत्माकी व्यापकता कहाँ गई? आत्मा पूर्ण व्यापक होनेका लक्षण, उस मुर्दामें क्यों नहीं दिखाई देती है? जब चेतन निकलके देह मुर्दा निष्क्रिय, रद्दी हो गई, तब एकदेशी हुई, कि नहीं? तहाँ व्यापक सहज ही खण्डन हो गया। यानी स्थूल, सूक्ष्म दोनों शरीर जब कारणमें विलाय गया, अभाव-शून्य हो गया, तब उस वक्त तुम्हारा व्यापक माना हुआ आत्मा कहाँपर रहता है? हे पण्डित! इसी बातको अच्छी तरहसे खुलासा करके, समझाय-बुझायके कहो। यदि कह नहीं सकते हो, तो फिर व्यापक आत्मा माना हुआ सरासर झूठा है, ऐसा विवेक करके जानो ॥ १८८ ॥

साखीः—कबीर माया ईशकी । जीवहुकी छुटि जाय ॥
गुरु माया छूटब कठिन । आवरण होय रहाय ॥१८९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! पारखी साधु गुरुकी सत्सङ्ग, विचार करनेसे जिज्ञासु मनुष्योंका दिलसे जीवकी माया = अज्ञानकृत आपदाएँ, तथा ईश्वररूप ज्ञानियोंकी माया = परोक्ष ज्ञानकृत, संसार = वाणीकी संशय, दुविधा आदि ये दोनों भी सद्गुरुकी दया, पारख बोधकी प्रतापसे सहजमें ही छूट जाती हैं। ईश्वरके मानन्दी भी मिट जाती है, जगत् विषयोंकी आसक्ति भी छूट जाती हैं। परन्तु तीसरे, विज्ञानी गुरुवा लोगोंकी माया = वाणी-जाल, मिथ्या ब्रह्म मानन्दीमें जो जकड़ पड़ा, सो छूटना अत्यन्त कठिन दुष्कर ही हो जाता है। क्योंकि, ब्रह्मज्ञानियोंमें जिज्ञासु-भाव श्रद्धा, भक्ति, सत्सङ्ग-विचार करना कुछ भी होता ही नहीं है। उल्टे अपने ही वेद, शास्त्र, गुरु आदिको भी द्वैत निषेध करनेके लिये गुरु, वेदादि मिथ्या हैं, कहते हैं। तब दूसरेको वे क्यों मानेंगे ? अतः ब्रह्मके पक्ष मिथ्या, धोखा छूटना कठिन ही नहीं, असक्य भी है। वह तो आवरणरूप, पर्दा दृढ़ जड़ाध्यास संस्काररूप होके हृदयमें बैठी रहती है। और बारम्बार जीवोंको चौरासी योनियोंके जन्म-मरणादिके महाचक्रमें घुमाया करती है। अतः प्रथम ही सचेत हो परख करके उस कठिन माया जालमें पड़ना नहीं चाहिये और उससे निकलके, न्यारा हो रहना चाहिये ॥ १८९ ॥

साखीः—ब्रह्म जीव ईश्वर जगत । शब्दका गुण आकाश ॥
कहहिं कबीर पारख बिना । होय पदारथ भास ॥१९०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ ! भ्रमिक गुरुवा लोगोंने निराकार आकाशका गुण सूक्ष्माकार शब्द विषय अनुमान करके फिर उसीसे तत्त्वमसि सिद्धान्त प्रकाश किये हैं। तहाँ, त्वंपद जीव अल्पज्ञ, अंश, अज्ञानग्रसित कहा है। तत्पद

ईश्वर सर्वज्ञ, अंशी, कारण ज्ञानवान माना है। तथा असिपद ब्रह्म अधिष्ठान व्यापक ज्योंका-त्यों विज्ञानानन्द घन ठहराये हैं। जगत् मायाके कार्य मिथ्या प्रतीतिमात्र विषयरूप माना है। इस प्रकार ब्रह्म-झाँई, ईश्वर-सन्धि, जीव-काल, कल्पना ग्रसित हो, जगत्रूप माया-जालमें ही बन्धे पड़े हैं। यह सब नरजीवोंने शब्द विषयसे ही प्रकाश वा प्रचार किये और कर रहे हैं। वाणी, खानी जालोंमें ही जहँड़े जा रहे हैं। पारखी सन्त कहते हैं कि— सद्गुरु श्रीकबीर साहेबके यथार्थ निर्णय अपरोक्ष पारख बोधको जाने-समझे बिना सब गुरुवा लोग महाभूलमें ही पड़े हैं। अतः उन्हें जो ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित पदार्थ भास हुआ या हो रहा है, सो तो, पद = शब्दका, अर्थ = विषय, यानी पदार्थ सोई शब्द विषयका मिथ्या भास मात्र है। पारख न होनेसे उसे ही सत्य मानके भूले और भूल रहे हैं। तथा चौरासी योनियोंमें ही भूल रहे हैं ॥ १९० ॥

साखीः— स्वातीको पपिहा रटत। सबै बोल मत प्रेम ॥
जो स्वाती पपिहा मिली। पीउका छुटा न नेम ॥ १९१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जैसे, पपिहा = एक चातक पक्षी होता है। वह सत्ताईस नक्षत्रमें सिर्फ स्वाती नामक पन्द्रहवाँ नक्षत्रमें वर्षा हुँआ जल पीनेका ही अभिलाषा रखता है। इसीसे स्वाती जलके ही लिये पपीहा रटा ही करता है। "पानी पिऊँ, पानी पिऊँ" पीऊ-पीऊ ओ पीऊ ! पानी पिऊँ, पानी पिऊँ, ऐसा चिल्ला-चिल्लाके बोला करता है। सब चातक अपने-अपने प्रेममें मतवाले होके, दिन भर बोला करते हैं, और दूसरे जलाशयमें जाके कहीं भी जल नहीं पीते हैं। यदि संयोगसे कभी स्वाती नक्षत्रमें जलकी वर्षा भी हुई, पपीहाको जल पीनेको भी खूब मिला। तो भी पीऊ-पीऊ चिल्लानेकी जो आदत, नियम, अभ्यास उसे पड़ा है, सो रटन उसका छूटा नहीं, या छूटता नहीं है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें— पपिहा = प्रेमी, भ्रमिक, गोयी, ज्ञानी, भक्त लोगादि पारखहीन लोग अज्ञानी पक्षीकी नाईं पक्ष, हठ, पकड़-

पकड़ करके, स्वातीको = कोई अमृततुल्य परमात्मा, परमेश्वर, परब्रह्म, कर्ता पुरुष मान करके, उसको प्रसन्न करके, प्राप्त करनेके वास्ते मनमाने वैसे नाम स्मरणकर शब्द रटना, जाप कर रहे हैं। ओहं, सोहं, राम, ह्रीं, क्लीं, श्रीं, इत्यादि मन्त्र जाप, अजपा जाप, करने-करानेमें लग रहे हैं। सब षट् दर्शन— ९६ पाखण्डोंके मतवादी मनुष्य, अपने-अपने मत, पन्थोंके वाणी, प्रेमसे बोल रहे हैं, कथन उपदेश नाना साधनाएँ कर-करा रहे हैं। जो यदि सुखस्वरूप स्वातीवत् माना हुआ ब्रह्म, परमात्मा, आकाशवत्, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, अथाह, अपार है, ऐसा सिद्धान्त भी उन्हें मिला। गुरुवा लोगोंने ऐसे ही दृढ़ निश्चय भी कराये हैं। तो भी बिना विवेक, वे समझ नहीं पाते हैं, कि— यह धोखा है। पिउ = मालिक माना हुआ ब्रह्म ईश्वरादि साक्षात्कार करनेकी आशा, योग, ज्ञान, ध्यान, नाम-स्मरण आदि साधनोंका नियम, कष्ट, क्लेश अभी तक नहीं छूटी। और वह बिना पारख छूटनेवाला भी नहीं है। झूठे ही मालिक मान-मानके धोखा धारमें गोता लगा रहे हैं। अतः पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्गमें लगके उसे परख करके, भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये ॥ १९१ ॥

साखीः—जाकी श्रेष्ठता पूर्वते । आई चली मलीन ॥
कहहिं कबीर सो जीयरा । भया पापका पीन ॥ १९२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! संसारमें प्राचीन कालसे अभी तक भी अनन्तों नर जीव खानी-वाणीमें आसक्त पारख-हीन हुए, वा हो रहे हैं। उन्हीं लोगोंने षट् दर्शनोंके सहस्रों पाखण्ड संसारमें प्रचलित कर रखे हैं, उनमेंसे जिन-जिन मतवादियों-की श्रेष्ठता, विशेषता, महिमा पूर्व-परम्परासे ही चली आ रही है, चाहे उनमें निषिद्ध, हिंसकी, क्रूर, कुकर्म ही क्यों न होते हों, जैसे बाममार्गमें पञ्चमकार सेवन करके भैरवी चक्रमें उन्मत्त पशुवत् हो, भग-भोगमें प्रवृत्त होते हैं, और सनातनी लोग वलिदान कर, बकरा आदिको मारते हैं। यज्ञमें बहुत पशु मारते हैं। तथा मुसलमान

लोग हलाल करके गौहत्या करते हैं। चार्वाक, भौतिकवादी लोग नाना दुराचार करते हैं। तो भी बहुतेरे मूढ़ मनुष्य उन्हें ही श्रेष्ठ मानते जाते हैं। यद्यपि वह मलीन निकृष्ट है, परन्तु जैसी पूर्वसे चली आई, वैसे ही अभी भी चलाते जाते हैं, उसे त्याग नहीं करते हैं। इसीसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं, कि— सो ऐसे मूढ़ नरजीव सब लोग हठी, शठी, पक्षपाती, अविचारी, विषयासक्त, अघकर्मी, निर्दयी, काल, कसाई, धूर्त, लम्पट, लबार होनेसे स्वार्थके कारण वे ही, पापका पीन = पाप भरा हुआ पूर्ण घड़ावत् ही हुए, अर्थात् पापियोंमें अग्रगण्य महान पापी, दुष्ट, दोषी ही भये हैं। पाप कहिये जड़ाध्यासका दोष, वही उनके हृदयमें परिपुष्ट भया, और हो रहा है। अतः वे ही चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़के सदा दुःख ही भोगते रहते हैं, बिना विवेक ॥ १९२ ॥

साखीः— कबीर अक्षर बोलते । होय अकार अनुसार ॥
अकारके बेकारको । मूढ़ कहैं कर्तार ॥ १९३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जीवरूप मनुष्योंके बोलनेसे ही मुख, दन्त, ओष्ठ, कण्ठ, तालू आदि स्थानमें स्पर्श होकर ५२ अक्षर उच्चारण होके, वैखरी वाणीसे प्रगट होते हैं। फिर उसमें अ, उ, म, अर्ध और अनुस्वार-बिन्दु, विसर्गः, ये पञ्च मात्राएँ यथा स्थान मिलाकर, अकार = शब्द या वाणीकी स्थूलाकार होती है। सो उसी नरजीव कल्पित वाणीसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि नाना ग्रन्थ, पन्थ बनाये हैं। फिर उसी कथनके प्रमाण अनुसार सब नरजीव चलने-चलाने लगे, नाना साधनाएँ करने-कराने लगे। और उसी कल्पित, अकार = स्थूलाकार वाणीका विकार = विषय, मैला, कचरारूप ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा आदि मानन्दी करके, मूढ़ = अविचारी, बेपारखी, बुद्धिहीन, पक्षपाती गुरुवा लोग उसी वाणीके विकार ब्रह्म आदिको नेत्र मूँदके जगत्कर्ता, परम-पुरुष, सुख-दुःखोंका दाता इत्यादि कहते हैं, झूठी महिमा बढ़ाते हैं।

अतः वे ही कृतमको कर्ता कहनेवाले महा नास्तिक बने हैं। यदि ब्रह्म, ईश्वर, सत्य होते, तो वाणी कहे-सुने बिना भी सबको वे प्रत्यक्ष होना चाहिये था, किन्तु, ऐसा नहीं होता है। वाणी कह-सुनके ही उनकी महत्त्व होती है। अतः वाणी, ब्रह्म, ईश्वरादिके स्वयं कर्ता मनुष्य-जीव ही हैं। ऐसा न जानके मूढ़ोंने शब्द विकारको ही कर्ता पुरुष ठहरा रखा है, सो महा भूल है। सत्सङ्ग द्वारा परख करके वह भूल-भ्रमको मिटाना चाहिये ॥ १९३ ॥

साखीः— अक्षर औ निःअक्षरहीं। बोलेते संयोग ॥
जो मुख परा सो जूठा। काग श्वानका भोग ॥ १९४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! बोलनेमें मुख, जिभ्या, कण्ठ, तालु आदि स्थानोंका संयोग-सम्बन्ध या मेल पायके बोलनेसे कवर्ग, च, ट, त, प, और श वर्ग; अ वर्ग आदि सब ५२ अक्षर पञ्च मात्रा, सन्धि आदि प्रगट होते हैं। फिर उसीके वियोग पायके निःअक्षर, अवाच्य, शून्य होता है। और फिर अक्षर ब्रह्म प्रणवरूप ॐकार कहना तथा निःअक्षर ब्रह्म, अनहद, निरञ्जन, श्वासरूप परमेश्वर, ज्योतिस्वरूप परमात्मा है, इत्यादि कथन करना, वह दोनों ही— चाहे अत्तर ब्रह्म कहो, चाहे निःअक्षर ब्रह्म कहो, सो मुखद्वारा बोलनेसे वाणीका संयोग पायके ही सिद्ध होती है। अतः वह सिर्फ शब्दके सिवाय और दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। और जो चीज किसीके मुखमें पड़ा और निकला, थूका, अथवा अपच होनेसे उल्टी भयी, बमन गिरी, सो जूठा, अपवित्र, त्याज्य होती हैं। उसे तो काग वा कुत्ते आदि नीच जीव ही प्रसन्न होके खाते, भोगते हैं, दूसरे नहीं। तैसे ही जो-जो वाणी नरजीवोंके मुखसे निकल पड़ी, वेद, वेदान्त, शास्त्र, आदि सो सब थूक, बमनवत् जूठा, उच्छिष्ट, त्याज्य सरासर भूठा ही है। किन्तु, काग=अविचारी, बकवादी गुरुवा लोग, और श्वान=स्वार्थी पण्डित लोग आदि उन्हींका वह भोग्य, ग्राह्य हो रहा है। सच्चे हंस पारखी मनुष्य ऐसे जूठी और

झूठी वाणीको कभी ग्रहण नहीं करते हैं। वाणी, खानीको त्याग करके पारख स्वरूपमें ही सदा शान्त, स्थिर हो, रहते हैं। उन्हीं पारखी सन्तोंका बोध लेकर, अपना कल्याण करना चाहिये ॥ १९४ ॥

साखीः— कबीर यह श्वासा सहित। पाँच तत्त्वकी देह ॥
इस्थापन श्वासा करै। तेहि देह गेह सो नेह ॥१९५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! चैतन्य जीवकी सत्ता-सम्बन्धसे पञ्च प्राण, सूक्ष्म देह, तथा यह नाभि, नासिका मध्यमें श्वासोच्छ्वास क्रियासे चलनेवाली श्वास वायुसहित पाँच तत्त्वकी कार्यरूप प्रत्यक्ष यहाँ स्थूल देह कर्म वेगसे बनी है। किन्तु, चैतन्य जीव, शरीर तथा श्वास आदिसे सदा विजातीय न्यारा ही रहता है। परन्तु पारखबोध बिना कोई योगी, ज्ञानी आदि लोग तो साधना द्वारा अर्धकी श्वासको उर्ध ब्रह्माण्ड भ्रमर गुफामें ले जाके, लय करके स्थापन करते हैं। तहाँ आनन्द होता है, सो जड़ देहकी भास उसी शून्य वृत्तिको सच्चिदानन्द ब्रह्म स्थिति निज गृह मानके कितनेक लोगोंने, नेह=प्रीति लगाये और गाफिल जड़ाध्यासी भये हैं; और कोईने प्राण वायुरूप जड़ श्वासको ही ईश्वरका स्वरूप वा अपना स्वरूप मान करके, विश्वास स्थापन किये हैं। कोई देहवादीने यही स्थूल देहको ही सत्यस्वरूप माने हैं। तत्त्ववादीने पाँच तत्त्वोंको ईश्वर माना है। शून्यवादोने शून्यको ही सत्य माने हैं। और विषयी लोगोंने पञ्च विषयोंको ही श्रेष्ठ माने हैं। वे सब इसी नाशवान्, देह, स्त्री, पुत्रादि, घर-बार आदिमें अति स्नेह, मोह, आसक्ति टिकायके जड़ाध्यासी हो, भवबन्धनोंमें गिर पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ १९५ ॥

साखीः— त्रिदेवादि आचार्य सब। नेति कहै अवशेष ॥
नेति शब्द अकाश गुण। शेष अकाशहि देख ॥१९६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो!, त्रिदेवादि=ब्रह्मा,

विष्णु, महेश एवं सनकादि, भृगु, अङ्गिरादि, सप्तऋषि, और व्यास आदि प्रथम जितने भी वेद-वेदान्तके आचार्य हो गये, उन सबोंने ब्रह्मज्ञानका निर्णय करते-करते, वेद पढ़ते-पढ़ाते अन्तमें अवशेष = बाकी रहनेवाला अवशिष्ट एक ब्रह्म ही सत्य है, परन्तु, नेति = उसके इति वा अन्तका पता कुछ नहीं लगता है। वेदोंने भी परमात्माके गुणानुवाद करते-करते आखिरीमें 'नेति-नेति'—इतना ही मात्र गुण नहीं, उसकी इति नहीं, बेअन्त, अपार है, ऐसा कहा है। सोई गुरुवा लोग कह रहे हैं। फिर उन्हीं लोगोंने शब्दको आकाशका गुण माने हैं। अथवा शब्द गुण तो समान-विशेष वायुका ही है। तब 'नेति-नेति' कहा हुआ ब्रह्म भी शब्दका विषयमात्र ही हुआ। चाहे तुम उसे, शेष = बाकी, सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्म, निराकार, निरञ्जन आदि कुछ भी महिमा बढ़ायके कहो, परन्तु तुम्हारा ही पूर्व कथनसे आकाश वा वायुका गुण शब्द ठहरनेसे शब्दका विषय आकाशवत् व्यापक माना हुआ ब्रह्म भी शून्य, मिथ्या धोखा ही हुआ। शेषमें आकाशको ही देख लो, वह कैसा शून्य अवस्तु है। बस, आत्मा, ब्रह्म भी आखिरमें वैसे ही असार साबित होनेसे तुम्हारा सब ही साधन, प्रयत्न, निष्फल वा व्यर्थ हो गया। यदि कल्याण चाहते हो, तो उस धोखाको परखके छोड़ो। गुरु पारखके विचारमें लागो ॥१९६॥

साखीः— शेषजादि बल शेषके। चादर ओढ़ी झीन ॥
जाड़ेते दूबर भई। कहै भई मैं पीन ॥ १९७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और जैसे कोई विशेष देह-बल वा धन, इज्जत आदि श्रेष्ठताके अभिमानसे, बारीक मलमल आदिकी चादर ओढ़ै। ठण्डिके दिनोंमें शीतसे ठिठुरके दुर्बल हो जावे, तो भी ऐसा कहै कि— अब तो मैं बड़ा सुखी परिपुष्ट हो गया हूँ! तो वह उल्टी कहनेवाला मूढ़ वा स्वार्थी ही कहलायेगा। तैसे ही, शेषजादि = पारखहीन ब्रह्मवादी गुरुवा लोग ज्यादे ही हंकारी बने हैं। बल शेषके = ब्रह्मज्ञानके कल्पनाका बल पकड़के, बड़े उन्मत्त

पक्षपाती भये और हो रहे हैं। इसीसे उन्होंने, चादर ओढ़ी झीन= झीनी मायारूपवाणी कल्पनाकी मानन्दी अपने ऊपरमें ओढ़ लिये, तो "अहं ब्रह्मास्मि" कहते भये। दशों दिशामें मैं परिपूर्ण व्यापक हूँ, ऐसी बड़ी लम्बी झीनी चादर ओढ़के मगन भये। परन्तु, जाड़ेते दूबर भई=चैतन्यताको छोड़कर जड़स्वभाव धारण किये, तहाँ जड़ाध्यासी बद्ध होके ठिठुर गये, दुर्बल, असक्त, दूबले, पतले, बुद्धिहीन, भ्रमिक ही हो गये। तो भी अनसमझ, पक्षपात, प्रतिष्ठाके कारणसे वे गुरुवा लोग कहते हैं कि— अब हम, पीन=परिपुष्ट, सर्वश्रेष्ठ स्वयं ब्रह्म बन गये हैं, अथवा हम पूर्ण ब्रह्ममें मिल गये, तदाकार हो, कृतकृत्य, मुक्त हो गये, इत्यादि कथन कर महाधोखा, गाफिलीमें पड़े हैं। बिना पारख खानी, वाणीके जड़ाध्यासी हो, सब जीव भवबन्धनमें पड़े और पड़ रहे हैं। अतः परखके उसे त्यागना चाहिये ॥ १९७ ॥

साखीः— कबीर नोखी नौनिया । बास नहरनी लीन्ह ॥
नख जटा देह बढ़ायके । आतम ठुङ्गन कीन्ह ॥१९८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! जैसे अच्छा नाऊ (हजाम) की स्त्री— नाऊनी, बाक्समें नहरनी, महावर, रङ्ग, इत्यादि सामान लेके, यजमानोंके घर जा-जाकर स्त्री आदिका हाथ, पैरोंके नाखून काट-काटकर, रङ्ग लगा देती है। उसी धन्धासे मजूरी लेके, पेट पालती है। उसी प्रकारसे मतवादियोंने भी अपने-अपने एक-एक धन्धा उठाया है। कबीर=संसारी नरजीवोंको ठगनेके लिये, नोखी=अनोखी, अच्छी, चतुर-चालाक, धूर्त बने हुए, नौनिया= नाऊ गुरुवा लोगोंके नारीवत् उनके अनुयायी योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मियोंने अपने स्वार्थसिद्धिके लिये वेद, शास्त्रादिके नानावाणी पढ़-पढ़ा करके फिर, बास नहरनी लीन्ह=वासनारूपी औजार हाथमें या साथमें लिये अर्थात् ब्रह्म-वासना ईश्वर, आत्मा, खुदादि-वासना सात स्वर्ग, सात आशमानपर तख्तकी वासना, ऋद्धि-सिद्धि आदिकी

नाना वासना वही नहरनी पकड़के नाखूनरूप द्वैत जगत्की कल्पना निकालनेके लिये श्रवण, मननादि कर-कराके साधन चतुष्टय साधनेका प्रयत्न करने लगे। कोई तपस्वी साधक-सिद्ध भये, तो किसीने हाथ, पैरोंमें लम्बे-लम्बे नाखून ही बढ़ाय लिये, किसीने शिरमें पञ्चकेश, बड़ी-बड़ी जटाएँ, लटाएँ, दाढ़ी, मूँछ आदिका बाल ही बढ़ा लिये, कोई सर्वाङ्गमें राख लगाके खूब मैल बढ़ा लिये, कोई जिभ्या बढ़ानेवाले, तो कोई लिङ्ग बढ़ानेवाले भये। किसीने कान फड़ाये, नाक छेदाये, कङ्कण पहिने, इत्यादि प्रकारसे देहमें सारा विकार ही विकार बढ़ाय करके, विकारके तो खानी ही बन गये। मनमें काम, क्रोधादि वासना बढ़ायके जड़ाध्यासी हो गये। अन्तमें जब वेदान्ती भये, तो आतम टुङ्गन कीन्ह=व्यापक एक आत्मा निश्चय करके दृश्य जगत् मिथ्या, भ्रम, कल्पनामात्र है, यही नख निकालके स्वयं अद्वैत व्यापक ब्रह्म बने। वही जगत् द्वैतके टुकड़ाको टुङ्गन या विनाश करके अद्वैत आत्मा ठहरा लिये। मजूरीमें लोगोंके तन, मन, धनादि, हरण करके मौज करने लगे। ऐसे वे धूर्त गुरुवा लोग कपटके चाल चल रहे हैं। नाना प्रकारसे रोचक, भयानक वाणी सुना-सुनाके मनुष्योंको भुलाय भ्रमाकर अपना ढोंग फैलाके स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। उन्हें कपटी काल जानकर, उस जालसे निकल जाना चाहिये ॥ १९८ ॥

साखीः— युगयुग जो यह सम्प्रदा। श्री व शङ्करी दोय ॥
श्री सों वादी शक्तिके। शङ्करी शिवके होय ॥१९९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! यह नाना सम्प्रदाय, मत, पन्थ, फिरके, पाखण्ड, आदिका विस्तार तो संसारके बीच-बीचमें ही होते चले आये हैं। नहीं तो युगान्त-युग सनातन या अनादिसे जड़ तथा चैतन्य, प्रकृति और पुरुष, नर-नारी ऐसे, युग-युग= दो-दो जोड़ा साथ ही चला आ रहा है। उसीसे, श्री=लक्ष्मी, माया, प्रकृति, धन आदि स्त्रीके भागमें विस्तार हुआ है। उसीमें एक

सम्प्रदाय श्रीवैष्णव, लक्ष्मीनारायणके उपासक निकले हैं। और शङ्करी=शिव, शङ्कर, पुरुष, आदि नरजीवके भागमेंसे विस्तार हुआ। उसीमें दूसरा सम्प्रदाय शैव, जङ्गम, योगी, संन्यासी आदि शिव-पार्वतीके उपासक बने हैं। संसारमें या भारतवर्षमें मुख्य करके श्रीवैष्णव तथा शैव, शङ्कर-भक्त यही दो सम्प्रदायोंका जोर-जुल्म ज्यादातर चल रहा है। बहुत लोग उनके अनुयायी फौज बने हैं। उसमें श्रीसम्प्रदायवादी मुख्य श्री, माया, वैष्णवो शक्तिरूप स्त्रीके ही उपासना करनेवाले होते हैं। उन्हें प्रकृतिवादी ही जानिये। दूसरे-शङ्करी मतवादी मुख्य लिङ्ग पूजक, शङ्कर, शिव, पुरुषरूपसे ब्रह्म मानन्दी करनेवाले होते हैं। सारे अद्वैतवादी संन्यासी इसी मतमें आ जाते हैं। शैवमें दो भेद हैं— एक दक्षिण-मार्गी शुद्ध-चाल-वाले वेदान्ती आदि होते हैं। दूसरे बाममार्गी पञ्चमकार सेवन करनेवाले अशुद्ध, मलीन, शक्ति उपासक-तान्त्रिक आदि होते हैं। दूसरे वैष्णवलोग द्वैतवादी होते हैं। इस प्रकार श्री=शक्तिवादी स्त्री-भक्त और, शङ्करी=शिववादी पुरुष-भक्त, दोनों ही विषयासक्त जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं। अतः उन दोनोंका मत मुमुक्षुओंके लिये त्याग करने योग्य है, विकारी है, ऐसा जानना चाहिये ॥१९९॥

साखीः— श्री व शङ्करी सम्प्रदा। बिन गुरु नाहीं कोय ॥
कहहिं कबीर गुरुसम्प्रदा। शरण गये सुख होय ॥२००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे मनुष्यो! श्रीवैष्णव द्वैत मायावादी तथा शङ्करी=शैव अद्वैत पुरुषवादी उन दोनों सम्प्रदायोंके संस्थापक विष्णु और महेश गुरुवा भये हैं, परन्तु गुरु पारखके बोध बिना वे निगुरे भ्रमिक ही बने थे। उनके सम्प्रदायमें कोई किसीको भी पारख स्वरूपका बोध नहीं है। यद्यपि मोटीरूपसे बिना गुरुके तो कोई भये नहीं हैं, सबके एक-न-एक गुरु भये हैं, या गुरु माने गये हैं। तथापि वे सब बेपारखी होनेसे गुरुपदके अधिकारी नहीं हैं, बन्धनदाई गरुवा काल ही बने और बन रहे हैं। पारखी

सद्गुरुके बिना उनमें लगके किसी मनुष्यका कल्याण नहीं हो सकता है। अतएव जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय करके सत्य न्यायसे यही जीव ही सत्य है, अन्य मानन्दी मिथ्या है, ऐसा यथार्थ पारखबोध सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने निष्पक्ष होके परखाये, लखाये हैं। सारशब्दसे सब सारासार सिद्धान्तका निर्णय कहे हैं। अतएव वही पारखी सद्गुरुका मुक्तिदाई मार्ग या सम्प्रदाय है। सत्य बोधदाता पारखी सद्गुरु बन्दीछोरकी शरण, सत्सङ्गमें जो गये, उनके सब भ्रम, बन्धन छूटके सुखी जीवन्मुक्त होते भये। और अभी उन्हीं पारखी सद्गुरुके पारखज्ञान बोधदाता परम्परागत पारखी सन्त सद्गुरुके जो जिज्ञासु शरण, ग्रहण, सत्सङ्ग विचार करते हैं, उन्हें भी शान्ति, सुख, जीवन्मुक्ति प्राप्तिका लाभ ही हो रहा है। भविष्यत्‌में भी जो कोई पारखी गुरुके ज्ञान लेके शरणागत होवेंगे, वे भी भ्रम, भूलसे छूटकर सुखी मुक्त ही होवेंगे। अतः उन्हीं पारखी साधु गुरुके शरण, सत्सङ्गमें लग करके पारखबोध प्राप्तकर सुखी होना चाहिये ॥ २०० ॥

साखीः—कबीर अव्या ईशकी। हतत कहैं सब कोय ॥
अव्याकृत बिन ईशता। कहु पण्डित किमि होय? ॥२०१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! सब कोई वेद, शास्त्रज्ञ पण्डित गुरुवा लोग ऐसा कहते हैं, कि— ईश्वरकी अव्या = माया, उपाधि, विषय आदि, हतत = अत्यन्त विनाश हो गयी है। अर्थात् ईश्वर मायासे परे, मन, बुद्धि, वाणीसे परे, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, सर्वव्यापक है। सब कोई मतवादी, ईश्वरादिके बारेमें ऐसे ही असम्भव महिमा कथन करके कहते हैं। परन्तु ठीकसे विचार करो कि— अव्याकृत = मन-मायाकृत वाणी, कल्पना और ज्ञान, श्री, ब्रह्माण्डता, यश, विद्या, और बल ये षट्‌गुण ऐश्वर्यरूप मायाके उपाधि बिना ईश्वरता कहाँसे, कैसे सिद्ध होगी? जब वह षट् गुणवाला ईश्वर है, तथा वाणीद्वारा ही जाना जाता है, माया, मन, वाणी, बुद्धि आदिसे परे वह कैसे भया? वह तो उसी मायाके

भीतर ही ठहरा। हे पण्डित! अव्याकृत = मायाके वेष्टन बिना ईशकी ईशता कैसे साबित हो सकती है? सो कहो! अतः वह माना हुआ निराकार ईश्वर ही तुम्हारे मनकी कल्पना है। वह कल्पना करनेवाले देहधारी नरजीव ही श्रेष्ठ हैं, ईश्वरादि कल्पना श्रेष्ठ नहीं है, ऐसा जानो ॥ २०१ ॥

साखीः— अव्यागत जो विष्णुकी । लक्ष्मी काके सङ्ग ॥
जेहि चाहै सकल जग । अव्याकृतको अङ्ग ॥२०२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! विष्णु भी माया मोहके वशीभूत भवबन्धनमें ही पड़ा था। जो यदि ऐसा कहो कि— आदि नारायण, वैकुण्ठपति महाविष्णुकी तो, अव्या = माया-मोहका विकार सम्पूर्ण ही, गत = विनाश हो गई थी, वे मायासेरहित रहते हैं। निराकार, निर्गुणरूपमें रहते हैं, व्यापक हैं। तो यह बताओ कि— समुद्र गुप्तकी पुत्री श्री वा लक्ष्मी किसकी स्त्री थी? वह सदा किसके सङ्ग साथमें रहती थी? वह मुख्य माया-मोहिनी विष्णुके साथमें ही तो रहती रहीं। फिर जिसकी स्त्री साथमें हो, वह निराकार और माया त्यागी कैसे हो सकता है? और सकल जगत्के नरजीव जिस विष्णुको वा लक्ष्मीको चाहते हैं, सो विष्णु अव्याकृत = माया-रूप लक्ष्मीके कर्तव्य कार्य मोहके अङ्गमें ही घुला-मिला हुआ, आसक्त पड़ा रहा। अतः मायाके सहित अध्यासी जीव ही विष्णु नामधारी हो भवबन्धनमें पड़ा रहा ॥ २०२ ॥

साखीः— कबीर औ महादेवकी । अव्यागत जो होय ॥
नगन रहै डर कौनके । गिरिजा का की जोय? ॥२०३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! पूर्वमें मनुष्य जीव एक महादेव नामसे प्रसिद्ध भया है, सो भी माया, मोहमें आसक्त बद्ध ही भया था। यदि उसके अनुयायी शैव लोग कहैं कि—अजी! महादेव तो मायाके त्यागी थे, उनकी तो माया विकार

छूट गयी थी। तो सुनो! जो यदि महादेवकी, अव्यागत = माया विकार निवृत्त भयी थी, वे मायासेरहित थे, तो गिरिजा = पर्वतोंके राजा हिमालयसिंहकी पुत्री, उमा या पार्वती किसकी स्त्री थी? वह सदा किसके गृह वा गोदमें रहती थी? गणेश, कुमार, किसके पुत्र थे? पार्वती उसी महादेवकी ही तो स्त्री अर्धाङ्गिनी रहीं, फिर वे मायासे रहित कैसे भये? और दिन-रात नग्न, दिगम्बर हो, ऋद्धि-सिद्धिकी आशासे तपस्या करते रहे, यदि वे त्यागी थे, तो किसके डरसे नङ्गे पड़े रहते थे? मायारहित होवे, तो इतनी उपाधि क्यों लगती? अतः तमोगुणी महेश काम, क्रोध, लोभ, मोहादिमें ग्रसित हो, विषयासक्तिसे भवबन्धनमें ही जकड़ पड़े। बिना पारख मूढ़ लोग ही ऐसोंका महिमा करके भूलते और भुलाते हैं ॥ २०३ ॥

साखीः— कबीर मोहिनी देखिके। हा! हा! शङ्कर कीन्ह ॥
कहहिं कबीर यह लक्षणा। अव्याहतको चीन्ह ॥२०४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! पुराणोंमें लिखा है— अमृत बाँटनेके लिये विष्णुने कपटरूपसे सुन्दरी, मनमोहिनी स्त्रीका स्वरूप बनायके, दैत्योंको छल-कपट करके, सुरा पिलायी, देवताओंको अमृत पिलायी थी। यह बात सुनकर पार्वतीसहित शङ्कर विष्णुसे मिलनेको गये। मिलकर पुनः वह मोहिनीका स्वरूप दिखानेके लिये विनयपूर्वक कहा। फिर बहुत कहने-सुननेपर विष्णुने छिपकर वैसे ही मनमोहिनी स्त्रीका रूप बनायके सोलहों शृङ्गारयुक्त सुन्दररूप दिखाये। तब उस मोहिनी रूपको देखके शङ्कर बिलकुल कामासक्त बेकाबू हो गये, सुधि-बुधि हेराय गयी साथकी पार्वतीको भी छोड़कर निर्लज्ज हो, हाय प्रिये! हाय प्रिये! चिल्ला-चिल्लाकर उस मोहिनीके पीछे दौड़ पड़े, वह भागी, तो और भी हाहाकार मचाके व्याकुल हो, उसी तरफ भागे। कामासक्तिके कारण रास्तेमें ही उनका वीर्यपात हुआ, और गिर पड़े, तब ठण्ढे पड़े, तो हाय-हाय करके शोक करने लगे। फिर पीछे विष्णुको

असलीरूपमें अपने पास आया हुआ देखके बहुत लजाये । बड़ी फजीहत हुई । यह कथा भागवत आदिमें विस्तारसे लिखा है । इस प्रकार मोहिनी पर-स्त्रीको देखनेसे ही शङ्कर काम-पीड़ित होके हाहाकार किये, अनुचित बर्ताव किये । पारखी सन्त कहते हैं— क्या यही ऐसा ही लक्षण मायाको जीतनेवालोंका होता है? कभी नहीं! यह लक्षण तो महाविषयासक्त कामी मायामें डूबे हुए वालोंका होता है । अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके निर्णय पारखी सन्त कहते हैं कि— अव्याहत = मायासेरहित, जिसका माया विकार नाश हो गयी, उसका यह ऐसा लक्षण वा चिह्न होता नहीं । विषयासक्तको तो मायाका दास, स्त्रीका गुलाम ही जानना चाहिये ॥ २०४ ॥

साखीः— अव्याहत जो रामकी । सीता अर्ध शरीर ॥
अव्या बिन कैसे भये । दशरथ सुत रघुवीर ॥२०५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! राजा रामचन्द्र भी माया-मोहके महाजालमें ही फँसे पड़े थे । रामचन्द्रको जो लोग मायासे परे ब्रह्म बताते हैं, वे लोग यह बतावें कि— अगर रामचन्द्रकी, अव्याहत = माया विनाश हो गयी थी, मायासे वे रहित थे, तो सीता या जानकी अर्धाङ्गिनी नारी किसकी स्त्री भयी? जनकपुरमें जाके रामने सीतासे विवाह किया, तो सीता अर्ध-शरीरसे अर्धाङ्गिनी रामकी ही स्त्री कहलायी । वनवासमें सीताहरण होनेपर रामचन्द्र माया-मोहसे अत्यन्त अधीर होकर रो-रोके वृक्षोंकी डाली-डाली, पत्तोंतकसे पूछते फिरे, ऐसा वर्णन है, इतने अज्ञ होते भये । और उसी कारणसे रावण कुलका विनाश किये । फिर वे मायासे रहित त्यागी कैसे भये? मायाके आसक्ति अज्ञान यही, अव्या = अध्यास अविद्याके बिना फिर कैसे वे दशरथ महाराजाकी स्त्री कौशल्याके गर्भसे पुत्र होके उत्पन्न हुए? तथा रघुकुलमें शूर, वीर, लड़ाका, योद्धा आदि प्रसिद्ध भये, सो माया विकारके बिना कैसे

भये ? अतः वे माया-मोहमें लिप्त मायाके रूप ही थे। अध्यासवश आत्मा राम बनके, चौरासी योनियोंमें ही रमे थे ॥ २०५ ॥

साखीः- पूर्ण ब्रह्म कृष्ण जो । अव्याहत किमि कीन्ह ? ॥
नाचि रिझायो गोपिकन । अव्याहतको चीन्ह ॥२०६॥

टीकाः-- ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! कृष्ण तो और भी महान् माया-मोहमें ग्रसित रहे। जो यदि कृष्णके भक्त लोग उनको बालब्रह्मचारी, पूर्णब्रह्म, परमात्मा, चराचरमें व्यापक, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, इत्यादि विशेषण करके मानते हैं, तो यह बताओ कि, कृष्णने, अव्याहत=माया विकारका नाश कैसे किया ? छोटेपनसे तो कुसङ्गमें लगा रहा, चोरी, बदमाशी, ठगायी, धूर्तायी कर-करके बड़ा हुआ, तो जवानीमें बन-ठनके, गोपिकन=ग्वालोंकी स्त्रियाँ, बहु, बेटियोंको छल, बल, कपटसे वशमें करके नाना विधिसे नटके समान नाच-नाचके हाव, भाव, कटाक्ष, करके रिझाये, उन्हें खुश या प्रसन्न करके भग-भोग भोगके व्यभिचार भी खूब किया। राधा तो कृष्णकी प्यारी स्त्री रही और आठ पटरानी रहीं। सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंसे कृष्ण विषय-भोग करते थे, ऐसा भागवत आदिमें लिखा है। और बाहरके व्यभिचारकी तो गिनती ही नहीं। जब इतना बड़ा पूर्ण कामासक्त भग-लम्पट हुआ; अब बताओ, अव्याहत=माया-मोहसेरहित असङ्ग पूर्ण त्यागीका चिह्न या लक्षण कहाँ हो सकता है ? कभी नहीं। यदि ऐसा होता, तो फिर सारे संसारी लोग भी मायासेरहित होते। किन्तु, कृष्ण बड़ा भोगी, बिलासी रहा। वास्तवमें ब्रह्म बनके जड़ाध्यासवश, चौरासी योनियों-में ही रमा, बिना पारख ॥ २०६ ॥

साखीः— कबीर दश अवतारकी । अव्याहत जो होय ॥
जग उत्पत्ति पालन प्रलय । बिन अव्या न होय ॥२०७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! संसारमें दश अवतार मुख्य माने हैं, सो मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, वामन,

परशुराम, राम, कृष्ण, बौद्ध और निःकलङ्की, ये माने हुए ईश्वरके दशों अवतार भी जड़ाध्यासी हो, माया जालमें ही अरुझे पड़े थे। जो यदि युक्त दशों अवतारोंकी, अव्याहत = माया जाल विनष्ट या माया बन्धनसेरहित हो गये होते, तो फिर बिना अध्यास वासनाके संसारमें उत्पन्न होकर जन्म ही न लेते। जब जगत्‌में उत्पन्न हुए, तो उनका पालन-पोषण हुआ, फिर समय पायके नानाकर्म करके मर गये, सोई प्रलय हुआ, सो बिना अव्यारूप मायाके सङ्ग, साथ हुए कभी उत्पत्ति, पालन, प्रलय, तथा जन्म, मरण, गर्भवासमें जाना-आना नहीं होता है। माया, काया, कल्पना, विषय, अध्यासवश ही आवागमन होता है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक शब्द ८ में कहा है:—

"सन्तो! आवै जाय सो माया॥ दश अवतार ईश्वरी माया। कर्ता कै जिन पूजा॥ कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! उपजै खपै सो दूजा॥" ॥ बीजक पूरा शब्द ८ ॥

और गुरुवा लोगोंने वेद-शास्त्रोंमें चराचर जगत्‌का उत्पत्ति, पालन, प्रलय, एक ईश्वर कर्ताके अधीन होना वर्णन किया है। सो मिथ्या कल्पना ही है। तहाँ भी मायासेरहित अकेला ईश्वर ऐसा कर ही नहीं सकता है? जब चौरासी योनियोंमें आके दश अवतार धारण किया, तो माया बन्धनके सहित ही ठहरा। अतएव वे सब माया जालमें लिपटे हुए चौरासी योनियोंके जीव हैं। झूठे ही महिमा बढ़ाये हैं। कोई बिरले ही पारखी सन्त माया जालसेरहित होते हैं, सोई सच्चे त्यागी जीवन्मुक्त होते हैं॥ २०७॥

साखीः— चितवन करन जगतकी। ज्यों लों नहीं अति अन्त॥
कहहिं कबीर पुकारिके। तौं लों होय न सन्त॥२०८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! जबतक जगत्‌का पञ्चविषय, पञ्चकोश, खानी और वाणी जालके तरफसे चित्त-चिन्तन, मनन, सङ्कल्प-विकल्प, सोच, फिकर, चिन्ता, वासना, मानन्दी करना छोड़ा नहीं जाता है, अध्यास त्यागा नहीं जाता है,

संस्कार मिटाया नहीं जाता है, तबतक बन्धन मिटता नहीं है। अर्थात् संसारके भूत, भविष्य, वर्तमानका विषय चिन्तन तथा कर्तव्य करना, जबतक अत्यन्त अन्त, अभाव, त्याग, विनाश, वा शान्त नहीं होता है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त पुकारके कहते हैं कि— तबतक वह पुरुष सच्चा सन्त, पारखी, जीवन्मुक्त कदापि नहीं हो सकता है। क्योंकि, मनके अध्यास चिन्तनादि ही जीवको बन्धन है। बाहर देखानेको भेष तो खूब बनाया, त्यागी पारखी जैसा नकल भी किया, चतुराईसे परोक्षवाणी भी सीखा, शब्द, साखी, पद, कथा आदि याद भी किया, जनतामें उपदेशक, प्रचारक, लेखक, और गुरु भी बना, किन्तु, जगत्का चिन्तन करना नहीं छोड़ा, अध्यासको नहीं मिटाया, तो अभी वह भवबन्धनमें ही पड़ा है, सच्चा अपरोक्ष पारखी सन्त भया नहीं है, ऐसा जानना चाहिये। अतः मुमुक्षु सन्तोंको चाहिये कि, गुरु विचार अभ्यास बढ़ायके सद्गुण रहनी सहित पारख स्वरूपमें स्थिर रहकर चित्त चिन्तनादि अध्यासको समूल मिटाना चाहिये। पूरा सन्त होकर शान्तवृत्ति बनाकर जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। यही मुख्य कर्तव्य है ॥ २०८ ॥

साखीः— कबीर कर्ता ईशको। वेद कहै गुण गाय ॥
जाकी अव्याहत भई। परे सो तासु बलाय ॥२०९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! कल्पनासे कोई एक ईश्वरको जगत्कर्ता स्वतन्त्र ठहराकर वेदवादी लोग वेद प्रमाणसे उसका गुणानुवाद गाय-गायके कहते हैं कि— परमेश्वर कर्ता पुरुष है, वह निराकार, निर्गुण, अगम, अगोचर, मायासे परे अमाया, अकाया, पूर्ण व्यापक है। इत्यादि विशेष गुण गायके कहे हैं। और जिसका, अव्याहत=माया विकार नाश हो गया है, तो फिर सो ईश्वर उसी माया-जालके, बलाय=उपाधि, झंझट आदिमें पड़कर जगत्की उत्पत्ति, प्रलय आदि क्यों किया करता है? माया

रहितको ऐसे उपाधिमें पड़नेका क्या काम ? अगर ऐसा कहो कि—अव्या = मायाका, हत = नाश नहीं होता है, वह बड़ी बलवती अव्याहत = न रोकने योग्य, जबरदस्त, अचिन्त्य-शक्तिवाली है। जिस ईश्वरकी माया ऐसी दुर्धर्ष है, तो सो माया फिर उसी ईश्वरके ही शिरपर चढ़ी और उसे, बलाय = जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयतापादि बवाल नाना दुःखोंमें खैंचके डाल दी और डाल रही है। अतः विचार करो, माना हुआ ईश्वर वा ज्ञानी मायारूप इच्छा बन्धनसे रहित नहीं हुए। इसीसे चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़े। मन-मानन्दी, इच्छा-वासना मिटाये बिना मुक्ति हो नहीं सकती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २०९ ॥

साखीः—काम बिगारै भक्तिको । ज्ञान बिगारै क्रोध ॥
लोभ बिगारै वैराग्यको । मोह बिगारै बोध ॥२१०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! काम = कामना, विषय भोगकी इच्छा, उत्पन्न होनेपर वह शुद्ध गुरुभक्ति, बोधभाव-को, पवित्रता, स्थिरता आदि मुक्तिके दश गुणको एकदमसे बिगाड़के नष्ट-भ्रष्ट, खराब कर देता है। अथवा कामी कृष्णने शुद्ध भक्ति चैतन्यभावको बिगाड़ कर कल्पित पूर्ण ब्रह्म स्वयं बना, और उसने गीता बनाया। फिर मनमाने भग-भोग करके बहुतेरे कुल वधुओंको बिगाड़ा, अब उन्हींके मतानुयायी कृष्ण-भक्ति विषय विरहके चरित्र प्रचार कर-करके भक्तिको बिगाड़कर खराब कर रहे हैं। तथा क्रोध, द्वेष, दुश्मनी प्रगट होनेपर वह शुद्ध ज्ञानको बिगाड़के तामसी अज्ञानी अविचारी बना देता है। अथवा महादेव संसारमें ज्ञानी, योगी तो कहलाये, किन्तु क्रोध करके उन्होंने ज्ञानको बिगाड़ दिया। शङ्कर कामी, क्रोधी, दोनोंमें प्रवीण रहा, बहुत दुराचार किया, बहुतोंको मारा, मरवाया। इससे निज चैतन्य जीवके ज्ञानको बिगाड़ डाला। अब उसके अनुयायी योगी, संन्यासी लोग भी क्रोध कर-करके ज्ञानको बिगाड़ रहे हैं। शङ्करने लिङ्ग पुजायके भक्तिको भी बिगाड़के

खराब कर दिया। तैसे ही लोभ उत्पन्न होनेपर वह त्याग-वैराग्यको एकदमसे नष्ट करके बिगाड़ देता है। लोभ होनेपर वैराग्य नहीं रह सकता है। अथवा लोभी वामन अवतारने वैराग्यवान् ब्रह्मचारी त्यागीका भेष बनायके बलिराजाके यज्ञमें जाके कपट पूर्वक उसके सर्वस्व दान लेके बलिको भी बन्दी बनाया। तहाँ वैराग्यको कलङ्कित करके बिगाड़के नष्ट-भ्रष्ट किया। सो उसके अनुयायी ब्राह्मण लोग अभी लोभ बढ़ा-बढ़ाके लोगोंको जालमें फँसाके वैराग्यको बिगाड़ रहे हैं, रागमें ग्रसित हो रहे हैं, और मोह, मद, ममता, आसक्ति, उत्पन्न होनेपर वह निजस्वरूप बोध, सत्यासत्य, सारासारके बोधको बिगाड़कर दूषित कर देता है, आवरणरूप पर्दा लगा देता है। अथवा रामचन्द्र, जनक राजा आदि आत्मज्ञानी बोधवान् तो कहलाते थे, परन्तु सीताके मोहमें वे दोनों ही अधीर अबोध अज्ञानी ही बने थे। तभी शोकमें आकुल-व्याकुल हो गये थे, उस वक्त उन्होंके बोध बिगड़के उड़ गया था। मोह-ममता करके बोधको बिगाड़ डाले थे। अब उनके अनुयायी वैरागी लोग वैसे ही मोह ग्रसित होके सत्य बोधको बिगाड़के नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। इस प्रकार कामासक्तिसे भक्ति बिगड़ता है, क्रोध वेगसे ज्ञान बिगड़ता है, लोभ-लालचसे वैराग्य बिगड़ता है, और मोह-ममत्त्वसे बोध बिगड़ जाता है। अतएव सावधान होके उन चारोंको ही हृदयसे निकाल बाहर भगा देना चाहिये, तथा निज पारख स्वरूपमें शान्त रहना चाहिये ॥ २१० ॥

साखीः—कबीर शङ्कर औ व्यासको। खतरा भयो नसल ॥
जगत प्रतिष्ठा कारणे। आतम कहा असल ॥२११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! शङ्कर = महादेव और वेदव्यास मुनि तथा शङ्कराचार्य आदि इन अद्वैत मतवादी वेदान्तियोंको वेदादि वाणीके प्रमाणसे, नसल = न असल, नकली पदका अर्थ कल्पना, मिथ्या मानन्दीरूप ब्रह्म-

पद ही सर्वत्र परिपूर्ण सत्य है, ऐसा, खतरा = खातिरी, दृढ़-निश्चय हुई थी। सोई अपने मन-मानन्दी कल्पनाका प्रचार करके जगत्‌में, प्रतिष्ठा = मान, सम्मान, ठहराव, महत्त्व, श्रेष्ठता, बताने-दिखानेके वास्ते उन्होंने जोर देके विशेष करके महिमा बढ़ाकर एक आत्मा ही, असल = सारवस्तु, सत्य, सर्वाधिष्ठान है, ऐसा कहा है। वही बात ग्रन्थोंमें लिखा है, तथा उपदेश दिये हैं। परन्तु सत्य निर्णयसे देखिये! तो वह कथन असत्य मनका ही कल्पना, भ्रम-मात्र है, उसमें सार कुछ नहीं है। अथवा, कबीर = हे नरजीवो! शङ्कर और व्यास आदिकी उत्पत्ति वर्ण शङ्कर होके कुजातीमें हुई। उनके लिये सो उसी प्रकार, नसल = जातिमें प्रसिद्ध होके रहना, खतरा = विनाशकारी, दुःखदायी, भया। तो जगत्‌में अपने-अपने मान-प्रतिष्ठा बढ़ानेके वास्ते ही उन्होंने नानात्त्व जगत् मिथ्या है, एक ही आत्मा वा ब्रह्म असल-सत्य है, ऐसा बहुत विधिसे कहा है। क्योंकि, भविष्यपुराण आदिमें लिखा है— शङ्करके बापका पता ही नहीं था, अष्टाङ्गी माया उसकी माँ थी। तथा चाण्डालकी पुत्रीसे पराशर जन्में, धीवरकी पुत्रीसे व्यास पैदा भये, शुकीसे शुकदेव उत्पन्न भये, उलूकीसे कणाद पैदा भये। इत्यादि सब कुजातिसे वर्णशङ्कर ही पैदा भये रहे। वैसे चतुराई न करते, तो जगत्‌में बड़े माने नहीं जाते। इसी कारणसे उन्होंने युक्तिसे आत्माको असल, जगत् आदिको नकल-मिथ्या भ्रम बतायके लोगोंको भुलाये हैं। उसमें कुछ भी सार नहीं है; मिथ्या धोखा, बन्धनरूप ही है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २११ ॥

साखीः—जो-जो कछु श्रवण करै। मनन होय पुनि सोय ॥
निदिध्यासन साक्षात जो। चीन्है बिरला कोय ॥२१२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! पहिले कानसे जो-जो बात, जो कुछ भी वाणी श्रवण करते हैं, फिर सोई भीतर मनमें जाके, उसीका मनन, सङ्कल्प-विकल्प, चिन्तन, होता है। वही बार-बार

निदिध्यासन मेल-मिलान हो, स्मृति जाग्रत् होता रहता है, तत्पश्चात् जो कुछ मानन्दी दृढ़की हुई रहती है, सोई भास साक्षात्कार या प्रत्यक्ष हो जाता है। वह तो सुना हुआ शब्दका ही विषय विकार है, द्रष्टाजीव तो उससे न्यारा ही रहता है। कोई बिरले ही विवेकी पारखी सन्त द्रष्टाजीवको सबसे पृथक् सत्यस्वरूप करके चीन्हते पहिचानते हैं। नहीं तो बेपारखी गुरुवा लोग कल्पित वाणीको ही सुनते-सुनाते हैं, फिर वेद-वेदान्तका कथन, मनन, करके उसे निश्चय-कर शब्द स्वरूप ब्रह्म आप ही बन जाते हैं। जो उनको साक्षात्कार हुआ, सो मनकी भास, पहलेसे किया हुआ मानन्दीमात्र होनेसे असत्य है। भासिकजीव उस भाससे न्यारा है, सो बिना पारख वे चीह्नते, समझते नहीं। इसीसे एक अद्वैत ब्रह्म कल्पनाको ही निज स्वरूप मानके महान भ्रम भूलमें पड़े हैं। कोई बिरले विवेकी पारखी सन्त ही परीक्षा दृष्टिसे निर्णय करके जानते हैं कि— श्रवण, मननके अनुसार ही मनकी भावना जीवके सन्मुख अनुभवमें साक्षात्कार होता है। अतः जीव ही सत्य है, ऐसा चीह्नते, पहिचानते हैं ॥ २१२ ॥

साखीः— श्रवण मनन निदिध्यासन । साक्षात करै जो कोय ॥
कहहिं कबीर चारिउके किये । कृतम कर्ता होय ॥२१३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जो कोई मनुष्य जो कुछ मनमें भावना ले करके जैसा-जैसा वाणी सुनते हैं, वैसा-वैसा ही उनके मनमें मनन-विचार भी उत्पन्न होता है। फिर उसे ही बार-बार याद करते रहनेसे निदिध्यासन दृढ़ होता है। पश्चात् मानन्दीके मुताबिक साक्षात्कार करते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके उपदेशको पारखी सन्त निर्णय करके कहते हैं कि— उक्त श्रवणादि चार साधनोंके करनेसे ही, कृत्तिम = मनःकल्पित वाणीसे ही कर्ता— ईश्वर, ब्रह्म आदिकी मानन्दी निश्चय हो रही है। उसके बिना और कहीं उनके अस्तित्व ही नहीं दिखती है। अर्थात्

वाणी कहा-सुना न जाय, तो ईश्वर, ब्रह्म आदि माना हुआ कर्ता और कहीं भी मालूम ही नहीं पड़ता है। अतएव वह वाणी कल्पना कृत्तिम मिथ्या ही है। वाणी, खानीका निर्माण-कर्त्ता तो नरजीव ही हैं। किन्तु, निजस्वरूपको न जान करके कृत्तिमको ही कर्ता मान-मानके जड़ाध्यासी बद्ध हो रहे हैं, बिना पारख ॥ २१३ ॥

साखीः—सुनै गुनै देखै कहै । चीन्है नहिं गुण रूप ॥
कहहिं कबीर पारख बिना । परा प्रकाश भ्रमकूप ॥२१४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! अबोध मनुष्योंने कल्पित वेदादि वाणीको ही गुरुवा लोगोंके मुखसे निकला हुआ कानसे सुने हैं; फिर वही सुनी हुई, वाणीको ही मनसे गुने या मनन किये। तथा बाहर वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानरूप वाणी जालको ही नेत्रोंसे देखे, चित्त लगायके पढ़े। इस तरहसे जो-जो बात दृढ़ हुई, सोई वाणी मुखसे उच्चारण करके कहे, और दूसरोंको भी उपदेश सुना-सुना करके उसी प्रकार दृढ़ा रहे हैं। परन्तु यथार्थ परीक्षा करके उस वाणी मानन्दीके, गुण = शब्द विषय तथा रूप विषय दोनों भी जीवोंको बन्धन हैं, वह चीह्नते नहीं। इसीसे शब्द गुणको ही परमात्मा-ब्रह्मका रूप ठहराके धोखामें पड़े हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— यथार्थ गुरु पारखके बोध पाये बिना जो वाणी कानमें पड़ा उसीका प्रकाश बाहर पुस्तकरूपमें, भीतर तत्त्वोंके प्रकाश ज्योति स्वरूपमें देखे-दिखाकर सब मनुष्य भ्रमरूपी अन्धेरी कूआँमें गिर पड़े। परा-वाचा, परात्पर, परमात्माको विश्व प्रकाशी ज्योतिस्वरूप मान करके ध्यान आदि साधनोंसे ज्योति प्रकाश देखके उसे ईश्वर साक्षात्कार हुआ, ऐसा अनुमान करके धोखासे उसी भ्रम-कूपमें गिरे हैं; मैं जीव द्रष्टा न्यारा हूँ, तो दृश्य भास कैसे होऊँगा, यह न जानके वे सब जड़ाध्यासी बद्ध भये, बिना विवेक ॥ २१४ ॥

साखीः— परमेश्वर वर्णन करैं । इन्द्रिन्हका गुण रूप ॥
कहहिं कबीर राज तजी । भया भिखारी भूप ॥२१५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने तो पञ्चज्ञानेन्द्रियोंके ही गुण-रूप आदि पञ्चविषयोंको परमेश्वर वर्णन किये हैं । सो कैसे कि— शब्द ब्रह्म, वा अनहदनाद ब्रह्म, जो माने हैं, सो शब्द विषय कानका है। आनन्द ब्रह्म जो कहे हैं, सो स्पर्श विषय त्वचाका है । ज्योतिस्वरूप परमात्मा जो कहे हैं, सो रूप विषय नेत्रोंका है। अमृत रसवत् आत्मा जो कहे हैं, सो रस विषय जिभ्याका है, और गन्धवत् ब्रह्म व्यापक जो कहे हैं, सो गन्ध विषय नासिकाका है । तैसे ही निर्विकल्प, सहविकल्प, बुद्धि बोधव्य, आदि अन्तःकरण पञ्चकोंका विषय है । इस प्रकार जिस-जिसको परमेश्वर ठहरायके वर्णन करते हैं या किये हैं, सो तो सब, इन्द्रियोंका गुण-रूप विषय ही हैं । बिना पारख उसको परमेश्वर मान-मानके महा भ्रमचक्रमें पड़े हैं। इससे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— स्व-स्वरूप पारखबोधके अटल राज्य-स्वराज्यको छोड़के, साक्षी दशा जाग्रत् स्थितिको त्यागकर, भूप = चैतन्य नर-जीव, राजावत् श्रेष्ठ होनेपर भी गाफिलीसे राज्य-च्युत होनेसे अब, भिखारी = भिखमङ्गा, कङ्गाल, दरिद्र, अबोध, अज्ञानी, दर-दर भटकनेवाला हो गया । झूठ ही पीतर, पाथर, ब्रह्म, ईश्वरादिको तो इसने स्वामी, कर्ता, भूप, मान लिया, और अपने पारखका राज छोड़कर जड़ाध्यासी बद्ध हो गया है। भवचक्रमें पड़ गया, विना पारख ॥ २१५ ॥

साखीः— ब्रह्म, जीव, ईश्वर जगत् । सब आचार्यका ज्ञान ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । हमरी कही कौ जान ॥२१६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! संसारमें जितने भी वेद, वेदान्तके आचार्य, पण्डित भये हैं, उन सभीका ज्ञान

"तत्त्वमसि" कथनतक ही हुआ है। उसमें त्वंपद जीव अल्पज्ञ, तत्पद ईश्वर सर्वज्ञ, उन दोनोंकी एकता असिपद ब्रह्म अधिष्ठान व्यापक, नाम-रूपमय जगत् मिथ्या, आत्मा सत्य, ऐसा माने हैं। जीव, ईश्वर, जगत्, कहनेमात्रको भिन्न-भिन्न हैं, वास्तवमें ब्रह्ममें सबकी एकता होनेसे एक ब्रह्म ही सत्य है; द्वैतभाव मिथ्या है। ऐसे एकता अद्वैतका ज्ञान कथन सब वेदान्ती आचार्योंने माने हैं। वे सब बिना पारख मिथ्या धोखामें ही पड़े हैं। अतएव सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णय पारखके अनुयायी पारखी सन्त कहते हैं कि— अब वे पक्षपाती, अविचारी लोग सद्गुरुका कहा हुआ पारखबोध और हमारा सत्यनिर्णयको, कौन जाने ? कौन माने ?। क्योंकि, गुरु-निर्णयसे उनका मानन्दी सब कल्पना मिथ्या, भ्रम, भूल ही है। चैतन्य-जीव ही सत्य है, ब्रह्म आदि असत्य है, ऐसा हम परखाते हैं, पक्षरहित जिज्ञासु मिले बिना, पारख निर्णयको और कोई नहीं जान पाते हैं। अतः जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ते रहते हैं ॥ २१६ ॥

साखीः—— कबीर वृन्दाके श्रापते । शालिग्राम अवतार ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता ! केहि पूजे होय उबार ?॥२१७॥

टीकाः—— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—— और हे नरजीवो ! पुराणोंमें लिखा है कि— दैत्य जालन्धर बड़ा वीर था, उसकी स्त्री वृन्दा पतिव्रता थी। देवताओंसे उसके दुश्मनी होनेसे महादेव आदि आके इधर जालन्धरसे रणस्थलमें लड़ने लगे, उधर विष्णुने छल-कपटसे नकली जालन्धर बनके रातमें जाकर वृन्दासे सम्भोग करके सतीत्त्व नष्टकर दिया, फिर उधर जालन्धर मारा गया, पीछे विष्णुके छल-कपटका हाल वृन्दाको मालूम हुआ, तो वह बड़ी क्रोधित हुई और विष्णुको तत्काल कठोर श्राप दिया कि — हे दुष्ट! तू पत्थर होजा! और झाड़, घाँस, फूस, हो जा! हे नीच! तूने मेरे सत्यको धोखासे डिगाया है, तो तू भी विनाशको प्राप्त होजा, इत्यादि कही, तो विष्णु अपराधी

अपना-सा मुँह लेके भागा। तहाँ गुरुवा लोगोंने कहा है—ऐसे वृन्दाके श्रापसे विष्णुका शालिग्राम अवतार, गोल-गोल काला पत्थरका हुआ। झाड़में पीपल, घासमें तुलसी, फूसमें कुशा भी विष्णु ही हुआ, इत्यादि वर्णन किये हैं। यद्यपि सो असत्य कल्पना ही है। जीव कदापि ऐसे जड़वस्तु नहीं हो सकते हैं। तथापि भ्रमिकोंने उसे सत्य ही माने हैं, तहाँ उन्हींसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयसे पारखी सन्त पूछते हैं कि— हे पुराणको माननेवाले पण्डित! कहो तो भला! अब किसका पूजा करनेसे जीवका उबार होगा? यहाँ तो श्राप पानेवाले व्यभिचारी, दुराचारी विष्णुसे, वृन्दा ही बड़ी भयी, जिसके श्रापसे विष्णु पतित हुआ। कहो! किसके पूजासे कल्याण होगा? अतः ऐसे प्रपञ्चीकी पूजा और मानन्दी छोड़के सत्य-न्यायी, त्यागी पारखी साधु गुरुकी पूजा, सेवा, सत्सङ्ग विचार करो, इसीसे जीवन सुधार होके, उबार या कल्याण होगा ॥ २१७ ॥

साखीः— प्रतिमा दारु पषाणकी। नख शिख दारु पषाण ॥
इस्थापै जेहि देव करि। सो केहि द्वार समान ॥२१८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे मनुष्यो! तुम लोगोंने पञ्च देवताओंकी जो-जो प्रतिमा, आकार, गढ़न किया है, सो कहीं, दारु = काष्ठ या लकड़ीका बनाया है, तो कहीं, पाषाण = पत्थर आदिकी अष्ट प्रतिमाकी मूर्ति बनायी है, सो जड़ ही हैं। उसके, नख = नीचेसे, शिखा = ऊपर तक सर्वाङ्गमें तो लकड़ी वा पत्थर आदि जड़ पदार्थ ही दिखाई देता है। जिसको तुमने देवता, महादेव, विष्णु, दश अवतार आदि मान करके उन्हें बड़े-बड़े मन्दिरोंमें लेजाके स्थापन-कर प्राणप्रतिष्ठ किये हो। परन्तु सो देवताका प्राण चैतन्यता उस जड़-मूर्तिमें किस द्वारासे किस जगह समाया हुआ है? तुमने जीवको वायु ही समझ रखे हो? जो फूँक लगाके भीतर घुस जाय। परन्तु वह मूर्ति तो ठोस है, फिर प्राण तो भी कहाँ समायेगा? दुःख-सुख, इच्छा, क्रिया आदि चेतनका लक्षण उसमें क्यों नहीं दिखता है?

अतः जड़ पूजनेवालोंको बुद्धि भी जड़-मूढ़ ही हो जाती है। बिना पारख अज्ञानी छोकरेवत् हो रहे हैं, यदि पत्थरकी मूर्तिमें प्राण डाल सकते हो, तो अपने परिवारोंके मरनेपर उनमें भी फिरसे प्राण डालके जीवित क्यों नहीं कर लेते हो? अतः ये अन्धे ही बने हैं ॥२१८॥

साखीः— जेतेरूप तिहुँ लोकमें । शब्दैका गुण सोय ॥
जैसे बिगूर्चा खेतका । रहा पारधी रोय ! ॥ २१९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! तीनलोक, त्रिगुणी मनुष्य, त्रिकाण्डवेद, योगी, ज्ञानी, भक्त, द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत, इत्यादि तीन-तीन माया जालमें, जितने रूप = आकार, सिद्धान्त, मानन्दीका स्वरूप ठहराव किये हैं, सो सब ही शब्दका ही गुण वाणी-विषय या शब्द विषयमात्र है। और उसमें कोई सार वस्तु नहीं है, सिर्फ धोखा ही लगाये हैं। जैसे खेतके रखवारीको आलसी मूढ़ किशानने, बिगुर्चा = धोखेका एक पुतला, बनाके वहाँ झाजक लगाया, (जानवरोंको डरवानेके लिये खड़ा करके मनुष्यके समान झूठा आकार बना दिया। जिसे देखके आपत्तिका भय मानके, जानवर भाग जायँ)। किन्तु, पीछेसे उसे देखते-देखते झूठा पहिचानके जानवरोंने आके खेतके फसल खागये, तो किशान वा रखवारने ऐसा हाल देखा, तो शिरमें हाथ धरके रोता, पछताता ही रह गया। तद्वत् खेत = संसारमें ब्रह्मका एक बिगुर्चारूप धोखा लगायके, पारधी = जिनके बुद्धि पारङ्गत है— ऐसे पण्डित, ज्ञानी उसीके भरोसेमें रहे, पीछेसे जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंके दुःख भोगके रोते, तड़फते रहे, मुक्ति लाभ न भयी, बिना पारख ॥ २१९ ॥

साखीः—रूप पदार्थ वस्तु गुण । भास करावै बाच ॥
कहहिं कबीर परखे बिना । सकल बाद है काँच ॥२२०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! रूप = माना हुआ ब्रह्म, ईश्वरादिका स्वरूप तो कोई सत्य वस्तु नहीं है। सिर्फ,

पदार्थ = पद, शब्दका अर्थ, शब्द विषय कथन मात्र है। सार वस्तु चैतन्य नरजीवोंको वह रूप पदार्थ— ब्रह्म आदि मानन्दी कोई सत्य वस्तु बताके भ्रमिक गुरुवा लोग शब्द गुणसे वही, बाच = वाणी कल्पना ही दृढ़ायके भास कराते हैं। वाणीसे भास किया-कराया हुआ सब, रूप = सिद्धान्त वाणी विषय ही है, अतः सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं— सार-असार, सत्य, मिथ्या, जड़, चेतनके भेद गुण लक्षणको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-में यथार्थ परखे बिना ठीक-ठीकसे जाने बिना अनुमान-कल्पनासे ठहराया हुआ सम्पूर्णवाद— द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैतवाद, आत्मवाद, शून्यवाद, तत्त्ववाद, देहवाद, भौतिकवाद, इत्यादि गुरुवा लोगोंके सब सिद्धान्त, काँच = कच्चा, झूठा, बकवाद, न ठहरनेवाला भ्रम ही है। अतः यथार्थ परखके सत्यासत्यका पूरा मर्म जानना और भ्रमसे रहित होना चाहिये ॥ २२० ॥

साखीः— कबीर सूत काता करै। तेहि शिर परी है मार ॥
जाहि भरोसे सोय रहा। सो देत न बार उखार ॥२२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! जो मनुष्य पारखी साधु गुरुकी शरण सत्सङ्गमें विचार करके स्वरूपस्थिति न करके खाली वेद, शास्त्रोंको पढ़कर पण्डित बन ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी-देवता, स्वर्ग, नर्क लोकादि इन्हींको सत्य मानकर कोई एक मतवादके पक्ष पकड़के प्रतिष्ठा प्राप्ति, मत प्रचारके लिये कबीर = जो-जो नरजीव, सूत = वाणीका सूत्र, षट्शास्त्र, श्लोक, गद्य, पद्य, कारिका, भाष्य, टीका, टिप्पणी, पदच्छेद, अन्वय, समास, तर्क-वितर्क, कथा, उदाहरण, इतिहास, जीवनचरित्र, दर्शन, दोहा, चौपाई, छन्द, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पै, अरिल्ल, रेखता, झूलना, शब्द, वसन्त, हिण्डोला इत्यादि वाणी जालको ही कल्पनाका विस्तार करके, काता करै = कथन किया करते हैं, रचना, लेखन, निर्माण किया-कराया करते हैं। सो उसीके शिरमें वा अन्तःकरणमें भ्रम,

धोखा, भूल अध्यास आदिका कठोर प्रचण्डरूपसे मार पड़ेगा वा पड़ गया है। तथा नाना तरहकी साधनोंका मार कष्ट, क्लेश भी उसीकी शिरमें पड़ेगी। फिर अन्तमें वे ही जीव जड़ाध्यास वश त्रयताप जन्म-मरणादिके दुःखोंमें भी गिर पड़ेंगे, और पहलेवाले उस चक्रमें पड़े ही हुए हैं। हे मनुष्यो! तुम लोग जिस कल्पित, ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, देवता, भूत, प्रेत आदिको इष्टदेव मानके जिनके भरोसे विश्वास करके मुक्ति, लोक, सुख प्राप्ति, आदिकी भावनाकर महागाफिली भ्रम-भूलकी गाढ़ी निद्रामें सोय रहे हो, विवेकहीन मूढ़ हो रहे हो, अरे! विचार करो, सो मनके कल्पना ईश्वर आदि अपने एक बाल=केश, रोममात्र भी उखाड़के तुम्हें नहीं देता है, या दे नहीं सकता है, और तुम्हारे कष्टके समयमें बालमात्र भी दुःख मिटा नहीं सकता है, तो फिर, बार उखार=बार-बार होने-वाले जन्म-मरणादि त्रयतापोंके दुःखोंको वह तुम्हारे क्या उखाड़ेगा? क्या दुःखसे छुड़ायेगा? कुछ नहीं। अतः मिथ्या धोखा, भ्रमको परखके हटाओ, पारखबोधको ग्रहण करो॥ २२१ ॥

साखीः— ये कबीर सत्सङ्गति करू। देहु कुसङ्गति टारि॥
एक ओर नौमन रेशम। एक ओर चुटकी झारि॥२२२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— ये कबीर=हे जिज्ञासु नरजीवो! यदि तुम लोग बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो, तो सत्यन्यायी पारखी साधु सद्गुरुकी शरणागत् होकर नित्य-प्रति सत्सङ्ग विचार गुरु उपदेशका श्रवण, मननादि किया करो। यही एक बड़ा उपाय है। सद्गुरुने बीजक साखी २३४ में कहा हैः—

"नित खरसान लोहा घुन छूटै॥ नितकी गोष्ट माया मोह टूटै॥"

और कुसङ्गतिको तो बिलकुल टार दो, या हटाय दो, यानी विषयी लोगोंका सङ्ग, स्त्रियोंका सङ्ग, जुवारी, नशेबाज, धूर्त, चोर, बदमाश, गँजेड़ी, भँगेड़ी, लम्पट, लबार, पापी, आततायी और गुरुवा

लोग षट्दर्शन— ९६ पाखण्डोंके पक्षपाती, अविचारी, इत्यादि ये सब हीं, कुसङ्ग हैं, कुवृत्ति करानेवाले हैं। अतः उनके सङ्ग-साथ कभी नहीं करना चाहिये, उसे तो टारके दूर रहो। ऐसे सब कुसङ्गोंको छोड़कर पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही सदा लगे रहो, तो तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। देखो! एक ओर नौमन रेशमके समान वारीक अति सूक्ष्म-चित्त, बुद्धि, मन, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यही नौ तत्त्वोंकी सूक्ष्म देहमें सूक्ष्म वासनाएँ टिकी हुई हैं। और एक ओर, दूसरे तरफ, चुटकी झारि=हाथकी चुटकीरूप अंगुलियोंसे पकड़के कलमद्वारा स्याहीसे लिखी हुई सम्पूर्ण वाणियों-की जाल हैं। ऐसे 'नौ मन रेशम' सो खानी-जाल है, और 'चुटकी झारि' सो वाणी जाल है। वह एक-एक ओर दो तरफ बड़ी प्रबल कठिन फन्दा है। कुसङ्गसे ही वह घेरामें जीव पड़े हैं। इसोसे सत्सङ्गसे पारख करके उसे एकदम छोड़के न्यारे हो रहो। उसीसे भलाई होगी। अथवा हे मनुष्यो! मोटी-झीनी सब कुसङ्गसे अलग हो, मनको हटाके सदा पारखी सद्गुरुका ही सत्सङ्ग करो। गुरु पारखका प्रताप बड़ा भारी है। देखो! एक तरफ तो मनसे कल्पना करके नौ व्याकरण, नौ कोशकी वाणी बनाके विस्तार किये हैं, उसीसे नौ द्रव्य, नौ निद्धि, नवधा भक्ति आदि ठहराये हैं, नौ नाथ आदि योगी सब नौ द्वारोंकी योग साधनोंमें भूले हैं। सूक्ष्म देहकी नौ भागमें सारे प्राणी पड़े हुए वासनाके वशीभूत हो रहे हैं। कोई नौ खण्ड पृथ्वीमें प्रख्यात होना चाहते हैं। ऐसे नौ-नौके माया जालमें सारे ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी बद्ध पड़े हैं, और एक ओर सत्यबोध-दाता बन्दीछोर पारखी सद्गुरु यथार्थ जड़-चैतन्यका भेद परखायके पारखबोध कराय, पारखदृष्टिसे चुटकी बजाते-बजाते ही मिथ्या धोखा समझाकर उन सब खानी-वाणीकी मानन्दी मिटायके झार देते हैं, उसे हटायके दूर फेक देते हैं। जिससे नरजीव सहज ही निर्वन्ध मुक्त हो जाते हैं। यही सत्सङ्गकी महा बलिष्ठ महिमा है॥२२२॥

साखीः— जैसे परत बेनोरिया । जल जमि भासे स्थूल ॥
तेज लागि गलि होय जल । त्यों शब्द स्वरूपका मूल ॥ २२३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! ठंडी मौसममें विशेषतः उत्तराखण्ड हिमालय तरफमें और सामान्यतः अन्य स्थानोंमें भी अधिक शीत या ठंडी पायके, बेनोरिया = ओला, बोरा, पत्थरवत्, बर्फके छोटे-छोटे टुकड़े वायुके वेगसे जल जमनेसे जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं। रूई सरीखी हलकी फोहा गिर-गिरके ढेर हो जाते हैं। फिर वहींपर जलका भाग जम जानेसे स्थूल बड़ी-बड़ी ढेरीके रूपमें हिमगिरि भासते या दिखाई देते हैं। फिर तेज = उष्ण सूर्यके किरण लगनेसे विशेष करके गर्मीके मौसममें वही जमा हुआ हिमखण्ड धीरे-धीरे गलते-गलते पूर्ववत् जल होके वह जाता है। फिर बरफका स्थूलरूप मिट जाता है। उसी प्रकार गुरुवा लोगोंकी कल्पित बनावटी वाणी मुखसे निकल-निकलके शिष्योंके कानमें जायके पड़ी, उपदेश सुन-सुनके भ्रमिक हुए। वाणी मानन्दीको मनमें दृढ़ करके जमाये तो स्थूल विश्वरूप ही परमात्मा विराट है, अधिष्ठान है, सर्वव्यापक है, सो ब्रह्म मैं हूँ। कल्पनासे ऐसे उन्हें भास या भ्रम होती भयी। पारखज्ञानके प्रकाश तेज जब उसमें लगी, तब वह मानन्दी सब गलके असत्य वाणीमात्र ठहरके गल गई। तैसे ही शब्द विषयका स्वरूप जगत्के मूल कारण सच्चिदानन्द, ब्रह्म, परमात्माको जो माना है, सो शब्द ही मात्र मिथ्या कल्पना है, वस्तु कुछ भी नहीं है। ऐसा निर्णयसे ठहरता है। शब्द ब्रह्मका स्वरूप मूल ही भ्रम धोखा है। अतः पारख दृष्टि करके उसे यथार्थ पहिचानना चाहिये ॥ २२३ ॥

साखीः— जैसे पाला भास होय । देखत जाय बिलाय ॥
तैसे रूप गुण शब्दको । परखै नहिं ठहराय ॥ २२४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे पाला = बर्फके

झीने-झीने गिरे हुए रज, तुषार, सफेद ओस कण, सबेरे-सबेरे तो चौतरफ फैले हुए खूब दिखाई देते हैं। परन्तु सूर्योदय होनेपर देखते-ही-देखते वह सूर्य किरणद्वारा सूखके बिलाय जाता है, अभाव हो जाता है, तैसे ही बहुत दिनोंसे जो ब्रह्म, ईश्वरादि, मानन्दी पालन-पोषण, मनन, करके पुष्ट किया गया है, सोई जीवके सन्मुख भावनाएँ भास होती हैं, वही सत्य-सा जान पड़ता है। परन्तु जब पारख ज्ञानरूपी सूर्यकी प्रचण्ड किरण सत्यनिर्णयका प्रकाश उसपर पड़ जाता है, तब विवेक दृष्टिसे देखते ही वह सब भ्रम विलाय जाता है, धोखा छूट जाता है। रूप = ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, आदि जितने भी सिद्धान्तके कल्पित स्वरूप गुरुवा लोगोंने माने हैं, सो सब शब्दका ही गुण वा विषय है। अर्थात् वाणी कथनमात्र कहने-सुननेका गप्प है, असार है। क्योंकि, वह पारख कसौटीमें कसके निर्णय करनेपर कोई भी खरा, यथार्थ सार वस्तु नहीं ठहरता है। भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना कृत, वाणीका विलासमात्र होनेसे धोखा, असत्य है। निर्णयमें चकनाचूर हो गया, खोटा निकल गया। अतः उस मानन्दीको सर्वथा त्याग करके हंस रहनी सहित पारख पदमें हो स्थिति-ठहराव करना चाहिये ॥ २२४ ॥

साखीः— निन्दक ताको जानिये। जाको नहिं पहिचान ॥
है कछु और कहै कछु औरे। यह निन्दक सहिदान ॥२२५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सज्जनो! पक्का निन्दक, द्वेषी तो उसे ही जान लीजिये कि— जिसको सत्य-असत्य, निज-पर स्वरूप, जड़, चैतन्य, सार, असार, असली-नकली, बन्धन-मुक्ति, हानि-लाभ सही और गलत इत्यादिकी पूरी-पूरी पहिचान, जानकारी, बोध तो है ही नहीं। इससे विपरीत समझ रखके उल्टा कथन वा बर्ताव करता है, और वास्तवमें निज, चैतन्यस्वरूप जीव ही प्रत्यक्ष सत्य है। किन्तु पक्षपात पकड़के मूर्खताके कारणसे अविवेकसे वह और ही कुछका-कुछ कहता है, कि— जीव तो ब्रह्म

वा ईश्वरके ही अंश है, अल्पज्ञ दीन, हीन, मलीन है । वही परमात्मा ही सर्वशक्तिमान् सब कुछ करनेमें समर्थ है, उसीकी भक्ति करनेसे जीवकी मुक्ति होती है, इत्यादि मिथ्या कथन करते हैं । अथवा चैतन्य जीवको आभास, कार्य, देह आदि जड़-स्वरूप करके मानते हैं, शून्य, प्राण, आदि समझते हैं । है कुछ और ही, जड़से विजातीय ज्ञानस्वरूप जीव, परन्तु कहता कुछ और ही ब्रह्म, ईश्वरादि मालिक जगत्कर्ता और जीव आदि उसके कार्य बताते हैं । सो मिथ्यावादी, अज्ञानी, हठी, स्वार्थी, अविचारी हैं, यही असली निन्दकका सहिदान या पहिचान है, जैसाका तैसा यथार्थ कहनेवाले सत्यवादी कभी निन्दक हो नहीं सकते हैं । झूठ बोलना ही निन्दक होनेका लक्षण है । अतः सत्यवक्ता, सत्य बोधवान् होना चाहिये ॥ २२५ ॥

साखीः—कबीर केहरि सिंहको । कीन्हों कैद सियार ॥
पद शिर नावें मूसको । करैं जोहार बिलार ॥२२६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! यदि सियार ही उलटके सिंहको कैद करै और चूहेके पैरोंमें शिर नवायके बिल्ली प्रणाम-दण्डवत करे, तो कितने आश्चर्यकी बात है । बाहर तो ऐसा विपरीत नहीं होता है, किन्तु, गुरुवा लोगोंके यहाँ ऐसे ही उल्टी चाल होती है । सिद्धान्तमें— कबीर = हे नरजीवो ! देखो, पारख बोध हुए बिना, केहरि सिंहको = अत्यन्त बलिष्ठ केशरी नामके सिंह जो कि, हाथियोंको भी सहज ही मार डालता है, उसीको यहाँ हाथीरूप मनमानन्दीमें पड़ा हुआ श्रेष्ठ सिंहरूप जीव भी लाचार दीन-हीन हो रहा है, ऐसा जानो । ऐसे मौका पायके, सियार = वेद शास्त्रादिकी वाणी सुना-सुना करके होशियार, धूर्त लोगोंने हाथीरूप मनके घेरासे सिंहरूप जीवको छुड़ानेका भरोसा देके उल्टा और कल्पनाके, कैद = जेलमें ले जाके जीवोंको डाल दिये हैं । इसीसे, बिलार = कल्पना मायाके फन्दोंमें पड़के बिल-बिलानेवाले दुःखी नरजीव संसारके दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये, मूसको = जीवन

धन, सद्गुण लक्षणोंको मूस-मूसके लूटने-खसोटने, चुरानेवाले चोर, चूहेके समान गुरुवा लोगोंको ही श्रेष्ठ मानके अब उन्हींके, पद= चरण वा सिद्धान्तमें शिर झुका-झुकाके, माथा नवायके नित्य-प्रति, जोहार=दण्डवत्, बन्दगी, वा नमस्कार श्रद्धा-भक्ति सहित करते हैं, और कर ही रहे हैं। इसीसे सब धोखा, भुलावामें पड़े हैं, कल्याण किसीका भी नहीं हो रहा है, सब ठगाये जा रहे हैं। बिना विवेक ॥ २२६ ॥

साखीः— एक अचम्भा देखिया। सर्पहि खाया मोर ॥
डेहरी भूके कूतिया। भीतर पैठा चोर ॥२२७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और एक आश्चर्य तो यह देखनेमें आया कि— सर्पने ही मयूरको खा लिया। फिर चोर तो घरके भीतर घुसा बैठा है, बाहर दरवाजेमें कुतिया भूक रही है। सिद्धान्तमें अर्थ ऐसा है कि— वेदान्ती लोग कहते हैं कि— एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा जगत् नहीं है, फिर अनेक मनुष्योंको देखके सम्बोधन कर-करके उपदेश भी देते जाते हैं। जब द्वैत नहीं है, तो वे अद्वैतका उपदेश किसको देते हैं ? देखो! उनकी मूढ़पना, यही एक अचम्भा ब्रह्मवादीमें दिखाई देता है। तथा मोर=जीव तो सब हमारे स्वजातीय ही हैं, किन्तु, सर्पहि=पञ्च अभिमान, अहं ब्रह्मकी मानन्दी, यही अहंकाररूप तामसी सर्पने जीवोंकी बुद्धि, विवेक, विचारादि सद्गुणोंको खा लिया! हृदयमें उसने डस दिया, काट खाया, तो बड़ा तेज जहर चढ़ गया, इसीसे सब बेहोश, गाफिल, जड़ाध्यासी भये हैं, तहाँ सद्गुरुने कहा हैः—

"मोर तोरमें सबै बिगूर्चा। जननी गर्भ वोद्रमा सूता ॥
मोर तोरमें जरे जग सारा। धृग स्वारथ झूठा हङ्कारा ॥" बी०, रमैनी ८४॥

इस तरह पञ्च-अभिमानरूपी सर्पने जीवोंको मैं-ममतामें डालके खाया वा भ्रमाया, भुलाया है, ऐसा जानिये! ॥ और नरजीवोंके भीतर अन्तःकरणमें तो, चोर=काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मायाविकार

तथा कल्पना, मानन्दी, भ्रम, संशय, इत्यादि कट्टर चोर, डाकू, घुसे पड़े हैं, वे तो वहाँ मजेमें जमके बैठे हैं, और सर्वस्व लूटके चुरा रहे हैं। और बाहर ढोंग आडम्बर करके धूर्ताईसे बड़े ब्रह्मज्ञानी, योगी, भक्त आदि स्वाङ्ग बनाके लोगोंको नाना तरहसे उपदेश दे रहे हैं। डेहरी=द्वार या मुक्तिका द्वार मनुष्य देहमें दरवाजारूप मुख द्वारा, कूतिया=कूता हुआ अनुमान, कल्पनाकी वाणी गुरुवा लोगोंने, भूके=शब्दोच्चारण करके चिल्ला-चिल्लाके उपदेश सुनाते भये। अर्थात् मुख द्वारसे वाणी तो खूब रोचक-भयानककी निकलती है, दूसरोंको तो बहुत समझाते हैं, किन्तु, स्वयं ही सत्यको नहीं समझते हैं। मन भीतर तो कामना आदि चोर छिपे बैठे हैं, अतः पारखबोध पाये विना किसीको कल्याण वा गति, मुक्ति हो नहीं सकती है, ऐसा जानिये ! ॥ २२७ ॥

साखीः—कबीर छेनो शीतल भई। काटै ताता लोह ॥
गुरुके शब्द शीतल भये। छिनमें काटैं दुःख जगमोह ॥२२८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! लोहेको शीतल छेनी, घन, लोहेके बड़े-बड़े गर्माया हुआ टुकड़ोंको भी काटके छिन्न-भिन्न कर देती है। तैसे ही जिस मनुष्यकी समझ शीतल, शान्त होता है, वह विवेक, विचार करके, ताता लोह=गरम लोहावत् काम, क्रोधादिमें उत्तेजित भया मनको भी शान्त करके कुबुद्धि, कुविचारको काटके हटा देता है, और पारखी सद्गुरुके सारशब्द सत्यनिर्णयका उपदेश, श्रवण, मननादि करके जो शीतल भये हैं, संशयादि विकारसे रहित हो गये हैं, शान्त, निर्भ्रान्त हो, स्वयं स्वरूपका पारखबोध प्राप्त कर लिये हैं, वे ही शूर, वीर, धीर हंसजीव जगत्में जन्म-मरणादिके कारणरूप दुःखदाई वाणी, खानीकी समस्त माया-मोहादि विकारोंको क्षण भरमें समूल काट-छाँटके नष्ट, विध्वंश कर देते हैं। अतः वे जीते ही मुक्त, सुखी हो जाते हैं। उन्हीं पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके मुमुक्षुओंने भी गुरुमुख

सारशब्द हथियारसे दुःखरूप जगत्के मोहको काटके हटा देना चाहिये ॥ २२८ ॥

साखीः—– कबीर सुन्नत मुसलमानकी । हुकुम रॉड़के होय ॥
मानी हुकुम हरमकी । ईमान ईलाहि खोय ॥२२९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! मुसलमानोंकी यहाँ, सुन्नत = लिङ्ग इन्द्रियकी अग्र भागकी त्वचा या खलड़ीको कटवानेकी प्रथा है, उस कर्मको सुन्नत कहते हैं। सो स्त्रीके हुकुमसे ही सुन्नत करनेकी चाल चली आयी है। इस बारेमें परम्पराके पारखी अध्यापक महात्माओंसे एक दृष्टान्त जाहिर होता चला आया है, सो कहता हूँ, और यहाँ लिख देता हूँ, सुनिये !—

दृष्टान्त वर्णनः— मुसलमानोंके यहाँ एक प्रधान पैगम्बर जो अन्तमें नबी प्रसिद्ध हुआ, सो वह बड़ा ही विषयी कामी था, एक समय वह दूर परदेश जाने लगा, तो उनके स्त्री-पुरुषमें निम्न वार्ता हुई। स्त्रीः— देखो ! परदेशमें दूसरी स्त्री नहीं कर लेना, नहीं तो अच्छा नहीं होगा, फिर ऐसा हुआ तो, तुम्हारा-हमारा बनाव नहीं होगा। पुरुषः— ठीक है, मैं दूसरी स्त्री नहीं करूँगा। यदि तूने ही मेरे पीछे किसी दूसरे पुरुषसे सम्बन्ध कर लिया, तो क्या होगा ? स्त्रीः— सुनो ! यदि मैंने व्यभिचार किया, तो तुमने आके, मेरे शिर तलवारसे उड़ा देना, और तुम्हारा कहो, क्या होगा ? तुमने दूसरी बीबी रख ली, तो क्या करना। पुरुषः— वही शर्त मेरी भी रही, यदि मैंने और कोई औरत रख लिया, सो बात तुम्हें मालूम हो, सबूत दे सको, तो तुमने भी मेरा शिर उड़ा देना, सो अच्छा ! कहकर इस तरहसे दोनोंमें समझौता हो गया, करारनामा पत्र लिखके दोनोंने अपने-अपने दस्तखत भी कर दिये। पीछे पैगम्बर रवाना हुआ, विदेश चला गया। फिर दो-चार वर्ष उधर ही रहनेका विशेष काम आ पड़ा; वह उधर ही रहा। अति कामी होनेसे उसने सोचा, मैं तो बहुत दूर आ गया हूँ। यहाँ मेरी बातको घरमें बीबी कैसे जान सकती है, नहीं जानेगी ? ऐसा विचार करके वहाँ

उसने एक स्त्रीको रखेली बनाके रख लिया। उससे भोग-विलास करनेमें लगके सारी बात शर्तके भूल गया, कुछ समय बाद उस स्त्रीसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। इसी तरह समय बीतता गया। उसकी घरकी बीबी बड़ी चालाँक थी। उसे सन्देह हुआ कि— वे मियाँ अपने करार वा शर्तमें सच्चे नहीं रह सकेंगे? इसीसे एक भेदुआ-गुप्तचर आदमीको उनका पूरा हाल मालूम करके आनेको समझा-बुझाकर खर्च तथा इनाम देके उनका पूरा पता लगानेको भेजा। उस भेदुएने भी वहाँ जाके पूरा भेद-सबूत जानकर आके वहाँका सारा हाल बीबीको बता दिया। उसका हाल सुनके यह तो बहुत क्रोधित हुई, जली, भुनी। फिर उसने एक जरूरी चीठ्ठी लिखके उनके पासमें भेजी—"मैं सख्त बीमार हूँ, मुख देखना हो, तो पत्र देखते ही फौरन चले आओ" इत्यादि लिखी। उधर जब पुरुषको पत्र मिला, इस स्त्रीपर प्रेम ज्यादा था, इसलिये घबराके वहाँका काम जैसा-तैसा निपटाके रखेली स्त्रीको भी बहुत कुछ इनाम रुपया देकर जल्दी-जल्दीसे यहाँ चला आया। घर आके देखा, सो बीबी तो अच्छी, भली, चङ्गी है, किन्तु नाराज बहुत है। आखिर उसने कारण जानना चाहा, तो उसने पूरा सबूत सहित वहाँ स्त्री रखनेका, पुत्र उत्पन्न होनेका हाल बताया, फिर भेदुए आदमीको भी बुलाके उसके साक्षी, प्रमाण प्रत्यक्ष करा दिया, उसने सब बात सही-सही बता दिया। तब तो मियाँ कायल भया, वह बात कबूल किया। स्त्रीने कहा—जानते हो, याद है कि नहीं, तुम्हारे-हमारे बीचमें क्या करार, शर्त ठहरा है। पुरुषने कहा— हाँ? मैं जानता हूँ, गुनेगारका शिर उड़ा देनेका करार है। अब मैं लाचार हूँ, मेरा कसूर हुआ, तुम्हारे सामने मैं गुनेगार हाजिर हूँ, लो! मेरे शर्तके मुताबिक शिर उड़ा दो, ऐसा कहके शिर झुका दिया। स्त्री समझदार थी, तब वह बड़ी सोच विचारमें पड़ गई, उसे कतल करके तो, आखिर अपने ही स्वार्थमें हानि देखी। फिर उसने कहा— देखोजी! तुम मेरे अधीन हो गये

हो, अब मैं जैसा कहूँ, वैसा ही तुमको मानना पड़ेगा। पुरुषः— मुझे सब कबूल है, कहो! मैं तुम्हारा शिर नहीं उड़ाती, शिरने तो कुछ कसूर नहीं किया है। कसूर तो तुम्हारे लिङ्गने ही किया है, दूसरे औरतसे मैथुन-भोग करके वह नापाक हो गया है। अतः तुम अपने लिङ्गकी, खलड़ी (ऊपरकी चमड़ी) मात्र काटके सुन्नत कर लो, दवाई लगाके घाव अच्छा करो, फिर नहाओ, धोओ इस तरहसे पाक वा पवित्र हो जाओगे। तब तुम मेरे सङ्ग विलास करने योग्य हो जाओगे। और सब कसूर मैं तुम्हारा माफ कर दूँगी, समझे! इत्यादि बात कही। पुरुष बड़ा भग-लम्पट था। इसलिये स्त्रीके वह सब बात— आज्ञाको मान लिया। उसने उसी प्रकार अपने हाथसे ही लिङ्ग इन्द्रियकी खलड़ी काटके सुन्नत कर लिया। फिर स्त्री प्रसन्न हो गयी, और उधर वह मियाँ मुसलानोंका मान्यवर पैगम्बर था, उसने सोचा यह सुन्नतकी प्रथा सब मुस्लिम जातिमें चला देना चाहिये, तब अच्छा होगा। मैं खाली मुखसे वचन ही कहूँगा, तो बात कोई मानेगा नहीं, और कुराने शरीफमें लिख देनेसे सब कोई मान लेंगे। ऐसा निश्चय करके अरबी भाषामें कुरानमें खुदा-तालाके वाक्य बनाके लिख दिया कि— "खुदाका फर्मान है कि— वही सच्चा असली मुसलमान है, जो अपने और अपने-अपने लड़कोंका सुन्नत करेगा। लड़कोंके छोटेपनमें ही सुन्नत कर देना चाहिये। सुन्नत किया हुआ ही खुदाका बन्दा असली इस्लाम होगा" इत्यादि वाणी बनाके लिख दिया। वही बात दिखा-दिखाके प्रचार किया। जिससे अविवेकी सब मुसलमानोंने खुदाके वाक्य समझके उसे मान लिया, इस तरह तभीसे सुन्नत करनेकी प्रथा या चाल, रिवाज मुस्लिमोंमें प्रचार हुई है, जो आज पर्यन्त भेड़ियाधसानवत् चली ही जा रही है॥ "इस बारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, शब्द ८४ में इशारा देके कहे हैं:"—

शब्दः— "शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो! मैं न बदोंगा भाई!॥ ३॥
जो खुदाय तेरि सुन्नति करतु है। आपुहि कटि क्यों न आई?॥ ४॥

सुन्नत कराय तुरुक जो होना । औरत को क्या कहिये ? ॥ ५ ॥
अर्ध शरीरी नारि बखानी । ताते हिन्दू रहिये ॥" बी० शब्द ८४ ॥

इस प्रकार हे मनुष्यो !, राँड़ = स्त्रीके वा कुरानके वाणीका, अथवा कल्पनामें पड़े हुए भ्रमिक मूढ़ नबी, पैगम्बर, गुरुवा लोगोंके, हुकुम = आज्ञासे मुसलमानोंके यहाँ, सुन्नत कर्म होता आ रहा है, और अभी हो रहा है। विवेक करके देखिये ! मुस्लिमोंने तो विचारको छोड़कर, हरम = स्त्री, वाणी-कुरानकी, गुरुवाओंके, हुकुम = आदेशको ही माने हैं। नारी, वाणी, कल्पना आदिका हुकुम मानकर, ईलाही = अल्लाह या खुदा, अथवा निज चैतन्यस्वरूप तरफका, ईमान = सच्चाई, ज्ञानगुण सत्य, शील, आदिको खो दिये, ज्ञान गमा दिये हैं। खुद-खुदायका मर्म न पाया, ईमानको खोके बेईमान हो गये हैं। श्रेष्ठताको बिगाड़के नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। हरमकी हुकुमत मानी, तो ईलाही ईमान खो गई। अतः जड़ाध्यासी विषयासक्त हो, चौरासी योनियोंके गर्भवास, जन्म-मरणके दुःख-भोक्ता भये, पतित हो गये और हो रहे हैं ॥ २२९ ॥

साखीः— जो हरम अल्लाह थी । तो शिरपर हुकुम मञ्जूर ॥
जो हरम अल्लाह नहीं । तो गये इमान जरूर ॥२३०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मुसलमानो ! जो वह तुम्हारे पैगम्बर मियाँकी बीवी, हरम = स्त्री, राँड़ वा कल्पित कुरानके वाणी ही अल्लाह-मियाँ या खुदा-परवरदिगार, दुनियाँके मालिक थी, ऐसा यकीन करके मानते हो, तब तो उसके हुकुम या आज्ञाको मञ्जूर करके शिरपर धारण करना, आदेश पालन करना, तुम्हें उचित है, और यदि वास्तवमें जो, हरम = स्त्री, वाणी, कल्पना, संसारी माया जाल है, वह अल्लाह-जहाँपनाह नहीं थी, अथवा वह राँड़ खुदा-ताला हो नहीं सकती है, ऐसा कहते हो ,तब तो तुम्हारा ईमान = सचाई, धर्म, विवेक, विचार, इन्सानियत, हरमके हुकूमत माननेसे, जरूर = अवश्यमेव खो गया, विनाश, नष्ट-भ्रष्ट हो गया

है। क्योंकि, खुदा बेचून, बेनमून होनेसे वह तो कुछ कह ही नहीं सकता है। फिर राँड़के हुकुमसे ही सुन्नत करा लिये। कुरानके प्रमाणसे आजतक मुस्लिम लोग उस सुन्नत कर्मको मानते जा रहे हैं। ईसीसे हरमके हुक्म माननेवाले सब मुसलमानोंका जरूर भी ईमान नेस्तनाबूद हो गया। आखिरमें बेईमान नादान ही हो गये, और हो रहे हैं ॥ २३० ॥

साखीः— कौल ईलाही छोड़िके। हरम कौल मुरीद ॥
यह दरजा पैगम्बरी। हरमी कौल सहीद ॥ २३१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! ये मुस्लिम लोग, ईलाही = अल्लाह मियाँ, मालिक, दुनियाँके बादशाहका, कौल = करार, प्रतिज्ञा, दया, क्षमा, सत्य, विचारादि सद्गुण धारण निज-पर उपकार करना छोड़-छाड़के, सत्सङ्ग करना, न्याय-नीतिका धर्म त्याग करके उल्टा वे, हरम = स्त्री, वाणी, कल्पनासे, कौल = करार, ठहराव, कबूल करके उसी नारी आदिके पक्के, मुरीद = शिष्य, अनुचर, शागिर्द हो गये। स्त्री, वाणी ही उनकी गुरु बनी है, वे उसके चेले भये हैं। यह चाल छोटे लोगोंसे नहीं, किन्तु, बड़े-दरजा = खिताब, ओहदा, मान-प्रतिष्ठावाले मियाँ नबी, पैगम्बरने ही स्त्रीका, कौल = करारमें, सहीद = आत्म-समर्पण करके, मृतकवत् होकर दुनियाँमें कुपन्थ, कुचालको चलाया है, और खुदाको प्रसन्न करनेके लिये पैगम्बरोंने यह भिन्न-भिन्न दर्जा निकाला है। तहाँ हरमी = नारी, वाणी, कल्पनाकी सख्त फर्मान सुनाके, कौल = कबूल करारकराया है कि, हम सब सुन्नत करेंगे, पाँच बखत नमाज-पढ़ेंगे, रोजा-रखेंगे, बाङ्ग-पुकारेंगे, हज्ज-करेंगे, इत्यादि करार, सहीद = निश्चय कर-कराके इस्लाम मतका प्रचार किये और कर रहे हैं। अर्थात् करारमें हारके स्त्रीका चेला होना, यह तो इनके पैगम्बरी दर्जासे ही रिवाज चला है। परन्तु गुप्त भेदको छिपायके उसने चालाकीसे कुरानमें खुदाके वचन कहके लिख दिया है। अब वही

वाणी कल्पनाको पढ़के निश्चय कर-कराके सुन्नत कराय, नमाज पढ़ते-पढ़ाते हैं। हकनाहक मिथ्या धोखामें ही भूले और भूल रहे हैं, बिना विवेक ॥ २३१ ॥

साखीः—— कबीर हुकुम अल्लाहके। छाड़ि भये मुनकीर ॥
कौल हरमको मानते। तनक न आई पीर ॥ २३२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! अल्लाह मालिक खुदाके, अथवा सत्यन्यायी पारखी सन्तोंके सत्य चैतन्य बोधका उपदेश, हुकुम = आदेश कि— सब जीवपर दया रखो, खुद-खुदाय चैतन्य जीवको ही सत्य जानो, इत्यादि सद्गुरुके आज्ञाको सर्वथा छोड़ करके तुरुक लोग, मुनकीर = मनमती, फकीर, मूढ़, पक्षपाती, अविचारी ही भये और हो रहे हैं, और, हरमको = स्त्री, वाणी, कल्पनाको श्रेष्ठ मानकर उसके अधीन, दीन, हीन, मलीन, लाचार हो, कौल = करार, प्रतिज्ञा, कबूलकर उसे मानते जाते हैं। देखो ! इन निर्बुद्धियोंको स्त्रीसे हारके उसके आज्ञा कबूलकर उसे मानने, पालन करनेमें, उस लम्पट लबारको, तनक = जरा-सी या किञ्चित् भी, पीर = कष्ट, दुःख, शर्म नहीं आई। कितना नैतिक पतन हो गया। अथवा वाणी कल्पनाकी करारको मानतेमें उन मुस्लिमोंको थोड़ा-सा भी मनमें संकोच दुःख दर्द नहीं आयी। मनमाने वैसे झूठा धोखेको सत्य मानते गये, महा खाँचमें गिर पड़े हैं ॥ २३२ ॥

साखीः—— सोई हुकुम हरमकी। उमत निबाहै जात ॥
पैगम्बर हुकुम हरमके। वे दुशमनके बात ॥ २३३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो ! जबसे अबतकके सब मुसलमान लोग सोई, हुकूमत = आज्ञा, फर्मान, हरमकी = स्त्री-माया वा वाणी, गुरुवा लोगोंकी, उमत = चाल, रीति, रिवाज, मजहबी प्रपञ्च, जात = खानी, वाणीके नाना सिद्धान्त, जन्म भर या उमर भर निबाहै जाते हैं, प्रतिपालन, धारण, दृढ़ निश्चय

करते जाते हैं। अरे भाई! पहिले तुम्हारे पैगम्बरने ही तो हरम = स्त्री वा वाणीकी हुकूमतको लाचार होके माना था। अब तुम लोग खुदा और पैगम्बरके हुकुम समझके जो कुरान आदिकी वाणीको, सत्य मानते हो, ईद, बकरीद, मोहर्रम, सुन्नत, हलाल, रोजा, इत्यादि करते-कराते हो, सो धोखेमें पड़के ही कर रहे हो। देखो! वह घातकी, तामसी — कर्म, धर्मकी हो नहीं सकती है। धर्मात्मा पैगम्बर उपकारीके भी वह बात नहीं है। परन्तु वे सब तो सत्य, चैतन्यपदके दुश्मन, दुष्ट, पापी, अपराधी, मुक्ति-मार्गके शत्रुकी ही खोटी बात है। जीवोंको चौरासी योनियोंके बन्धनमें फँसानेवाला है। ऐसा यथार्थ जानके उस प्रपञ्चको त्यागो, और पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग, विचारमें ही लागो, तभी हित होगा, ऐसा जानो ॥ २३३ ॥

साखीः— मायाके गुण तीन हैं। उत्पति पालन संहार ॥
मायाके दुई रूप हैं। सत मिथ्या संसार ॥२३४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो!, माया = काया, प्रकृति, स्त्री, नारी, वाणी, कल्पना, अनुमान, मन और गुरुवा लोग इत्यादि खानी, वाणीकी माया प्रकृतिके रज, सत्त्व, तम। आदि, अन्त, मध्य। काम, क्रोध, मोह। आशा, तृष्णा, ममता। तत्त्वमसि। कर्ता, धर्ता, हर्ता। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा। सङ्कल्प, विकल्प, चिन्तन। ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान। इत्यादि क्रमशः यही उन्होंके तीन-तीन गुण हैं। यह तीनों गुण उनके साथ ही सदा लगे रहते हैं। रजोगुण, कामसे आदिमें खानी, वाणीकी उत्पत्ति होती है। सत्त्वगुण, मोहसे मध्यमें उसकी पालन, परिपुष्टताई होती है, और तमोगुण, क्रोधसे अन्तमें मोटी, झीनी भाग दोनोंका विनाश या संहार ध्वंश हो जाती है। यही तीन गुणके मुख्य कार्य होते रहते हैं, और उक्त माया, गुरुवा, वाणी, स्त्री, आदिका मुख्य स्वरूप, आकार, सिद्धान्त, ठहराव दो प्रकारका है। उसमें एक तो ब्रह्म सत्य तथा संसाररूप चराचर दृश्य जगत् मिथ्या कहके अद्वैतवाद सिद्ध करते हैं, सो

मिथ्या धोखा ही है। और दूसरा, संसारमें विषयादिकी सुख मानन्दी जो किये हैं, सो भी मिथ्या भ्रममात्र ही है। किन्तु, उसे जानने-माननेवाला द्रष्टा चैतन्य जीव सत्य है। मायारूप गुरुवा लोग और स्त्रियोंके खानी, वाणीकी जाल, प्रपञ्च तो सरासर मिथ्या है, और उनके स्वतः स्वरूप जीव चैतन्य होनेसे तीन कालमें अविनाशी सत्य है। तथापि विना पारख जड़ाध्यासी-बद्ध हो रहे हैं, ऐसा निर्णय करके जानना चाहिये ॥ २३४ ॥

साखीः— चमगिदुरनके बड़ेके । उलुवा भये परधान ॥
निशिमें दोऊ नयन सुख । दिन रवि होय न भान ॥२३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! इसमें एक दृष्टान्त आया है, सुनिये! चमगीदड़ पक्षीको तो सभी कोई जानते हैं, जो वड़, पीपल, पलास, आदि बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालियोंपर दिन भर लटके रहते हैं। उनके पङ्ख भी चमड़ेके जालकी ही होती हैं, पङ्खमें अंकुशी काँटे होते हैं, उसीसे झाड़में टँगे रहते हैं। उन्हें दिनमें दिखाई नहीं देता है, किन्तु, रातमें वे अच्छी तरहसे देख लेते हैं। इसीसे रात भर चमगीदड़ चारा-पानी, खाने-पीनेके लिये उड़ा करते हैं। दिन भर आराम करते हैं। बन्दर सरीखा उनका मुख होता है। पशु, पक्षी दोनोंसे विरुद्ध विजातीयके वे होते हैं, और उलुवा = उलूक या उल्लू पक्षी, जो घू-घू बोला करता है। वह भी दिनमें कुछ नहीं देखता है, रात्रिमें ही अच्छी तरहसे देखता, उड़ता-फिरता है। चमगीदड़से उलूक पक्षीका शरीर बड़ा होता है। अतः वह उनमें प्रधान माना जाता है। एक समय सैकड़ों चमगीदड़ झुण्डके-झुण्ड रात्रिमें चरते-फिरते थे, विहार करते थे, उसी समयमें उनके झुण्ड दूर उपवनमें पहुँच गया, चारा चुगते, खाते-पीते, सबेरा हो गया, तो और सब चमगीदड़ तो लौटके घर आ गये, किन्तु, उनमेंसे कुछ चमगीदड़ पक्षी भूलसे उसी बगीचामें दूसरे तरफ जाके छूटके वहीं रह गये। दिन उदय हुआ, तो दूसरे पक्षी उड़के आये, उन्हें वहाँ

सोया पड़ा, देखके बोले— अरे! ओ परदेशीजनो! तुम लोग अभीतक क्यों सोये पड़े हो, उठो! आँखें खोलके चलो, हमारे सरीखे दैनिक कार्य करो, फिर रातमें मजेसे सोना। उसमें एकने कहा— मुझे तो अभी रात ही दिखाती है, दिनका प्रकाश तो कुछ दिखता ही नहीं, फिर कैसे उठूँ। पक्षियोंने कहा— अरे! तूँ क्या अन्धा बना है? आँखें क्यों ढाक रखा है? खोल नेत्रको, फिर देखेगा क्यों नहीं? ऐसे बहुतोंके बहुत बार कहनेसे उसने नेत्र खोला, तो खास सूर्यका प्रकाश देखा, जो उसने जन्म भर नहीं देखा था। तब पक्षियोंको धन्यवाद दे, वह भी अन्य पक्षीवत् दिनमें चरने, और रातमें सोने लगा। कुछ समय बाद फिर पहिलेवाले चमगीदड़ोंके झुण्ड वहाँ चरनेको आये। तो उसे वहाँ चुपचाप रात्रिमें सोते हुए देखकर उन्होंने आश्चर्य माने। फिर उसके पास आके बोले— अरे! ओ भाई! तू रात्रिके ऐसे उजियालामें चरता क्यों नहीं? तू भी हमारे सरीखा विचर, फिर दिनके अन्धकारमें सोते रहना। हमारा दिनका प्रकाश तो अभी रातमें ही हो रहा है। बोल क्या बात है? उसने कहा— अरे भाइयो! अभी तो घोर अँधियारा है, प्रकाश तो दिनमें सूर्यसे ही होता है। तुम लोग कैसी उल्टी बात करते हो। जावो! मैं अभी अँधियारामें चरने नहीं जाता, कहके उसने उनकी बात नहीं माना। तब चमगीदड़ोंने कहा— अरे! इसको तो किसीने भ्रमा दिया है। ये तो जाति-कुलका द्रोही विरोधी बना है। पकड़ो इसे, ले चलो महाराजा उलुवाके पास, कहके उसे पकड़के ले गये। उनके बड़े न्यायाधीश उलूक पक्षीके पास ले जाके उन्होंने फरियाद या उजुर किये कि— हे राजा! सुनो! यह जीव चमगीदड़ जातिका हो करके भी, हमारेसे विरुद्ध वर्ताव करता है, रातके प्रकाशको नहीं मानता है, इसे आप दण्ड दीजिये! उलूक बोला— हे चमगीदड़ प्रजाजनो! हमारी सनातन कुल परम्परा तो यही है कि— रात्रिके

प्रकाशमें ही यथेष्ट चरना, विचरना, यही निर्भयका समय है, और दिनके अन्धकारमें एक जगह आराम करना, सोते रहना। हमारे बड़े-बड़े पुरखाओंने यही बात कहा है, सो तुम लोग मानो। कहो ठीक है कि नहीं? तब तो सैकड़ों, सहस्रोंने हाँमें-हाँ मिला दिया, 'सत्य वचन महाराज!' कहा, तारीफ किया, उनमें कितनेक पक्षी तो ऐसा बहुमत, देख, सुनके उधर ही उलट गये, एक, दो, बचे, जो दृढ़ थे, उन्होंने उनकी झूठी वचन नहीं माने, तब तो उन्हें नाना तरहसे सताके छोड़ दिये। इसी प्रकार सिद्धान्तमें—चमगिदुरनके = पारख दृष्टिहीन भ्रमिक मूढ़ गुरुवा लोगोंके, बड़ेके = बड़े पूज्य, श्रेष्ठ, मान्यवर, कौन भये हैं कि— उलुवा = महामूढ़, विवेकहीन, गुरुवाओंके महन्त, आचार्य, मण्डलेश्वर, उपदेशक, जिन्हें पारखबोधके कुछ ज्ञान ही नहीं है। उनके शिष्य, सेवक, यजमान, अनुयायी आदि यदि कभी भूले, भटके हुए, सत्यन्यायी, पारखी साधु गुरुके सत्सङ्गमें आये, उपदेश सुननेसे विवेकका प्रकाश हुआ, तो उनका मानन्दी छोड़कर पारखी सद्गुरुके ही शिष्य, सेवक हो सुधार करनेमें लग जाते हैं। कभी जमात लेके घूमते-घूमते गुरुवा लोग आये, पूर्वके अपने शिष्योंको पूर्ववत् उन्हें मान देके कार्य करते हुए न देखके गुरुवा लोग उसे बहुत डाँटते, डराते, धमकाते हैं, फिर किसी युक्तिसे उन्हें अपने मतके प्रधान उल्लू बड़े गुरुवाके सामनेमें पेश करते हैं। वे हर तरहसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, आदिके प्रमाण देके षट् दर्शनोंके सिद्धान्तको ही पुष्ट कर देते हैं, जिसे लाखों, करोड़ों लोग उसे मानते हैं। ऐसा देख, सुनके बहुतेरे कम समझवाले उलटके, फिर उन्हींमें मिल जाते हैं। दृढ़ बोधवाले तो न्यारा ही हो रहते हैं। उन्हें शाप आदि देके वे सन्तोष कर लेते हैं। निशिमें = रात्रि, अज्ञान, अविद्यामें ही, दोऊ = दोनों गुरु-चेले बड़े-छोटे गुरुवा लोगोंको नयन-सुख या मानन्दीका सुख हो रहा है। सूर्यवत् पारख ज्ञानकी प्रकाशरूप

दिनमें भी उन्हें कुछ भान = मालूम होता ही नहीं है। महामूढ़ ही बने हैं। यानी अज्ञानतासे पक्षपातमें ही वे दोनों सुख-सन्तोष मानते हैं। पारखी सन्तोंके ज्ञान प्रकाशमें तो उन्हें कुछ सूझ-समझ पड़ता ही नहीं है। पारख प्रकाश होनेपर तो, सब छिप-छिप जाते हैं। कल्पनाके अन्धकारमें ही वे सब विचरके लोगोंको भुलाया करते हैं। अतः ऐसे उल्लू ठगोंके जाल, धोखामें कभी पड़ना नहीं चाहिये, उनसे दूर ही रहना चाहिये ॥ २३५ ॥

साखीः— रजगुण तीन प्रकारका । ब्रह्माका गुण सोय ॥
मन इन्द्री अरु कर्मसों । उत्पति जगकी होय ॥२३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! मुख्य तीन प्रकारका रजोगुण होता है, सो बुद्धिरूप ब्रह्माका प्रधान गुण है। इसीसे मनसे मानन्दीकी, इन्द्रियोंसे उनके विषयोंकी और कर्मोंसे कार्य पदार्थ देह आदिका उत्पत्ति रजोगुण करके ही होता है। तथा मन, इन्द्रियाँ, कर्मोंसे ही समस्त खानी, वाणीकी, जगत् जालकी, चौरासी योनियोंकी उत्पत्ति हुई हैं, और हो रही हैं। अतः रजोगुणकी अशुद्धताको त्याग करके शुद्ध विवेक करनेमें लगना चाहिये ॥२३६॥

साखीः— सतगुण दुई प्रकारका । विष्णुका गुण सोय ॥
मनसों करसों जानिये । पालन जगको होय ॥२३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— तथा मुख्य दो प्रकारका सत्त्वगुण होता है। विष्णुरूप चित्तका सोई शान्त रहनेका गुण है। और जगत्का पालन मुख्यतया दो प्रकारसे होता है। मनसे सूक्ष्म इन्द्रियोंकी वा मानन्दियोंकी, वासनाओंकी, पालना होती हैं, एवं करसे या कर्तव्य कर्मसे हाथसे स्थूल देह आदिका प्रतिपालन, रक्षण होता है। मनसे वासनाको बढ़ा-बढ़ाकर पालनकर पुष्ट करते हैं, हाथ आदिसे मोटा कर्म नाना प्रकारसे करते हैं, जिससे जगत्में वस्तु और प्राणी आदिका पालन होता है, तो माया-मोहका

बन्धन दृढ़ होता है, ऐसा जानिये ! अतः अशुद्ध सतोगुणको छोड़कर, शुद्ध, गुरु-भक्ति बोध भावमें मनको लगाना चाहिये ॥ २३७ ॥

साखीः—तमगुण दोय प्रकारका। शिव अभिमानी सोय ॥
मनसों करसों जानिये। जग संहारन होय ॥२३८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और मुख्यतया दो ही प्रकारके तमोगुण भी होते हैं। शिव या रुद्ररूप अहङ्कारका सोई अभिमान, हङ्कार, दम्भ, करनेका तामसी गुण है। तथा सोई तमोगुणके अभिमानीको ही शिव कहे हैं। फिर जगत्का संहार, विध्वंश भी दो प्रकारसे ही होता है। एक, तो मनसे शुभ विचार शुद्ध गुणोंका संहार होता है, नाना सङ्कल्प-विकल्प करके काम, क्रोध, लोभ, मोहादि उठाते हैं, फिर शून्य सुषुप्तिमें मूढ़ बने रहते हैं। दूसरा, हाथोंसे शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग करके कर्म-कुकर्म, क्रूर कर्म, हिंसा, घात, प्रतिघात, आदिसे बहुतेरे प्राणियोंका संहार करते हैं। ऐसे दो तरहसे सूक्ष्म तथा स्थूल द्वारा जगत्का संहार होता है, ऐसा जानिये !। अतः अशुद्ध क्रूर स्वभाव तमोगुणको त्याग करके दृढ़-वैराग्य, उपरामता, मनमें रखना चाहिये। यहाँ त्रिदेव मुख्य तीन गुणको ही कहा है। सद्गुरुने बीजक शब्द ७५ में कहे हैंः—"रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शङ्कर। सतोगुणी हरि होई ॥" सोई त्रिगुणसे स्थूल, सूक्ष्मकी उत्पत्ति, पालन, संहार होता रहता है। किन्तु, समस्त ब्रह्माण्डरूप संसारकी उत्पत्ति वा प्रलय कभी हुआ नहीं, और होगा भी नहीं। खाली शरीर आदि कार्य पदार्थ ही बनते-बिगड़ते रहते हैं। चराचरके बनाव, बिगड़ाव, मानना, मिथ्या कल्पना, असम्भव बात है। ऐसे गुणमय जगत्को गुणातीत, निर्गुण, ब्रह्म, मानना बड़ी भारी भूल है ॥ २३८ ॥

साखीः—ब्रह्म, जीव ईश्वर जगत्। उपजे मनसे सोय ॥
कहहिं कबीर सुनु पण्डिता ! गुणातीत किमि होय ? ॥२३९॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! चैतन्य जीवकी

सत्ता सम्बन्धसे नरदेहमें सूक्ष्म मन-मानन्दी अनुमान, कल्पना, सङ्कल्प-विकल्पादिसे कोई असिपद, निर्गुण, निरञ्जन ब्रह्म है, कोई तत्पद, निराकार, सर्वशक्तिमान् ईश्वर है, कोई त्वंपद शक्तिहीन अज्ञजीव है, कोई पञ्च-विषय विस्ताररूप जगत् सब विराट परमात्मा है, इत्यादि प्रकारसे माने हैं। सो सब मनसे ही तो उत्पन्न हुआ है। जीवके रजोगुणसे जगत् विषय उत्पन्न हुआ, तमोगुणसे ब्रह्मका भ्रम हुआ, सतोगुणसे ईश्वरकी कल्पना, अनुमान, पैदा भयी है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— हे अद्वैतवादी पण्डित! सुनो! ब्रह्म, ईश्वरको अब कहो, गुणातीत कैसे कहते हो? त्रिगुणसे रहित, निराकार, निर्गुण, व्यापक, वह कैसे हुआ? कहाँ हुआ? मनमानन्दीसे कल्पना करके शब्द निकाले बिना ब्रह्म, ईश्वरादिकी सिद्धता ही नहीं होती है, अतः वह सब त्रिगुणके विकार वाणीका विषय बन्धन ही है ॥२३९॥

साखीः—— बिन दुलहाकी दुलहिनी। सूनी सेज रहि सोय ॥
गये अकारथ सोवना। चली निराशा रोय ॥२४०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! जैसे कोई क्वाँरी कन्या स्वप्नमें एक दुलहाको देखके उसे पति मान करके अपने दुलहिनी बनके शून्य स्थानमें उससे मिलनेकी आशासे खाली शैय्यापर अकेली सोय रही, सारी रात बीत गयी, तो भी, पति सम्बन्धका आनन्द नहीं मिला। इसीसे उसके शून्यमें सोना अकार्थ या व्यर्थ ही हो गया, दिन निकलनेपर वह स्वप्नका पुरुष उसे प्रत्यक्ष न मिलनेसे चिन्तासे निराश हो, रोय-रोय बिलाप करके भटकती चली गयी। तैसे ही सिद्धान्तमें अज्ञान अबोधका स्वप्नमें दुलहिनी बना हुआ दीन, मलीन नरजीवोंने वेद, शास्त्र, पुराण आदिके प्रमाणसे, दुलहा = ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, स्वामी, वरका नाम सुना, वाणी देखा। परन्तु वह तो मिथ्या कल्पना है। सत्य बोध हुए बिना ब्रह्म आदिसे मिलनेके लिये अधीर होकर, सूनी

सेज = शून्य आकाशवत्, पूर्णव्यापक, परमात्मा मानके भ्रमर गुफा ब्रह्माण्डके शून्य शैय्यामें चित्त-चतुष्टयको लय करके निर्विकल्प शून्य समाधि लगायके सोय रहे हैं, गाफिल, बेभान हो रहे हैं। परन्तु दुलहावत् माना हुआ ब्रह्म तो भ्रमरूप मिथ्या धोखा है। इसीसे योगी, ज्ञानियोंके धारणा, ध्यान, समाधि लगायके सोना, शून्य, उन्मुन होना, सो तो गाफिली होनेसे, अकारथ = निष्फल, व्यर्थ, वाहियात ही, हो गया। उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई, इसी तरह नर जन्मका सारा आयु बीत गया। एक दिन शरीर भी छूटने लगा, तब तो निराश = असहाय, अनाथ, दुःखो हो करके रोय-रोयके शोकमें व्याकुल होकर पछताया, घबराया, प्राण छूटा, तो अध्यासने जीवको चौरासी योनियोंमें लेके चला गया। आखिर तक जीव-ब्रह्मकी एकता नहीं हो सकी। सब साधनाएँ फजूल हो गयीं। अतः कर्ता ईश्वरादिके मिथ्या मानन्दीको सत्सङ्गसे परखकर हटाना चाहिये ॥ २४० ॥

साखीः — जो जीव होता बिन्द ही। कहैं विचार कबीर! ॥
सङ्गति करते शक्तिसों। तब हीं तजत शरीर ॥२४१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे वीर्यवादी, विषयी लोगो! जब तुम लोग जड़ वीर्यको ही चैतन्य जीव मानते हो, तो तुम लोग ठीक-ठीक विचार करके कहो कि— जो यदि वीर्य ही असलमें जीव होता, तब जिस समय, शक्ति = मायारूप स्त्रीसे पुरुष लोग, सङ्गति = सम्भोग या मैथुन करते हैं, उस वक्त बिन्दु पतन या वीर्य स्खलित हो जाता है। फिर शरीरसे वीर्य निकल जानेपर पुरुष तब तुरन्त वहीं शरीर छोड़के मर जाता वा उसे मर जाना चाहिये था। फिर गिरा हुआ वीर्य भी स्त्रीकी भगकी उष्णता पायके विनाश हो जाना चाहिये था। परन्तु ऐसा तो कहीं नहीं होता है। यदि वीर्य गिरनेपर पुरुषकी मृत्यु और योनियोंकी गर्मीसे वीर्य गर्भके शरीरका नाश हो जाता। तब तो माना जाता कि— हाँ!

वीर्य ही जीव है और तब तो कोई भी पुरुष स्त्री-सम्भोग नहीं करते। किन्तु, यहाँ तो उससे उल्टा पाया जाता है। बहुतेरे विषयी कामी पुरुष स्त्रीसे नित्य ही मैथुन किया करते हैं। हर वक्त मैथुनमें रज-वीर्य पतन हो नष्ट होता ही रहता है। अति भोगसे मुखमें हड्डी-हड्डी दिखने लग जाती है, तो भी जीते ही रहते हैं। इसलिये वीर्य अन्नसे बना हुआ, सप्त धातुओंका रस जड़ ही है, वह चैतन्य जीव नहीं है। वह ब्रह्म भी नहीं है, वीर्यको ब्रह्म कहनेवाले कवि लोग विचार करके कहें कि— स्त्री-सङ्ग भोग करनेसे वीर्य पतन होके शक्ति क्षीण होती है, तब ही शरीर छूट क्यों नहीं जाती है? अतः वह जड़वीर्य जीव, ब्रह्म, ईश्वरादि कुछ भी नहीं है। सब मानन्दी मनका मिथ्या कल्पनामात्र है। निर्णय करके उसे यथार्थ जानना चाहिये ॥ २४१ ॥

साखीः— कबीर जेता साधना। साधन गुण औगूण ॥
कहहिं कबीर शब्द बिन परखै। सकल साधना सून ॥२४२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! संसारमें पारख बिना कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, स्वर्गादि, सिद्धि, ऋद्धि, आदि प्राप्तिकी आशासे गुरुवा लोगोंने वेदादिका वाणीके प्रमाणसे कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, ध्यान, विज्ञान, ब्रह्म-समाधि, इत्यादि जितना भी कष्टकर और सहज साधनाएँ किये, कराये हैं, सो साधनोंसे कोई कल्याणकारी सद्गुण विवेक आदि तो प्राप्त नहीं हुआ। बल्कि निर्गुण, निराकार, व्यापक, अहंब्रह्म कहके और भी अवगुण, दुर्गुण, भ्रम, धोखामें ग्रसित हो गये, कल्पनाको ही लाद लिये। तहाँ जिसे साधनोंसे प्राप्त करना चाहते हैं, सो ब्रह्म, ईश्वरादि तो, औगूण = निर्गुण माने हैं। इसलिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख सिद्धान्तके मर्मज्ञ पारखी सन्त कहते हैंः— सारशब्द गुरुमुख निर्णयसे पारखी सद्गुरुके सत-सङ्ग द्वारा काल, सन्धि, झाँई, तत्त्वमस्यादि शब्द वा वाणी जालको

यथार्थ परखे बिना, कसर खोट, सत्यासत्य जाननेमें नहीं आता है। निज चैतन्य पारखस्वरूपका बोध स्थिति नहीं होता है । अतएव बिना पारख मनुष्योंका किया हुआ सम्पूर्ण साधनाएँ सूना, व्यर्थ, निष्फल हो जाती हैं । क्योंकि, और सकल साधनाएँ जीवोंको शून्य गाफिलीमें ही ले जाके गाड़नेवाले हैं। उससे कुछ भी हित नहीं होता है; अतः असार सब साधनोंको त्याग देना चाहिये ॥ २४२ ॥

साखीः— है साधन लावा लखै । साधन लखैंजु बाज ॥
शब्द विवेकी पारखी । साधनके शिरताज ॥२४३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और जो मनुष्य भक्ति, योग, ज्ञानादिकी साधनाएँ नहीं करते हैं, उन्हें गुरुवा लोग, लावा = बटेर, निर्बल, पक्षीकी सदृश तुच्छ लखते या देखते हैं, और जो कठोर साधनाओंमें लगे हैं, उन्होंके मानन्दीकी साधना संयुक्त हैं, उन्हें साधक लोग बाज पक्षीवत् बलवान् श्रेष्ठ, उच्च लखते हैं, उन्हें वे सिद्ध पुरुष समझते हैं। जैसा बाज बटेरको धोखा दे-देके मारकर खाता है। तैसा वे कपटमुनि, धूर्त लोग भी वाणी, कल्पना दृढ़ा-दृढ़ाके ईश्वरादि कर्ता, सुख-दुःखोंका दाता कोई परमात्मा है, उसके प्राप्तिसे परमानन्दकी लाभ होती है, इत्यादि, दृढ़ा-दृढ़ाके गरीब, अबोध मनुष्योंको भुला करके तन, मन, धनादि, हरण कर लेते हैं। साधनसे वे स्वार्थ सिद्ध करते हैं। वे सब ढोंगी, ठग, अविवेकी बने हैं। और जो पारखी सन्त सारशब्द टकसार द्वारा परीक्षा करके सब शब्द जालोंको विवेक करके निर्णय ग्रहण करते-कराते हैं, वे ही शब्द-विवेकी पारखी, सम्पूर्ण साधु समाज और साधक-सिद्धोंके ऊपर सर्वोपरि, सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, शिरताज = शिरकी अमूल्य रत्नजड़ित मुकुट वा ताजके समान महान मान्यवर, परमपूज्य होते हैं। उन्हींकी शरण-सत्सङ्ग विचारसे नरजीवोंकी मुक्ति प्राप्ति होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २४३ ॥

साखीः— कबीर शून्यको सेयके । होय चहै भवपार ॥
जैसे दीपक चित्रको । करै कौन उजियार? ॥ २४४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे नरजीवो! इस कायावीर कबीर मनुष्य जीवोंने निज स्वरूपको भूलके भ्रम चक्रमें पड़े। तब, शून्य= जहाँ कुछ भी नहीं, आकाश, निराकार है, बस, तद्‌वत् निर्गुण, निराकार, बेहद वा अनहद ब्रह्म, परमात्मा कोई एक अद्वैत आकाशके नाईं ठहराये हैं। फिर उसी शून्यरूप 'खं' ब्रह्मकी प्राप्ति तदाकार होनेके लिये नाना तरहसे योग, ध्यान, ज्ञानादि साधनोंका सेवन, अभ्यास करके वे भवसागर वा आवागमनसे पार होकर मुक्त होना चाहते हैं। परन्तु मूलका विचार कुछ भी नहीं करते हैं, कि— वह तो मिथ्या धोखा है, कोई वस्तु ही नहीं है, तो फिर उससे मुक्ति कैसे होगी? जैसे भीतमें, और कागजमें किसीने अच्छे रङ्गसे सुन्दर दीपकका आकार अङ्कित करके बनाया हो, अथवा जलती हुई दीपककी फोटो खींचके रखा हो, तो कहो भला! वह चित्रका दीपक कौन, कहाँ, कैसा— किञ्चित् भी उजियाला वा प्रकाश कर सकता है? वह चित्र प्रकाश क्या करेगा? कुछ भी नहीं करेगा तैसे ही वेद, शास्त्र आदिमें लिखी हुई वाणी, शब्द दीपक हैं। उससे ब्रह्म, ईश्वरादिकी कल्पित चित्र-मानन्दी खींच दिया है। फिर वह किसके हृदयको क्या प्रकाश करेगा? कैसे अज्ञान अध्यास छुड़ायेगा? कैसे भवपार होंगे? वह शून्य ब्रह्म आदि मानन्दीसे कुछ कल्याण हो नहीं सकता है ॥ २४४ ॥

साखीः— जगत पदारथ जाहिको । बूझ खड़ी होय जाय ॥
जैसे बाघ चित्रको । कहो कौनको खाय? ॥२४५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और जिस भ्रमिक, मूढ़, अविवेकी मनुष्यको, जगत् पदारथ = पदरूप वाणीका अर्थ करके जगत्के पाँच तत्त्वरूप ब्रह्माण्ड, पिण्ड, समस्त विश्वरूप एक अद्वैत ब्रह्म है,

ऐसा मानन्दी दृढ़ भयी, तो बूझ खड़ी होय जाय = वही वाणी कल्पनाको समझ-बूझके प्रतीत करनेसे ऐसा ही भावना, अनुभव उनके हृदयमें खड़ी हो जाती है। चराचर जगत् सब एक ही ब्रह्म है, सो मैं हूँ, द्वैत कुछ भी नहीं है, यही निश्चय खड़ी, साव-धान हो जाती है। किन्तु, वह भावना उनकी मिथ्या भ्रम, भूल ही है। जड़ और चैतन्य कभी एक हो नहीं सकता है; प्रत्यक्ष न्यारा-न्यारा ही हैं। जैसे चित्र वा तसबीरमें किसी कुशल चित्रकारने क्रूर, हिंसक पशु, बाघका वैसे ही आकार-प्रकार लिखके चित्र बना दिया हो, वा बाघके फोटो खींचके रखा गया हो, कोई उसको सजीव बाघ मानके दृढ़ भावना भी कर बैठे, तो कहो, वह चित्रका बाघ किसीको खा सकता है? उसने किसीका शिकार करके खाया है? कभी नहीं। तैसे ही वाणी-कल्पनासे चित्र खिंचा हुआ सिद्धान्तमें बाघवत्-ब्रह्म, ईश्वरादि असत्य हैं, तो फिर कहो, वे किसके जन्म, मरणादिके दुःखको खाके या मिटाके मुक्त करेंगे? किसीकी भी नहीं करेंगे? बल्कि वाणी, खानी मानन्दीसे जड़ाध्यासी हो, जीव सब चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े, और पड़ेंगे। अतः परखके वह भ्रम मिटाना चाहिये ॥ २४५ ॥

साखीः— जग भासत सन्धिक किये। सन्धिक भासै ब्रह्म ॥
कहहिं कबीर सन्धिक लखै। होय कोई नहिं भर्म ॥२४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! जगत्में जड़ पाँच तत्त्वका विस्तार और अनन्त देहधारी चैतन्य जीव तो प्रत्यक्ष सत्य भासते हैं, या सबको दिख ही रहा है। परन्तु अविवेकी वेदान्ती लोग जड़ और चैतन्य दोनोंको, सन्धिक = एकमें मिलायके या कल्पनामें मनको जोड़के चराचरमें पूर्ण एक ही ब्रह्म है, ऐसा मानन्दी किये हैं। इसीसे, सन्धिक = मिथ्या मानन्दीके सम्बन्धसे उन्हें जगत् सब ब्रह्मरूप एक अद्वैत ही भासता है। यानी भ्रमसे ऐसा निश्चय होता है। पारख सिद्धान्तके ज्ञाता सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब

के सत्य निर्णयको, पारखी सन्त कहते हैं कि— गुरुमुख निर्णयसे परख करके जो जिज्ञासु, सन्धिक = मनकी मानन्दीको, ठीक तरहसे, लखते = देखते, जानते, पहिचानते हैं कि— मानन्दी सकल असत्य धोखा है, वह असार कल्पनाका ही विस्तार है। सबको जानने-माननेवाला चैतन्य जीव ही सत्य अखण्ड है, ऐसे बोध दृढ़ होनेपर फिर उन्हें कोई कर्ता, ब्रह्म, ईश्वरादिका मिथ्या भ्रम कभी हो नहीं सकता है। जड़, चैतन्यका भेद यथार्थ जान लेनेपर और कोई भ्रम नहीं होता है, पारखके प्रतापसे सब भ्रम, भूल मिट जाती है ॥२४६॥

साखीः— ब्रह्मादि सनकादि जो। सबका सन्धिक ज्ञान ॥
कहहिं कबीर शिरमौर सो। लखै जो सन्धि विज्ञान ॥२४७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— और हे सन्तो! प्रथमके गुरुवा लोग ब्रह्मा, विष्णु, महेश, और सनकादिसे लेके अठासी हजार ऋषि, मुनि, तपस्वी, उन्हींके शिष्य वर्ग और उनके मतवादी अनुयायी जो-जो हो गये हैं, उन सबोंका वही, सन्धिक = मिथ्या मन-मानन्दीका मिलाप, जगत्‌को ब्रह्म माननेका ज्ञान दृढ़ हो रहा है। अभी उनके पक्षपाती सम्प्रदायी लोगोंको भी वही सन्धिक-ज्ञान-ब्रह्मज्ञानका निश्चय हो रहा है। द्रष्टाको पृथक् करके उन्होंने पारखदृष्टि नहीं किये, और करते भी नहीं हैं। इसीसे महाभ्रम, भूलमें पड़े हैं। अतएव सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— मानन्दीमें पड़े हुए सब लोग तो बद्ध, तुच्छ हैं। परन्तु जो विवेकी पारखी सन्त सत्य निर्णयसे परीक्षा करके लखते हैं, वे, विज्ञान = चराचरमें व्यापक एक आत्मा ठहराया हुआ आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञानको विशेष ज्ञान मानके उसे ही, सन्धिक = मन-मानन्दीसे गुरुवा लोगोंने जो अपना स्वरूप निश्चय किये हैं— सो मिथ्या धोखा है, भूल है, सरासर भ्रम मात्र है, ऐसा लखते हैं, उसे जान-पहिचानके उसके मानन्दी त्यागते हैं। सोई परीक्षक, पारखी सबके शिरमौर होते हैं, या

वे ही सन्त शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ हैं। वे ही निज पारखस्वरूपमें स्थिति करके जीवन्मुक्त होते हैं। ऐसे ही पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग-विचार करके, सन्धि विज्ञानको लखके न्यारा हो रहना चाहिये, पारखमें ठहरना चाहिये ॥ २४७ ॥

साखीः—राम नामकी औषधी । सन्धिक विष दियो सान ॥
वह रोगिया भवपान करि । रोगिया वैद्य समान ॥२४८॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे मनुष्यो ! भ्रमिक पारख-हीन गुरुवा लोगोंने अबोध, अज्ञानी, आवागमनादि कठिन रोगोंमें पड़े हुए नरजीवोंको भुलाकर राम-नामको बड़ी औषधि अमूल्य बूटी बता करके उसमें मिथ्या मानन्दी कल्पनाके विष-तीक्ष्ण जहर ही सान दिये या मिला दिये हैं। अर्थात् राम=सगुण परमात्मा, नाम=निर्गुण परमात्मा कोई एक अलग ही कर्ता पुरुष बताके चैतन्य स्वरूपकी बोध-मिटाके यही, औषधि=उपदेश दिये कि—जड़-चैतन्यमें एक ही आत्माराम परिपूर्ण भरा है, तुम और हम सोई एक अद्वैत आत्मा वा ब्रह्म ही हैं, ऐसा विश्वास करके मान लो, इत्यादि समझाये। उसमें, सन्धिक=एकता, जोड़, मिलाप, चराचरमें एक आतमा ऐसी मानन्दी सोई, विष=वाणीका विषय मनकी कल्पनारूप हलाहल जहर एकमेक, गोलमाल करके सान दिये वा धोखेमें जीवको मिला दिये। फिर, रोगिया=जन्म-मरणादि रोगोंसे दुःखी जीवोंने वही मिथ्या उपदेशको ग्रहण करके कल्पित वाणीरूप भवसागरमें पूर्ण एक ब्रह्म सर्वात्मा, सर्वाधिष्ठान 'अहं ब्रह्मास्मि', इसी भ्रमको पी करके अरट्ठ, लट्ठ, बेहोश, शून्य हो गये। रोगीको जहर मिलायके लेटा कर वैद्य बने हुए गुरुवा लोगोंने भी भर पेट वाणी कल्पना वाली जहरका शर्बत, खूब पीये, तो वे भी आतमा व्यापक बनके मूर्च्छित हो गये। इस तरह वैद्य और रोगी एक समान अचेत हो गये। यानी गुरु,

शिष्य दोनोंने शून्य नभके समान आत्मा वा ब्रह्मको अपना रूप मानके जड़ाध्यासी गाफिल हुए, तो पतित हो चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ गये, बिना पारख ॥ २४८ ॥

साखीः—ब्रह्मा गुरु सुर असुरके । सन्धिक विष नहिं जान ॥
मारे सकल औंधायके । सन्धिक विष करि पान ॥२४९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! पूर्व समयमें ब्रह्मा नामक पण्डित, वेद वक्ता हुआ था; वह, सुर=देवगण वा सत्त्वगुणी मनुष्योंके और, असुर=दानवगण या दैत्य, राक्षसोंके वा तमोगुणी मनुष्योंके, गुरु=उपदेशदाता, विद्या पढ़ानेवाला, शिक्षकके रूपमें उन दोनोंके ब्रह्मा ही गुरु बना था। परन्तु उसने भी, सन्धिक विष=मन मानन्दीकृत ब्रह्म, ईश्वर, एक आत्माकी कल्पनाको असत्य नहीं जाना। इसीसे कर्ता पुरुष परमात्मा कोई एक मान-मानके धोखामें पकड़े भूला रहा। जब गुरु ही भूला था, तब शिष्यगण तो सहज ही महान् भूलमें पड़े थे। ब्रह्म आदि जो माना, सो नरजीवोंकी ही मिथ्या कल्पना है, सो नहीं जाने। और सकल त्रिगुणी मनुष्योंको, औंधायके=उल्टी बोध दृढ़ाय नीचे गिरायके, चैतन्य हंसस्वरूपका ज्ञान खोयके नष्ट-भ्रष्ट, पतित, कर-करायके धोखा दे-देके, मारे=जड़ाध्यासी भ्रमिक बनाये हैं। ज्ञान-साक्षीको ढाँकके विज्ञानसे महा अज्ञान हो, मुक्तिपदको मारे—विनाश किये, और अभी उनके अनुयायी जो योगी, ज्ञानी, भक्त आदि हैं, वे सब भी वही, सन्धिक=मिथ्या मानन्दी करके वाणीका कालकूट विष=कल्पनाकी नाना सिद्धान्तवाली वाणीको ही पान कर-करके अचेत, भ्रमिक, जड़ाध्यासी हो मर-मरके चौरासी योनियोंमें ही चले जा रहे हैं। बिना पारख खानी-वाणीके विषरूप विषयको ही पीके वा ग्रहण करके नष्ट-भ्रष्ट हो, त्रयताप, आदिके असह्य दुःख भोगे और भोग रहे हैं ॥ २४९ ॥

साखीः—उसवासे जग ऊबरे । विश्वासे मरि जाय ॥
उसवासे विश्वासको । मारा ढोल बजाय ॥ २५० ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! जो पुरुष, पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके, उसवासे = ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा आदि कल्पनाको परख करके उसके तरफसे मिथ्या वासना, चिन्तन, मानन्दीको छोड़कर अविश्वास कर लेते हैं, अर्थात् ईश्वर कर्ता आदिका कुछ भी विश्वास नहीं करते हैं और हंसगुण रहनी रहस्यको ही धारण करके स्थिर, शान्त हो जाते हैं। वे अवश्य ही जगत्के खानी-वाणी जालोंसे छूट करके उबर गये वा ऊबरेंगे, पार, निर्बन्ध, मुक्त होवेंगे। और जो-जो मनुष्य लोग बिना विचारे गुरुवा लोगोंसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिकी वाणी सुन-सुनके जगत्-कर्ता ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, आदि मान-मानकर अन्धविश्वास दृढ़ करते हैं, वे सब जड़ाध्यासी, भ्रमिक, बद्ध, होकर मर-मरके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ जायेंगे। और संसारमें गुरुवा लोग, ढोल बजाय = कल्पित वेद आदि वाणीका उपदेश मुखरूपी ढोलके पोलसे बजाय-बजायके, यानी शिक्षा कथन कह करके दृढ़ाय-दृढ़ायके सब प्रकारसे ईश्वर, ब्रह्म आदिकी भरोसासे मुक्ति सुख आदिका विश्वास दिलाय-दिलायके सत्यानाश कर रहे हैं। कोई एक कर्ता पुरुष निश्चय कराय, वाणीकी ढोल बजाय कल्पनाका ढेला मार-मारके विनाश किये और कर रहे हैं। उसे, उसवासे = अविश्वास करनेवाले विवेकी सन्त अन्धविश्वासको खण्डन करके निर्णय उपदेशका ढिंढोरा पीट-पीटके भ्रम, भूलको ज्ञानसे मार-मारके हटा रहे हैं, निज-पर हित ही कर रहे हैं ॥ २५० ॥

साखीः— बोलै वाणी होत है । मौन रहे ते श्वास ॥
कहहिं कबीर मुख नाशिका । शब्द करैं परकाश ॥२५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जब मनुष्य

मौन = चुपचाप रहते हैं, तब अकेला ही प्राणरूप श्वास वायु चलती रहती है। उसे गुरुवा लोग निःअक्षर ब्रह्म, प्राणरूप, परमेश्वर, कहते हैं। फिर जब शब्द उच्चारण करके बोलते हैं, तब ५२ अक्षर प्रगट होके वाणी पैदा होती है। उसको ॐकाररूप प्रणव ब्रह्म वा शब्द ब्रह्म कल्पना करते हैं। अतः सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— देखिये! इस प्रकारसे मुखसे उच्चारित वर्ण-अक्षररूप शब्द तथा नासिकासे आने-जानेवाली श्वास-वायु, नादरूप शब्द दोनों भी वायुका विषय जड़ ही हैं। किन्तु, बेपारखी गुरुवा लोग वही समान-विशेष शब्द द्वारा कर्ता एक कोई ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, आदिको मन कल्पनासे जगत्में प्रकाश किये और कर रहे हैं। सो सब शब्द विषयका ही प्रकाश है। अथवा जब बोलते हैं, तो नाना प्रकारके वाणी प्रगट होते हैं। सो वाणी कहने-सुननेमें ही मन लगाये रहते हैं, और जब थकके मौन रहते हैं, तब श्वासमें लक्ष वा सुरति लगाये रहते हैं। पारखी सद्गुरु कहते हैं— उस तरह मुख और नासिकासे परा, पश्यन्ती, मध्यमा, और वैखरीरूप चार वाचाके शब्दसे कथन करके ब्रह्म, ईश्वरादिके जो प्रकाश करते हैं, सो सिर्फ जड़ शब्द विषयके सिवाय और कोई सत्य वस्तु नहीं है, अतः परख करके भ्रमको त्यागना चाहिये ॥ २५१ ॥

साखीः— सन्धिकते सब ईशता। सन्धिक अर्थ परमान ॥
कहैं कबीर निःसन्धि जो। सो भी सन्धिक जान ॥२५२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! संसारमें जितने भी सिद्धान्त प्रगट किये हैं, सो सारा मन-मानन्दीकृत ही हैं। इसीसे, सन्धिकते = वाणी कल्पनाके मानन्दीसे ही सब कोईने ईश्वरकी विशेषता वर्णन किये हैं। षट्गुण सहित ईशता भी मानन्दीसे ही सिद्ध होता है। और ज्ञानियोंके ज्ञानकी विशेषता, महत्त्व, या महिमा भी मानन्दीसे ही ठहराते हैं। फिर शब्दके अर्थ लगाकर

वेद प्रमाणसे एक परमतत्त्व परमात्मा जो ठहराये, सो भी, सन्धिक = मिथ्या मनकी मानन्दीमात्र ही है। और जो जिसको, कहैं कबीर = गुरुवा लोग कहते हैं कि— ब्रह्म. आत्मा, परमात्मा, निःसन्धि है, असन्धि परिपूर्ण सर्वत्र भरा है, मन, बुद्धि, वाणीसे परे, मन-मानन्दीसे परे है। असीम, निराकार, निर्गुण है, इत्यादि जो महिमा किये हैं, सो वह भी खास मनका ही मानन्दीमात्र ही है, ऐसा जानिये! मानन्दी किये बिना तो ऐसा असम्भव कथन निकल ही नहीं सकता है। वैसे वह कहीं कोई सत्य वस्तु विवेकसे ठहरता ही नहीं। अतः जीवको छोड़ करके और जो-जो भी सिद्धान्त स्थापन किये हैं, सो सब मनके मिथ्या कल्पनाके मानन्दीमात्र हैं। ऐसा जानकर परखके उसे त्याग देना चाहिये ॥ २५२ ॥

साखीः— नाहीं जगतका बीज है। जीवत सङ्ग रहाय ॥
करै भरोसा नारिका। मुये सङ्गहि जाय ॥२५३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! ये भ्रमिक ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं कि— द्वैत करके जगत् कहीं नहीं है, ख पुष्प, शश शृङ्गवत् जगत् नास्ति है। मन, बुद्धि, वाणी नहीं, तू नहीं, मैं नहीं, जगत् नहीं, माया नहीं, जो कुछ है, सो एक ब्रह्म अधिष्ठान ही सत्य है। "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति" इत्यादि बताते हैं। और सुन्दर विलासमें कहा हैः— "नाहिं नाहिं करै सोइ तेरो रूप है।।" तहाँ नाहीं = एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं, ऐसा गुरुवा लोग जो कहते हैं, सोई सारा जगत् चारखानी चौरासी योनियोंका मुख्य कारण और आवागमनमें जीवको डोलानेका बीज है। जीतेतक ब्रह्म मानन्दी करके जड़ाध्यासी होते हैं, फिर शरीर छूटके मरनेपर वह खानी, वाणीके अध्यास वासना सूक्ष्म देहके साथ ही जीवके सङ्ग चला जाता है। वही संस्कारके अनुसार पशु, पक्षी, उष्मजादि योनियोंमें जीवको लेजाके डाल देता है। जो कोई मनुष्य उस, नारी = कल्पित वाणीका विश्वास करके

ईश्वरादिकी आशा, भरोसा करते रहते हैं, वे बड़े धोखामें पड़ जाते हैं। जीतेतक भी अध्यास जीवके साथ ही लगी रहती है। और देह छूटनेपर भी साथ ही चली जाती है, ऐसी वह बड़ी बलाय हो जाती है ॥ अथवा खानीमें अर्थः— स्त्री सुखरूप नहीं है, वह तो महादुःखरूप ही है। फिर जगत्में शरीर धरानेकी बीज है, जन्म, मरण, गर्भवास, होते रहनेका भूमिका है। जीतेतक स्त्री और उसके वासना-अध्यास पुरुषोंके सङ्ग-साथमें ही चिपके रहती है। जो मूर्ख पुरुष उस अविश्वासिनी स्त्रीका विश्वास करके विषया-नन्दादिके लिये आशा, भरोसा करते हैं, वे अवश्य धोखामें पड़ जाते हैं। फिर मर जानेपर अध्यासवश उसी स्त्रीके सङ्गमें उसके गुप्त अङ्ग गर्भवासमें वे जीव चले जाते हैं, और नाना कष्ट भोगा करते हैं। अतः परखकर खानी, वाणीकी अध्यासोंको त्यागना चाहिये। ब्रह्मानन्द, और विषयानन्द दोनों ही जीवोंको बन्धन हैं, ऐसा जानिये ! ॥२५३॥

साखीः— सबकी उतपति जीवसों। जीव सबनकी आदि ॥
निर्जिवते कछु होत नहीं। जीव हैं पुरुष अनादि ॥२५४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! वास्तवमें यथार्थ बात तो यह है कि— अनन्त, देहधारी चैतन्य जीव तथा जड़ पञ्चतत्त्वका यह संसार स्वतः सिद्ध अनादि है। तहाँ जड़तत्त्वोंकी शक्ति सम्बन्धसे जड़ कार्योंकी सृष्टि होती है। और चारों खानीकी देह, कर्मोंकी सृष्टि जीवोंसे होती हैं। फिर लोकमें वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल, इत्यादि समस्त वाणी-जाल, मत, पन्थ, नाना सिद्धान्त, षट्दर्शन—९६ पाखण्डोंका पसारा और माना हुआ ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, परमेश्वर, तैंतीस कोटि देवता, भूत, प्रेतादि खुदा, ऋद्धि, सिद्धि, करामात, मन्त्र सामर्थ्य, इत्यादि तथा विषय विस्तार पाप, पुण्य, विद्या, बुद्धि, कला, कौशल, जात, पात, कुल, गोत्र, नाता, मान, मर्यादा, न्याय, अन्याय, कायदा, कानून, इत्यादि सबोंकी उत्पत्ति नरजीवोंसे ही हुआ है और हो रहा है। इसलिये

उन सबोंके आदि कर्ता, प्रधान, प्रथम सबसे श्रेष्ठ मनुष्य जीव ही हैं। अगर प्रथमसे ही नरजीव न होते, तो उतना सारा पसारा कैसे कहाँसे होता? सो कुछ भी न होता। और निर्जीव, जड़से तो कुछ कर्तव्य, ज्ञान, विज्ञान आदि प्रकाश तो कुछ होता ही नहीं, तैसे कल्पित, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि भी निर्जीव, निष्प्राण भ्रम धोखा ही मात्र हैं। अतः उससे तो कुछ भी पुरुषार्थकी प्रकाश, प्रचार, कार्य, उपदेश, इत्यादि नहीं होता है। इसलिये निश्चय करके नरदेहधारी चैतन्य जीव सर्वपुरुषार्थ संयुक्त, पुरुष है, यही पुराण पुरुष, अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य, स्वतः अनादि है। ऐसा जानकर सर्वविषयोंके आशा, वाशा, कल्पनादि त्यागकर पारख स्वरूपमें अटल होना चाहिये ॥ २५४ ॥

साखीः—जीव निरादरको वचन। सब आचार्य कहैं जाहि ॥
कहहिं कबीर अचरज बड़ा। शिव उपदेशत काहि ॥२५५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! वेदान्त शास्त्रके आचार्य व्यास, वशिष्ठादिसे लेकरके शङ्कराचार्य इत्यादिसे अभीतक सब वेदान्ती लोगोंने जीवको निरादर करनेका वचन कहे हैं, और कह रहे हैं। अर्थात् जीव तुच्छ है, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान्, प्रतिबिम्ब, अंश, आभास, अज्ञान, अविद्याग्रसित, पराशक्ति, दीन, हीन, मलीन, लाचार, वह कुछ न कर सकनेवाला है, इत्यादि कथन करके अनादर, अपमान, हीनता करके कल्पित ईश्वरादिके बड़ाई करते जाते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयक पारखी सन्त कहते हैं कि— देखिये! इनके कथनसे तो जीवो तुच्छ है, जो कुछ श्रेष्ठ है, सो परमेश्वर शिव ही हैं। परन्तु, उसीमें एक बड़ा भारी आश्चर्य होता है कि— कहो भला! उनके सर्वश्रेष्ठ माना हुआ, शिव = ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वरने आजतक कहाँ किसको कुछ उपदेश दिया है? कि, कुछ शिक्षा-दीक्षा देता है? कुछ नहीं। ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है, ऐसा जो कहते हो, तो फिर

कल्याणस्वरूप परमात्मा है, उसके भजन, स्मरण, ध्यान, धारणा, समाधि लगा करके तदाकार होना चाहिये, इत्यादि वे जीवोंके सिवाय और किसको वैसा उपदेश देते हैं ? एकमें अनेक विरोधी व्यवहार कैसे हो सकते हैं ? अतः शिव माना हुआ भी जीवका ही कल्पना है । हंस जीव ही नरजीवोंको उपदेश देते, लेते हैं, इसीसे जीव सत्य है, और मानन्दी मिथ्या है । ऐसा जानना चाहिये ॥ २५५ ॥

साखीः— जीव बिना नहीं आतमा । जीव बिना नहिं ब्रह्म ॥
जीव बिना शिवो नहीं । जीव बिना सब भर्म ॥२५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे मनुष्यो ! चैतन्य-जीवके हुए बिना सर्वत्र व्यापक माना हुआ आत्मा, कोई वस्तु नहीं ठहरता है । तथा जीव चैतन्यके प्रत्यक्ष मौजूद हुए बिना सबसे बड़ा परिपूर्ण माना हुआ निर्गुण ब्रह्म भी कोई चीज नहीं है, और हाजीर, हजूर, सत्य चैतन्य-जीवके बिना कोई कहीं, शिव = कल्याणकर्ता भी साबित नहीं होता है । इसलिये अनुमान, कल्पना करके नरजीव ही कहीं ब्रह्म होते हैं, "अहं ब्रह्मास्मि" कहते हैं, कहीं आत्मा बनके "अयमात्मा ब्रह्म" कहते हैं, और कहीं शिव होकर "शिवोऽहं" कहते हैं । यह सब कथन करने, कहने-सुननेवाले, गुरु-शिष्य होनेवाले सब मनुष्य जीव ही हैं । ब्रह्मादि त्रय देव, सनकादि मुनि वर्ग, सब देहधारी जीव ही थे । जीवरूप मनुष्य न होय, तो आत्मा, ब्रह्म, शिव, कौन कहै-सुनै, और कौन मानैगा ? अतएव जीवके बिना और जितने भी सिद्धान्त वाणी कल्पनासे स्थापन किये हैं, सो सब निर्जीव जड़ मानन्दी होनेसे मिथ्या भ्रम धोखामात्र है । और कुछ नहीं है । परखकर यथार्थ भेद जानना चाहिये ॥ २५६ ॥

साखीः— आतमा औ परमातमा । ईश ब्रह्मलों जोय ॥
जीव बिना मुरदा सकल । बूझै बिरला कोय ॥ २५७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे जिज्ञासुओ ! निज-

स्वरूप चैतन्य जीवकी पारख विचार छोड़कर गुरुवा लोगोंने अनुमान करके वाणीके प्रमाणसे जगत्‌के कारण वा अधिष्ठान कहींपर आत्मा "सूत्रमणिन्याय"; घट-घट व्यापक माने हैं, कहीं परमात्मा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें भरा हुआ पूर्ण ठहराये हैं। कहीं ईश्वरको सर्वशक्तिमान् कर्तापुरुष कहे हैं, और कहीं ब्रह्मको ही एक अद्वैत सबसे बड़ा माने हैं। सोई बात वेद, उपनिषद्, शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थोंमें विस्तारसे कल्पना बढ़ायके लिख दिये हैं। सब वाणी पढ़-पढ़के उसी बातको जोवते या देखते-दिखाते हैं, मानते-मनाते हैं। परन्तु आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म, परब्रह्म तक जो कुछ भी निश्चय करके ठहराये, और मान रहे हैं, सो उसमें तो जीव नहीं है। फिर चैतन्य जीवके हुए बिना वे सिद्धान्त सकल, मुरदा=जड़ देहका भास, अध्यास, मनकी अनुमान, कल्पनामात्र होनेसे असत्य भ्रम धोखा ही है। उसे मानके जीवोंकी कुछ भी भलाई वा कल्याण हो नहीं सकता है। बल्कि, भ्रमिक जड़ाध्यासी होनेसे बड़ा अहित होके भव बन्धनोंमें ही पड़ जाते हैं। इस भेदको कोई बिरले ही निष्पक्ष जिज्ञासुजन, पारखी, साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके समझेंगे, बूझेंगे और पारख बोधको धारण करके भ्रम-भूलको त्यागेंगे, वे ही मुक्तिको पायेंगे ॥ २५७ ॥

साखीः— ईश ब्रह्म परमातमा । पारब्रह्म जो कोय ॥
यह निर्जीवकी जीव है? पण्डित! कहिये सोय ॥२५८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! जिसको तुम लोग और तुम्हारे गुरुवा लोग षट्‌गुण ऐश्वर्य संयुक्त, ईश्वर, कर्ता, अधिपति, विश्वपति, ब्रह्म, परमात्मा, पारब्रह्म, और खुदा, अल्लाह, गॉड़, परम-प्रभु जो कुछ और भी कई नाम लेके जिसकी बड़ी-बड़ी महिमा करते हो, तथा तुम्हारे जो कोई भी इष्टदेव हों, बताओ! यह सब, निर्जीव=जड़ मिथ्यादेहके भास, मानन्दी हैं, कि=अथवा, जीव=सजीव, चैतन्य, प्रत्यक्ष कोई वस्तु हैं? कहाँ हैं? कैसे हैं?

हे पण्डित! बुद्धिमानो! सो इसीका निर्णय करके कहिये? ईश्वरादिको तुम लोग जीव मानते हो कि— निर्जीव? जीव कहोगे, तो फिर देहधारी एकदेशी ठहरनेसे सर्वदेशी माना हुआ व्यापकताका खण्डन हो जायगा, और यदि निर्जीव कहोगे, तो कर्तव्यहीन, ज्ञानहीन, जड़ वा मिथ्याभास ही साबित होगा। अतः वह मन-मानन्दी निर्जीव शून्य ही है। क्योंकि, जीव, निराकार, निर्गुण, व्यापक कभी नहीं हो सकते हैं। इससे वह ब्रह्म आदि मिथ्या धोखा ही है। परखके उस भ्रमको जो छोड़ते हैं, सोई विवेकी कहलाते हैं॥ २५८॥

साखीः— कबीर जाके वचनमें। जीव अनादर होय॥
नास्तिक ताको जानिये। गुप्तसे बड़ा सोय॥ २५९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! जिन मतवादी, पक्षपाती, सम्प्रदायी गुरुवा लोगोंके वचनमेंसे साक्षात् सत्य चैतन्य जीवका अनादर होता है, तुच्छ समझ करके जीवका अपमान किया जाता है, प्रतिबिम्ब, अंश, कार्य, बनने-बिगड़ने-वाला ऐसा जीवको मानते हैं, हीनता बताके निन्दा करते हैं, और जो वस्तु कुछ भी नहीं है, उसकी महिमा, बड़ाई, प्रशंसा, स्तुति करते नहीं थकते हैं। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिको सबसे बड़ा गुप्त=निराकार, निर्गुण, अवाच्य, मन, बुद्धि, वाणीसे परे कहने योग्य नहीं, ऐसा ब्रह्म, परमात्मा है, निःअक्षर इत्यादि वर्णन करते हैं। सोई तो गुप्तरूपसे छिपा हुआ बड़ा नास्तिक है। क्योंकि, 'न अस्ति नास्ति' जो जिसका अस्तित्त्व नहीं है, वस्तु ठहरे नहीं, शून्य आकाशवत् ब्रह्म आदिको मान-मानके भूले पड़े हैं, उसीको पक्का असली नास्तिक जान लीजिये, और सत्य चैतन्य जीवको जो मानते हैं, वे तो सच्चे आस्तिक हैं। चाहे कोई भी मतवादी हों, जीवको श्रेष्ठ न माननेवाले वे ही महानास्तिक मूढ़ हैं। अतः ऐसोंके कुसङ्गमें जिज्ञासुओंने कभी नहीं लगना चाहिये॥ २५९॥

साखीः— जीव अनादर जो कहै । नास्तिक ताको जान ॥
जीव दयासो मम दया । यह जो कहा भगवान ॥२६०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो ! जो कोई भी हो, सनातनी, वेदान्ती, वैरागी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, नाथ, कर्तावादी, इत्यादि सकल मतवादियोंमेंसे जो-जो भी जीवको अनादर = तुच्छ, अपमान, करके खोटी-खोटी बात कहते हैं, जीवको बिलकुल निकम्मा समझते हैं, कल्पित ईश्वरादिके ही प्रशंसा करते हैं। जीवको ईश्वरके अधीनमें पड़ा हुआ लाचार बताते हैं, और जीवहत्या, वलिदान, यज्ञमें पशुवध करके मनमाने हिंसा, हलाल, बैर-घात, ऐसे धर्मके नामसे महापाप करते हैं। उसे या वैसे लोगोंको ही महानास्तिक, क्रूर कसाई और हिंसक नरपशु ही जानिये। हे सनातनी लोगो ! सुनो ! तुम्हारे ही भगवान् = कृष्णने कहा हुआ वचन गीता, भागवत, आदिमें लिखा है कि— "जीवोंपर किया हुआ दया, सो मुझपर ही किया हुआ दयाके समान है।" यह जो भगवान्ने कहा है, सो क्या तुम लोग उसे भूल गये ? जिससे अन्धाधुन्द, जीवोंको पीड़ा दे-देके मार रहे हो ? खबरदार ! वह सब बदलामें तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। इस बारेमें सद्गुरुने जो कहा है— सो सुनो !ः—

साखीः—"जीव बिना जीव बाँचे नहीं। जीवका जीव अधार ॥
जीव दया करि पालिये। पण्डित ! करो विचार ॥
जीव मति मारो बापुरा ! सबका एकै प्राण ॥
हत्या कबहुँ न छूटि हैं। जो कोटिन सुनो पुराण ॥
जीव घात ना कीजिये। बहुरि लेत वै कान ॥
तीरथ गये न बाँचि हो। जो कोटि हीरा देहु दान ॥"
॥ इत्यादि बीजक,। साखी १८२। २१२। २१३ ॥

सब जीव मात्र स्वजातीय हैं, अतः निज-पर जीवपर दया, रक्षा, बन्धनसे छुटकारा करना चाहिये। पारखबोध होनेसे ही अपने

जीवपर पूर्ण दया होती है। सद्गुरुने जो निर्णय वचन कहे हैं उसे ही सर्वाङ्ग अक्षरशः पालन करना चाहिये ॥ २६० ॥

साखीः— कबीर देह जीव बिनु। तुरतहिं होत दुर्गन्ध ॥
तत्त्वनमें तद्रूप हो। नाश होय मति अन्ध ॥२६१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! देह जड़तत्त्वोंका कार्य है, और जीव चैतन्य होनेसे देहसे सदा न्यारा है। कर्म सम्बन्धसे जबतक जीव देहमें रहता है, तबतक जीवकी सत्ता पायके देह सुन्दर, प्रकाशवान, अच्छा मालूम पड़ता है, और जीवके रहे बिना देह निकम्मा हो जाता है। जीवके निकल जानेपर तो शरीर तुरन्त ही मुर्दा, लाश होके अकड़ जाता है। शीघ्र ही दुर्गन्ध आने लग जाता है, भयङ्कर विरूप हो जाता है। अगर मुर्दा वैसे ही पड़ा रहा, तो सड़-गलके बड़ी बदबू फैल जाती है। गाड़ दिया, जला दिया, नदियोंमें डाल दिया, जङ्गलोंमें फेंक दिया, तो भी हर प्रकारसे देहके अङ्ग-प्रत्यङ्ग नाश होकर कार्य शरीरका सब भाग कारणरूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारतत्त्वोंमें ही मिल जाते हैं, सोई तत्त्वोंमें तद्रूप होना है। नाशवान ऐसे विकारी शरीरको ही जो जीव वा अपना स्वरूप मानते हैं, सो तत्त्ववादी, देहवादी, वीर्यवादी, शून्यवादी, वाममार्गी आदि मति-बुद्धिसे भ्रष्ट, अन्धे, विवेक-दृष्टीसे हीन, पामर, विषयी, जड़ासक्त लोग ही हैं, और जो कोई योगी, ध्यानी आदि शरीरमें तत्त्व, प्रकृति, इन्द्रिय, विषयोंको शून्य समाधिमें लयकरके तत्त्वोंमें तद्रूपताको प्राप्त होते हैं। पञ्चतत्त्वोंके प्रकाश-भासको ही निजस्वरूप मानते हैं, सो सब दृश्य तो देहके साथ ही नाश हो जाते हैं। उसी आनन्द, ज्योति आदिको ब्रह्म, परमात्मा वा निजरूप माननेवाले मतिअन्ध पारख-हीन भ्रमिक जड़ाध्यासी बने हैं। वे सब विनाशको प्राप्त होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें भटक रहे हैं। बिना पारख ॥ २६१ ॥

साखीः— कबीर सूनी सेजपर । सुन्दरि सूती जाय ॥
आश लगाये पीवकी । कुहकत रैन गमाय ॥ २६२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! जैसे कोई सुन्दरी स्त्री, शून्य स्थानमें शूनशान शैय्यापर जायके सो गयी, पतिसे मिलके विषयानन्द प्राप्त करनेकी आशामें जागकर रास्ता देखती रही, प्रतीक्षा करते-करते भी मनमें चिन्तन किया हुआ पति नहीं आया, तो रोते-कलपते पीड़ित हो, सारा रात व्यर्थ गमायी, अन्तमें निराश होके मुर्छित हो गयी, लाभ कुछ भी न हुआ। तैसे ही सिद्धान्त-में—कबीर = कायावीर कबीर मनुष्य जीव हैं । सो सुन्दरी = सुन्दर, अच्छा शोभायमान, कर्म भूमिकारूप नरदेहको धारण किया है, उसमें ज्ञानी, योगी, भक्त, कर्मिष्ठ इत्यादि मतवादके शृङ्गार करके सब जीव सुन्दर भावुक बने हैं । वे सब नाना प्रकारकी साधना करके योग, ध्यानादि द्वारा वृत्ति एकाग्रकर समाधि लगाये, शून्य शैय्यारूप ब्रह्माण्ड, भ्रमर गुफा, आदि पर जाके, उन्मुनकर शून्य, अभाव, गरगाफ होकर धोखेमें सो गये, अचेत हो गये । होश आने पर, पीव = परमतत्त्व-परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित पतिकी दर्शन, एकता, ब्रह्मानन्द, साक्षात्कारकी, प्राप्तिकी, आशा, भरोसा लगायके सारा आयु व्यर्थ ही धोखामें बिताय दिये । ध्यान, धारणा, नाम स्मरण, अनुष्ठान, समाधि आदि करने-करानेमें अत्यन्त कष्ट-क्लेश भोगकर, कुहकत = रोते-कराहते, विलाप करते, हे भगवान् ! दर्शन दो ! इत्यादि चिल्लाते, पुकारते, रैन = महाअज्ञानरूप रात्रिमें ही सारा जीवन गँवा दिये, और ऐसे ही मनुष्य जन्मको गँवाकर खाली हाथ जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंमें चले गये, और जा रहे हैं । अतः परख करके उस भूलमें नहीं पड़ना चाहिये ॥ २६२ ॥

साखीः— मृग तृष्णाको नीर लखि । ब्रह्मादिक सनकादि ॥
डुबकी मारें रतन हित । किये विविधि मतवादि ॥२६३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे मरुभूमिके

बालूमें सूर्य-किरण चमकनेसे प्यासे मृगको पानी बहती हुई नदीकी भ्रान्ति भयी, तहाँ जल पीनेकी तृष्णासे दौड़-दौड़के मृग धोखेमें मर गया। वैसे ही, मृग=मनने आशा, तृष्णा करके कल्पनासे बनाया हुआ, नीर=जलवत् वेद-वेदान्तकी नाना वाणियोंको, लखि= देख-सुन करके ब्रह्मादि त्रिवेद गुरुवा लोग, और सनकादि=उनके ही पिट्ठू शिष्य, ऋषि, मुनि, और लोग, तमाम सिद्ध-साधक लोग, उसी झूठी भ्रमकी नदीके पानीरूप मन कल्पित वाणीकी भावनामें तल्लीन होके, रतन हित=ब्रह्मज्ञानरूप रत्न प्राप्तिके लिये, उसीसे अपना हित-कल्याण समझके डुबकी लगाये, योग, ध्यान, ज्ञानादि साधना करके तन, मनको भी खूब मारे, कष्ट-क्लेश सहन किये। किन्तु, प्राप्ति तो कुछ नहीं हुयी, तो भी बड़े समझदार भ्रमिक बनके, विविधि= नाना प्रकारके अनेकों, मतवादि=षट्दर्शन— ९६ पाखण्डके मत, पन्थ, ग्रन्थादिके वाद-विवाद अद्वैत, द्वैत, विसिष्ठाद्वैत, इत्यादिके पक्षपात बकवाद ही खूब विस्तार किये। दुनियाँमें झगड़ा लगा दिये, सार सफलता तो, कुछ नहीं मिली, नदी पानी ही जब झूठी है, तो सच्चा रत्न वहाँ कहाँसे मिलेगा? नाहक धोखेमें जन्म गमाकर आवागमनके चक्रमें पड़े, बिना पारख ॥ २६३ ॥

साखीः— ब्रह्मादिक सनकादि जग । मृग तृष्णा लखि नीर ॥
तीरथ चले नहावने । जगयात्रा भइ भीर ॥२६४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! अनादि कालके संसारमें, प्राचीन समयमें प्रसिद्ध हुए ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, आदि गुरुवा लोग और उन्हींके शिष्य वर्ग, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, व्यास इत्यादि बहुतेरे वेदवादी लोगोंने जगत्को, मृगतृष्णाके झूठी जलवत् ही बताके और झूठ-मूठ ही एक ब्रह्म, व्यापक देखने लगे, या देखते भये। ब्रह्मादिके पूर्वजोंने जो वेद आदिकी वाणी कल्पना कर-करके बना गये थे, उसी, नीर=वाणीको मृगवत् तृषा वा तृष्णातुर होके लखे या देखते, पढ़ते, सुनते, गुनते, निश्चय

करते भये । एक कर्तापुरुष, ब्रह्म, परमात्माको ठहराते भये । फिर पापमोचन करने, बन्धनसे छूटके मुक्त होने, चार फल आदिक प्राप्ति करनेकी आशा, तृष्णा लेकरके प्रथम वे ही ब्रह्मादि, सनकादि, मृगतृष्णावाली नदीके तीर्थ, नहानेके लिये चले गये। वहाँ अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दो भागमें बहुतेरे तीर्थ स्थापन किये । मोक्ष फलकी आशासे ज्ञानतीर्थ नहानेको ब्रह्मादि ज्ञानी लोग गये, अर्थफलकी चाहनासे योगतीर्थ नहानेको महेश, आदि योगी लोग गये, और धर्मफलकी इच्छासे भक्तितीर्थ नहानेको विष्णु, आदि भक्तलोग चले गये। इधर काम विषयादि फलकी लालसासे बहिरङ्गतीर्थ गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, इत्यादि ६८ तीर्थ नहानेको उनके देखा-देखी सारे संसारी कर्मी लोग चल पड़े । इसीसे जगत्में जहाँ-तहाँ उन्हींके अनुयायी तीर्थयात्रियोंके झुण्ड-का-झुण्ड, जमात, भीड़-भाड़ लग गयी, बड़ी उपाधि मच गयी। फल तो कुछ किसीके हाथमें नहीं आया, सब साधनाएँ, निष्फल, व्यर्थ हो गयी। क्योंकि, माना हुआ तीर्थ ही झूठा भ्रम है, इधर, पानी कि, पत्थर है; उधर, वाणी कि, कल्पना है। तो क्या उससे पाप कटेगा ? कुछ नहीं, एक भी पाप नहीं कटा, और दश मन पापका बोझा शिरमें लादके डूब मरे । तहाँ सद्गुरुने बीजक साखीमें कहे हैं:—

साखीः-"तीरथ गये तीन जना । चित चञ्चल मन चोर ॥
४ एकौ पाप न काटिया । लादिनि मन दश और ॥२१४॥
४ तीरथ गये ते बहि मुये । जूड़े पानि नहाय ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! राक्षस होय पछिताय ॥२१५॥
४ तीरथ भई विष बेलरी । रही युगन-युग छाय ॥
कबीरन मूल निकन्दिया । कौन हलाहल खाय ? ॥२१६॥

सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने इसकी टीका त्रीजामें खुलासा लिखे हैं ॥ इस प्रकारसे नाना तीर्थ स्नान करनेको चले, तो जगत्में बड़ी यात्राकी

भीड़ भयी, बहुतेरे उसीमें कुचल-कुचलाके मर गये। जड़ाध्यासी बने, चौरासी योनियोंको प्राप्त भये, बिना विवेक ॥ २६४ ॥

साखीः—— जेहि जल माँहि बड़े बड़े । गज ऊँट बहे सब जाहि ॥
कहहिं कबीर गदहा तहाँ । कहै केता जल आहि ॥२६५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! जिस महासागरके गम्भीर जलमें हाथी, ऊँट, नील गाय, गैंड़ा इत्यादि बड़े-बड़े लम्बे जानवर बहि-बहिके डूब करके मर जाते हैं। ऐसे जगहमें एक मूर्ख गदहा ऐसा कहै कि— अरे! इसमें कितना जल है? थोड़ा-सा ही तो है, मैं तो एक छलाङ्ग मारके वा तैरके पार उतर जाऊँगा, इत्यादि गप्प करै, तो कितनी नादानीकी बात है। ऐसे महामूढ़की बात तो बिलकुल झूठी होती है। तैसे ही सिद्धान्तमें जिस जल माँहि = वाणी कल्पनाकी प्रचण्ड धारामें बड़े-बड़े ब्रह्मादि, सनकादि सरीखे ऋषि, मुनि, महर्षिगण भी सब भ्रमिक होके धोखेमें बहि गये। तथा, गज = उन्मत्त हाथीवत् ज्ञानीलोग, ऊँट = ध्यानी, योगी लोग, नीलगाय, गैंड़ा आदिवत् उपासक, भक्त लोग, इत्यादि बड़ी-बड़ी भक्ति, ज्ञान, योगकी साधनाएँ करनेवाले भी मनकी मानन्दी धारामें सब बहि गये। ब्रह्म अधिष्ठान बनके चौरासी योनियोंके चक्रमें डूब मरे, जड़ाध्यासी बद्ध हो गये, और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैंः— देखिये! बिना पारख त्याग, वैराग्य करनेवालोंकी भी जब मुक्ति नहीं भयी, तो विषयासक्त संसारी लोगोंकी मुक्ति होना तो असम्भव ही है। परन्तु तहाँ मूर्ख पशु गदहेवत् कर्ममार्गी, विषयासक्त, कामी, क्रोधी, लम्पट, लबार, बाममार्गी इत्यादि नरपशु लोग कहते हैं कि— अरे! वाणीका बन्धन कितना है? बोलो नहीं, बस खतम। वाणीसे कुछ भी बन्धन नहीं होता है, कहो, क्या कैसे बन्धन होगा? वर्णाश्रम कर्म करो, तो सबोंकी मुक्ति ही होगी। संसारके विषय-भोग करके मुक्ति हो जायगी, फिर त्याग,

वैराग्य करनेका क्या काम ? इत्यादि कथन करनेवाले महामूढ़, पामर, विषयी लोग ही होते हैं। वे सरासर चौरासी योनियोंमें ही गिरे पड़े रहते हैं। अथवा जिस कामजल, मनकी वासना, आसक्तिमें बड़े-बड़े सिद्ध, साधक लोग भी च्युत होके बहि गये, तो वे आवागमनमें पड़े। सद्गुरु कहते हैं— ऐसे कठिन विषयको तहाँ नित्य भगभोगी विषयी पुरुष ऐसा कहे कि— ये कामजल कितना है ? थोड़ा ही तो है, फिर इससे बन्धन ही कितना होगा ? मनुष्य-से-मनुष्य ही होवेंगे, हम पशुखानीमें नहीं जायेंगे। इत्यादि कहनेवाले सरासर महामूर्ख हैं। उनके तो कभी निस्तार नहीं हो सकता है। बिना विवेक ।। २६५ ।।

साखीः — ब्रह्म जगत दोउ भास होय । यही चतुष्टके बीच ।।
अन्तःकरण मलीन होय । बिना रङ्गका कीच ।।२६६।।

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ ! निर्गुण ब्रह्म वाणी कल्पनाका विषय, तथा सगुण जगत् खानी भागका पञ्च-विषयोंका विस्तार यह दोनों ही यही चित्त-चतुष्टयके बीचमें भास, अध्यास करके पतित होता है। और, रङ्ग = चैतन्यस्वरूपका ज्ञान रङ्गका प्रकाश, स्वरूप स्थिति हुए बिना खानी-वाणीके कीचड़, जिसका रङ्ग विशेष सार तो कुछ भी देखनेमें नहीं आता है, परन्तु उसी अविद्या, अज्ञान, भ्रम, भूल, आसक्ति, माया-मोह, विषय वासना, कल्पना, इत्यादि जड़ाध्याससे जीवोंका अन्तःकरण अत्यन्त ही मलीन हो रहा है। पहिले चित्तसे चिन्तन होता है, उसे मनसे सङ्कल्प-विकल्प करता है, बुद्धि उसीको निश्चय करती है, फिर हङ्कार-करतूत करके नानाकर्ममें प्रवृत्त होता है। इस तरहसे वाणी सम्बन्धी ब्रह्मज्ञानका और खानी सम्बन्धी जगत् विषयोंका भास दोनों प्रकारसे यही चतुष्टयके बीचमेंसे हृदयमें प्रकाश होता है। स्वरूप ज्ञानका पारख-बोध न होनेसे उसी मोटी, झीनी मायासे अन्तःकरण मलीन होता है। बिना रङ्गका कीच = निर्गुण, निराकार, ब्रह्म बनके अध्यास-

ग्रसित बद्ध होते हैं। अतः उसे परखके हटाना चाहिये। ब्रह्म, जगत्‌की अध्यास मिटाना चाहिये ॥ २६६ ॥

साखीः— बुद्धि परे सो आतमा। कहत सयाने लोय ॥
निश्चय दोउ पर अपरकी। बुद्धि बिना नहिं होय ॥२६७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो !, सयाने = बड़े-बूढ़े तत्त्ववेत्ता ज्ञानी कहलानेवाले सो वे लोग बुद्धिसे अत्यन्त परे आत्मा है, ऐसा कहते हैं। तहाँ कहा हैः—

श्लोकः—"इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ॥ (भगवद् गीता
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥"अध्याय ३।४२)॥

कृष्णने कहा है कि— इस शरीरसे तो इन्द्रियोंको परे (श्रेष्ठ बलवान् और सूक्ष्म) कहते हैं और इन्द्रियोंसे परे मन है और मनसे परे बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है ॥ यहाँ कृष्णको सब लोग श्रेष्ठ ज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता करके मानते हैं। सो उन्होंने और दूसरे सयाने लोगोंने भी सो इस प्रकारसे आत्माको बुद्धि आदिसे परे ही कहा है वा माना है। परन्तु, पर = ब्रह्म, अपर = जगत्‌की, आत्मा, अनात्माकी, वर्ग, अपवर्गकी, स्वर्ग, नर्ककी, ब्रह्म, जगत्‌की, परा, अपराकी इत्यादि दोनों तरफका निश्चय, दृढ़ विश्वास, या प्रतीति मान्यता, बुद्धिके बिना तो कुछ भी हो ही नहीं सकती है। बिना बुद्धिके यह उन्होंने कैसे जाना और माना कि, आत्मा है और वह परे है। जब वे ऐसा निश्चय करके कहते हैं, तो वह बुद्धिका ही विषय है। नहीं तो निर्बुद्धि लोगोंकी मूर्खताका ही वह कथन है। खाली कल्पनामात्र है। बिना बुद्धिके यहाँ कुछ कहा, सुना नहीं जा सकता है ॥ २६७ ॥

साखीः— मन बुद्धि वाणी श्रुति कहै। जहाँ न पहुँचै तीन ॥
फिरि ताको जानन चहैं। ऐसे परम प्रबीन ॥२६८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो !, श्रुति = वेद,

वेदान्तमें जो कहा है, सोई गुरुवा लोग कहते हैं कि— मन, बुद्धि, वाणी, ये तीनों भी जहाँ, जिस ठिकानेमें पहुँच नहीं सकते हैं, सोई आत्मा, परमात्मा वा परब्रह्म है। वह तीनों त्रिपुटीसे न्यारा अत्यन्त परे, परात्पर = परावाचासे भी अति परे जो है, सोई ब्रह्म, आत्मा है। ऐसा वर्णन करके प्रथम तो महिमा बढ़ाते-बढ़ाते हद्से बेहद्द कर दिये। फिर पीछेसे, फिरि = अपने कथनसे उलट-पलट करके, ताको = उसी आत्मा वा परमात्मा, ब्रह्मको, मनसे मनन करके, बुद्धिसे निश्चय करके और वाणीसे कथन वर्णनके शब्द कह-सुन करके जानना, समझना, बूझना चाहते हैं, उसके लिये श्रवण, मननादि साधना भी करते हैं, वैसे ही शिष्योंसे भी कराते हैं, अब देखिये! वे भ्रमिक, निर्बुद्धि गुरुवा लोग, ऐसे परमप्रवीण, परम चतुर समझदार वा महाधूर्त भये कि— जो बात पहिले खण्डन, निषेध किये थे, पीछेसे सोई बात स्वीकार करके विधि-विधानसे मण्डन करने लगे, और ऐसे कर ही रहे हैं। और तो यह कुछ नहीं सिर्फ स्वार्थ सिद्ध करनेकी उनकी चालबाजीमात्र है। उनके कथनमें कुछ भी सार नहीं है। मिथ्या धोखामें भूले, भुलाये पड़े हैं। बिना पारख वह भूल नहीं मिटती है ॥ २६८ ॥

साखीः— ब्रह्मादि सनकादिको । लागा ब्रह्म पिशाच ॥
नाम रूप मिथ्या कहैं । ब्रह्म कहैं भ्रम साँच ॥२६९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! अपरोक्ष पारखका बोध न होनेसे प्राचीनकालमें ब्रह्मादि गुरुवा लोग और सनकादि उनके ही चेले लोग जो प्रसिद्ध हुए, उन सबोंके हृदयमें तो एक बड़ा जबरदस्त, ब्रह्म पिशाच = वाणीका भूत लग गया था। तहाँ संसारी लोग कहते हैं कि— कोई ब्राह्मणकी दुर्घटनासे यदि मृत्यु हो गयी, तो वह ब्रह्म-राक्षस होके वृक्षोंमें रहता है। उसीको ब्रह्म-पिशाच भी मानते हैं। वह जिसको लगता है, उसका सत्यानाश ही कर डालता है, इत्यादि कल्पना किये हैं। परन्तु सिद्धान्त इसका ऐसा

घटता है कि— प्रथम जो कोईने ब्रह्मका मानन्दी किया, सो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण कल्पना, भ्रम धोखाके दुर्घटनासे गिरा, तो निज हंसपदके जीवनसे अधबीचमें ही मर गया— जड़ाध्यासी हो गया। उसके आत्मा, वाणी कल्पना, वेद वृक्षमें टँगी रहने लगी। पहले ब्रह्मादि, सनकादि, वेद-वृक्षके आश-पासमें टहलने गये थे, तो वह ब्रह्म पिशाच कल्पना झपटके उन्होंको आ लगी, शिरमें चढ़ बैठी, इसीसे उनके विवेक, विचारका सत्यानाश हुआ, तो वे बुद्धि-हीन पागलवत् ही हो गये। तब अक-बकाने झक-झकाने लगे, अण्ड-बण्ड बकवाद करने लग गये। उसीके सनकमें वे बोले कि— नाम-रूप, त्रिगुणात्मक, माया-जगत्, चराचर द्वैत मिथ्या है, और एक अद्वैत ब्रह्म ही सर्वव्यापक सत्य है। इस तरह भ्रमरूप कल्पित ब्रह्मको तो सत्य बताये, और सत्य जड़-चैतन्यरूप जगत्को मिथ्या कह दिये, वैसे ही निश्चय करके मान भी लिये। यदि ऐसा ही है, तो उनका कहा हुआ ब्रह्म यह नाम और व्यापक उसका रूप यह भी तो मिथ्या ही हुआ। फिर सत्य क्या रहा? भ्रमसे ब्रह्मको सत्य कहनेवाला तथा नाम-रूपको मिथ्या कथन करनेवाला चैतन्यजीव तो उससे न्यारा सत्य ही रहा। बिना पारख, धोखा-धारमें ही गोता लगाये वा लगा रहे हैं ॥ २६९ ॥

साखीः— वर्ण आश्रम गुण तीनिको । कहैं बतावै दोष ॥
 'अहं ब्रह्म अस्मि' कहैं । मूढ़ कहैं निज मोष ॥२७०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! अद्वैत ब्रह्मवादी वेदान्ती लोग, वर्ण = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि, चार वर्ण— ३६ जाति आदिको, आश्रम = ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास, ये चार आश्रमोंको, गुण तीनि = रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण, ये तीनगुणोंको नाम, रूपके अन्तर्गत मानके मिथ्या कहते हैं, और द्वैत होनेसे, उसमें बड़ा दोष बतलाते हैं। कहते हैं, ब्रह्म उक्त वर्ण, आश्रम गुण आदिसे परे निर्लिप्त है। ऐसा कहके उसे निषेध

करके अन्तमें "अहं ब्रह्मास्मि"— मैं ब्रह्म हूँ ! ऐसा कहते हैं। उन मूढ़ मतिवालोंने, 'मैं ब्रह्म हूँ', इतना कहने मात्रसे ही अपना, मोष= मुक्ति या मोक्ष होना मान लिये हैं। यदि ऐसा कहने मात्रसे ही मुक्ति होती, तो फिर सारी दुनियाँ ही मैं ब्रह्म हूँ ! मैं ब्रह्म हूँ ! कहके मुक्त हो जाती । परन्तु ऐसा होना असम्भव है। ब्रह्मके जो गुण, लक्षण ठहराये हैं, सो तो इनमें एक भी नहीं घटते हैं, तो भी ब्रह्म बननेवाले मूढ़ोंको जरा भी शर्म नहीं लगती है। बिलकुल अविवेकी दिवाने ही बन गये हैं। ऐसोंके सङ्गतसे दूर ही रहना चाहिये ॥२७०॥

साखीः— कहैं वेदान्त बनायके । सब मतके शिरमौर ॥
शब्द विवेकी पारखी । सो चीन्है वञ्चक पौर ॥२७१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मा, व्यास, वशिष्ठादि ऋषि-मुनियोंने वेद, उपनिषद्, वेदान्तसूत्र, योगवाशिष्ठ आदि वेदान्त शास्त्र बनायके कहा है कि—

श्लोकः— "तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ॥
न गर्जति महाशक्ति यावत् वेदान्त केशरी ॥"

— जैसे जङ्गलमें सियारवत् अन्य शास्त्र तबतक गर्जते हैं, जबतक कि, वेदान्तरूप सिंहकी गर्जना नहीं होती है ॥ वेदान्ती लोग सब मतको खण्डन करके द्वैत मिथ्या बताकर अद्वैतमत कथनकर अद्वैतवादको ही सब मतोंके ऊपर, शिरमौर=शिरके मुकुटवत् श्रेष्ठ वर्णन करते हैं। परन्तु सो, वञ्चक=धूर्त, चालाक, ठग, गुरुवा लोगोंकी चालाकी, चालबाजी मात्र हैं। वे सब भ्रमिक, पौर= वाणीके असत्य सिद्धान्तमें तैरनेवाले पाखण्डी, लबार, धोखेबाज भये हैं। सो उनको पारखी सत्यन्यायी सन्त जो शब्दको विवेकसे निर्णय करते हैं, वे ही यथार्थ रत्ती-रत्ती उनके पूरे हाल भेदको चिह्नते, पहिचानते हैं। वेदान्ती लोग सरासर भ्रम भूलमें पड़े हैं ॥ २७१ ॥

साखीः—द्रष्टा भई तीहुँ लोककी । माँड़ी सकलो माँड़ ॥
सुर नर मुनि दुलहिन भये । दुल्लाह भई एक राँड़ ॥२७२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! द्रष्टा नरजीवकी सहायता, सङ्ग, साथसे बाहर वाणी कल्पना ही तीनों लोकके द्रष्टा भयी । तहाँ योगी, ज्ञानी, भक्तोंको तीन मार्ग, तीन सिद्धान्त— द्वैत, अद्वैत, विसिष्ठाद्वैत वाणीसे ही गुरुवा लोगोंने दिखाये, और सर्व-द्रष्टा ब्रह्म, परमात्मा भी वही वाणी कल्पना ही भयी, और माँड़ी = वेद आदि वाणी ही सकल सिद्धान्तमें, मत, पन्थ, ग्रन्थमें, घटों-घटमें, त्रिगुणी मनुष्योंमें, दृढ़ होके बैठी है, माँड़ = खूब विस्तार होके फैल गयी है, और फैल रही है, सब जगह वह टिकी-टिका रही है । उसने संसारमें ऐसा उल्टा चक्र फेरा कि— एक राँड़ = एक अकेली राँड़ स्त्री-रूपी वाणी तो स्वयं मालिक, दुल्लाह = पति, वर, परम पुरुष, परमात्मा, एक ब्रह्म, वा खुदा, अल्लाह, विश्वपति बनके बड़ी श्रेष्ठ हो गयी । अब उसी खोटी, कपटी, ब्रह्म वरसे विवाह करनेके लिये इधर बहुतेरे दुलहिन बनके तैयार होते भये । उनमें मुख्य, सुर = देवता, सात्त्विक, ज्ञानी आदि बड़ी बहू भये । नर = पुरुष, राजसी मनुष्य, भक्त आदि मझोली बहू भये । मुनि = तपस्वी, तामसी, योगी आदि छोटी दुलहिन भये । ऐसे वे तीनों नारीवत्, अनाड़ी बनके वाणीकृत ईश्वरादिको ही पति मान-मानके महाधोखामें जा पड़े । विना पारख जड़ाध्यासी हो भवबन्धनोंमें ही गिर पड़े ॥ २७२ ॥

साखीः—कबीर आतम ज्ञानकी । परी जगतमें शोर ॥
जो पूछो कैसो आतमा ? तो देवै दाँत निपोर ! ॥२७३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! जगत् या संसारमें आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान, अद्वैत मतवाद, वेदान्त सिद्धान्तका बड़े जोर-शोरसे हुल्लड़, हो हल्ला, धूमधाम पड़ी हुयी है । जहाँ देखो, तहाँ आत्मज्ञानकी ही चर्चा, उपदेश, कथावार्ता, व्याख्या

हो रही है। "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि महावाक्यकी रटन, तोतापढ़ाई हो रही है। सब मनुष्यजीव आत्मज्ञानको बड़ा मानकर उधर ही आकर्षित हो रहे हैं। कहा है:—

दोहा:—"ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, करहिं न दूसर बात ॥
कौड़िहु कारण लोभ वश, करहिं विप्र गुरु घात ॥" तुलसी०॥

इस तरह जगत्में बड़ा भारी शोर-गुल होते हुए देख-सुनके जब हम उन वेदान्तियोंसे पूछते हैं कि— अरे भाई! जरा बताओ तो सही, तुम्हारी मानी हुयी आत्मा कैसी है? कहाँ है? उसका रूप, रङ्ग, आकार, किस प्रकार है? वह ब्रह्म या आत्मा क्या चीज है? जड़ वा चैतन्य जीवमेंसे कौन-सा भाग है? आत्मा सर्वत्र है, तो सबको क्यों नहीं दिखता है? जब ऐसा शङ्का सुनते हैं, तब घबराय-के सिर्फ दाँत ही निपोर देते हैं। अर्थात् ही! ही! ही! अहा!! आत्मा या ब्रह्म अवाच्य मन, बुद्धि, वाणीसे परे चराचरमें पूर्ण व्यापक है, अकथनीय, अगम्य है। बस, आगे कुछ शङ्का मत करो, ही! ही! ही! हुस्! करके हँस-हँसके मुख फाड़के दाँत निकालके दिखा देते हैं। ज्यादा पूछोगे, तो तुम्हारा ही दाँत उखाड़के मुख बन्दकर देना चाहते हैं। ऐसे बेहूदे होते हैं। तो भला! वह क्या सत्य वस्तु ठहरी, कुछ नहीं, मिथ्या धोखामें ही गाफिल पड़े हैं। बिना विवेक ॥ २७३ ॥

साखी:— चीन्हनको सो चीन्है नहीं। आतम चीन्है मूढ़ ॥
जो पूछो कैसो आतमा? तब कहै गूँगा गूढ़ ॥२७४॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे जिज्ञासुओ! वे अवि-चारी वेदान्ती लोग ऐसे मूढ़मतिके हो गये हैं कि, क्या कहैं? देखिये! सबको चीह्नने, पहिचाननेवाले, जानने, मानने, थापनेवाले प्रत्यक्ष चैतन्य नरजीव हैं। मनुष्योंने ही कल्पना करके वेद, कुरान आदि वाणी बनाये हैं, और ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेत आदि मिथ्या-मानन्दी किये-कराये हैं। सारे कर्तव्य मनुष्य जीवोंसे ही हो रहा है। ऐसे प्रत्यक्ष होते हुए भी चीह्नने लायक

निज सत्य चैतन्यजीवके स्वरूपको विवेक करके, सो उसे तो चीह्नते ही नहीं हैं, और पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके पारख बोध प्राप्तकर सत्यासत्यको ठीक-ठीकसे पहिचानते भी नहीं हैं। उल्टा ये मूढ़ लोग तो आत्मा वा ब्रह्मको चीह्नना, जानना चाहते हैं। जब आत्माको व्यापक एक मानते हैं, तब तो वे महामूढ़ ही हो जाते हैं, और जो उनसे पूछो कि— हे ब्रह्मज्ञानी! तुमने तो आत्माको पहिचाना है न? अच्छा! बताओ तो, वह आत्मा कैसा है? कैसे जाना जाता है? परिचय करनेके लिये उसके गुण, लक्षण वर्णन करो? तब वे क्या कहते हैं कि— हे भाई! सुनो! असलमें परमात्मा "गूँगेके गुड़" के समान अवर्णनीय, अनुभव गम्य है। जैसा गूँगाने गुड़ खाया हो, तो क्या उसका स्वाद वह कह सकता है? नहीं। तैसे आत्माके बारेमें भी कुछ कहने, सुननेमें नहीं आता है। तैं चुप, मैं चुप, फिर सब आत्मा-ही-आत्मा है। इत्यादि मिथ्या बकवाद, प्रलाप करके रह जाते हैं, सोई बड़ी भूल महा अज्ञानता है ॥ २७४ ॥

साखीः— ज्यों गूँगेका गूड़ है। पूरब गुरु उपदेश ॥
तो चारि षट अष्टदश। किन्ह यह कहा सन्देश ॥२७५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! यदि तुम्हारे पूरब = प्राचीन समयमें हुए पूर्वाचार्य धर्मोपदेशक वेदान्ती गुरुवा लोगोंका उपदेश, शिक्षा, दीक्षाका सार अन्तमें जैसे गूँगेका खाया हुआ गुड़के समान ही है, अकथनीय मूक इशारामात्र अवाच्य, अलक्ष, अगम, अगोचर, अथाह, ऐसे ब्रह्म या आत्मा है। तो उन्होंने क्या जाने? और तुमने क्या पहिचाना? क्या मालूम हुआ, वस्तु तो कुछ भी नहीं ठहरी। जब वह ऐसा है, तो अनुभव भी तो किसी चीजका क्या करेंगे? और अवाच्य ब्रह्म सही है, तब तुम्हारे गुरुवा लोगोंने चारवेद, षट्शास्त्र, अठारह पुराण, उपपुराण, चौदह विद्या, ६४ कला, और भी अनेकोंवाणी-जालका विस्तार करके यह, सन्देश = खबर, समाचार, वाणीका कथन प्रचार उपदेश, फिर किसने, किसको,

कैसे कहा? जब इतने बहुत शब्द कहे, सुने गये, तब "गूँगेके गुड़ न्याय?" शब्दातीत आत्मा कैसे भया? ऐसे दो तरहके वार्ता करनेवाले मिथ्यावादी हैं, बिना पारख वे माया-जालमें अरुझे पड़े हैं ॥२७५॥

साखीः— चतुर श्लोकी भागवत । कियो विधिहिं उपदेश ॥
जो पूरब गुरु गूँग है । किन्ह यह कहा सन्देश ॥२७६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! भागवत पुराणमें लिखा हैः— एक समय सनकादि चारों भाईयोंने ब्रह्माके समीप जाके निवृत्ति-मार्गके बारेमें प्रश्न किये। ब्रह्माकी वुद्धि प्रवृत्ति मार्ग-परायण होनेसे उन्हें कुछ उत्तर नहीं सूझा। तब विष्णुके ध्यान करके स्मरण किये, फिर विष्णु हंस-अवतारका रूप धारण करके वहीं प्रगट हुए वा वहाँ आ गये, और उसी हंस-रूपसे विष्णुने, जो उपदेश ब्रह्माको किये या शिक्षा दिये, सोई चार श्लोकमें चतुःश्लोकी भागवत कहलाया, सो भा० २।९।३२ से ३५तक, ४ श्लोक कहा है। इस प्रकार प्रथम चार श्लोकको भागवत ब्रह्माको विष्णुने ही उपदेश किया, फिर ब्रह्माने नारदको और नारदने वही चार श्लोक ही व्यासको कहा। पश्चात् व्यासने अठारह हजार श्लोकोंमें विस्तारसे भागवत ग्रन्थ बनाया, ऐसा (भा० १२। १३। ३-९ में) वर्णन है। अब बताओ! पूर्वाचार्य आत्मज्ञानी वा ब्रह्मज्ञानी गुरुवा लोग यदि आत्मा-अनुभव करके गूँगा ही हो जाते थे, तो फिर यह वेद, वेदान्त, भागवत, गीता, आदिके, सन्देश = उपदेश, हाल, खबर, यह किसने कहा? क्यों कहा? किसको, कैसे कहा? जब सन्देश कहा, तो मौन, वा मूकताका भङ्ग हुआ कि नहीं? फिर अवाच्य ब्रह्म है, कुछ कहनेमें नहीं आता, ऐसा कहनेवाले तुम लोग महा झूठे हुए कि नहीं? सब बात तो कल्पना करके तुम्हारे गुरुओंने कहा है, फिर वाणीसे परे कहतेमें तुम्हें लज्जा नहीं आती है? बिना पारख बड़े मूर्ख, पक्षपाती ही बने हैं ॥ २७६ ॥

साखीः— जो पूरब गुरु गूँग है। तो गूँगा शिष्य सब तात ! ॥
पाँजी यह गुरु शिष्यकी। किन्ह चलाई बात ? ॥२७७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! जो यदि वेदान्तियोंके मानन्दी अनुसार ही पूर्वाचार्य बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी, ऋषि, मुनि, गुरुवा लोग आत्मज्ञान होनेपर मौन हो गूँगे ही हुए थे, वा पूर्वके सब गुरुवा गूँगे, अवाच्य हुए हैं, तो उनके सब शिष्य वर्ग भी वैसे ही गूँगे वा मूक ही भये होंगे। नकटा पन्थमें सबोंने नाक कटाया था, कानफटा पन्थमें सब लोग कान फड़ाये हुए रहते हैं। तैसे ही गुरु-गूँगाके पन्थमें चेला सब भी गूँगे ही होंगे। यही इसका तात्पर्य निकलता है। जब ऐसा ही है, तो बिना कुछ कहे-सुने, समझे-बूझे ही यह गूँगे, गुरु-शिष्योंकी, पाँजी= मार्ग, पन्थ, पाजीपनाका उल्टा रास्ता, ऐसी बात किसने कैसे चलाया ? अरे ! वे गुरु-शिष्य सबके-सब महापाजी, नालायक ही बने हैं। निपट मूर्खोंके कथामें "बोले सो पत्ता लावै", यह शर्त रख, अपनी बड़ी हानि कर बैठे थे। वैसे ही आत्मज्ञानी गूँगा होके मूर्खतासे अपने हंसपदके हानि ही किये और कर रहे हैं। बिना बोले, चाले, कहे-सुने, कहीं गुरु-शिष्यकी परम्परा, मार्ग-मत, पन्थ, ग्रन्थ, नाना सिद्धान्त चल सकता है ? कहीं नहीं। अतः इनके कहनी और करनीमें बड़ा अन्तर है, इससे धोखेबाज बनके चौरासी योनियोंके कैदमें पड़े, और पड़ रहे हैं ॥ २७७ ॥

साखीः— हिन्दू गुरु गूँगा कहै। मुसलम गोयमगोय ॥
कहहिं कबीर जहँड़े दोऊ। मोह नदीमें सोय ॥२७८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो ! वेदको माननेवाले हिन्दू धर्मावलम्बी लोगोंके गुरुवा ब्रह्मज्ञानी लोग तो अपने गुरु, आत्मा, ब्रह्मको, गूँगा= वाणीसे परे, मौन, अवाच्य, निःअक्षर कहते हैं। यानी गूँगाके समान अकथनीय कहे हैं। वैसे

ही कुरानमतको माननेवाले मुसलमान लोग भी खुदाको गोयम-गोय=कहने, बताने, सुनने, समझनेमें नहीं आता है। गोलमालसे जैसाका-तैसा, अवर्णनीय, शब्दातीत ही कहते हैं। हिन्दू और मुसलमानके खास मानन्दी ईश्वर, खुदा, ब्रह्म, अल्लाहका सिद्धान्त तोएक सरीखा ही है। आखिरमें वे दोनों ही निश्चय करके कुछ बता नहीं सकते हैं। तो झूठ-सूठके स्वाँग करके महिमा बढ़ाकर निर्गुण, निराकार, बेचून, बेनमून, अवाच्य, गोयमगोय कहके महामोहरूपी वाणीके नदीमें गोता लगाके छिप जाते हैं। सो तो मिथ्या कल्पना भ्रम, भूल है। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— बिना पारख अविचारी, पक्षपाती हिन्दू और तुरुक दोनों ही मिथ्या धोखामें पड़के जहँड़ा गये। खानी, वाणीके महाबन्धनमें पड़के जड़ाध्यासी हो गये। मोह-मूर्खतासे भ्रमके नदीमें अचेत होके सोते हैं? तो बचेंगे कैसे? बहि-बहिके चौरासी योनियोंके सागरमें पहुँचेंगे, दुःख ही भोगते रहेंगे, बिना विचार॥२७८॥

साखीः— गोयमगोय गुरु गूँगको। जो ऐसो ही न्याव॥
कहहिं कबीर माते सबै। भाँग परी दरियाव॥२७९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! इन हिन्दू, तथा तुरुक गुरुवा लोगोंका या मतवादियोंका जो ऐसा ही न्याय, निर्णय ठहराते हैं कि— ब्रह्म वा गुरु गूँगा, मूक, अवाच्य है, तथा खुदा गोयमगोय=अकथनीय है, कुछ ठहराके कहा नहीं जाता है। तो कहो, फिर सार समझ क्या निकली? कुछ नहीं। मिथ्या भ्रममें ही पड़े रहे। धोखेके टट्टीके सिवाय सिद्धान्त कुछ भी नहीं ठहरा। यदि ऐसे ही निर्णयको वे सत्य मानते हैं, तो समझो बड़े निर्बुद्धि बने हैं, या तो कोई नशा पीये हैं। जब सब मतवादी उन्मत्त होके माते हैं, तभी तो श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णय पारखी सन्त कहते हैं कि— हे सन्तो! उसका एक बड़ा कारण है— दरियाव समूचेमें ही नशीली भाँग पड़ गई है, जिसे पी-पीके सब दीवाने हो रहे

हैं। अर्थात्, दरियाव = वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिकी वाणी कल्पनाकी सारी मानन्दीकी तरङ्गोंमें, भाँग = भ्रम, भूल, भावना, धोखाकी जहरीली भाँग घोट-घोटके घुली पड़ी है। सब लोग उसे ग्रहण, पान, स्वीकार, दृढ़ता कर-कराके, माते = उन्मत्त पक्षपाती भये, तब पागलवत् बर्तावकर जड़ाध्यासी हो-होके मर गये, चौरासी योनियोंमें गिर पड़े ॥ २७९ ॥

साखीः— जो पै गोयमगोय है। यह अल्लाहकी बात ॥
सीपारा तीस कुरानके। मकरूह होय सब जात ॥२८०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मतवादी लोगो! जो तुम्हारे मत मानन्दीके अनुसार, पै = यदि यह अल्लाहमियाँ या खुदातालाकी बात दरअसलमें, गोयमगोय = कुछ कहने लायक ही नहीं, या कुछ कहनेमें आता ही नहीं है, और तुम उसे नाना विधिसे कहते भी जाते हो, फिर यह तुम्हारी अनसमझ नादानी नहीं तो क्या है? और खुदाकी बात तो गोयमगोय, अथाह हो गयी, फिर तहाँ कुरान-सरीफ किसने, क्यों कहा? तथा कुरानके तीस सिपारा = तीस अक्षर, तीस भागका अध्याय, खण्ड, यह सब भी सरासर, मकरूह = रद्द, भूठा, निकम्मा, ना कुछ ठहरके बेकार ही हो जाता है। क्योंकि, अल्लाहके रूप-रेखा, स्थान आदि तो कुछ बता सकते ही नहीं हो, फिर उसे गोयमगोय माने हो, जब वह ऐसा है, तब तीस सीपाराके कुरानको खुदाने बनाया, ऐसा कहना भूठा हुआ कि नहीं? अवश्य भूठा ही हुआ? तैसे ही उधर ईश्वर वा वेद भी भूठा ही ठहरा। यह सब मनुष्योंकी मन-मानन्दी कल्पनाका विस्तारमात्र है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके उसका यथार्थ भेद जानना चाहिये ॥ २८० ॥

साखीः— कबीर गोयमगोय है। जो पै वह अल्लाह ॥
परदे नाल रसूल सो। कहा कौन सल्लाह ॥ २८१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जो यदि इन मुसल-

मानोंके कथन मानन्दी अनुसार ही वह अल्लाहमियाँ या खुदाताला, दुनियाँका मालिक होके भी वास्तवमें, गोयमगोय = बेचून, बेनमून, अथाह, अपार, अकथनीय, वाणीसे परे है। तो वह कहने-सुननेका विषयसे रहित हुआ। फिर, रसूल = पाक पैगम्बर, प्रतिनिधि, दूतरूप आदम, मूसा, ईशा, मोहम्मद पैगम्बर, इन्हींसे पहाड़के ऊपर कपड़े आदिके पर्दाडालके, ओट, आड़में छिपके, नाल = मार्ग, इस प्रकारके रास्ता, इस्लाम धर्मके शिक्षा, उपदेश, सलाह, मसबिरा करके तब वहाँ किसने कहा था? परदेके राहसे रसूलसे अपने राय, सलाह कहनेवाला वह खुदा था कि नहीं? या तो वह बात झूठी मानो, या गोयमगोय कहना मिथ्या जानो। जो बातचीत करके सलाह, उपदेश देता है, वह तो देहधारी एक नरजीव ही ठहरा। यदि वह अवाच्य मूक ही होता, तब तो उसके वचनको तुम्हारे पैगम्बर लोग कभी सुन ही नहीं सकते थे। अतः वह कोई चालाक मनुष्य था। किन्तु, बिना विचारे मिथ्या धोखेको ही सत्य मान-मानके मुसलमान लोग भूले पड़े हैं ॥ २८१ ॥

साखीः— अर्थ लगावैं शब्दका। शब्द बढ़ावत जाय ॥
बातनकी जुरती करैं। पण्डित गाल बजाय ॥२८२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! पारखहीन वे अक्षररूप वाणीको पढ़े-लिखे हुए विद्वान् लोग खाली शब्द समूहका ही, नाना प्रकारसे अर्थ लगाते हैं, तहाँ एक शब्दके अनेक शब्द प्रगट करके शब्द जालको विस्तारकर बढ़ाते ही जाते हैं। कल्पना भ्रमका पसारा करते ही जाते हैं, और अक्षर, मात्रा, सन्धि-भाव इत्यादि जोड़-जोड़ करके वाणी बनाते हैं, फिर रोचक, भयानक, शब्द = बातोंकी, जुरती = मिलान, सम्बन्ध करते हैं। इस तरह पण्डित, ज्ञाता, समझदार बनके गुरुवा लोग गाल बजाते फिरते हैं, नाना प्रकारके वाणी बोल-बोलके मनमाने सो उपदेश दे रहे हैं। कुछका-कुछ अर्थका अनर्थ करके अबोध मनुष्योंको भुला, भटका रहे हैं, और कहीं बातोंकी

जोड़, संग्रह करके पुराण आदि ग्रन्थ नाना पद, रचना कर-कराके उसका शब्दार्थ, भावार्थ आदि अर्थ लगाय, वाणी जाल ही खूब बढ़ाये हैं। वही लोगोंको सुनाय-सुनायके पण्डित बनके धूर्ताई कर रहे हैं। ऐसे ठगोंको पहिचानके उनके जाल, घेरासे निकलना चाहिये, परीक्षक होना चाहिये ॥ २८२ ॥

साखीः— कबीर पण्डित अधूरिया। बात बनावें श्लोक ॥
बातन अर्थ लगायके। ठगें सो तीनों लोक ॥२८३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! ये वाणीके पण्डित लोग सब अधूरे अपूर्ण हैं। क्योंकि, उन्हें निज स्वरूप पारखका बोध तो नहीं है, पारख स्वरूपके स्थिति हुए बिना सब अधूरे ही रहते हैं, और अधूरिया इसलिये भी हैं कि— पाँच मात्रा, स्वर-सन्धि, अक्षर-सन्धि, त्रिलिङ्ग आदिकी सहायता लिये बिना कोई भी पण्डित कुछ भी पद, छन्द, अर्थ आदि प्रगट नहीं कर सकते हैं। मात्रा, सन्धि आदि साथ लेके ही, बात = वाणी, शब्द, संस्कृत, भाषा, गद्य समूहको तुकबन्दी, छन्दोबद्ध, त्रिष्टुप्छन्द, अनुष्टुप् छन्द, भुजङ्गप्रयात छन्द, इत्यादि नाना तरहके श्लोक रचना करके ग्रन्थ बनाते हैं। संस्कृत मन्त्र संहितामें चारोंवेद बने हैं, उसके भाष्यरूपमें ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् आदि बने हैं। सूत्ररूपमें षट् शास्त्र बनाये हैं। श्लोकरूपमें १८ पुराण आदि नाना ग्रन्थ बनाये हुए हैं। तैसे ही विशेष संस्कृतज्ञ पण्डित लोग बात-बातमें श्लोक बनाय देते हैं। परन्तु, उसे सर्व जनता समझती नहीं, न समझनेसे जनसमाज प्रसन्न नहीं होते हैं। इसलिये स्वार्थी पण्डित लोग फिर सबको समझानेके लिये बोल-चालकी, भाषाकी बातोंमें अर्थ लगाय-लगायके समझाते हैं। श्लोक बोलकर उसीका अर्थ बताके बड़े बनना चाहते हैं। इस तरह तीनों लोकके मनुष्य, सात्त्विक, राजस, तामसी लोगोंको तथा योगी, ज्ञानी, भक्तोंको, एवं स्त्री, पुरुष, नपुंसक इत्यादि त्रिगुणी

मनुष्योंको भुलाय-भुलायके फँसाके, सो उन सबोंको खूब ठगे हैं, और ठग ही रहे हैं। धूर्ताई करनेमें पण्डित लोग बड़े प्रवीण बने हैं। जीवन धन, हरण करके अबोध लोगोंको नष्ट-भ्रष्ट किये वा कर रहे हैं ॥ २८३ ॥

साखीः— पण्डित अर्थ लगावहीं। अनरथ होता जाय ॥
कहहिं कबीर अचरज बड़ा। अर्थहि अर्थी खाय ॥२८४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और इधर पण्डित लोग तो वाणी, शब्द, सूत्र, श्लोक आदि कविताओंके बुद्धि, समझ अनुसार भाँति-भाँतिसे अर्थ लगाते हैं। पद, पदच्छेद, अन्वय, समास, करके अर्थ, शब्दार्थ, भावार्थ, सङ्केतार्थ, व्यङ्गार्थ, लक्षार्थ, ध्वन्यार्थ, अर्थापत्त्यार्थ, श्लेषार्थ, इत्यादि अनेकों प्रकारसे अर्थ लगाते हैं, तहाँ कर्ता, ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, आदि ठहराके जीवोंको तुच्छ, बनाते जाते हैं, कल्पना, अनुमानके महिमा बढ़ा करके गुण गाते जाते हैं। इससे, अर्थ = हित, कल्याण होनेके बदले और, अनर्थ = अहित, अकल्याण, भ्रम, भूल, धोखाकी वृद्धि जड़ाध्यास बन्धन ही विशेष होता जाता है। कल्पना बढ़के अर्थका सत्यानाश होता जाता है। लाभ कुछ भी नहीं होता है। इसीसे सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— हे सन्तो! एक बड़ा भारी आश्चर्य तो यह हुआ कि— शब्दके अर्थरूप ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, ऋद्धि, सिद्धि आदिकी मिथ्या मानन्दी, अनुमान, कल्पना, भास, अध्याससे ही, अर्थी = उसको चाहनेवाले, अर्थ लगानेवाले, चैतन्य नरजीव ही को खा गया, भ्रमा, भुला दिया, विवेक, विचारादि सद्गुणोंको खायके नष्ट-भ्रष्ट पतित, जड़ाध्यासी, बद्ध, बना दिया। अतः बिना पारख बड़े-बड़े पण्डित भ्रम, चक्रमें पड़के चौरासी योनियोंको प्राप्त भये, भवबन्धनमें पड़ गये, इसीसे उस खानी, वाणी जालको त्याग करके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगना चाहिये ॥ २८४ ॥

साखीः— कबीर अर्थ शब्दमें। शब्द सो जाना जाय ॥
अर्थ कौन वस्तु है ?। पण्डित! कहो बुझाय ॥२८५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो ! सब वाणी वचन-रूप शब्दका अर्थ, टीका, टिप्पणी, तात्पर्य, वर्णन, कथन, यह सब अर्थ रचना भी शब्दमेंसे कहा, लिखा, सुना जाता है। सो बोल-चालके शब्दसे ही मतलब जाना जाता है, यावत् सिद्धान्तके अर्थ शब्दमें प्रगट होकर, फिर शब्द द्वारा ही सबको जाननेमें आता है। इस तरहसे अर्थ भी शब्दका विषय हुआ। अब उसके अतिरिक्त और, अर्थ = ध्येय, मतलब, ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि जो शब्दसे ही कहते हो, उनकी प्राप्ति करना चाहिये, ब्रह्ममें तदाकार होना चाहिये, इत्यादि विशेष कथन जो करते हो, तो यह खुलासा करके बताओ कि— वह मुख्य अर्थ कौनसा वस्तु है? जड़ है कि— चैतन्य है? और कहाँ है? कैसा है? कैसे जाना वा पहिचाना जाता है? हे पण्डित ! मैं तुमसे पूछता हूँ! इसका भेद अच्छी तरहसे समझा-बुझाके कहो! तुम उसको कैसे मानते हो? फिर मैं उस बारेमें निर्णय करके सत्य-सारको समझा दूँगा। अरे भाई ! वास्तवमें वह अर्थ कोई वस्तु नहीं है, सिर्फ मनके मानन्दी, भ्रम, धोखामात्र है, ऐसा जानो ॥ २८५ ॥

साखीः— श्रुति कहै शब्द आकाश गुण। अर्थहि होय अकाश ॥
सूने घरका पाहुना। भोजन भया उपास ॥२८६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे मनुष्यो !, श्रुति = वेदमें तो कहा है कि— शब्द, यह आकाश तत्त्वके गुण या विषय है। तब तो उस शब्द द्वारा वर्णन किया हुआ अर्थ भी शून्य सारहीन आकाश ही हुआ या होयगा। जब वही सिद्धान्त ठहरा, तो जैसे कोई अपने मित्रके घर, पाहुना = मेहमान होनेको गया, तो वहाँ घर सूना पड़ा हुआ था, कोई नहीं थे। रात भर पड़ा रहा, परन्तु, भोजन नहीं

भया, यानी खानेको कुछ नहीं मिला, तो भूखे उपवास ही रहना पड़ा। फिर निराश होके लौट पड़ा, कार्य सिद्ध नहीं हुआ। तैसे ही सिद्धान्तमें प्रणवरूप ॐकार शब्दको, 'शब्द ब्रह्म' ठहरा करके वेदान्तियोंने माना है। परन्तु वेदमें शब्दको निराकार आकाशका गुण बताया है, और अर्थ करके पाँच मात्राओंको विभक्त करके, पिण्ड-ब्रह्माण्डमें आत्मा वा ब्रह्मको पूर्ण व्यापक आकाशवत् ही निराकार, निर्गुण ठहराया है। तब फिर वह शब्द उसका अर्थ ब्रह्म भी खास आकाशरूप अवस्तु मिथ्या धोखा ही ठहरा। फिर हाथमें तो सार कुछ नहीं आया। सूने घर = शून्य, निराकार ब्रह्म, ईश्वरादिसे मित्रता करके उसके घर आकाश वा ब्रह्माण्डमें स्थिति ठहराव करनेको नरजीव पाहुना या अभ्यागत होके ध्यान, धारणा, समाधि लगाके गये। परन्तु मित्र तो कबके मर चुके थे, तो उनसे कुछ भेट-मुलाकात नहीं हुयी। अज्ञान-मोहकी रात्रिमें वहीं ठहरे, किन्तु, मुक्तिरूपी भोजन देनेको कोई नहीं आया। इसलिये, उपास = भूखे, पारखहीन, जड़ाध्यासी हो, भवबन्धनोंमें ही पड़े रहे। फिर देह छूटनेपर निराश हो, चौरासी योनियोंके चक्रमें ही उलटके चले गये। बिना पारख मुक्तिका कार्य सिद्ध नहीं हुआ ॥ २८६ ॥

साखीः— जेर जबर औ पेश करि। यह जो मतन बनाय ॥
यह करीमने जो कहा। मोलना गाल बजाय ॥२८७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ! जैसे हिन्दू लोगोंने पाँच मात्रा लगाके वाणीका विस्तार किये हैं। तैसे ही मुस्लिमोंने भी अर्बी, उर्दू-भाषामें तीन मात्रा लगाके शब्दोंका विस्तार किये हैं। शब्द-अक्षरके ऊपर-नीचे और पाईको बिन्दु लगाके तिरछी लकीर खींच देते हैं, सो उसे ही उर्दूमें मात्रा मानते हैं। जैसेः— जेर = (!) ऐसा खड़ी पाईके नीचे एक बिन्दुवाला छोटी इकारकी मात्रा माना है। जबर = (ँ) ऐसा अलग अर्धचन्द्राकारमें नीचे-ऊपर दो बिन्दु रखते हैं, उसे जबर कहते हैं। वह अकारकी

छोटी मात्रा माना है। और, पेश = (ॐ) ऐसा अर्धचन्द्राकारके ऊपर एक और नीचे तीन बिन्दु रखते हैं, वह ऊपरमें छोटी उकारकी मात्रा माना है। इस प्रकारसे जेर, जबर, और पेश लगा करके अक्षरोंमें पाई, मात्रा, बिन्दु, आदि लगा करके यह जो मुसलमानोंने अलग ही, मतन = उर्दू, अर्बी भाषाकी वाणी वा नाना मतोंके बहुविधि शब्द जो बनाये हैं, सो मनुष्योंके कल्पनाका जाल जीवोंको बन्धनदायी ही है। परन्तु यह कुरान आदिकी वाणीको, करीम = खुदा, अल्लाह, परमेश्वरने बनाया है, ऐसा तुरुक लोगोंने जो कहा है, और कहते हैं, सो असत्य है। ऐसे ही झूठ-मूठका पर्दा लगाय-लगाय करके, मोलना = मौलबी, मुसलमानोंके पण्डितोंने अपने मतलबके लिये गाल बजाया है। अर्थात् मात्राएँ लगाके जो कुछ भी कुरान आदिकी वाणी बनाये हैं, सो तो मौलबियोंके कर्तव्यका ही खेल है। परन्तु स्वार्थी मोलनाओंने झूठ ही गाल बजाय-बजाय बकवाद करके ऐसा ढिंढोरा पीट दिये कि— यह कुरान-शरीफ करीम बख्श खुदाने जो कहा है, सो सब मुसलमानोंने मानो। सुन्नत कराओ, रोजा, बाँङ्ग, निमाज पढ़ो, पाँच वक्त खुदाको सलाम करो, मौलबियोंको भेंट-पूजा चढ़ाके पालन-पोषण करो, इत्यादि स्वार्थियोंने कहके दुनियाँको भ्रमा, भुला रखा है। बिना विचार सब उसीमें अचेत पड़े हैं ॥ २८७ ॥

साखीः— कबीर मायने मतनके। मतन सो जाना जाय ॥
मायने कौन वस्तु है ? हजरत ! कहो बुझाय ॥२८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो !, मतनके = कुरानके वाणियोंके, अथवा अनेक मत-मतान्तरोंके शब्दोंका, मायने = अर्थ, मतलब, भाव, तात्पर्य, माने जो कुछ है, सो तो, मतन = उसी-उसी वाणियोंसे ही जाना, समझा-बूझा जाता है। शब्दसे खुदा, अल्लाह कहा, सो शब्दरूप वाणीके भीतर ही जाना गया वा जाना, माना जाता है। फिर तुम, मायने = शब्दार्थसे खुदाको श्रेष्ठ मालिक ठहराते हो; तो वह माने, मतलब, अर्थ, और ही कोई अल्लाह माना हुआ कौन-सा वस्तु

है ? कहाँ पर, कैसा है ? क्या तुम उसे जानते हो ? कभी कहीं देखा, पहिचाना है ? वह मायने क्या चीज है ? कहाँ है ?, हे हजरत= बुजुर्ग, मौलबी मियाँ ! तुरुकोंमें तुम लोग श्रेष्ठ बने हो, तो इस बातका मर्म अच्छी तरहसे समझा, बुझाके कहो ! नहीं कह सकते हो, तो मिथ्या धोखा, पक्षको छोड़ करके पारखी सन्तोंकी सत्सङ्ग विचार करते रहो, तब असली भेदको जान पाओगे। नहीं तो व्यर्थमें मनुष्य जन्म बिताकर चौरासी योनियामें दुःख भोगनेको जाओगे ॥ २८८ ॥

साखीः— मीयाँ मतन बढ़ावहीं। मानै वार न पार ॥
मतन सखुन चीन्है बिना। मीयाँ भये खुवार ॥२८९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! मुसलमानोंमें मीयाँ=काजी, मौलबी लोग तो कुरान आदिकी, मतन=नाना वाणी कल्पना ही विस्तार करके बहुत-बहुत बढ़ाये और बढ़ाते जाते हैं। अर्थात् मुसलमानोंमें बड़े-बूढ़े श्रेष्ठ मान्य लोगोंको 'मीयाँजी' कहते हैं। वे तो सिर्फ वाणी कल्पना ही बढ़ा-बढ़ाके उसे पढ़ते-पढ़ाते याद करते जाते हैं। उस वाणीको माने या अर्थका तो कहीं वार-पार ठिकाना ही नहीं लगता है। क्योंकि , वे लोग खुदा-ताला या अल्लाह मियाँको वारा-पारसे रहित अपार, अथाह, बेचून, बेनमून, गोयमगोय मानते हैं। जड़ और चैतन्यमें खुदाका कहीं भी पता नहीं लगता है। असली खुद, खुदायको तो वे जानते ही नहीं हैं। नाहकका मिथ्या भ्रम-कल्पनामें धोखेसे पड़े हैं। मतन= मत-मतान्तरोंकी वाणी; सखुन=शब्दका विस्तार, सो सब मनुष्यकृत वाणी जाल जीवोंको बन्धन ही है, ऐसा विवेक करके चीन्हें बिना खुदाका बनाया हुआ कुरान आदि वाणी समझके, भ्रम, चक्रमें भूलकर, नानाकर्म, कुकर्म करके, मीयाँ=मुसलमानोंके बड़े, बूढ़े लोग, काजी, मौलबी आदि हंस पदसे पतित, नष्ट-भ्रष्ट हो, खुवार= खराब, जड़ाध्यासी, बेकामके हो गये। उनके साथ-साथमें धोखामें

पड़के सब मुसलमानलोग भी खराब, पथभ्रष्ट, पतित हुए और हो रहे हैं। अध्यासवश चौरासी योनियोंके कैद, अन्धेरी कोठरीमें पड़े, और कैदी बनके उसी बन्दीखानेमें जा रहे हैं ॥ २८९ ॥

साखीः— कहहिं कबीर कहु मीयाँ। मैं पूछत हौं जौन ?॥
इलिल्लाह तो मतन भया। इसकेमायने कौन ? ॥२९०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोधके ज्ञाता पारखी सन्त यहाँपर उन्हीं मुसलमानोंके गुरुवा लोगोंसे प्रश्न करके कहते हैं कि— दुराग्रही, हठी, अकड़बाज हे मीयाँ=काजी, मौलबी लोगो ! मैं जो तुमसे पूछता हूँ, सो खुलासा करके यथार्थ कहो कि— इलिल्लाह="लाहे लाहे, इलिल्लाह हूल, मोहम्मदुर्रसुलिल्लाहः।" इत्यादि तुम्हारे पाँच कलमाके मन्त्र तो सिर्फ, मतन = वाणी या कल्पनाके शब्दमात्र ही साबित भया। फिर इसके खास, मायने=मतलब, अर्थ, भाव, माने, प्रयोजन कौन है ? क्या हुआ ? अल्लाह, खुदा जो कुछ भी पुकारके कहते हो, सो तो शब्द मात्र ही ठहरता है, वह वस्तु क्या है ? कैसा, कहाँ है ? तुमने कभी उसे देखे भी हो ? देखा ही नहीं, तो कैसे पहिचानोगे ? नाहक धोखामें पड़के शब्दकी कल्पनामें क्यों भूल रहे हो ? वह कुछ भी काम नहीं आयगा, पीछे पछताओगे। यदि अपना हित चाहते हो, तो अभी चेतो, सत्सङ्ग-विचारमें लगकर जीवन सुधार करो ॥ २९० ॥

साखीः— कबीर मायने मतनके। मतन कहे जो कोय ॥
यहि दोनोंमें को बड़ा ?। हजरत! कहिये सोय ॥२९१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो !, मतनके=शब्द या नाना वाणियोंके, मायने=माने, अर्थ, भाव, मतलब तो, जब कोई शब्दोंको कहते हैं, तब उसके बादमें ही अर्थ होता है। अर्थात् वाणी कहनेवाला कोई मनुष्य न हो, तो आप-ही-आप वाणी कहींसे नहीं आ सकती है। जो शब्द कहता है, उसके माने भी वही बताता

है, और जो कोई जैसा-जैसा शब्द कहता है, तैसा-तैसा उसका अर्थ भी साथ ही होता है। एक शब्दका कर्ता नरजीव, दूसरा शब्द और अर्थ। यही दोनोंमें बड़ा, श्रेष्ठ, मान्य, कौन है? हे हजरत! तुम किसको बड़ा मानते हो? सोई खुलासा करके कहिये? क्योंकि, खुदा, अल्लाह आदि शब्द, और पाँच कलमा आदि अर्थ, तो वाणीके विषय हुआ, जो कोई वाणी कहते हैं, उन्हीं मनुष्योंसे वह प्रगट होती है। मनुष्य न होयँ, तो और वाणी वा अर्थ कहनेवाला कौन है? हे भाई! मुसलमानो! सोई खुलासा करके कहो कि— इन दोनोंमें कौन बड़ा होना चाहिये? विचार करो, नरजीव न होते, तो वाणी कहाँसे बनती? अतः जीव ही बड़ा श्रेष्ठ है, ऐसा जानो॥ २९१॥

साखीः— कबीर मारी अल्लाहकी। ताको कहै हराम॥
हलाल कहै अपनी मारी। यह नादान कलाम॥२९२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे नरजीवो। ये मुसलमान लोग स्वार्थी जिभ्या लम्पट, बड़े काल कसाई बने हैं। इनमें जरा भी दया, विचार नहीं है। खुदाको जर्रेजर्रेमें भरा हुआ पूर्ण कहते हैं, फिर उसी बातको वे अपने ही नहीं मानते हैं। क्योंकि, जो प्राणी, पशु, पक्षी, गाय, भैंस, बकरा, भेड़ें, मुर्गी, बतक, कबूतर आदि अपने काल गतिसे आयु पूर्ण होनेपर स्वयं मर जाते हैं। उसे वे खुदाकी या अल्लाहकी मारी हुई समझते हैं, अजगैबसे खुदाके पैगाम या फर्मान आके वह मरा कहते हैं। इस तरह स्वयं मरे हुए पशु, पक्षियोंको मुसलमान लोग, हराम = खराब, अपवित्र, व्यर्थ, त्याज्य कहते हैं। उनको वे खाते भी नहीं, कहीं फेंक देते या गाड़ देते हैं, और अपने हाथसे क्रूर निर्दयी होकर कष्ट दे-देकर गाय आदिको छुरीसे रगड़-रगड़ करके मार डालते हैं। ऐसे हिंसा करके अपनी मारे हुए को वे, हलाल = अच्छा, पवित्र, पाक, ठीक, ग्रहण करने योग्य कहके प्राणियोंको मार-मारके राक्षस बनके मांस खाते हैं। यही देखो!, नादान = मूर्ख लोगोंकी कैसी मूर्खता

भरी, कलाम = खोटी वाणी है। बिलकुल शैतान, काल ही बने हैं। ये खुदासे भी बढ़कर अपने कामको समझनेवाले खुदाके बागको उजाड़नेवाले और खुदाके ही गलेमें छुरी फेरनेवाले अल्लाहके कितने बड़े भारी दुश्मन बने हैं। वे छली, कपटी, स्वार्थी बने हैं, खुदाके नामसे दुनियाँको भ्रमाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं, नादानीका शब्द बोल रहे हैं, बिना विचार ॥ २९२ ॥

साखीः— अपनी बोली आपसो । होत नहीं पहिचान ॥
कहहिं कबीर समुझै नहीं । मोह महा बलवान ॥२९३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! नरजीव अपने ही नाना मानन्दी करके, बोली = वाणी या शब्द बोलते हैं। पहिले तो बड़े बननेके लिये कथन तो अच्छी ही करते हैं। फिर निर्गुण, निराकार, बेचून, बेनमून, ब्रह्म, परमात्मा, अल्लाहको मानते हैं। सो शब्द तो वस्तुका निषेध करता है। किन्तु, उन अविवेकियोंको अपनी ही बोलीके अर्थकी पहिचान नहीं होती है, कुछका कुछ ही मानके अनर्थ कर बैठते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णय, जड़ चेतनके भेदको तो वे समझते नहीं हैं, इसीसे वाणी कल्पनासे प्रगट होनेवाला ईश्वर, खुदा आदि धोखाका मोह बड़ा बलवान् हो रहा है ॥ अथवा पहले तो अपने ही बोले कि, आत्मा या खुदा घट-घटमें रमा हुआ व्यापक है। फिर जिभ्या स्वादके कारणसे पशु, पक्षियोंकी उन्हीं देवताओंके नामसे हिंसा, वलिदान, हलाल, हत्या कर-कराके प्रसन्न होके, मांस खाते हैं। वे राक्षसोंको अपनी पूर्व वचनका कुछ भी पहिचान नहीं होता है। सबमें परमात्मा वा खुदा है, तो ये हत्या भी उसी इष्टदेवकी ही होगी, बड़ा उल्टा काम हो जायगा, यह तो कुछ भी नहीं समझते हैं। सद्गुरु कहते हैं— विषय भोग स्वार्थका मोह बड़ा बलवान् हो गया है। उसने सब मतवादियोंको पछाड़के जीत लिया है ॥

अथवा हंस जीवकी अपनी शुद्ध बोली तो गुरुमुख निर्णयकी सार-शब्दकी थी। परन्तु पारखपर लक्ष न होनेसे, सो अपने ही बोली आपसे पहिचान नहीं होती है; और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जो सत्य निर्णय कहे हैं, उसे पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग-विचार करके तो ठीक-ठीक नहीं समझते हैं। और मनमाने वैसा चलते हैं। मनमुखी होके भटकते हैं। मनके मानन्दी खानी, वाणीके पक्ष, मोह, काम, क्रोधादि विकार ही महाबलवान् होके जीवके पीछे पड़ी है। इसीसे जीव जड़ाध्यासी होके भवबन्धनोंमें बन्धे पड़े हैं ॥ २९३ ॥

साखीः— कारण लिङ्ग स्थूल जीव । विश्व तेजस प्राज्ञ ईश ॥
त्रिविधि हिंडोला उभयजन। झूलहिं बिस्वाबीस ॥२९४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! स्थूल, सूक्ष्म, कारण, ये तीन देह, तथा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ये तीनों कोशोंका भोक्ता बद्ध अज्ञानी, अविद्याग्रसित जीवको माने हैं, और विराट, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत ये तीन देहके विश्व, तैजस, प्राज्ञ, ये तीनोंका अभिमानी चतुर्थ प्रत्यगात्म, अभिमानधारी, ज्ञानमय कोशका भोक्ता, ज्ञानी, ईश्वरको साक्षी ठहराये हैं। स्थूल, विश्व, विराट, एक समान है। सूक्ष्म, तैजस, हिरण्यगर्भ, एक समान है। कारण, प्राज्ञ, अव्याकृत, एक समान है। यही त्रिविधि, तीन-तीन प्रकारकी त्रिपुटी, हिण्डोला = झूलनामें, उभय जन = जीव, ईश्वर; ज्ञानी, अज्ञानी; गुरु, शिष्य; सिद्ध, साधक; ऐसे दो-दो जने लटकके, बिस्वाबीस = पक्का, सब प्रकारसे भवबन्धनोंमें ही पड़के बद्ध होकर झूले, और अभीतक झूल ही रहे हैं। चौरासी योनियोंके चक्रमें नीचे-ऊपर, दुःखी-सुखी हो रहे हैं। बिना पारख पञ्चकोश, पञ्चविषयके प्रपञ्चोंमें पड़के सब जीव जन्म, मरण, गर्भवासमें जा-जाकर त्रिविधिताप आदिके दुस्सह दुःख सह रहे हैं। कोई पारखी ही उससे न्यारे हो रहते हैं ॥ २९४ ॥

साखीः— जीव ईशमें भेद बहु । कहत सयाने लोय ॥
बिना जीवकी ईशता । कहु पण्डित किमि होय ? ॥२९५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! प्रथमके, सयाने = बड़े, बूढ़े, श्रेष्ठ कहलानेवाले, ब्रह्मादि, सनकादि, वशिष्ठ, व्यास, गौतमादि, गुरुवा लोग कहते हैं कि— जीव और ईश्वरमें बहुत बड़ा भारी भेद है । जीवको अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान्, परिछिन्न, अविद्याग्रसित, प्रतिबिम्ब, अंश, बद्ध, माया जालमें फँसा हुआ माने हैं । और ईश्वरको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, एक, अविद्यासे रहित, बिम्ब, अंशी, मुक्त, मायासे परे ऐसा ठहराये हैं । यही सब कल्पित कथन करके बहुत भेद बताये हैं । परन्तु, जीव चैतन्यसे जो रहित होता है, सो जड़, मुर्दा, निर्जीव कहलाता है, उसमेंसे कोई पुरुषार्थ हो ही नहीं सकता है । इसीसे जीवके रहे बिना, ईश्वरकी ईशता शक्ति कहाँ, कैसे रहेगी ? ज्ञान, श्री, ब्रह्माण्डता, यश, विद्या, और बल, ये षट्गुण-ऐश्वर्य निर्जीवमें कहाँ हो सकती है ? कहीं नहीं । अतः जीवमें ही वह षट्गुण घटते हैं । हे पण्डित ! जीवको छोड़के दूसरा कोई ईश्वर कैसे ? कहाँपर हो सकता है ? फिर इसका यथार्थ निर्णय करके कहो ? क्या तुम्हारे ईश्वरमें जीव नहीं है ? तो फिर निर्जीव ही होगा ? फिर उसमें ईशताकी सिद्धि कैसे हो सकती है ? मिथ्या भ्रम, भूलको छोड़ो, सत्सङ्ग विचार करके यथार्थ बातको समझो ॥२९५॥

साखीः— जागृत अव्याकृत बरण । तीहुँ पुर देत देखाय ॥
सो अव्या सुषुप्तिलों । अबरण होय रहाय ॥२९६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जाग्रत् अवस्थामें मनुष्य जीव, अव्याकृत = मन मायासे कल्पना किया हुआ, बरण = वर्ण, अक्षर-समूह, वाणियोंको, पढ़ते, सुनते, गुनते, दृढ़ करते हैं । उसीसे नानासिद्धान्त कथन करके कायम करते हैं । सो इसी प्रकार, तीहुँपुर = तीन शहर, तीन लोकरूप, त्रिगुणी मनुष्य, ज्ञानी,

योगी, भक्तोंमें भी वही वाणी कल्पना त्रिकाण्ड, तीन सिद्धान्त होके दिखायी दे रही है। अथवा जाग्रत्‌में कल्पनाकृत अक्षरोंकी मानन्दी स्वीकार करके ब्रह्मज्ञानी बने, तो उन्हें तीनों लोक चराचरमें एक ब्रह्म ही भ्रमसे दिखाई देती है। सो मानन्दी मिथ्या भास ही है। परन्तु सो, अव्या = माया, वाणी, कल्पनाकी अध्यास इधर जाग्रत्‌से लेकर स्वप्न, सुषुप्तितक अज्ञानरूपसे आवरणकर शून्यमें लय होके रहती है। फिर समय पायके उठा करती है। और उधर सो वाणी विद्या मायाकी मानन्दी जाग्रत् कर्म मार्गसे लेकर, स्वप्न उपासना मार्ग तथा ज्ञान सुषुप्ति योग, ज्ञान, विज्ञान मार्गतक, अवरण = निःअक्षर, निर्गुण ब्रह्म दृढ़ हो रहा है। सो सब मनकी धोखा है, विना पारख सब उसीमें भूले पड़े हैं। परख करके, सो भ्रमको मिटाना चाहिये ॥ २९६ ॥

साखीः— कबीर वेदान्ती कहत हैं। अबरण आतम रूप ॥
अब यह अबरण बोध दै। डारत भ्रम तम कूप ॥२९७

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! अद्वैत ब्रह्मवादी वेदान्ती लोग ऐसा कहते हैं कि— आत्मा या ब्रह्मका स्वरूप, अबरण = निःअक्षर, शब्दातीत, अवर्णनीय, अगम, अगोचर, निराकार, निर्गुण, सर्वव्यापक है। ऐसे ही ठहराके निश्चय करते, कराते हैं। परन्तु वह तो मिथ्या धोखा है। तो भी अबके वेदान्ती वही उपरोक्त कथन यह अवरण, अवाच्य, निःअक्षर, माना हुआ आत्मा या ब्रह्मका उपदेश ठहराव वर्णरूप अक्षर समूह वाणी कथन द्वारा ही बोध दे-दे करके अनुमान, कल्पनाको ही दृढ़ कर-कराके मनुष्योंको भ्रमाकर, तम कूप = महाअज्ञान गाफिलीका गड्ढा अन्धेरी कूआ धोखेमें ढकेलके चौरासी योनियोंके गर्भकूपमें डाल देते हैं। और वे सबको भ्रम-भूलकी तम-कूपमें खैंच-खैंचके डाल ही रहे हैं। इस तरह अपना-पराया अहित ही कर रहे हैं ॥ २९७ ॥

साखीः— कबीर अबरण चीन्हैं नहीं । वर्णहि अबरण होय ॥
अबरण जानै वस्तु कछु । मूरख कहिये सोय ॥२९८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो ! ये अबोध, अविवेकी नरजीव, अबरण = निःअक्षर, निराकार, निर्गुण माना हुआ ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि, जो कि— कोई वस्तु नहीं है, मनकी ही कल्पनामात्र है, सो उसे परख करके चीन्हते, पहिचानते तो नहीं हैं। झूठ मूठ ही उसे सत्य मान रहे हैं। देखो ! वर्ण = अक्षर जो है, उसे मेट-मिटा देनेपर, नाश होनेपर शून्य हो जाता है, वही अवर्ण शब्दसे रहित अवस्तु, अभाव होता है। अक्षर समूहसे वाणी होती है, उसे मिटा देनेसे निःअक्षर, खाली शून्य, हो जाता है। एक तो भाव होता है, उसीकी अपेक्षासे दूसरा अभाव कहा जाता है, सो निषेध है, कोई वस्तु नहीं ठहरता है। चार तत्त्वको अपेक्षासे पाँचवा शून्य आकाश कहा है। तैसे वर्णके अपेक्षासे अवर्ण, जगत्के अपेक्षासे ब्रह्म, आत्मादि माना है। परन्तु, वाणीके कल्पनामात्र होनेसे वह मिथ्या है, और जो कोई मतवादी मनुष्य अबरण = अक्षरसे रहित, शब्दातीत, अवर्णनीय माना हुआ ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, परमात्मा, खुदा आदिको कुछ सत्य वस्तु श्रेष्ठ, उत्तम पदार्थ, अलौकिक परमतत्त्व इत्यादि अनुमान करके मनकी भावनासे जो ऐसा जानते हैं या मानते हैं, अथवा उसे जानना, साक्षात्कार करना, तदाकार होना चाहते हैं, वैसे लोग विवेक, विचारसेहीन अनसमझ बेपारखी होनेसे निपट-मूर्ख ही कहलाते हैं। चाहे वे पढ़े-लिखे हों, वा अनपढ़ हों, तो भी पठित मूर्ख वा, अपठित मूर्ख ही कहे जाते हैं। कल्पनाको ही सत्य वस्तु माननेवाले मूर्ख नहीं तो कौन हैं ? । अतः पारख विचार करके सत्यासत्यके भेदको यथार्थ जानना चाहिये ॥२९८॥

साखीः— मायाको दुइ अङ्ग है । अबरण बरण स्वरूप ॥
भानु प्रकाशी बरणमें । अबरण राति अनूप ॥२९९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो !, मायाको = माया

कौन है कि— मन, तन, वाणी, कल्पना, गुरुवा, मानन्दी इत्यादि माया हैं। उसी मायाके मुख्य, दो अङ्ग = दो भाग वा दो खण्ड हैं। एक वरण = अक्षर-समूहका भाव शब्द स्वरूप है। दूसरा, अवरण = निःअक्षर, शब्दातीत, अवाच्य, अभाव, ब्रह्म, ईश्वरादिकी कल्पित स्वरूप है। उसमें, भानु प्रकाशी = सूर्यवत् ज्ञान-गुणका प्रकाशी, नरजीव सर्वसाक्षी दशाकी अनुभव अक्षरोंमें वाणीसे वर्णन करते हैं, सो ज्ञानी कहलाते हैं। और दूसरे, अवरण = निःअक्षर, अचिन्त्य, अगम्य, चराचरमें व्यापक, विज्ञान ब्रह्म कोई, अनूप = उपमासे रहित मानन्दी करते हैं, सो राति = महा गाफिली अन्धकार भ्रम-चक्रमें पड़े हैं। बिना पारख ज्ञान, विज्ञानकी भावना करके जीव सब भवबन्धनोंमें ही जकड़े पड़े हैं। अर्थात् अवरण वा वरण, अक्षर, निःअक्षर, ये दोनोंका स्वरूप वही मन-मायाके दो अङ्ग हैं। वरणमें भानु प्रकाशी = ज्ञान, सर्वसाक्षीपनाका उजियाला दिखाते हैं, आत्माको साक्षी कहते हैं, और अवरणमें जाके, अनूपम राति = विज्ञानपद व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी कर बैठते हैं। दोनों तरहसे जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही, गिर पड़ते हैं, बिना पारख ॥२९९॥

साखीः— नित्य कहत हैं आतमा। अनित्य कहत हैं देह ॥
यह दोनोंमें को तरै? कबीर अचम्भा येह ॥३००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! वेदान्ती लोग आत्माको नित्यतृप्त, नित्यमुक्त, निरामय, निरञ्जन, निर्गुण, निराकार, परिपूर्ण, सच्चिदानन्द इत्यादि विशेषण लगाके त्रिकाला-वाध्य, आत्मा, नित्य, एकरस है, ऐसा कहते हैं, और दूसरे पक्षमें शरीरको अनित्य, नाशवान, मिथ्या, प्रतीतिमात्र, असत्य, मायाके उपाधि भ्रममात्रसे खड़ा है, ऐसा कहते हैं। तहाँ "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापर"— ब्रह्म सत्य है, जगत् झूठ वा मिथ्या है, ब्रह्मसे जीव कोई दूसरा नहीं है। यह सिद्धान्त स्थापना करते हैं। उसमें, कबीर = हे नरजीवो! एक यही आश्चर्य होता है

कि— नित्य आत्मा, अनित्य देह, यही दोनोंमें कौन, कैसे तरेगा = कौन पार उतरके मुक्त होगा? क्योंकि, मुक्त आत्माको बन्धन नहीं है, और हो सकता भी नहीं है। तथा अनित्य शरीर तीन कालमें कभी मुक्त हो नहीं सकती है। फिर मुक्तिके लिये ब्रह्मज्ञान देना-लेना, व्यर्थ, निष्फल हुआ कि नहीं? यह अचम्भा देखो तो सही! जो बात असम्भव है, सोई करनेमें तत्पर हुए या हो रहे हैं। कितनी उल्टी समझवाले हैं। जगत् मिथ्या है, तो फिर तरना-तराना क्या होगा? कुछ नहीं। अतः यह बात सरासर भ्रम-भूलकी है, इससे किसीका कल्याण नहीं होता है। पारखी साधु गुरुकी सत्सङ्गमें परखकर वह भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये ॥ ३०० ॥

साखीः— तत्त्वमसि पद तीन जो। कहैं सबै सुख भौन ॥
पूरब किन्ह उतपति किया? सुनैसो पण्डित कौन? ॥३०१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! सब अद्वैत-वादी वेदान्तीलोग "तत्त्वमसि"— यह सामवेदके महावाक्यमें जो तीन पद है, सोई कहते हैं, तहाँ— त्वंपदवाच्य जीव, तत्पद-वाच्य ईश्वर और दोनोंकी एकता असिपद लक्ष ब्रह्म मानकर 'तू वह ब्रह्म है।' ऐसा गुरुवा लोगोंने कहा, उसीको शिष्य "अहं ब्रह्मास्मि" 'मैं ब्रह्म हूँ' कहै, तो द्वैतका बाध होके अद्वैत ब्रह्मस्वरूप ही हो जावेगा। फिर तीन पद मिटके एक पद आत्मा ही सर्वा-धिष्ठान रह जावेगा। सोई सच्चिदानन्द सुखस्वरूपका भवन, कल्याण वा मुक्तिका घर माने हैं। यानी तीनों पद जो हैं, सो तत्त्वमसिके लक्षांश विचारसे एक परमतत्त्व आत्मामें मिलके सुखका भण्डार-रूप महान सुख, परमानन्दको प्राप्त हो जाते हैं, ऐसा सब ब्रह्मज्ञानी लोगोंने कहे और कह रहे हैं। तो हे आत्मज्ञानी! यह भेद कहो कि— पूरब = सृष्टि उत्पत्तिके पूर्वमें जब एक ही ब्रह्म था, तब यह तत्, त्वं, असि, ऐसे तीन पदको किसने उत्पन्न किया? एक आत्मा सत्य है, यह किसने जाना? महावाक्यरूप वाणी वेदको किसने

पैदा किया? क्यों किसके वास्ते उत्पन्न किया? दुःख नहीं था, तो सुख काहेका होगा? एक आतमामें कौन शब्द कहेगा? कौन सुनेगा? कौन मूर्ख होगा? कौन पण्डित होगा? विना द्वैतके आत्मज्ञान कहने-सुननेवाला ऐसा पण्डित भी कौन होगा? हे पण्डित! इसका भेद बताओ, क्या बात है? दुःख बिना सुखका भास होता ही नहीं है। अतः जगत् सदासे ही था। तत्त्वमसि यह जो कहा, सो तो मनुष्यकी ही कल्पना है॥ ३०१॥

साखीः— जैसे मनोराजमें। विविधि मनोरथ होय॥
तैसे बहुत प्रकारके। मतवादी सब कोय॥ ३०२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! जैसे सूक्ष्म देहकी, मनोराजमें=मनकी सत्ता, सङ्कल्प-विकल्पमें विविधि मनोरथ होते रहते हैं। अर्थात् नाना प्रकारके मनका तरङ्ग, कल्पना, चाह, आशा, तृष्णा, इच्छा, वासना, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारकी जोर चञ्चलता होती ही रहती है। मन कभी स्थिर नहीं रहता है। कुछ-न-कुछ सङ्कल्प किया करता है। शेखचिल्लीके समान मन अपना मनोरथ लम्बा-चौड़ा बढ़ाया ही करता है, परन्तु, फायदा कुछ नहीं होता है। तैसे ही संसारमें षट् दर्शन— ९६ पाखण्डोंसे ले करके सहस्रों मतवाद जो फैले हैं, उनमें सब कोई मतवादियोंकी भी वही हाल है। बहुत प्रकारके मतवाद, वाणी-जाल बढ़ायके मनोराज्यमें ही दौड़ लगा रहे हैं। सबके-सब पक्के शेखचिल्ली बने हैं। मन-कल्पनासे कोई एक जगत्कर्ता सुख-दुःखोंका दाता परमेश्वर ब्रह्म, खुदा आदिको मानके उनके प्राप्तिसे मनोकामना पूर्ण होनेकी झूठी आशा लगा रहे हैं। चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग, ऋद्धि-सिद्धि करामात, मन्त्र सामर्थ्य आदिकी मिथ्या महिमा बढ़ाय, उसके प्राप्तिके लिये, जप, तप, व्रत, उपवास, भक्ति, योग, ध्यान, ज्ञान, इत्यादिकी नाना साधना करने-करानेमें लगे हैं। अनेकों वाणी बनाके झूठी आशा, भरोसा दे करके बहुविधि मतवाद

बढ़ाये हैं। भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनामें ही सब कोई फँसे पड़े हैं। अतएव पारखी साधु गुरुके सत्सङ्गद्वारा खानी, वाणीको ठीक तरहसे परख करके न्यारा होकर पारखपदमें स्थिर होना चाहिये ॥ ३०२ ॥

साखीः— कबीर निगुरा नरनको। संशय कबहुँ न जाय ॥
संशय छूटै गुरुकृपा। तासु बिमुख जहँड़ाय ॥३०३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! संसारमें जो कोई पारखी सद्गुरुके गुरुमुख पारखबोधसे रहित, मानुषरूपमें जीव हैं, वे निगुरा=गुरुबिमुखी कहलाते हैं। ऐसे निगुरा नर-जीवोंकी, संशय=भ्रम, दुविधा, कल्पना, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिकी झूठी मानन्दी, सन्देह, नहीं मिटती है, और कौन सत्य है? जगत् दिखता है, ब्रह्म नहीं दिखता है, तो क्या निश्चय करना चाहिये? इत्यादि भ्रम-भूल कभी भी उनके हृदयसे निवृत्त होके नहीं जाती है, क्योंकि, स्वयं चीन्हनेकी तो उसे शक्ति नहीं है, पारखी सद्गुरुका बोध नहीं लिया है, या लेता नहीं है, इसलिये ऐसे निगुरे लोगोंका संशय कदापि छूट नहीं सकता है। वह भ्रम-भूल, छूटनेका तो एक ही रास्ता है। जिज्ञासु बनके शुद्ध भावसे सत्य-न्यायी, बन्दीछोर पारखी सद्गुरुकी शरणागत होना, अभिमान गलित करके प्रेम-भावसे सेवा-टहल, बन्दगी, और सत्सङ्ग-विचार करते रहना चाहिये। जिससे पारखी सद्गुरुकी महान् कृपादृष्टि होगी, आप सब खानी, वाणीकी जाल-जञ्जाल कसर-खोट एक-एक करके रत्ती-रत्ती परखायके भेद बता देवेंगे। तब यथार्थ पारख स्वरूपका सत्यज्ञान प्राप्त होकर जिज्ञासुओंका सकल संशय, भ्रम, धोखा छूट जायगा, और निजस्वरूपकी स्थिति अपरोक्ष पारख होनेसे जीवन्मुक्ति हो जायगी। यह सब सद्गुरुकी दयासे ही होता है, और जो मनुष्य ऐसे बन्दीछोर पारखी सद्गुरुके तरफसे विमुख होकर, विरोधी, पक्षपाती, हठी, शठी, मतवादी बने रहते हैं। वे खानी, वाणीके महाजालोंमें

सब प्रकारसे जहँड़ायके बद्ध होकर जड़ाध्यासी बन गाफिलीसे बारम्बार चौरासी योनियोंमें ही भटक-भटककर दुस्सह दुःख भोगा करते हैं। अतः गुरुमुखी हो करके पारखबोध लेके अपना जीवन-सुधार, हित, कल्याण, करना चाहिये ॥ ३०३ ॥

साखीः— जेता ज्ञान जग देखिये । होत सबनको अन्त ॥
वस्तु प्रलय ना गहत है । सो कबीर निज सन्त ॥३०४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! एक पारख सत्य ज्ञानको छोड़ करके और अनेकों ज्ञान, मत, पन्थ, ग्रन्थ, नाना सिद्धान्त खानी और वाणीका विस्तार जगत्में जितने भी ज्ञान—जानने, देखने, सुनने, आदि पञ्च विषय सदृश ग्रहण करनेमें आते हैं। आप तटस्थ होके विवेक दृष्टिसे देखिये! सो उन सबोंका ही अन्त, नाश, लय, परिणाम बदल, फेरफार, उलट-पलट, शान्त और विनाश ही होता है। कोई भी मोटी, झीनी विषय शुद्ध एकरस, अखण्ड होके ठहरे नहीं रहता है। पारख कसौटी-पर कसनेपर सारे मतवादियोंका ज्ञान खण्डित, भ्रम, खोटा ही ठहर जाता है। इसलिये ब्रह्म, आत्मा, खुदा, नास्तिक तत्त्ववाद आदि सब ही असत्य होनेसे अन्तमें नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। उसे माननेवाले जड़ाध्यासी होके महाबन्धनमें ही पड़ जाते हैं। और प्रलय=नाशवान्, परिणामी वस्तु, जड़ चार तत्त्वोंके कार्य पदार्थ तथा पञ्च विषय एवं विपरीत भावना वाणीकी कल्पित मानन्दी देहके भास, अध्यास इत्यादि प्रलय होनेवाली वस्तुको तथा कभी-न-कभी बिगनेवाली चीजको ममता, मानन्दी, टिकायके जो ग्रहण नहीं करते हैं। परख-परखके सब मानन्दी वासनाओंको हटाते रहते हैं। जाग्रत् सावधान होके मनके द्रष्टा हो रहते हैं। हंसदेहके सद्गुण-लक्षण रहनी-रहस्यको सर्वाङ्गसे जिन्होंने धारण कर लिया है, सोई नरजीव कायावीर कबीर प्रथम पारखी सद्गुरुके पारखबोधको पूर्णतासे अपरोक्ष धारण करके निज चैतन्य हंस

स्वरूपमें स्थित, शान्त, निर्विकार, निर्भ्रान्त, निर्बन्ध, अटल, अचल, जीवन्मुक्त हो जाते हैं। सो ऐसे ही पारखी सन्त नरजीवोंका बन्धन छुड़ाकर मुक्ति देनेवाले होते हैं। सत्सङ्ग द्वारा सद्गुरुको पहिचान करके उनके ही शरण-सत्सङ्गमें लगकर अपना कल्याण करना चाहिये ॥ ३०४ ॥

साखीः—जिभ्या फिरै अनन्त गली। बरणि न सकै पुनि ताहि॥
सुर नर मुनि पीर औलिया। सकलों मारे जाहि ॥३०५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! कल्पित वाणी बोल-बोलके मुखमें जिभ्या फटाफट्-फटाफट् फिरती है, सो नर-जीवोंको, अनन्त गली = नानामत, नाना पन्थोंमें वा अनेकों सिद्धान्तोंमें लेके घूमता, फिरता, भटकता, भटकाता, रहता है। गुरुवा लोगोंने असंख्यों वाणी बोले हैं। बहुतेरे ग्रन्थोंमें लिखे भी हैं। वाणी कल्पना-का वारा-पार नहीं लगता है। बड़बड़-बड़बड़ मिथ्या बात बोलके जिभ्या हिलाया-फिराया करते हैं। बीजक, साखी ८४ में कहा हैः—

साखीः— "४ प्राणी तो जिभ्या डिगा। छिन-छिन बोल कुबोल ॥
मनके घाले भरमत फिरे। कालहिं देत हिण्डोल ॥"

इस प्रकार अनन्त वाणी जाल बिछे हुए गली-कूचियोंमें जीव रसनाके साथमें फिर-फिरा रहे हैं। अनेकों सिद्धान्त, मतवाद स्थापित किये हैं। फिर अन्तमें उसी वाणीकृत ब्रह्म, आत्मा, परमेश्वर आदिको वर्णन करके भी कहते हैं कि— उसका पूर्णभेद वर्णन हो नहीं सकता है। 'नेति-नेति श्रुतिः', उसके अन्त नहीं, इतना ही महिमामात्र नहीं, अकथनीय, मन, बुद्धि, वाणीसे परे परमात्मा है, और इससे ज्यादा कुछ कहा नहीं जा सकता है, ऐसा कहके धोखामें गरगाफ हो जाते हैं। इसीसे उस भ्रम-चक्रमें पड़के, सुर = देवता, सतोगुणी मनुष्य, ज्ञानी लोग, नर = रजोगुणी मनुष्य, कर्मी, भक्त-लोग, मुनि = शील मनन करनेवाले तमोगुणी मनुष्य, योगी, तपस्वी लोग और, पीर = मुसलमानोंके गुरुवा लोग, औलिया = सिद्ध, फकीर

लोग, पैगम्बर, इत्यादि सम्पूर्ण बिना पारख खानी-वाणीमें जा-जाके मारे जाते हैं। यानी भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर भवबन्धनोंमें पड़के दुःख ही भोगते रहते हैं और अभी अनेकों कष्ट, क्लेश भोग ही रहे हैं। गुरु पारख पाये बिना ऐसे ही दुर्गति होती रहती है ॥ ३०५ ॥

साखीः— अष्टावक्र देवदत्त जो । गर्भहि कथैं वेदान्त ॥
अवतरैं पुनि गर्भमें । जन्म भया पुनि अन्त ॥३०६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! गुरुवा लोग जो कहते हैं, सोई बात महाभारत, और पुराणोंमें भी लिखा है कि— कहोड़ मुनिका पुत्र, अष्टावक्र = जन्मते ही जिसका आठों अङ्ग टेढ़ा था, इसीसे रूप माफिक उसका अष्टावक्र नाम पड़ा। तथा देवदत्त वा वामदेव यह भी किसी ऋषिका पुत्र था। और शुकदेव, व्यास मुनिका पुत्र था। उन्होंने माताके गर्भवासमें रहते वक्तमें ही, वेदान्त = उपनिषद् ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञानका कथन, उच्चारण किया था, ऐसा कहते हैं। जब अष्टावक्र, देवदत्त आदिको गर्भमें ही ब्रह्मबोध हो गया था, जिससे उन्होंने गर्भमें ही वेदान्तका कथन किये। यदि यह बात ठीक है, तो वहींसे मुक्त क्यों न हो गये? फिर बन्धनको ग्रहण या स्वीकार करके गर्भमेंसे अवतार धारण करके, अवतरै = क्यों उत्पन्न हुऐ? जब देह धारण करके आये, तब गर्भमें ज्ञान कहाँ हुआ? पीछे उन्होंका जन्म हुआ, बालक, युवा, और वृद्ध अवस्था हुई, फिर अन्तमें मरण होकर नाश हो गये। पीछे फिर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही गये। क्योंकि, मैं सर्वव्यापक ब्रह्म हूँ! यह गर्व या हङ्कारको जीतेतक पकड़े रहे। इसीसे शरीर छोड़के चौरासी योनियोंमें ही गये। अब कहो, ब्रह्मज्ञान होनेका क्या विशेषता हुआ? आवागमन तो छूटा ही नहीं। जन्मलेके विषयोंमें न भूले हों, ऐसा भी नहीं। महाभारत आदि पुराणोंमें तो ऐसा लिखा है कि— अष्टावक्र, देवदत्त, वामदेव, और शुकदेव आदि सब भी गृहस्थ हुए थे, उन सबोंके सन्तान भी कई एक उत्पन्न हुए थे। अतः वे

खानी, वाणीमें फँसके भूले-भुलाके जड़ाध्यासी ही हुए थे। गर्भमें ही ज्ञान कथन होना, असम्भव है। किन्तु, गर्व (हङ्कार) में रहके वाणी कथन किया होगा, यह न समझके ऐसे मिथ्या मानन्दी करनेवाले जन्म-मरणादि चक्रसे कभी छूट नहीं सकते हैं, यह निश्चय है ॥३०६॥

साखीः—पूरब दोऊ चैतन्य रहे । भया किमि गर्भ निवास ॥
उपनिषद् कहि पितु मातुसो । जगत बीज किमि नाश ॥३०७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और, पूरब = प्रथम जब वे, दोऊ = अष्टावक्र तथा देवदत्त ये दोनों चैतन्य आत्मा, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रहे, वा पूर्ण ब्रह्मबोधवाले रहे; तो बताओ! गर्भमें उन्हें निवास ही क्यों भया? आत्मा व्यापक था, तो एकदेशी गर्भवासके बन्धनमें क्यों, कैसे, कहाँसे आया? जब बन्धनमें पड़े, तो मुक्त आत्मा कैसे ठहरा? और उन्होंने अपने माता-पितासे गर्भवासमें रहतेमें और बाहर आ करके भी, उपनिषद् = ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञान वर्णन करके कहा कि— मैं आत्मा हूँ, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त हूँ, सर्वव्यापक, परिपूर्ण ब्रह्म, सर्वाधिष्ठान है। तुम, हम, और जगत् सब एक अद्वैत ब्रह्म ही है। "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति"। अब विचार करिये! ऐसे धोखेका कथन, मिथ्या मानन्दीसे, जगत्के बीज, वासना, जड़ाध्यास, आवागमन कैसे नाश होगा? कभी न होगा। ब्रह्म बना, तो जगत्के मूल कारण ही हुआ, सब सूक्ष्मबीज वासना उनके हृदयमें रहीं। फिर वह समय पायके उगेगा ही। ऐसे ब्रह्मज्ञान तो महा भ्रम मिथ्या धोखा है। उसे माननेवाले बारम्बार चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े और पड़ते रहेंगे। अतः परख करके भ्रमको हटाना चाहिये, जड़-चेतनके भेदको अच्छी तरहसे जानना चाहिये ॥ ३०७ ॥

साखीः—द्रष्टा साक्षी वर्णन करैं । लाज न मारत गाल ॥
जगको साक्षी बनत हैं । सो कहि भयो न त्रिकाल ॥३०८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! ब्रह्मज्ञानी लोग

ब्रह्म या आत्माको सर्व द्रष्टा, सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ, चैतन्य, कह करके वर्णन किये और कर रहे हैं। ऐसे-ऐसे वाणी, बकवाद करके गाल मारते हैं, यानी कहनेमें बड़े पण्डित, चतुर वक्ता बने हैं। परन्तु, ऐसे गाल मारनेमें, बकने-झकनेमें उन्हें जरा-सी भी लाज, शरम, सङ्कोच नहीं होता है, बड़े बेहया, निर्लज्ज बने हैं। क्योंकि— जिस जगत्के वे द्रष्टा या साक्षी बनते हैं, सो तो उनके मत, सिद्धान्तमें भूत, भविष्य, वर्तमान ये त्रिकालमें कभी सत्य भया ही नहीं है; जगत् त्रिकालमें असत्य, मिथ्या प्रतीतिमात्र है, ऐसा कहते हैं? तो एकमें साक्षी कैसे बनेगा? जब द्वैत सत्य होवे, तब तो साक्षी हो सकता है। एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ मानते ही नहीं हैं, तो साक्षी किसके बनते हैं? इसलिये इनके असम्भव कथन दोषसे पूर्ण है। जड़-चैतन्य, नानात्त्व जगत् होनेपर तहाँ जड़के साची पृथक् जीव द्रष्टा हो सकते हैं। जगत् त्रिकालमें नहीं है, नहीं हुआ है वा नहीं होगा, एक अद्वैत ब्रह्म सत्य है; ऐसा कहते हैं, तो कहो भला! जगत्का साक्षी कौन, कैसे बनता है? ऐसे विपरीत बात, बन ही नहीं सकती है। बिना पारख वे मिथ्या धोखामें पड़े हैं ॥ ३०८ ॥

साखीः— सकल आचार्य कहत हैं। जग मिथ्या दरशाय ॥
मिथ्या माँहि दरशको। व्यापक कहैं बनाय ॥३०९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! वेद-वेदान्तके आचार्य, त्रिदेव, सनकादि, वशिष्ठ, व्यासादि, याज्ञवल्क्य, शङ्कराचार्य इत्यादि सब कोईने युक्ति-प्रयुक्तिसे जगत्को मिथ्या दरशाय करके एक अद्वैत ब्रह्मको सत्य कहे और कहते हैं। 'रज्जुसर्पवत्, शश शृङ्ग, खपुष्पवत्' जगत् मिथ्या है, प्रतीतिमात्र भ्रम है, इत्यादि प्रकारसे जोर लगाके जगत् पदार्थको मिथ्या दिखाके मिटाते हैं, द्वैतको खण्डन करते हैं। फिर कल्पित वाणी बनाय-बनायके कहते हैं कि— मिथ्या जगत्में ही द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, होता है, और सर्वत्र

परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म एक है। अब देखिये! ये कौन विचारकी बात है? पहिले तो एक सत्य और एक मिथ्या कहनेसे द्वैत ठहर ही गया। जड़-चेतन दो हुए बिना देखना-दिखाना, जानना-जनाना, कहना-सुनना कुछ होता ही नहीं है। दृश्य हुए बिना द्रष्टा कैसे होगा? व्याप्य पदार्थ न हो, तो व्यापक किसमें होगा? इस तरहसे विवेक करिये, तो वेदान्तियोंका कथन— जगत् मिथ्या दरशाना, फिर उसी मिथ्यामें ब्रह्मका दर्शन कराना, वाणी बनायके व्यापक कहना, यह सब पागलोंकी बकवाद मात्र है। उसमें कुछ सार विचार नहीं है। बिना पारख, भ्रम-भूलमें ही पड़े हैं ॥ ३०९ ॥

साखीः— कबीर द्रष्टाके निरूपते। द्वै द्रष्टा तब होय ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता! द्रष्टा एक कि दोय? ॥३१०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जब वेदान्ती लोग आत्मा या ब्रह्मको द्रष्टा बतलाते हैं। तब द्रष्टाका निरूपण, कथन, प्रतिपादन करनेसे तहाँ एक, तो निरूपण करनेवाला द्रष्टा चैतन्य नरजीव हुआ, जिसने कि— ब्रह्म, ईश्वरादिको देखा या माना, और दूसरा, वही प्रतिपादन किया हुआ ब्रह्म, आत्मा आदि द्रष्टा माना गया। ऐसे दो द्रष्टा साबित हुए। फिर एक दृश्य हुआ, तो दूसरा द्रष्टा हुआ, जो कुछ भी निरूपण करोगे, तहाँ, एकके बजाय दो-दो ही ठहरता जायगा। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं किः— हे पण्डित! बुद्धिमान्! अब निर्णय करके कहो कि— संसारमें द्रष्टा एक है कि दो हैं? तुम कैसा मानते हो? एक कहोगे, तो निरूपण करना मिथ्या हुआ। दो कहोगे, तो अद्वैत मतका खण्डन हो गया। इस कारण, इन ब्रह्मवादियोंका कथन सब व्यर्थ असत्य है। द्रष्टा, दृश्य, दर्शन यह तीनों भिन्न-भिन्न हैं, वह कभी एक हो नहीं सकता है। ब्रह्म तो भ्रम है। अतः चैतन्य जीव ही सत्य है, ऐसा जानना चाहिये ॥३१०॥

साखीः— कबीर साक्षीके निरूपते । द्वै चेतन तब होय ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता ! चेतन एक कि दोय ? ॥३११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! वैसे ही एक साक्षीके, निरूपण = वर्णन, कथन, प्रतिपादन, ठहराव करनेसे तब भी चैतन्य दो ही हो जाते हैं। एक, तो यह निरूपण करनेवाला, चैतन्य जीव साक्षी कि— जिसने वाणी, विषय आदि सबको जाना, पहिचाना, समझा, बूझा, और दूसरा, वह प्रतिपादित ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि जगत्के साक्षी ठहराया हुआ बना। इस तरह एक जीव चैतन्य, दूसरा ब्रह्म चैतन्य, दो ही साबित हुए। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— हे पण्डित! अब सोच-विचारके कहो, संसारमें चैतन्य एक है कि, दो है ? तुम कैसे मानते हो ? एक ब्रह्म चैतन्य कहोगे, तो सो वह तुम्हारे मनके भ्रममात्र होनेसे असत्य है। और तुम कहनेवाले उससे न्यारे साबित हुए ही। यहाँ तुम्हारा पूर्व प्रतिपादन मिथ्या हुआ। यदि दो चेतन होना कबूल करोगे, तो अद्वैत मत नष्ट हो जायगा। नानात्त्वसहित द्वैत हो सिद्ध होगा। इसलिये यहाँ तो अनन्त चैतन्य जीव प्रत्यक्ष ही सत्य हैं। अतः एक ब्रह्म निरूपण किया हुआ सर्वथा मिथ्या है, ऐसा जानो ॥ ३११ ॥

साखीः— कबीर व्यापकके निरूपते। द्वै व्यापक तब होय ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता ! व्यापक एक कि दोय ? ॥३१२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! तैसे ही एक व्यापकके निरूपण करनेसे तब भी दो व्यापक हो जाते हैं। एक, तो निरूपण करनेवाला जो स्वयं कल्पनासे व्यापक होके जानता भया। दूसरा, जिसे उसने माना, सो ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वरादि व्यापक ठहराया। तब इस तरीकेसे व्यापक भी दो-दो हो गये। अथवा एक व्याप, दूसरा व्यापक हुआ। बिना व्याप्यरूप एकदेशीय

पदार्थके हुए व्यापकरूप सर्वदेशी हो ही नहीं सकता है, और एक, आकाश व्यापक कहा है, दूसरा, ईश्वर व्यापक, तीसरा, ब्रह्म व्यापक माने हैं। विचार करिये! एक जगहमें तीन तरहके व्यापक भी कैसे समायेंगे। एक शून्य है, दूसरा वैसे ही शून्य, वहाँ, कहाँसे, कैसे आयेगा? फिर रहेगा कैसे? इसी तरहसे आकाशको व्यापक मानके उसमें और ब्रह्म, ईश्वरादिको व्यापक कहना भी महा भूल है। एक व्यापक कहा कि— तो वहीं दो व्यापक हो जाते हैं। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— हे पण्डित! बुद्धिमान् लोगो! कहो तो भला! व्यापक एक है कि, दो है? तुम कैसा मानते हो? एक कहोगे, तो तुम्हारा निरूपण करना सरासर झूठा हुआ। यदि दो व्यापक मानोगे, तो वह असम्भव बात होगी, फिर अद्वैत मत भी खण्डन हो जायगा। वास्तवमें तुम्हारा व्यापक माना हुआ ही असत्य भूल है। संसारमें कोई पदार्थ कहींपर व्यापक है ही नहीं है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा इसका यथार्थ भेद जानना चाहिये ॥ ३१२ ॥

साखीः— छौ आचार्य छौ शास्त्रके । कीन्हों शास्त्र प्रचार ॥
कौन शास्त्र वे पढ़िके ? कीन्हों शास्त्र विचार ॥३१३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! पहिले भारतवर्षमें हिन्दू-समाजके पूर्वाचार्य षट्शास्त्र प्रगट कर्ता, षट्ऋषि, मुनि मुख्य हुए हैं। उनमें—१. मीमांसा शास्त्रके आचार्य जैमिनी हुए। उन्होंने कर्मवादका प्रचार किया है। २. वैशेषिक शास्त्रके आचार्य कणाद भये। काल वा समयवाद प्रधान उन्होंने किया है। ३. न्यायशास्त्रके आचार्य गौतम भये। एक ईश्वर कर्तावादका उन्होंने प्रचार किया है। ४. पातञ्जल-योगशास्त्रके आचार्य पातञ्जली हुए। ज्योतिस्वरूप ईश्वर दर्शन करानेवाला योगवाद उन्होंने प्रचार किया है। ५. सांख्यशास्त्रके आचार्य कपिल मुनि हुए। तो उन्होंने प्रकृति, पुरुष विवेकवादसे कल्याण होनेका प्रचार किया है। और ६. वेदान्त

शास्त्रके आचार्य व्यास हुए। उन्होंने एक अद्वैत ब्रह्मवादको सत्य ठहराके प्रचार किया है। इस प्रकार षट्शास्त्रोंको बनानेवाले षट्दर्शन षट्वादको माननेवाले छैः आचार्य प्रसिद्ध भये हैं। उन्होंने उपरोक्त षट्शास्त्र अपने-अपने बुद्धि, विचार, कल्पनासे बनाय-कर निज-निज सिद्धान्तको जनतामें जोर-शोरसे प्रचार किये हैं। अपने-अपने मतको युक्ति-प्रयुक्तिसे सत्य बताकर तर्क, वितर्कसे अन्य मतवादको मिथ्या बताये हैं। अब बताइये! प्रथम सो वह षट्शास्त्र तो रहा ही नहीं, फिर उन्होंने और कौनसा शास्त्र, पढ़, सुन, गुन करके विचार किया? और उसीमें मिलता-जुलता हुआ अपना शास्त्र बनाये? जब षट्शास्त्र ही नहीं था, तो क्या पढ़के विचार करते? इसीसे मालूम हुआ कि— उन सबोंने जैसा-जैसा मन-मानन्दी कल्पना दृढ़ हुआ, वैसा-वैसा ही वाणी लिखके शास्त्र बना दिये हैं। अतः वह पारखियोंको प्रमाणिक नहीं हो सकती है। खाली भ्रम कल्पनाका ही पसारा किये हैं। मुख्य सार उसमें कुछ नहीं है, अतः सो त्याज्य है ॥ ३१३ ॥

साखीः— कबीर व्यास वेदान्तमें । मिथ्यावादी होय ॥
है तासो दीसै नहीं । ताहि निरूपै सोय ॥ ३१४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो! वेदव्यास जो ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ, विद्वान् माने गये हैं। वेदान्त सूत्रके कर्ता वे वेदान्तके आचार्य ही कहलाते हैं। उन्होंने वेदान्त ग्रन्थ, ब्रह्मसूत्र, उत्तरमीमांसा ग्रन्थमें बहुत प्रकारसे एक अद्वैत ब्रह्म सत्य, चराचर जगत् मृगजलवत् भ्रान्तिमात्र मिथ्या यही प्रतिपादन करके अपने बुद्धिमत्ता दरशाय, सम्पूर्ण बल अद्वैत सिद्ध करनेमें ही लगाया है। परन्तु, सत्यन्याय निर्णयसे देखिये! तो उनके अद्वैत कथन बिलकुल झूठ होनेसे वे ब्रह्मवादी सरासर मिथ्यावादी हुए हैं। क्योंकि, जब उन्हें द्वैत भासता ही नहीं था। तो ग्रन्थ लिखने, प्रचार करने, सिद्धान्त स्थापित करने, शास्त्रार्थ करने, इत्यादि

कार्यमें विशेष परिश्रम, क्यों उठाये ? एक ही है, तो निरूपण किसके लिये क्या चीजका किये ? पक्षपातके मारे मिथ्यावादी बने, तो कुछ जरा भी विवेक, विचार रहा ही नहीं। और जो जीव चैतन्य इस देहमें प्रत्यक्ष सत्य है, उसको तो विवेक करके देखते ही नहीं। जड़, चेतन न्यारा-न्यारा है, विचार दृष्टिसे उसे भी नहीं देखते हैं। जो ब्रह्म कहते हैं, सो तो किसीको कहीं पर भी कुछ दिखता ही नहीं। जो वस्तु कुछ नहीं है, उसे ही ब्रह्म, परमात्मा, निराकार, निर्गुण, व्यापक, कहके निरूपण करते हैं, उसे ही श्रेष्ठ माने हैं। इससे वे मिथ्यावादी भ्रमिक हो जहँड़ा गये हैं ॥ ३१४ ॥

साखीः—– मुखिया गौनी लक्षणा । वाणी वरणौ तीन ॥
कहहिं कबीर यह वैखरी । चीन्है सो परवीन ॥३१५॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने शास्त्र प्रमाणसे तीन प्रकारके शब्द कहे हैंः— तहाँ, मुखिया = मुख्य प्रधान ब्रह्म सिद्धान्तकी वाणीको यथार्थ वाणी कहे हैं। गौनी = गौण, मध्यम बीचकी उपमा देके कथन किया हुआ वाणीको स्थूल व्यवहारिक कहते हैं। और तीसरा, लक्षणा = भाग-त्याग-लक्षणा लगाके जीवकी अल्पज्ञता एकदेशीय भावको छोड़ देना और ईश्वरकी सर्वज्ञता सर्वदेशीय भावको भी छोड़ देना, इन दोनों उपाधि भागको त्यागकर दोनोंकी चेतनतामें लक्ष लगाना, तब तो सो वही एक ब्रह्म ही है, दूसरा, द्वैत कुछ नहीं है। इस तरह अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त ठहराते हैं। ऐसे तीन प्रकारके वाणी जाल वर्णन किये हैं। वही, मुखिया = ब्रह्ममुख है। लक्षणा = मायामुख है। गौनी = जीवमुख है। सोई तीन मुखकी वाणी सारे संसारमें वर्णन किये, और कर रहे हैं। वह सब जीवोंको भ्रमा-भुलाकर बाँधनेवाला कठिन जाल ही है। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको, पारखी सन्त कहते हैं कि— वह सब, वैखरी वाणी = मुखसे निकले हुए बोल-चालके शब्दजाल ही लिखके रखे हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा ये, तीनों वाचाके भाव

वैखरी वाचासे ही निकलती है। सो सब तीनों वाणी वैखरीका ही विकार हैं। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा गुरुमुख वाणी सारशब्दसे सार, असार, जड़, चेतन, बन्ध, मुक्ति आदिके भेदको यथार्थ रीतिसे जो चीन्हते, परखते हैं, सोई प्रवीण पारखी, चतुर, बुद्धिमान्, होकर अपना हित-कल्याण करते हैं। वाणी जालसे निकलके, हंसपदमें स्थिति कायम करके मुक्त हो जाते हैं ॥ ३१५ ॥

साखीः—— जबते ब्राह्मण जन्मिया । तबते परा धन लोप ॥
दया अक्षर कबहूँ नहीं । इन्हते कौन बिछोप? ॥३१६॥

टीकाः—— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जबसे यह जीव ब्राह्मणके घरमें जाके जन्म लिया है, तभीसे उस जीवका और दूसरे यजमानोंकी भी, धन=जीवन धन, चेतन स्वरूपकी बोध सत्य, विचारादि हंस गुण-लक्षणादि उत्तम धन एकदम लुप्त, सुप्त, गायब हो गया, दूसरेके हाथ पड़ गया। सबसे श्रेष्ठ चैतन्य जीव है, जीवके ऊपर कोई शिव मालिक नहीं है, यह समझ नहीं पड़ा। इसीसे अपना मूल धन लोप हो गया, दयाका अक्षरशः पालन उनसे कभी नहीं होता है। दया अक्षरको तो वे कुछ समझते ही नहीं हैं। नाना यज्ञ-याग करायके वहाँ धर्मके नामसे जीव-हिंसा ही करते-कराते हैं, तहाँ सद्गुरुने बीजक में, कहे हैंः——

"धर्म करै जहाँ जीव बधतु हैं। अकर्म करै मोरे भाई! ॥ ५ ॥
जो तोहराको ब्राह्मण कहिये। तो काको कहिये कसाई ॥" बी० शब्द ४६॥
"कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! कलिमा ब्राह्मण खोटे ॥" बी० शब्द ११॥
"बड़ सो पापी आहि गुमानी। पाखण्डरूप छलेउ नर जानी ॥१॥
बावनरूप छलेउ बलिराजा। ब्राह्मण कीन्ह कौनको काजा? ॥२॥
ब्राह्मण ही सब कीन्ही चोरी। ब्राह्मण ही को लागल खोरी ॥३॥
ब्राह्मण कीन्हों वेद-पुराणा। कैसेहुकै मोहिं मानुष जाना ॥४॥"
॥ बीजक, रमैनी १४ ॥

इसलिये दया अक्षरको तो वे कभी पालन करते ही नहीं हैं। फिर कहिये इन लोगोंसे और बढ़ करके, बिछोप = नीच, निर्दयीपन पकड़नेवाला क्रूर दुष्ट कौन होगा? अतः ब्राह्मण लोग ज्यादे ही निर्दयी, घातकी, स्वार्थी, प्रपञ्ची होते हैं। अथवाः—

श्लोकः— "जन्मनाज्ञायते शूद्रः संस्कारोद्विज उच्यते॥
वेदभ्यासी भये विप्र ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥"

इस प्रमाणसे जबसे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकी उत्पत्ति तथा ब्रह्मज्ञानका प्रकाश हुआ, तबसे धनरूप चेतन जीवके ऊपर आवरण भ्रम, भूल, धोखाका पर्दा पड़ा, विवेक-विचारका लोप हो गया। सबको एक ब्रह्म मानके विधि-निषेधको छोड़ दिये। अक्षररूप अविनाशी जीवपर उन्होंने बड़ी निर्दया किये। अब उनसे निज-पर दया धर्मका पालन कभी भी नहीं होता है। कहिये! फिर इन्होंसे कौन, किसका क्या हित, भलाई या कल्याण होगा? कुछ नहीं, इनसे ज्यादे निर्दयी, निर्बुद्धि गाफिल तो कोई दिखते भी नहीं हैं। अतः इन अविचारी ब्राह्मण समाज और ब्रह्मज्ञानियोंके कुसङ्गसे दूर रहनेमें ही भलाई है॥३१६॥

**साखीः— कबीर ज्ञान कृष्णको गीता। पढा चाहैं लोग॥
कृष्ण कौन गीता पढ़िके। कीन्ह गीता संयोग॥३१७॥**

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! संसारमें सब हिन्दू सम्प्रदायके मनुष्य लोग ब्रह्मज्ञान, विज्ञान बोध प्राप्तिके लिये— कृष्णने कथन करके महाभारत युद्धके शुरूमें जो बात अर्जुनको सुनाया था, सो श्रीमद्भगवत् गीता नामके पुस्तकको पढ़-पढ़, पढ़ा-पढ़ाके ब्रह्मज्ञानी हो, सब लोग अपना कल्याण करना चाहते हैं। उसके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। गृहस्थ, भक्त, साधु-सन्त आदि कृष्णके गीता-को माननेवाले बहुत लोग हैं। वे रात-दिन गीता पढ़-पढ़ाके रटकर कण्ठाग्र कर लेते हैं। उससे आत्मज्ञान प्राप्त करके मुक्त होना चाहते हैं। तहाँ उन लोगोंसे प्रश्न होता है कि— अरे! भूले हुये मनुष्यो! तुम लोग गीताके भरोसे क्या धोखेमें पड़ रहे हो? यह बात बताओ!

कि, कृष्णने कौन-सा गीता पढ़के फिर इस गीताको शब्द संयोग करके कहे थे, या बनाये थे ? तब पहिले कोई गीता तो थी नहीं, गीता पढ़े बिना ज्ञान होता नहीं, ऐसा तुम लोग समझते हो, तो कृष्णने पहिले कोई भी गीता नामक पुस्तक पढ़ा नहीं, तब उसे ज्ञान हुआ ही नहीं होगा। अज्ञान या विज्ञानके भ्रममें पड़के जो वाणी स्वार्थ-साधनके लिये, युद्ध करायके महान जीव-हत्या करानेके लिये अपने मतलबके वास्ते युद्ध स्थलमें जो बात अर्जुनको कृष्णने कही है, सो उसीको तुम लोग बड़ा गीता मान-मानके भूल रहे हो। कृष्णार्जुन सम्वादमें वह गीताकी पद रचना, तो व्यास कृत कहलाता है। फिर कहो ! कृष्णने और कौन गीता पढ़के इस गीताकी संयोग एकत्र किये ? आखिरमें वह कृष्णके मनकी कल्पना वाणी-जाल ही तो ठहरी। बिना पारख वह गीता कहने, सुनने, लिखनेवाले क्रमशः कृष्ण, अर्जुन, व्यास, आदिके ही कल्याण, मुक्ति उससे नहीं भयी, जड़ाध्यासी ब्रह्म हो, जगत्‌रूप हो रहे। फिर तुम लोगोंकी मुक्ति उससे कैसे, कहाँसे होगी ? कदापि नहीं होगी। अतः उस भ्रम, धोखाको त्यागके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके जीवन सुधार करो ॥ ३१७ ॥

साखीः—जगत सगाई त्यों लही। चीन्हत नाहीं कोय ॥
ज्यों तेलीके बैल सङ्ग। कुम्भइनी सति होय ॥३१८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! यथार्थ भेद सत्य-सारको परख करके तो ये मतवादी लोग कोई भी चीन्हते, पहिचानते नहीं हैं। जगत्‌में धूर्तोंके कहनेसे झूठ-मूठकी सगाई-प्रीति, तैसे ही पकड़े हैं कि— जैसे एक तेलीका मोटा-ताजा बैल था, एक दिन वह बैल अचानकमें ही मर गया। उस वक्त दूसरे गाँवकी कुम्हारकी स्त्री उस गाँवमें बर्तन बेचनेको आयी थी। तब दो-चार धूर्तोंने उसके मसखरी, मजाक उड़ानेके लिये झूठ ही उससे आके कह दिया कि— काकी ! देखो ! यह तेलीका बैल तुम्हारे पूर्वजन्मका

खसम था, मरते समयमें इसने तुम्हारा बहुत याद किया था, संयोगसे तुम आ गयी हो, अब जैसा ठीक जान पड़े, वैसा करो, इत्यादि वचन उन ५ । ७ धूर्तोंकी सुन करके उस भोली-भाली कुम्हारिनने भी अन्धविश्वास करके तेलीके मृतक बैलको अपने पूर्व जन्मका पति मान लिया, और विलाप करके चिता बनाय, उसी बैलके साथ सती हो गयी, चिताके अग्निमें जल मरी, बिना विचार प्राण गँमाई ॥ और दूसरी घटनामें एक तेलीका बछड़ा खो गया, तो उसी कुम्हारिनके बहिनने अपने घर लेजाके बाँध ली । तेली उसे ढूँढ़ता हुआ आया, उसके घरमें अपना बछड़ा बँधा देखके तकरार करके खोलने लगा, कुम्हारिन बोली— अरे भले मनुष्य ! जरा मेरी बात सुन ! यह बछड़ा मेरा पूर्वजन्मका पुत्र या खसम था, सो मेरे पास आप हो आ गया है, सो इसे मैं तुम्हें ले जाने नहीं दूँगी । देख ! अमुक तेलीके बैल मरा, तो मेरी बहिन सती हो गयी थी कि नहीं ? वह सत्य था, तो यह भी सत्य है । तेली बोला— यह कैसे हो सकता है ? । कुम्हारिनने साक्षी-पुरावाके लिये गाँवके ८ । १० लोगोंको पट्टी पढ़ा लाई, उन सबोंने आके साक्षी-पुरावा दे दिया कि, यह बछड़ा इसीका पूर्वजन्मका सम्बन्धी था, इसे तुम नहीं ले जा सकते हो, जाओ ! इत्यादि कहा, डाँटा, तब वह विचारा तेली धूर्तोंके पाले पड़के अपना-सा मुँह लेके खाली हाथ लौट पड़ा ॥ इसी प्रकार धूर्त गुरुवा लोगोंके दाव, पेंच, वाणी-जालमें पड़के जगत्‌में अबोध मनुष्योंने ब्रह्म, परमात्मा, खुदा, दश अवतार आदिको अपने पूर्वजन्मके मालिक, पति, अंशी, अधिष्ठान, कारण मान-मानके तैसे ही मिथ्या सगाई, प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करके, नाना साधनोंका कष्ट सहनकर पञ्चाग्नि आदिमें जलकर जड़ाध्यासी होके मर रहे हैं, बिना पारख उस भ्रम-धोखाको कोई भी चीन्हते नहीं हैं । तेली = गुरुवा लोगोंके, बैल = वाणीके सङ्गमें, कुम्भइनी = भक्त लोग सती हुए या हो रहे हैं, बिना विवेक ॥ ३१८ ॥

साखीः— छिन माहीं जग सत्य करै । छिनमें मिथ्या भास ॥
दुइ मँड़वाके श्वान ज्यों । झाँकत परा उपास ॥३१६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ये भ्रमिक वेदान्ती लोग क्षणभरमें तो जगत्‌में सब पदार्थ सत्य प्रतीत करके गुरु बनके उपदेश देते हैं, ज्ञान साधना, करते-कराते हैं, पढ़ते-पढ़ाते हैं। सत्य ही समझके सब कार्य करते फिरते हैं, और कभी क्षणभरमें ही "एकोब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि" आदि वाणीका नशा भ्रम चढ़ायके जगत्‌को मिथ्या भास प्रतीतिमात्र बतलाते हैं, द्वैतको भ्रम भासमात्र समझते हैं। कभी सत्यका भास, कभी असत्यका भास, जगत्‌विषे उन्हें होता रहता है। कोई एक निश्चय नहीं कर पाते हैं। "दुविधामें दोनों गया। माया मिली न राम"— ऐसी हाल उनकी हो गयी। जैसे एक समय दो जगह विवाह आदि उत्सवका मँड़वा लगा था। तो वहाँ भोज, भण्डारा होते हुए एक कुत्ताने देखा। वह चञ्चल पशु एक जगह स्थिर होके रहता नहीं था, दोनों जगहोंका भोजन खाने, पत्ते चाटनेकी आशा, तृष्णासे क्षण-क्षणमें इधर-उधर झाँकता फिरता था, तबतक दोनों जगहकी पङ्गत उठी, पत्तल फेंके गये, दूसरे कुत्ते आके पत्तल चाट गये। ये झाँकनेवाला कुत्ता उपासमें ही पड़ा, भूखे ही रह गया। "धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका" अगर वह कुत्ता कहीं एक जगह भी बैठा रहता, तो कुछ-न-कुछ खानेको पाता ही। परन्तु, उसे धैर्य कहाँसे आवे? बड़ी डबल आशामें पड़ा था, दोनों जगहोंका माल उड़ाना चाहता था, इसीसे घड़ीमें दौड़के उधर मीलों दूरको चला जाता था, फिर क्षणभरमें ही लौटके इधर आ जाता था। इसी दो तरफकी दौड़में उसे खानेको कुछ नहीं मिला, तो उपवासमें ही भूखे रहना पड़ा। इसी तरहसे ब्रह्मज्ञानी लोगोंकी भी दुर्दशा होती है। वे क्षणमें ही कभी तो जगत्‌को सत्य कथन करते हैं, और कभी मिथ्या भास बताके निषेध करते हैं, और कभी जगत्‌में देहके मँड़वामें विषयानन्द चाहते हैं, और

कभी इससे भी बड़ा आनन्द प्राप्तिकी आशासे वाणीकी मँड़वामें ब्रह्मानन्द, परमानन्दकी, तृष्णाके अनुमान, कल्पनामें दौड़ पड़ते हैं। तहाँ पिण्ड, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, जगत्, और खानी, वाणी, सूक्ष्म, स्थूल, प्रवृत्ति, निवृत्ति इत्यादि दोतर्फी द्वैत, अद्वैतकी बड़ी मँड़वामें झाँकते-झाँकते थकित हुए, हाथमें मुक्तिरूपी भोजन कुछ नहीं आया। नाहक आयु बिताके, उपास=जड़ाध्यासी हो चौरासी योनियोंके दुःखमें ही पड़े रहे, बिना पारख। अतः ऐसे भ्रमिक मिथ्या मानन्दी-को त्यागकर पारख विचार करना चाहिये ॥ ३१९ ॥

साखीः— काल-काल सब कोइ कहै। काल न चीन्है कोय ॥
कालरूप है कल्पना। करते उपजा सोय ॥३२०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! संसारमें सब कोई काल-काल पुकारते, चिल्लाते हुए कालको बड़ा मानते हैं, और कणादने तो वैशेषिक शास्त्र बनाके कालरूप समयको ही ब्रह्म, परमात्मा ठहराये हैं। बेपारखी लोग कोई भी असली कालको चीन्हते, पहिचानते नहीं। देखिये! काल, अकाल, महाकाल, सुकाल, दुकाल, विकराल, भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यत्काल, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल, शुभकाल, अशुभकाल, जन्मकाल, जीवन-काल, मृत्यु-अन्तकाल, इत्यादि अनेकों प्रसङ्ग-समयको ही सब कोई मनुष्य काल है, महाकालके आधीनमें सब कार्य होता है। कालको कोई जीत नहीं सकता है, एक परमात्मा ही कालसे परे हैं, वे जो चाहैं, सो कर सकते हैं, उन्हींका ध्यान, स्मरण किया करो, इत्यादि अविचारकी बात तो सब कोई कहा करते हैं। परन्तु, उससे भी जबरदस्त एक भयङ्करकाल है, जो सब जीवोंका सत्यानाश करता है, उसे बिना पारख कोई भी चीन्हते नहीं हैं। इसीसे धोखेमें पड़के मारे जा रहे हैं। सुनो! वह काल कौन है? मैं बता देता हूँ! कल्पना, मानन्दी, मिथ्या पक्ष जो है, सोई कालका असली काला स्वरूप है, और दूसरा कोई कालका स्वरूप नहीं है। जड़ प्रकृतिकी

बाह्य-ब्रह्माण्डका समय, और कर्मानुसार पिण्ड-देहादिका समय तो होते रहते हैं। उससे जीवोंकी उतनी विशेष कोई हानि नहीं होती है। परन्तु, कल्पना, भ्रम, भूल, अध्याससे तो बड़ी भारी हानि होती है, अनेकों जन्मोंतक दुःख भोगते रहना पड़ता है; और, करते = चैतन्य जीव कर्ताके कर्तव्यसे तन, मन, सम्बन्धका हाथसे ही सोई कल्पना, जड़ाध्यास भूलसे उत्पन्न होता है, हुआ है, और हो रहा है। उसीकी फेरामें पड़के सब जीव आवागमन चौरासी योनियोंमें नाना दुःख भोग रहे हैं। अतः अभी उसे गुरु निर्णयको समझकर पारख बोधसे मिटाना चाहिये ॥ ३२० ॥

साखीः—करते उपजा काल सोई । चढ़ा सबनके शीश ॥
कहहिं कबीर कोइ ना लखै । मानै करि जगदीश ॥३२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे जिज्ञासुओ!, करते = कर्ता, चैतन्य नरजीवका कर्तव्यरूपी हाथ वा, साथसे जो-जो कल्पना, अनुमान, भास, अध्यास, भ्रम, भूल, वासनादि उत्पन्न हुआ, सोई महाकाल बड़ाघात, हानि करनेवाला है। सो ऐसा प्रचण्ड निकला कि—नरजीवोंसे कल्पना उत्पन्न होते ही उछल-कूदके एक झपाटेमें ही सब मनुष्योंके शिरपर चढ़ बैठा, और सबोंकी चोटी या शिर पकड़कर जहाँ-तहाँ फिराने, भटकाने लगा। अथवा सबके अन्तःकरणमें वह कल्पना आरूढ़ होके चढ़ा, तो वही श्रेष्ठ बन बैठा। सबको नीच बनाके नचाने लगा। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको जाननेवाले पारखी सन्त पारख-दृष्टिसे ऐसे विपरीत देख करके कहते हैं कि— हे सन्तो! ऐसे अनर्थको भी विवेक-दृष्टि न होनेसे कोई लखते नहीं हैं; जानते-पहिचानते नहीं हैं। अन्धे बने हैं, इससे उसके स्वरूपको कोई देखते ही नहीं हैं, बल्कि उल्टे ही कल्पना करके मनके मानन्दी, भ्रम कल्पनाको ही जगत्‌कर्ता, सुख-दुःखका दाता, सर्वशक्तिमान् कोई एक जगदीश्वर, परब्रह्म, परमात्मा, खुदा, अल्लाह, ऐसा समझ करके माने हैं, और उसे ही मानते जाते हैं। भ्रमिक-

श्रीक० प० सा० १९½—

लोग कर्ता— ईश्वरवादी बने हैं। अपने चैतन्य-स्वरूपको तो कुछ पहिचानते नहीं हैं। कोई एक जगदीश्वर मनकी कल्पनाको अपना मालिक मान करके उसीका भरोसाकर, आशा लगाके महाधोखामें पड़े हैं। अतएव मुमुक्षुओंको चाहिये कि— पारखी सत्यन्यायी सन्तोंके सत्सङ्ग-विचारमें लगकर सत्यासत्यको यथार्थ पहिचान करें। भ्रम-भूलको मिटा करके निज चैतन्य-स्वरूपमें स्थिति कर सब बन्धनोंसे रहित होना चाहिये ॥ ३२१ ॥

साखीः— जेहिते सब जग ऊपजा। सोई सबनकी आदि ॥
ताकी पारख ना करी। गये कबीरा बादि ॥ ३२२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ! वास्तवमें यह चराचर जगत् सम्पूर्ण तो उत्पत्ति-प्रलयसे रहित अनादि स्वतःसिद्ध है। इसके लिये उत्पत्तिकर्ता माननेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। यदि माना भी तो वह असम्भव होनेसे व्यर्थ मिथ्या होगा। यहाँ, जग = जन्म, मरण होनेवाला शरीरसे तात्पर्य है। जिस चैतन्य जीवसे सारे संसारमें अध्यासयुक्त चारों खानियोंमें अनेकों शरीर उत्पन्न हुआ है, और नरदेह वा मनुष्य-खानीमेंसे जीव चतुर बनके वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि नाना विद्या, नाना कला-कौशल आदिको रचना करके प्रगट किये हैं। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिकी मानन्दी कल्पना करके प्रगट किये हैं। इस प्रकार चारों खानी, चारों वाणी जगत्में जिससे उत्पन्न हुआ है, और हो रहा है, सोई चैतन्य जीव उन सबके प्रथम सत्य होनेसे आदि पुरुष सनातन नित्य अविनाशी अखण्ड हैं। ब्रह्म आदिके सब सिद्धान्तोंको मनुष्य जीवोंने ही भ्रमसे प्रगट किया है, अतः जीव ही सबोंकी आदि है। परन्तु, उसकी यथार्थ निर्णयसे पारख या परीक्षा न करके मनमाने वैसे धोखेमें पड़कर द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत, खुदा, आदि मिथ्या कल्पनाको ही सत्य मान-मनाकर, कबीरा = मतवादी भ्रमिक नरजीव बिना पारख, बकवादी बन, जड़ाध्यासी हो गये, उनके

मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला गया। अध्यासवश चौरासी योनियोंके चक्रमें चले गये और जा रहे हैं। अतः जड़, चैतन्य, सत्य, मिथ्या, सार, असार इत्यादिका विवेकसे यथार्थ पारख करके स्वरूपस्थिति करना चाहिये ॥ ३२२ ॥

साखीः— ब्रह्मेते जग ऊपजा। कहत सयाने लोग ॥
ताहि ब्रह्मको त्याग बिनु। जगत न त्यागन योग ॥३२३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! पारखहीन सयाने कहलानेवाले भ्रमिक गुरुवा लोग सब तो ऐसा कहते हैं कि— यह सारा चराचर जगत् एक परब्रह्म, परमात्माके इच्छा-मात्रसे ही उत्पन्न भया है। प्रथम कुछ नहीं था, एक ब्रह्म ही निराकार-निर्गुण था। उसने स्वाभाविक सहज लीलासे इच्छा प्रगट किया— "एकोहं बहुस्याम्"— मैं एकसे अनेक जगत्‌रूपमें प्रगट हो जाऊँ! बस, सारा जगत् झट-पट उत्पन्न हो गया। तहाँ ब्रह्मसे पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, हङ्कार, त्रिगुण, सकल संसार, क्रमशः उत्पन्न होके फैल गये हैं, और जब कभी ब्रह्म प्रलय करनेकी इच्छा करेगा, तो सब सृष्टिकी महाप्रलय हो जायगी। इस तरह जगत्‌की उत्पत्ति— प्रलयकी आदि कारण एक ब्रह्मको ही माने हैं। सो सयाने ऋषि, मुनि, पण्डित, लोगोंने कहा हुआ वचन वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, शास्त्र, पुराण, आदिमें बहुत जगह लिखा है, उस बातको सब जानते हैं। अब यहाँ विचार करिये कि— ब्रह्म तो उत्पत्ति-प्रलय होते रहनेका घर, आवागमनका मूल-कारण ही ठहरा। फिर जगत्‌को त्यागके ज्ञान साधना द्वारा जो ब्रह्म भी बना, तो भी मुक्ति नहीं होगी। क्योंकि, ब्रह्म फिर भी इच्छा करके सब ब्रह्मज्ञानियोंको ढकेलके जगत् चौरासी योनियोंमें ही लाके गिरायेगा, और ब्रह्मको व्यापक बताके ब्रह्म होनेके लिये जगत्‌को त्यागना चाहते हैं, यह कितनी मूर्खता और अनसमझ है। अरे भाई! उसी भ्रमरूप ब्रह्मको, तथा मन, वचन, कर्मकी मानन्दीको सर्वथा त्यागे बिना, जगत् त्यागने योग्य

कोई हो ही नहीं सकता है। बिना विचार न कभी जगत्का त्याग होता है? न मुक्ति प्राप्तिकी, योग = संयोग-सम्बन्ध ही होता है। ब्रह्मकी कल्पना छोड़े बिना जीवका कल्याण हो ही नहीं सकता है। अतः ब्रह्म-भ्रमको ही परखके दिलसे हटाना चाहिये ॥ ३२३ ॥

साखीः— ब्रह्म जगतका बीज है। जो नहिं ताको त्याग ॥
जगत ब्रह्ममें लीन है। कहहु कौन वैराग ? ॥३२४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु जीवो! सब प्रकारसे ब्रह्म तो इस जगत्का तथा जन्म, मरणादिका, बीज = मूल कारण सूक्ष्म वासना अध्यासरूप बीज ही बना है। ऐसा होनेपर भी तुम लोग जो उस ब्रह्म-भ्रम मानन्दीको परखके नहीं त्यागोगे, तो अवश्य चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े रहोगे, भव-बन्धनोंसे कभी छुटकारा नहीं होगा। क्योंकि, वेद, वेदान्त आदिके प्रमाणसे तो यह सारा दृश्य-अदृश्य चराचर जगत् उसी एक ब्रह्म अधिष्ठानमें ही, लीन = विलय होके घुला-मिला हुआ एकाकार हो रहा है। सर्वत्र जगत्में ब्रह्मको परिपूर्ण व्यापक माने हैं। जैसे बीजमें वृक्षका लय रहता है, फिर समय पायके स्थूलाकार होके उत्पन्न हो जाता है। तैसे बीजरूप ब्रह्ममें वृक्षरूप जगत् लीन है, तो फिर उसमेंसे भी समय पायके इच्छा प्रगट होकर विराटरूप जगत् उत्पन्न हो जायगा, और तुम ब्रह्म बनके भी चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहोगे। अब कहो तो भला! कौन-सा त्याग-वैराग्य हुआ, त्याग-वैराग्य किया हुआ फल भी कौन-सा अच्छा मिला? जन्म, मरणादि न छूटनेसे सब ही साधनाएँ निष्फल व्यर्थ हो गयी। अतः उस भ्रमको परखके त्यागो ॥ ३२४ ॥

साखीः— चन्द्र सूर्य निजकिरणको। त्याग कौन विधिकीन ? ॥
जाकी किरण ताहिमें। उपजि होत पुनि लीन ॥३२५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे ब्रह्मवादी! यदि तुम ऐसा कहो कि— ब्रह्म, ईश्वर, सर्वशक्तिमान् होनेसे जगत् उत्पत्ति करके भी उससे निर्लिप्त हो न्यारा ही रहते हैं। परमात्मा असङ्ग है, उसे

जाननेसे मुक्ति होती है। तो सुनो! तुम्हारा कथन ही अनर्थ है। जैसे चन्द्रमा और सूर्य्यादि ग्रह प्रकाशवान् हैं, सो उनके स्वरूपसे ही किरण प्रकाश होता है। इसलिये वे अपने किरण प्रकाशको किस प्रकारसे कब त्याग कर सकेंगे? कभी त्याग नहीं कर सकेंगे। गुण-गुणीका नित्य सम्बन्ध होता है, सो कभी छूट नहीं सकता है। यदि सूर्य अपने किरणसे रहित होवे, तो सूर्य नामका पदार्थ ही कुछ न रहै, सारा धुन्द-अँधेरा ही हो जावे। किन्तु, ऐसा होना असम्भव है। अतः ग्रह, नक्षत्र, तारागणादि जिन-जिनकी जैसी-जैसी किरण प्रकाश है, सो उसीमें ही सदाकाल स्वतः नित्य बना रहता है। पृथ्वी आदिकी आड़रूप छाया हटनेपर सूर्य आदिका उदय, प्रकाशकी उत्पत्ति होता हुआ सदृश और सामको अस्त होनेपर फिर उसीमें लय हुआ सरीखा दिखता है। परन्तु, उनसे कभी किरण भिन्न होकर उदय-अस्त नहीं होता है। सदा एक-सा प्रकाशित ही रहते हैं। सूर्य तो स्वयं प्रकाशी तेज-पुञ्जरूप है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें, चन्द्र = योगी, सूर्य = ब्रह्मज्ञानी, निज किरणको = अपने अद्वैत व्यापक सिद्धान्त प्रकाशको किस प्रकारसे त्याग करेंगे, या कर सकेंगे। ब्रह्म कभी जगत्से न्यारा हो ही नहीं सकता है, तो निर्लिप्त, असङ्ग कहना ही गलत है। जिस ब्रह्मकी किरणरूप यह जगत् सब ही होना माने हैं, सो उसीमें ही सदा बना रहेगा। जगत् उत्पन्न होके फिर ब्रह्ममें लीन होता है कहते हैं, सो झूठा बकवादमात्र है। ऐसा ही है, तो फिर अद्वैतमतका खण्डन हो गया। द्वैतमें ही उत्पत्ति, लय होती है, एकमें ऐसा हो ही नहीं सकता है। अतः ब्रह्मवादी सदा आवागमनमें ही पड़े रहेंगे। ब्रह्म बनके चारखानीमें भटकते रहेंगे, बिना पारख ॥ ३२५ ॥

साखीः— सब आचार्य शब्दको। विषय कहैं समुझाय ॥
ब्रह्म आत्मा शब्द विषय। कहत न मूढ़ लजाय ॥३२६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! वेद-वेदान्तके

ज्ञाता ऋषि, मुनि, पण्डित, शास्त्री आदि सब कोई मतवादी आचार्योंने उपदेश, व्याख्यान, शिक्षा, प्रश्नोत्तर आदि द्वारा भली-भाँति समझा-बुझा करके शब्दरूप वाणीको कानका विषय जड़, नाशवान्, विकारी ही कहे हैं। कितनोंने शब्दको निराकार आकाशका गुण वा विषय माने हैं। पञ्चविषयोंमें पहिला विषय शब्द है। जबकी पाँचों विषय जीवको बन्धन हैं, तब फिर उसी विषयरूप शब्द विषयसे उच्चारण करके कहा, सुना हुआ ब्रह्म, परब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, परमेश्वर, ॐकार इत्यादि सब भी तो खास शब्द विषय ही होनेसे बन्धनकारी ही हुआ, किन्तु, उसे मुक्तिदायी शब्दातीत, निःअक्षर, अवाच्य ब्रह्म इत्यादि झूठ-मूठकी वाक्य कहनेमें, इन अविवेकी मूढ़ लोगोंको जरा भी लज्जा नहीं आती है। बड़े बेहया, निर्लज्ज बने हैं। मूढ़ बनके उल्टी-सीधी बकनेमें भी वे नहीं लजाते हैं। शब्द विषय है, यह निश्चय हुआ, फिर ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान आदि जो कुछ भी कहते-सुनाते हैं, सो भी तो शब्द विषय होनेसे त्याज्य ही हुआ। वह विषय नहीं है, सबसे परे निर्विषय ब्रह्म, आत्मा है, ऐसा कहनेमें मूढ़, निर्बुद्धि-जनोंको लज्जा, शरम, सङ्कोच भी कुछ नहीं होता है। अपने तो भ्रममें डूबे और दूसरोंको भी डुबा रहे हैं, बिना विचार ॥ ३२६ ॥

साखीः—कारण ईश्वर जगतका। कहत निरन्तर वेद ॥
वो अविनाशी ये नसुर। कहो पण्डित! यह भेद ॥३२७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! चराचर सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण एक परमेश्वर या ब्रह्म-परमात्मा ही, निरन्तर = सदाकाल, हरहमेशासे सबका आदि कारण है। ऐसा वेदमें कहा है। सोई बात वेदवादी हमेशासे कहते चले आ रहे हैं। अभी भी वेद-वेदान्त पढ़े-पढ़ाके गुरुवा लोग ऐसा ही कहते हैं, और सब जगत्का मुख्य कारण तथा कर्ता भी एक ईश्वरको ही सबल-ब्रह्म ठहरा रहे हैं। परन्तु, उसमें कारण माना हुआ ब्रह्म, ईश्वरादिको तो

अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य कहते हैं, और उसीका कार्य यह सारा जगत्को, नसुर=नश्वर, नाशवान्, खण्ड-खण्ड, अनित्य, असत्य, मिथ्या भ्रान्तिसे प्रतीति होनेवाला मात्र अवस्तु ठहराते हैं। कारणके अनुसार कार्य होते हैं। कारणसे विपरीत गुणवाला कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। फिर ईश्वर अविनाशी, जगत् विनाशी, ऐसी उलटी भावना करके क्यों माना है? हे पण्डित! इसका यथार्थ भेद खुलासा करके कहो! तुम लोग इस बारेमें क्या, कैसा समझते हो? कार्य साकार और कारण निराकार, निर्गुण कभी, कहीं ऐसा नहीं हो सकता है। इससे ब्रह्म, ईश्वरादि माना हुआ कारण भी साकार एकदेशीय ही ठहरेंगे। अरे भाई! निराकार, निर्गुण, जो है, सो अवस्तु है, उससे कहीं कार्य उत्पन्न हो सकता है? कदापि नहीं। फिर जगत् कार्यका कारण, निराकार ईश्वरादि माना हुआ मिथ्या हुआ, कि नहीं? ये भ्रमिक पण्डित! इसका क्या भेद कहेंगे? कुछ नहीं। अतएव पारख निर्णयको ही ग्रहण करना चाहिये ॥ ३२७ ॥

साखीः—— कारण ईश्वर अनीह कहैं । कारजरूप देखाय ॥
यह जो अज्ञ दृष्टान्त है । पण्डित! कहो बुझाय ॥३२८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! ये भ्रमिक ईश्वरवादी लोग जगत्का मूल कारण ईश्वरको मानके उसको, अनीह = इच्छा, स्फुरणा, वासनासे रहित, अक्रयस्वरूप कहते हैं; और कार्यरूप जगत् जड़-चैतन्य वस्तुको देखायके गुरुवालोग कहते हैं कि— इसी जगत्का वह ईश्वर कारण है। सृष्टिके प्रथममें एक ही बार इच्छा करके जगत् उत्पन्न कर, फिर ईश्वर निरिच्छ ही रहता है। जिसे कार्य कहते हैं, वह जगत् तो दिखता है, परन्तु, कारण माना हुआ ईश्वरका कहीं पता ही नहीं हैं। यह जो ईश्वरवादीने कारण-कार्यका दृष्टान्त दिया है, सो अज्ञ=अज्ञानी, मूढ़, निर्बुद्धियोंकी समझ है। हे पण्डित! यदि तुम्हें समझ-बोध होय,

तो ठीक-ठीक, समझा-बुझाके कहो, क्या बात है ? तुम क्या मानते हो ? तुम नहीं कह सकते हो, तो सुनो ! कारण-कार्य दोनों जड़में होता है, चेतनमें नहीं होता है। जीव सब तो इच्छा करके ही कार्य-कर्म करते हैं, तो भी स्वयं जीव-स्वरूपके परिणाम-कार्य नहीं होता है। फिर इच्छारहित ईश्वर जगत्के कारण कैसे होगा ? कार्यरूप जगत् दिखता है, तो कारणरूप ईश्वर क्यों नहीं दिखता है ? यह जो दृष्टान्त दिये हो, सो अज्ञानताका द्योतक है। सिद्धान्तमें वह बिलकुल नहीं घटता है। यदि असली भेद जानना चाहते हो, तो पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग-विचार करो, तब कुछ सारासार समझोगे, बूझोगे। नहीं तो धोखेमें ही पड़े रहोगे ॥ ३२८ ॥

साखीः— जगत पदारथ बूझते। ईश अनीह बखान ॥
दिनकर उदय अन्धेर होय। यहि उलूकका ज्ञान ॥३२९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जगत्में जड़-चैतन्य भिन्न-भिन्न पदार्थ देखते, जानते-बूझते हुए, जैसी-जैसी मनमें कल्पना हुई, तैसी-तैसी गुरुवा लोगोंने कल्पना करके वेदादि नाना वाणी बनाये हैं, फिर जहाँ उनकी समझ रुकी, अकल गुम हुयी, तहाँ ईश्वरको, अनीह = इच्छासेरहित वर्णन किये, और पद-शब्दके, पदारथ = वाणीके अर्थ बूझते-बूझते जब कुछ भी समझने-बूझनेमें नहीं आया, तब 'नेति-नेति श्रुतिः' कहके ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादिको शून्य, इच्छा, क्रियासे रहित, निर्गुण, निराकार ही मान लिये हैं। वही वर्णन वेद-वेदान्तमें किये हैं। यह तो ऐसा हुआ कि— उलूक = उल्लू, घू-घू, पक्षीको, दिनकर = सूर्य उदय होनेसे प्रकाश होते ही दिखनेके बदले और अन्धकार हो जाता है। तो दिनको ही वह रात्रि मानता है, और रात्रिके अन्धेराको ही वह दिन समझता है। उल्लूओंका ऐसे ही उल्टा ज्ञान-अज्ञान होता है। तैसे ही पढ़-गुन करके, समझ-बूझके सत्यबोध होना चाहिये, विद्याके प्रकाश होनेपर अविद्या, अज्ञानका विनाश होना, भ्रम छूटना चाहिये।

मनुष्यको बुद्धिमान् होके जड़-चैतन्य, सारासारका निर्णयसे पहिचान-कर हंस सत्यज्ञानी होना चाहिये था; परन्तु, उससे एकदम विपरीत होना, सूर्यवत् चैतन्य जीवके साक्षी ज्ञानका प्रकाशमें ही महाअन्धेर गाफिली होना, चराचरमें एक ईश्वरको व्यापक, निरीच्छ मानना, भ्रम-भूलमें पड़ना, अद्वैत कथन करना, यही, उलूक = उल्लू अन्धे वेदान्तियोंका ब्रह्मज्ञान धोखाका घर है। परखके इस भ्रम-जालसे न्यारा होना चाहिये ॥ ३२९ ॥

साखीः— कबीर मोह पिनाक जग। गुरु बिन टूटत नाहिं ॥
सुर नर मुनि तोरन लगे। छूवत अधिक गरुवाहिं ॥३३०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जगत् या संसारमें, मोह पिनाक = वाणी और खानीकी माया-मोह आसक्तिरूपी बलिष्ठ धनुषकी डोरीमें सब लटके, अरुझे पड़े हैं। अथवा, मोहकी पीनक = अफीमके नशेमें चूर, बेभान हो, सबलोग मारे जा रहे हैं। सो मोह धनुषकी डोरी, जाल तथा विषय, ब्रह्म सम्बन्धी नशा पारखी सद्गुरु-की कृपा दृष्टिसे अपरोक्ष पारखबोध पक्का हुए बिना कदापि किसीकी भी टूटती या छूटती नहीं है। वह बड़ी मजबूत डोरी है, गुरुबोधके खड्गसे काटनेपर ही वह टूट सकती है। पारखी सद्गुरुकी शरण सत्सङ्गमें आये बिना ही उधर सुर, नर, मुनि उसे तोड़नेका प्रयत्न करने लगे। सुर = सतोगुणी ज्ञानी, ज्ञानमार्गकी साधना करने लगे। नर = रजोगुणी कर्मी, भक्त लोग कर्म, उपासनाकी साधना करने लगे। मुनि = तमोगुणी योगी, तपस्वी लोग योग, तपस्यादिके साधना करने लगे। इस प्रकारसे माया-मोह, बन्धनको तोड़-ताड़कर मुक्ति प्राप्तिका प्रयत्न करने लगे। किन्तु, वाणी, कल्पनाको छूकर स्पर्श करते ही भ्रम, भूलका बोझा और भी ज्यादा हो गया। मैं ब्रह्म हूँ, जगत् सब एक अद्वैत ब्रह्म है, कहके जड़ा-ध्यासी, गाफिल हो गये। इस तरह अधिक-अधिक वा विशेष-विशेष भ्रम बढ़ाके गुरुवा लोग भ्रमिक हो गये। बन्धनोंसे छूटनेके

बदले और महाबन्धनोंमें जकड़ पड़े। बिना पारख चौरासी योनियोंके चक्रमें ही गिर पड़े। अतः परखके उससे न्यारा हो रहना चाहिये ॥ ३३० ॥

साखीः— कबीर लघुको गुरु कहैं। गुरु लघु कहैं बनाय ॥
यह अविचारा देखिके। कबिरा नाहिं लजाय ॥३३१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! ये पारखहीन अविचारी गुरुवालोग धूर्त उल्टी समझवाले हैं। क्योंकि, लघु= छोटा, तुच्छ तत्त्वका भास, मनकी मानन्दीरूप कल्पित ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा आदि जो कोई वस्तु नहीं है, अतः मिथ्या ही है; उसीको, गुरु=वजनदार, अतिशय श्रेष्ठ, प्रकाशी, चैतन्य, सार पदार्थ कहते हैं, और गुरुको = ज्ञानप्रकाशी चैतन्य स्वरूप जीव, जो सबका गुरु, सर्व-श्रेष्ठ सत्य वस्तु है, उसको तो तुच्छ बनाय-बनायके, लघु=छोटा, अंश, कार्य, प्रतिबिम्ब, अल्पज्ञ, बद्ध, मायाग्रसित, पराधीन, इत्यादि कथन कह करके ओछा बनाते हैं। देखिये! ठग लोगोंने कैसे उलट-पलट कर दिये हैं, असत्यको सत्य और सत्यको असत्य बना दिये हैं। वैसे ही उल्टा ज्ञान समझा-समझा करके लोगोंको भ्रमा, भुला दिये हैं। यह ऐसा अविचार, अविवेक, मूर्खताका कथन बर्ताव देख-सुन करके भी, कबिरा= अबोध नरजीव और गुरुवा लोग कुछ भी असत्यसे लजाते-शर्माते नहीं है, जरा भी संकोच नहीं करते हैं। मिथ्या भास, अध्यासको ही पकड़-पकड़ाके जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं। अतः हितेच्छुकोंने उस धोखा, भ्रम, मानन्दीको त्याग देना चाहिये ॥ ३३१ ॥

साखीः— साधू ऐसा चाहिये। ज्यों मोतीमें आब ॥
उतरै तो फिरि नहिं चढ़ै। अनादर होय रहाब ॥ ३३२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! साधुको ऐसा होना

चाहिये कि— जैसे मोती रत्नमें आब = पानी रहता है, वैसा शुद्ध, श्रेष्ठ हो रहना चाहिये । अर्थात् मुमुक्षु, वैराग्यवान्, पूर्ण त्यागी, विरक्त होकर पारखी साधु गुरुके ही गुरुमुख वाणी सारशब्दको श्रवण मननादि करके सारासार, जड़-चैतन्यके निर्णय विवेक करता रहै । और सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति, दृढ़ वैराग्य, इन सद्गुण हंस रहनी-रहस्यको हृदयमें पूर्ण दृढ़तासे धारण करै । पारख बोध सहित स्वरूप स्थितिकर प्रथम अपना कल्याण करै, फिर अन्य जिज्ञासुओंको भी पारखबोध लखाकर हित करै । इस तरह निज-पर हितकारी साधुको होना चाहिये । मोती सरीखा शुद्ध निर्मल होके गुरुपदके मर्यादामें ठहरे रहना चाहिये; और संसारके विषय खानी, वाणीको विषरूप समझके ब्रह्मानन्द, विषयानन्दोंकी मानन्दीकी-घरके सीढ़ीमें बन्धन दोष देख-देखके जब, उतरै = पृथक् वा न्यारा होवे, तब तो फिर जीवन पर्यन्त कभी किसी कारणसे भी निज हंसपदसे उलट करके कल्पना, अनुमान, विषयादिमें कभी भी नहीं चढ़ै । सदा सावधान हो रहै । संसारी विषयासक्त लोग तथा भेषधारी पक्षपाती गुरुवा लोगोंका सङ्ग, कुसङ्गसे न्यारा हो, बल्कि उनसे, अनादर = अभाव, अप्रेम ही होके रहै । किन्तु, उनके आदरमें पड़के अपने जीवको खानी, वाणीके बन्धनोंमें कभी न डालै । निराश वर्तमानमें रहना चाहिये ॥ अथवा मोतीमें पानी रहता है, तब उसकी इज्जत होती है । पानी उतरनेपर काँच बराबर भी नहीं समझा जाता है । तैसे ही साधुमें भी सद्गुण रहनी पारख होनेपर ही श्रेष्ठता होती है । उसके विना तुच्छ पतित समझा जाता है । अतः साधुने हंस रहनीसे कभी नहीं चूकना चाहिये । यदि कोई पुरुष साधुपदसे उतरा, स्त्री-विषयादिमें फँसके बिगड़ा, तो फिर वह साधुपदमें नहीं चढ़ सकता है । जीतेतक अनादरका कुपात्र होके जगत्में रहता है इसलिये कभी साधुपदसे उतरना नहीं चाहिये ॥ ३३२ ॥

साखीः— जाननको कहै आतमा । बहु विधि ग्रन्थ पुकारि ॥
कहहिं कबीर जस भेड़िपर । जोलहिनि कियो गोहारि ॥३३३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! ये वेदान्ती भ्रमिक गुरुवा लोगोंने वेद, शास्त्र, आदि बहुत प्रकारके ग्रन्थ बनायके, पुकार-पुकार करके कहते हैं कि— हे भाइयो । एक आत्माको ही सर्वश्रेष्ठ जानना चाहिये, और आत्माको अद्वैत सर्वोपरि पूर्ण व्यापक मानना चाहिये । इत्यादि उपदेश करते हैं । अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— देखिये ! यह तो ऐसा नतीजा भया कि— जैसे एक जोलहाकी स्त्री अनाड़ी-मूर्ख थी, उसने कभी जङ्गली जानवर देखा नहीं था, नाम जरूर सुना था कि— जङ्गलोंमें बड़े-बड़े बाघ, सिंह, भालू, आदि हिंसकी जानवर होते हैं । एक समय वह खेतपर काम कर रही थी, उसे संयोगसे वहीं पासमें एक भेड़ी वा भेड़िया दिखायी दिया । उसे जोलाहिनीने बड़ा भारी पराक्रमी जानवर सिंह वा बाघ ही समझके घबराकर जोर-जोरसे चिल्लाकर पुकारा करने लगी— अरे ! दौड़ोरे ! दौड़ो ! यहाँ तो बबर-शेर वा बाघ निकल आया है । मुझे इससे बचाओ, यह तो मुझे मारना चाहता है, इत्यादि । उसी पगलीके समझ, दुर्दशाके नाईं ब्रह्मज्ञानियोंका भी हाल हुआ है । जोलहिनी = जो कल्पनाको ग्रहण किया, सो गुरुवा लोग, जस = सुयश, प्रशंसा प्रातिके वास्ते, भेड़िपर = अज्ञानी लोगोंके ऊपर सर्वश्रेष्ठ होके, गोहारि = हुर्रे-हुर्रे ! अरे होरे ! हाँ ! जगत् मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है, होरे ! हाँ ! इसीको निश्चय करके मानो । ऐसे कहकर मिथ्या भ्रमसे भूल-भुलैयाके चक्रमें गाफिल पड़े हैं ॥ ३३३ ॥

साखीः— कबीर बेंगके मारते । जोलहा रोवै पुकारि ॥
विकल भया दुहुँदिश फिरै । कीजै राम जोहारि ॥३३४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! जैसे कोई अनाड़ी

मूर्ख जोलाहा तालाबमें हाथ, मुख धोनेको गया था, वहाँ एक मेढक उछलके उसे लात मारके भागा। इतनेमें, बेंग = मेढकके मारते ही जोलाहा घबरायके उसे बड़ा भारी जन्तु समझके भयभीत हो पुकार-पुकारके रोने, चिल्लाने लगा, और हे राम! हे खुदा! मुझे इस जन्तुके पञ्जेसे बचाइये! गोहार है! मदत करो!! मदत करो!! पुकारता हुआ, अपने इष्टदेवकी मनौती, विनती, प्रणाम आदि करने लगा, और व्याकुल होता हुआ दशों दिशामें भागते फिरने लगा। उसको धैर्य ही न आवे, अन्तमें वह पागल होके मर गया। मूर्खताके कारण भ्रम-भूलसे ऐसे ही हानी हो जाती है॥ सिद्धान्तमें, कबीर = नरजीव या मनुष्योंको, बेंगके = व्यङ्ग-वचन, टेढ़ी, अनूठी, भूठी बात कि— कोई एक ॐकार ब्रह्म, पिण्ड-ब्रह्माण्डमें व्यापक है, सो तू ही है, यानी तू ही प्रणव ब्रह्म है। ऐसा भ्रम कल्पनाका चोट या प्रहार हृदयमें मारते दृढ़ करते-कराते ही अचेत हो गये। सोई व्यङ्ग वचन गुरुवा लोग मारते हैं, तो जीवोंकी जानपना साक्षीपद्पर आवरणरूप पर्दा डाल देते हैं। जिससे सब भ्रम चक्रमें पड़ जाते हैं, और, जोलहा = जो कल्पना धोखाको लहा, भूलको प्राप्त भया, सो भ्रमिक गुरुवा लोग, नाना ग्रन्थ, पन्थ बनाय-बनायके ऊँचे स्वरसे अन्य मनुष्योंको पुकार-पुकार करके खूब रोते हैं = मुख खोलके नाना भाँतिसे उपदेश देते हैं। यही उनका रोना-कराहना है। भ्रमके मारे सब गुरुवा लोग साथ ही उनके शिष्य वर्ग अज्ञानी मनुष्य लोग भी संसारमें द्वैत, सुख-दुःख, त्रयताप, आदिको देखके अत्यन्त व्याकुल भये, तो इससे अपनी रक्षा, बचावके लिये, दुहुँदिश = खानी, वाणीके दोनों दिशामें फिरने लगे। अथवा दशों दिशामें तीर्थयात्रा करके भटकते फिरने लगे। कोई चारवेद, षट्शास्त्र यही दश दिशामें उलट-पलटके वाणी पढ़-पढ़के कल्पनामें फेरा लगा रहे हैं। अपने-अपने इष्टदेव, राम = ईश्वर, परमात्मा, खुदा आदिकी, जोहारि = वन्दना, विनय, झुक-झुकके सलाम, आदि कर-करके हे भगवान्!

क्षा कीजिये ! चौरासी योनियोंके दुःखोंसे बचाइये ! हम आपके शरण हैं ! शरण हैं ! इत्यादि प्रार्थना कर रहे हैं। परन्तु ईश्वर, खुदा आदि सब मनकी कल्पना है, वह किसीकी रक्षा नहीं करता है। जड़ाध्यासी हो, जीव सब बारम्बार जन्म, मरणादि चौरासी योनियोंके दुःख ही भोगा करते हैं ॥ ३३४ ॥

साखीः— माया तीन प्रकारकी। ताहि करो पहिचान ॥
द्रष्टा आग्रही निर्वचनी। तीजो तुच्छा जान ॥३३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो ! संसारमें मुख्य माया तीन प्रकारकी हैं; उसे पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके अच्छी तरहसे पहिचान कीजिये। संक्षेपमें त्रिविधि मायाका लक्षण मैं यहाँ बता देता हूँ, सुनिये ! एक, द्रष्टा माया = द्वैत प्रतिपादन करती है। दूसरी, आग्रही माया = विसिष्टाद्वैत बतलाती है। तीसरी, निर्वचनी माया = अद्वैत ठहराती है। ये तीनों वाणी कल्पित माया जाल भवबन्धनमें फँसानेवाली होनेसे तुच्छ, निकम्मी और त्याज्य हैं। अथवा एक गुरुवा माया है, दूसरी स्त्री माया है, तीसरी मन माया है। ये तीनों तुच्छ, कुटिल-स्वभाववाले हैं। वे नरजीवोंको खानी, वाणी जालोंमें ही ले जाके अरुझा कर भटकाते रहते हैं। बिना पारख इन माया-जालोंसे छूटना अत्यन्त कठिन है। उसे ठीक-ठीकसे पहिचान करके त्याग कर दूर हो, न्यारा हो रहना चाहिये ॥ ३३५ ॥

साखीः— निर्वचनी अद्वैत है। द्वैत सो द्रष्टा जान ॥
तीजे विशिष्टा मानते। साधुन हिये प्रमान ॥३३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! और उसकी खुलासा बात सुनिये ! गुरुवा लोगोंने वाणी कल्पनासे जो अद्वैत सिद्धान्त ठहराया है, सोई, निर्वचनी = वचनसे परे, अवाच्य, मन, बुद्धि, वाणीसे परे, निर्गुण, निरञ्जन, निराकार, सर्वव्यापक, ब्रह्म, अद्वैत

माना है। यह पहिले नम्बरकी माया जाल है। द्रष्टा माया सोई द्वैतवाद है। ईश्वरको सर्वद्रष्टा साक्षी, सर्वज्ञ मान करके जीवको उसीका अंश माने हैं। ईश्वर स्वामी, जीवको सेवक, दास, बताके सेव्य-सेवक भावसे भक्ति, उपासना करते-कराते हैं। वैष्णव भक्त लोग सब द्वैतवादको मानते हैं। यह मायाकी जाल-जञ्जाल ही है, ऐसा जानिये। और तीसरी, आग्रही=विसिष्टाद्वैतवादको मानते हैं। ईश्वर, जीव, मूलप्रकृति-माया, इन तीनोंको अनादि नित्य माननेवाले आर्यसमाजी, रामानुजी आदि, विसिष्टाद्वैतवादी कहलाते हैं। द्वैत-अद्वैत दोनों ही भागके कल्पना विकार जिसमें मिल गया, सोई विशिष्ट-अद्वैत कहलाया। वेद प्रमाणसे षट्दर्शनोंके बहुत सारे साधुओंने या सिद्ध-साधकोंने उसी तीन मतवादको ही सत्य सार मानकर हृदयमें धारण कर लिये हैं। परन्तु, बिना पारख वे सब धोखेमें पड़े हैं। वह तो माया गुरुवा लोगोंकी वाणी जाल कल्पना मात्र है। उसे मानकर किसीको मुक्ति नहीं हो सकती है। अतः पारख बोधको ही ग्रहण और धारण करना चाहिये ॥ ३३६ ॥

साखीः— यह सरस्वती शिरपर चढ़ी। भई सबहिं शिरताज ॥
कहहिं कबीर चीन्है बिना। माथे भार विराज ॥३३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! यह सरस्वती देवी, ब्रह्माके पुत्री स्त्री-जातिकी है, परन्तु वही, सरस्वती=वाणी, विद्या, कला बनके सब ब्रह्मादि, सनकादि, वशिष्ठ, पराशर, व्यास, बाल्मिकी, सप्तऋषि, अठासी हजार ऋषि, मुनि, और एक लाख अस्सी हजार पैगम्बर, पीर, औलिया, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी, भक्त, कर्मी, इत्यादि सब पुरुषोंके शिरपर उछल-कूदके छलाङ्ग मारके चढ़ी, तो वाणी कल्पनाके नाथ सबके नाकमें नाथके उन सबोंको बैल बनायी, अपने अधीन करी। विधि-निषेधके हुकुममें चलाने लगी, और सबोंके मध्यमें, शिरताज = शिरके मुकुटवत् श्रेष्ठ शिरोमणि सर्वमान्य होती भयी, अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य-

निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं— देखिये! पारख ज्ञानसे जड़-चैतन्य, सार-असार, सत्य-मिथ्याको यथार्थ चीन्हे, पहिचाने बिना, और वाणी, खानीके जाल-बन्धनोंको जाने बिना, उसीका बोझा, नाना-साधनाओंका भार, अनेक मत, पन्थ, ग्रन्थोंका भ्रम, कल्पनाका, विषयोंका ही महाभार उन सबोंके, माथे=शिरमें वा हृदयमें दृढ़ होके विराजमान हो रही है। अर्थात् निज पारख स्वरूपको न चीन्हके वाणी, ब्रह्म, जगत् विषयादिका बोझा ही सबोंने शिरमें ढो रहे हैं। जड़ाध्यासका भार सब जीवोंके हृदयमें बैठा है। इसीसे सब बेहाल दुःखी हो चौरासी योनियोंमें भटक रहे हैं। मुमुक्षुओंने उन सब बोझाओं-को उतारके फेंकना चाहिये। पारखबोधको ही लेना चाहिये॥ ३३७॥

साखीः— एक कर्म है बोवना। उपजै बीज बहूत॥
एक कर्म है भूँजना। उद्य न अंकुर सूत॥ ३३८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! संसारमें नरजीवोंसे या मनुष्योंसे मुख्य दो प्रकारके कर्म होते हैं। जैसे दृष्टान्तमें एक, वह कर्म है, जो खेतमें जाके बीज बो देते हैं। जिससे एक-एक बीजसे वृक्ष सहित अनेक-अनेक बीज होकर बहुत सारी फसल और बीज उत्पन्न हो जाते हैं, और दूसरा, एक वह कर्म है, जो भट्ठीमें वर्तन चढ़ाके अनाजोंके बीजोंको भूँज देना, जला देना, होता है। जिससे चाहे फिर वह खेतमें भी पड़ा रहे, तो भी अंकुरके सूत्रमात्र भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। वह दोनों कर्म ही कहलाते हैं, किन्तु, दोनोंका फल न्यारा-न्यारा विपरीत होते हैं, उसी प्रकार सिद्धान्तमें संसाररूपी खेत है, जीव कृशान है, सो काया महलमें रहकर व्यवहार करता है। तहाँ एक कर्म तो विषय-भोग करके वासना बीज बोनेका होता है, जिससे एक विषय वासनासे और भी बहुत-सी वासनाएँ उत्पन्न होती जाती हैं। जैसे एक गृहस्थ पुरुष, स्त्रीके साथ मैथुन या भग-भोग करके वीर्यको गर्भ-क्षेत्रमें बो-देता है, उससे सन्तान उत्पन्न होते हैं, उसकी शाखाएँ बहुत बढ़ जाती हैं, और

इधर पुरुषके वासना, आसक्ति भी ज्यादा ही बढ़ जाती है, वही महाबन्धनमें बाँधके जीवको चौरासी योनियोंमें ले जाता है, जितने स्त्रियोंसे भोग किया है, उतने स्त्रियोंके द्वारा बार-बार अनेकों बार जन्म लेते रहते हैं, और दूसरा, एक कर्म विवेक-वैराग्यको धारण करके त्यागी, ब्रह्मचारी होके मन, वचन, कर्मसे विषय वासनासे रहित होकर सच्चे विरक्त होना, वह ज्ञानाग्निसे वासना बीजको भूँजना है। वैराग्य अभ्यासके परिपक्व होनेपर उस त्यागी पुरुषके हृदयमें पारखबोधके प्रतापसे विषय-वासनाका अंकुर जरा-सा सूतमात्र भी उदय होने नहीं पाता है। इसीसे वे जीते ही निर्बन्ध मुक्त हो जाते हैं। निराश वर्तमानमें आयु बिता देते हैं।

अथवा और एक वह कर्म है— जगत्‌कर्ता ईश्वर, ब्रह्म, खुदादि मानकर उसके प्राप्तिकी आशा, चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग इत्यादिकल्पना कर ऋद्धि, सिद्धि प्राप्ति आदिकी आशा, तृष्णा, भरोसा, बढ़ाकर कर्म, उपासना, ज्ञान, विज्ञान आदिकी नाना साधना करना, सो वासना, संस्कार बीजको बोनेवाला कर्म है। उससे अध्यास बहुत बढ़के चौरासी योनियोंमें ही वे सब बारम्बार उपजते रहते हैं। और दूसरे तरफ जो पारखी सद्गुरुकी शरणागत होकर परीक्षा करके विवेक अग्निसे उन सब कल्पित मानन्दी बीजोंको भूँज देते हैं। अपरोक्ष गुरु पारखबोधसे सब सारासारको जान जाते हैं। इसीसे उनके हृदयमें, सूत=शुद्ध चैतन्य जीवोंको जन्म, मरणादिमें ले जानेवाला अध्यासका अंकुर थोड़ा भी उत्पन्न होता नहीं। अतः वे पारखी सन्त जीवन्मुक्त हो जाते हैं। सोई बनाना चाहिये ॥ ३३८ ॥

साखीः—— ईसामसि जो कहत हो। पुत्र खुदाके आहिं ॥
स्त्री बिन पुत्र न ऊपजै। यह प्रसिद्ध जग माहिं ॥ ३३९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे इसाई लोगो! तुम लोग जो

ईसामसीह या ईशुख्रिष्टको खास खुदाके पुत्र है, खुदाने उन्हें मनुष्योंके कल्याण करनेके वास्ते भेजा था, ऐसा जो कहते हो ! तो सुनो ! तुम लोग खुदाको कैसा मानते हो ? कोई देहधारी मनुष्य राजाके समान मानते हो ? कि, देहरहित निराकार, निर्गुण समझते हो ? देहधारी खुदा होवे, तो ठीक है, फिर उसके महिमा करनेकी कुछ आवश्यकता ही नहीं। यदि उसे बिना देहके मानते हो, तो उसके पुत्र होना असम्भव बात है। और स्त्री-पुरुष, दोनोंके सम्बन्ध-मैथुन हुए बिना, तो कहीं किसीके पुत्र उत्पन्न होते ही नहीं। स्त्रीकी गर्भवासमें होकर योनिद्वारा ही सब पुत्र उत्पन्न हुए और पैदा होते हैं, यह बात तो जगत्‌में प्रसिद्ध या जाहिर ही है। फिर कहो क्या बात है ? ईसामसीह कौन-सा खुदाका पुत्र है ? और खुदाका बाप कौन था ? माँ कौन थी ? कौन जातिका था ? घर कहाँ था ? पूरी हिस्ट्री या इतिहास तुम्हें मालूम है कि नहीं ? कि गपोड़शङ्ख बनके झूठी कल्पनाके ही शङ्ख फूँक रहे हो ? ईशुका पिता खुदा था, तो माता कौन थी ? बिना मातारूप स्त्रीके मौजूद हुए पुत्र उत्पन्न ही नहीं होता है। यह तो जगत्-प्रसिद्ध बात है, इस बातको तो सब कोई जानते ही हैं। अतः तुम पूरा भेद बतलाके कहो ? फिर विचार किया जायगा ॥ ३३९ ॥

साखीः— नारी खुदाकी कौन थी ? । किन ताको उपजाय ॥
कौन भाँति केहि तरह सो । कहिये मोहि समुझाय ॥३४०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे इसाई लोगो ! खुदा पुरुषका जब पुत्र उत्पन्न हुआ, ईशुका वह बाप बना, तो यह बतलाओ कि— उस खुदाकी-स्त्री ईशुकी माँ कौन भयी थी ? मरियम नामकी नारी क्या खुदाकी विवाहिता स्त्री थी ? अथवा वह रखेली स्त्री थी, और उस स्त्रीको किसने उत्पन्न किया था ? उसके माता-पिता कौन थे ? किस प्रकारसे खुदा और उस स्त्रीसे मेल-मुलाकात हुआ था ? सामाजिक रीतिसे प्रगट होकर विवाह

किया था ? वा चोरी-छिपीसे कुकर्म, व्यभिचार किया था ? किस तरहसे पुत्र उत्पन्न किया था ? मैथुनी सृष्टि बिना मनुष्यादिकी उत्पत्ति तो हो नहीं सकती है । फिर कहो, खुदाने ईशुको पुत्ररूपमें कैसे उत्पन्न किया ? और तुम लोग ही कहते हो कि— सारी दुनियाँ खुदासे उत्पन्न भयी है, वह जगत्-पिता है । तो जिस स्त्रीसे ईशु पैदा भया, सो एक प्रकारसे खुदाकी पुत्री भयी कि नहीं ? फिर उसीसे विषय-भोग करके ईशु पुत्रको उत्पन्न किया । तब वह व्यभिचारी पुत्रीगामिनी नर-पशु ही हुआ कि नहीं ? ऐसा भी कहीं दुनियाँका मालिक हो सकता है ? कदापि नहीं । अतएव किस तरहसे, कैसे ईशु-खिष्ट खुदाका पुत्र भया ? सो इसका यथार्थ भेद मुझे समझायके ठीक-ठीकसे कहिये ! फिर सत्य-मिथ्याका निर्णय, फैसला मैं तुम्हें बतलाऊँगा ॥ ३४० ॥

साखीः— तत्त्व सहित जो खुदा है । तो तुरत नाश हो जाय ॥
तत्त्व विहीना कहोगे । सो करतव्य नहीं समाय ॥ ३४१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे इसाई खुदावादी लोगो ! यह बतलाओ कि— तुम्हारा माना हुआ मालिक खुदाका मुख्य स्वरूप क्या, कैसा है ? पाँच तत्त्वोंके कार्य साकार शरीर सहित मनुष्य, देवता आदिके रूपमें जो तुम्हारा खुदा वा परमेश्वर है, ऐसा कहोगे, तब तो जैसे अन्य मनुष्योंके मृत्यु होकर शरीर नाश होता जा रहा है । तैसे ही वह खुदाका भी प्रारब्ध भोग पूर्ण हो जानेपर अवश्य शरीर तो तुरन्त ही नाश हो जायगा । या कबका नाश हो गया होगा । मर-मरके न मालूम कितने जन्म ले चुका होगा । क्योंकि, देह नाशवान् है, यह कभी किसीकी अविनाशी होके रह नहीं सकती है । फिर देह होनेपर खुदा भी मर चुका होगा । और इस आपत्तिसे बचनेके लिये अगर तुम खुदा वा ईश्वरको पञ्चतत्त्व निर्मित शरीरसे विहीन = विदेह, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, बेचून,

बेनमून, गोयमगोय है, कहोगे, तहाँ वह कथन ही एक, तो निषिद्ध वचन होनेसे वस्तु ठहराना झूठा है। दूसरा, सो ऐसे तत्त्व विहीन निराकारमें कोई भी कर्तव्य, कर्म समा नहीं सकता है। अतः खुदासे जगत् बनना, ईशु पुत्रका उत्पन्न होना, इत्यादि करतूत, पुरुषार्थ कर्मके कर्तव्य उसके स्वरूप ही नहीं, शून्य है, तो कहाँपर समायेगा? इसलिये सब प्रकारसे तुम्हारा खुदा मानना भ्रम, भूल, असत्य है। यदि हित चाहो, तो मिथ्या पक्षको त्यागो ॥ ३४१ ॥

साखीः—पाँच तत्त्व ये आदि हैं। कि खुदा आदि है भाय? ॥
की दोनों संयुक्त हैं। यह भी कहो बुझाय? ॥३४२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे खुदाके भक्तो! तुम लोग खुदाके स्वरूपको ठीकसे जानके मानते हो, कि— या यों ही बिना समझे-बूझे ही अन्ध-विश्वाससे मानते हो? यह बतलाओ कि— यह दृश्य पञ्चतत्त्वरूप संसार इत्यादि अनादि वा प्रथमका है, पीछे खुदा उत्पन्न भया है? कि = अथवा उससे भी पहिले आदिमें खुदा था? यदि आदि है, कहोगे, तो पञ्चतत्त्व नहीं थे? तो खुदा किस जगहपर, कैसा रहता था? तत्त्वोंके बिना अकेला खुदाको क्या तुमने देखा था? नहीं देखा था, तो बिना देखी हुयी बात कहनेवाले तुम झूठे हुए कि नहीं? अगर कहो, मैंने खुदाको अकेला देखा था, तब पाँचतत्त्व तो थे ही नहीं, फिर तुम खुदाके ही शिरपर खड़े होके देखे थे क्या? तुम देखनेवाले कहाँपर थे? हे भाई! खुदा और पाँचतत्त्वोंमें कौन, किसका आदि है? अथवा, की दोनों संयुक्त हैं = बराबरीके मिले-जुले हैं? क्या, कैसे हैं? इस बात-का खुलासा भी तुम— समझाय-बुझायके ठीक-ठीकसे कहो। और पाँचतत्त्व आदि हैं, तो अन्तमें उत्पन्न भया हुआ खुदा दुनियाँका मालिक नहीं हुआ। पाँच तत्त्वोंके रहे बिना आदिमें खुदा कहना, सत्य ठहरता ही नहीं है। दोनों संयुक्त मानोगे, तो वह जड़

पाँचतत्त्वका कार्य परस्परका मिलाप ही सिद्ध होगा। अथवा देहधारी जीवके समान बद्ध माना जायगा। इस तरहसे आदि, अन्त, मध्यमें खुदा कोई सत्य वस्तु ठहरता ही नहीं है। वह तो मनुष्य जीवोंकी भ्रम मिथ्या, कल्पनामात्र है। अतः परखके भ्रमको छोड़ो ॥ ३४२ ॥

साखीः—कहा वस्तु ये जीव है। जो मिले खुदासे जाय? ॥
कहा वस्तु वह खुदा है। कहो निपुण दरशाय? ॥३४३॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे खुदावादी! इस जीवको तुम क्या वस्तु, और कहाँपर कैसा समझते हो? जो जीव खुदा वा ब्रह्म-ईश्वरादिसे जाके मिलेगा? तो क्या यह किसीके कार्यरूप जड़ है, ऐसा मानते हो क्या? और जिसको तुम सर्वश्रेष्ठ मानते हो, परमात्मा, अल्लाह कहते हो, वह खुदा या ईश्वर क्या वस्तु है? कहाँपर कैसा है? तुम बड़े मतवादी, पण्डित, निपुण, चतुर हो, अपने निपुणतासे ठीक-ठीक निर्णय दरशायके कहो। तुम्हारा खुदा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, इनमेंसे कौन-सा तत्त्व या क्या वस्तु है? जड़ और चैतन्य ये मुख्य दो वस्तु सत्य हैं। चैतन्य अनन्त जीव ज्ञानस्वरूप अखण्ड हैं, वे किसीसे बनते नहीं, तथा किसीमें जाके मिलते भी नहीं। जड़-तत्त्वोंके स्वरूपसे सदा न्यारे ही रहते हैं। जड़में चार तत्त्व कार्य-कारण भावसे वस्तु बनते, बिगड़ते रहते हैं, अब बताओ! खुदासे जायके मिलनेवाला इस जीवको तुमने क्या वस्तु समझ रखा है, और वह खुदा कहाँ है? जिससे जीव मिलेगा? खुदाका तो नाममात्र कल्पना है, रूपका तो कहीं ठिकाना भी नहीं है। उसे शून्य आकाशवत् माना है, और देहधारी चैतन्यजीव तो प्रत्यक्ष हैं, वासनावश चारखानीके अनेकों योनियोंमें ही भ्रमण कर रहे हैं। फिर खुदासे कैसे? कहाँपर मिलेगा? नाहक मिथ्या धोखामें क्यों पड़े हो? परख करके उस भ्रम-भूलको मिटाओ, नहीं तो पीछे पछताओगे, सो जानो ॥ ३४३ ॥

साखीः—कबीर मुक्ति बायें दहिने । मुक्ति आगे पीठि ॥
मुक्ति धरती आकाशमें । मुक्ति मेरी दीठि ॥३४४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— और, कबीर=हे नरजीवो! ये भ्रमिक पारखहीन गुरुवा लोगोंने नाना प्रकारसे झूठी मुक्ति सब तरफ कल्पना करके मान रखे हैं। उसी झूठी मुक्तिकी महिमा सुन-सुनके अबोध जीव ललचा रहे हैं। किसीने बाँया तरफ, उत्तर दिशामें मुक्ति मान रखा है। कोई बायें=बाममार्गसे पञ्चमकारादि सेवन और शक्ति उपासनासे सुख भोग, और मुक्ति माने हैं। कोई दहिने=दक्षिणमार्गमें सनातनी वैष्णव, स्मार्त विधिसे गति, मुक्ति मान रहे हैं। कोई दक्षिण दिशामें मुक्तिकी जगह मानते हैं, और कोई पूर्व दिशामें, कोई पश्चिम दिशा आदिमें मुक्तिकी धाम अनुमान करते हैं, और कोई, आगे=प्राचीनकालमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादी जो गुरुवा लोग भक्ति, ज्ञान, योगादि मतके आचार्य हो गये हैं, उन्हींकी मत, पन्थ, साधना, सिद्धान्त, नामस्मरणादिसे ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोकमें जाके मुक्ति मानते हैं। कोई, पीठि=उन्हीं गुरुवाओंके पीठ पीछे उनके उत्तराधिकारी सनकादि ऋषि, मुनि हुए, उन चेलोंके मत अनुसार सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य, ये चार प्रकारकी मुक्ति तथा चार फलादिको बड़ा समझके मानते हैं। तथा पाश्चात्य मतवादी भौतिकवादसे मुक्ति वा सुख माने हैं। कोई चार्वाक नास्तिकतासे मुक्ति कहे हैं, देहवाद, तत्त्ववाद, वीर्यवाद, शून्यवाद-वाले भिन्न ही प्रकारके मुक्ति मान रहे हैं, और कोई, धरती=पृथ्वीमें चार धाम, चौंसठ तीर्थ आदि करके मुक्ति मानते हैं। तीर्थ स्थानको ही मुक्ति क्षेत्र ठहराये हैं। और कोई ऊपर आकाश वा शून्य, ब्रह्माण्डमें सात स्वर्ग, चौदह लोक, २१ ब्रह्माण्ड, चौदह तबक, चार आशमानमें वा सात आशमानोंमें, और शून्यमें ऊपर ही जैनियोंने चन्द्रमुक्तशिला ठहराये हैं। कोई अनन्त योजनोंके ऊपर सत्यलोक, सत्य पुरुषके पासमें मुक्तिकी धाम माने हैं। परन्तु, यही सब इत्यादि

प्रकारकी विचित्र मुक्तिका वर्णन जो किये हैं, सो सब कोरी कल्पना, धोखा ही मात्र है। वह तो महाभ्रम बन्धनका घर है। यथार्थ मुक्ति तो मेरी चैतन्य पारख दृष्टिके सन्मुखमें हाजिर-हजूर है, और कहींपर मुक्ति ढूँढ़नेकी आवश्यकता ही नहीं है। दीठि = पारख दृष्टिसे चैतन्य जीव निज स्वयंस्वरूप ही सत्य है, ऐसा अपरोक्ष बोध होकर सम्पूर्ण जड़ाध्यास परित्याग किया, सो जीते ही जीवन्मुक्त हो गया। भवबन्धनोंसे छूट गया। यह मेरी स्वयं पारख दृष्टिकी मुक्ति ही सत्य है, और माना हुआ सब मुक्ति मिथ्या है। अतः पारख दृष्टि खोल करके जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। और सकल आशा, वाशा, कल्पनाको परित्याग करके निराश वर्तमानमें रहना चाहिये ॥३४४॥

साखीः— जमा अघट निघटै नहीं। बर्तैं शब्द प्रमान ॥
जीव जमा जानै बिना। सबै खर्चमें जान ॥३४५॥

टीकाः— श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैंः— हे सन्तो! संसारमें, जमा = अखण्ड, अविनाशी, नित्य, सत्य, एकरस, चैतन्य जीव ही अपना एक खास जमा पद है, उसे "जीव जमा" कहते हैं। वह, अघट = कभी घटता-बढ़ता नहीं है, घटने लायक उसका स्वरूप नहीं है। सदा एकरस अखण्ड ही देहसे भिन्न बना रहता है। इससे, निघटै नहीं = जीवकी स्वरूपकी कभी समाप्ति, वा विनाश, खतम तो कभी होता ही नहीं है। अविनाशी सत्य वस्तुकी कभी त्रिकालमें नाश हो नहीं सकता है। इस प्रकार त्रिकालाबाध्य अमर, चैतन्य जीवका स्वयं स्वरूप है। उसकी तो कभी किसी प्रकारसे कोई हानि कर नहीं सकते हैं। परन्तु, सब जीव निज पारख स्वरूपको भूले हुए हैं, इससे खानी और वाणीमें नाना कल्पित शब्द और पञ्चविषयोंकी आसक्ति सहित निज-निज समझ, कर्तव्यादिके प्रमाणसे वर्तते या चलते, कर्म करते, अध्यास टिकाते हैं। जिस मतमें जीव गया, उसीकी शब्द प्रमाणसे साधनाएँ करने लग जाते हैं। इससे जड़ाध्यासी

बद्ध हो करके आवागमनके चक्रमें ही पड़े रहते हैं। परन्तु, निज स्वयं स्वरूप जीव जमा हंसपद वा पारखपदको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके यथार्थ जाने, समझे बिना कभी मुक्ति स्थितिकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिये पारखहीन मनुष्य जितने भी प्रयत्न, मानन्दी करते हैं, सो सब खर्चमें ही जाना जाता है। अर्थात् जीवको जमा नहीं जाना है, कल्पना करके ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा, अल्लाह, देवी, देवता, इत्यादिको जमा, सत्य, कल्याण-कर्ता, मुक्तिदातादि मान-मानके जितने भी साधन, त्याग, वैराग्य आदि किये और कर रहे हैं, सो सब, खर्च = नाशवान् न ठहरनेवाला होनेसे व्यर्थ है, कुछ काममें आनेवाला नहीं है। उल्टा उसी खानी, वाणीके अध्यासी होके जीव चौरासी योनियोंमें ही भटकते रहते हैं। बिना पारख किसीकी निस्तार नहीं होती है, ऐसा विवेक करके यथार्थ जानिये ! ॥

अथवा जमा चैतन्य जीव अविनाशी है, उसका कभी नाश नहीं होता है। ऐसा पारखबोध पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा जान करके सारशब्द निर्णयके प्रमाणसे हंस रहनी-रहस्यको पूर्णतासे धारण-कर निराश, निवृत्ति वर्तमानमें वर्तना चाहिये। तभी यथार्थ जीवन्मुक्ति होयगी। और जीव जमा जाने बिना, किया हुआ सब प्रयत्न बेकामकी खर्चमें ही होती है, सो जानिये। वह बन्धनमें ही ले जानेवाली होती है। अतः पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके जीव जमाको जान लेना चाहिये ! ॥ ३४५ ॥

साखीः— जीव जमा सत्य साँच है। कहहिं कबीर पुकार ॥
जीव जमा जानै बिना। महाकठिन जन्म जार ॥३४६॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीपारखी सन्त श्रीगुरुदयाल साहेबकृत श्रीकबीर-परिचय साखी मूल ग्रन्थः सम्पूर्ण-समाप्तम् ॥ ❀ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो ! सकल संसारमें नित्य; अखण्ड, सत्य, अविनाशी, साँच वस्तु जो है, सो यही स्वयं स्वरूपी जीव जमा है । इसके ऊपर मालिक, कर्ता-ब्रह्म, ईश्वरादि कोई शिव, हितकारी नहीं है । जीवसे परे कोई सत्य वस्तु चैतन्य ही नहीं है । यह अपरोक्ष पारख निर्णय सत्यन्यायी बन्दीछोर पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने स्वयं अनुभव करके फिर मुमुक्षु, जिज्ञासु मनुष्योंके हित-कल्याणके वास्ते पुकार-पुकारके कहे हैं । जो सद्ग्रन्थ बीजकमें लिखा है । सो, उसमेंका एक साखी सुनियेः—

॥ ※ ॥ प्रमाण ॥ बीजक मूल साखी—११ ॥ ※ ॥

"जो जानहु जग जीवना । जो जानहु सो जीव ॥
पानि पचावहु आपना । तो पानी माँगि न पीव ॥" ११ ॥

इत्यादि सारशब्द निर्णय गुरुमुख वाणी सद्गुरुने पुकारके बहुत-सी कहे हैं । जीव, चिरञ्जीव सदा-सर्वदा जीते रहनेवाला, सनातन, पुराण-पुरुष वही स्वयं प्रत्यक्ष जमा सत्य या साँच वस्तु है । ऐसा समझ-बूझके जो मनुष्य अन्य मिथ्या मनकी मानन्दीको छोड़कर हंस रहनी संयुक्त निजपदमें स्थिर हो जाते हैं, वे भव-बन्धनोंसे छूटकर जीते ही मुक्त हो जाते हैं । बारम्बार उन्हें ही धन्य-धन्य है । उन्होंने ही नरजन्म पानेका सार सफल किये हैं, ऐसा जानिये ! और कर्म-भूमिकारूप नर-देहको पाकरके भी जिन्होंने निज स्वरूप जीव जमाको जाने नहीं, और नाना प्रकारकी मानन्दी कर-करके ब्रह्मानन्द, विषयानन्द आदि विजातीय सुखाध्यास, अहन्ता, ममतामें ही भूले रहे । खानी-वाणीकी महाजालोंमें अरुझके भटकते रहे, वे सब मनुष्य जीव जमाको जाने बिना भ्रमिक जड़ाध्यासी हो करके, महा-कठिन = छूटनेको अत्यन्त मुश्किल ऐसे बड़ा भारी मोटी-झीनी फन्दोंमें पड़के जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयताप आदिकी दुस्सह

दुःखोंमें बेजार, परवश होके गिर पड़े। और अभी भी अध्यासी जीव सब वही जन्मजारमें बेहाल व्याकुल हो करके कर्मानुसार सब कोई नाना-देह धारणकर दुःख भोग रहे हैं। अतएव मुमुक्षुओंने अभी पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके निज पारख स्वरूपमें, स्थिति कायम कर सब अध्यासोंको मिटाय, जाग्रत् , शान्त, निर्भ्रान्त, जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये! यही नरजीवोंका मुख्य कर्तव्य है, और यही ग्रन्थका सार भावार्थ है; ऐसा जान लीजिये! ॥ ३४६ ॥

॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत ग्रन्थ समाप्तिका मङ्गल—दोहा ॥ ❀ ॥

श्रीकबीर परिचय यही। साखी ग्रन्थ समाप्त ॥
सद्गुरु पद त्रय बन्दगी। भो टीका पर्याप्त ॥ १ ॥

श्रेय श्री सो श्रेष्ठता। पारख गुरुमत धीर ॥
काया वीर कबीर जिव। बन्दीछोर कबीर ॥ २ ॥

पारख प्रकाशी सद्गुरु। आदि अदल कबीर ॥
परखायो सब जालको। मेट्यो कालकी पीर ॥ ३ ॥

बिनु पारख जाने नहीं। जीव कबीर सत सार ॥
मानि-मानि भूले सकल। भटकत बारम्बार ॥ ४ ॥

सो पारख परिचय कियो। गुण लक्षण कहि दीन्ह ॥
अस्ति-नास्ति समुझायके। निज पद पारख चीन्ह ॥ ५ ॥

साखी साक्षी जानिये। खानि-वाणि तकरार ॥
जगत ब्रह्मलों जो अहै। मन मानन्दि विकार ॥ ६ ॥

हंस साक्षी सब जानता। पारख दृष्टि खोल ॥
सारशब्द टकसार पद। गुरुमुख निर्णय बोल ॥ ७ ॥

'साखी आँखी ज्ञानकी'। सद्गुरु वचन प्रमाण ॥
सत्सङ्गतमें ठहरि लखे। सारासार पिछान ॥ ८ ॥

पारख परिचय बीजक । गुरुमुख वाणी सार ॥
मनन ग्रहण करि पारखी । सन्त भये भव पार ॥ ९ ॥

पारखी गुरु परम्परा । सत्यज्ञान परकाश ॥
गुरुवन धोख मिटायके । भास अध्यास विनाश ॥ १० ॥

श्रीगुरुदयाल साहेब । पारखी सन्त सुजान ॥
बीजक पारख ज्ञान दृढ़ । सकलो कीन्ह पिछान ॥ ११ ॥

गुरुवाकेरी जाल अमित । फँसे सकल नर जीव ॥
दहुँ दिश धावैं विरहमें । गोहरावैं पीव-पीव ! ॥ १२ ॥

इत-उत व्याकुल भटकते । सूझै वार न पार ॥
अन्धधुन्द बढ़ि जावते । बहै घोर अन्धार ॥ १३ ॥

अस बहुतेरी दुर्दशा । देखा गुरुदयाल ! ॥
कृपा दृष्टि परखाय सब । भूल भ्रम्मको टाल ॥ १४ ॥

मतवादी जस मान्यता । खरा-खोट पहिचान ॥
कबीरपरिचय साखीमें । पारख गुरुका ज्ञान ॥ १५ ॥

निर्णय न्याय कसौटिमें । कसिया सब सिद्धान्त ॥
खरा जीव पद ठहरके । और सकल मत भ्रान्त ॥ १६ ॥

यहिविधि गुरु परिचय दिये । जानो सन्त सुजान ! ॥
निज स्वरूप स्थिति कीजिये । त्यागि सकल अज्ञान ॥ १७ ॥

गुरुदयाल कृत परिचय । साखी मूल प्रमाण ॥
रामस्वरूप टीका किया । गुरुमुख भाव प्रमाण ॥ १८ ॥

श्रीकबीर निर्णय मन्दिर । नागझिरी शुभ धाम ॥
बुरहानपुर प्रसिद्ध है । पारखी सन्त मुकाम ॥ १९ ॥

पूरणसाहेब पारखी । आचार्य गुरुमत धीर ॥
परखायो गुरु पारख । बीजक ज्ञान कबीर ॥ २० ॥

बीजक अर्थ पढ़ावते । पञ्चग्रन्थी पुनि साथ ॥
परिचय साखी आदिकी । बोध कियो गुरु नाथ ! ॥ २१ ॥

श्रीलालसाहेब सद्गुरु ! उनसे पढ़िया अर्थ ॥
रामस्वरूपदास अब । टीका लिखि सामर्थ ॥ २२ ॥

जिज्ञासु सब सन्तको । अर्थ सुनाऊँ वर्तमान ॥
सन्तन लाभ भविष्यको । टीका यहि गुरुज्ञान ॥ २३ ॥

नाशवान यह देह है । कबहुँक तो छुटि जाय ॥
पारख भाव प्रसिद्ध हो । यही ध्येय मन माय ॥ २४ ॥

और नहीं कछु चाहना । सबके हो कल्याण ॥
पारख पदमें अटलता । जीवन्मुक्त प्रमाण ॥ २५ ॥

बन्दीछोर कबीर गुरु ! पूरण साहेब लाल ! ॥
पारखि सन्त गुरुपद । बन्दौं गुरू दयाल ! ॥ २६ ॥

रामस्वरूपदास तुम । गुरु पारख दृढ होहु ॥
मानन्दी अध्यास तजि । जीवन सुफल करेहु ॥ २७ ॥

युग सहस्र वसु सम्वत । कार्तिक शुक्ल दशामी तिथी ॥
गुरुवार सन् पाँच इक । नवम्बर दिन आठ इति ॥ २८ ॥

याकी टीका समाप्त भया । गुरुकी दयाते आज ॥
रामस्वरूप पारख गहू । होवै ताहिते काज ॥ २९ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीनिर्णयसारादि संयुक्त षट्ग्रन्थे— श्रीकबीरपरिचय साखी, पञ्चम ग्रन्थस्य— रामस्वरूपदास, अनुवादित— पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित, सम्पूर्णम्-समाप्तम् ॥ ५ ॥ ❀ ॥
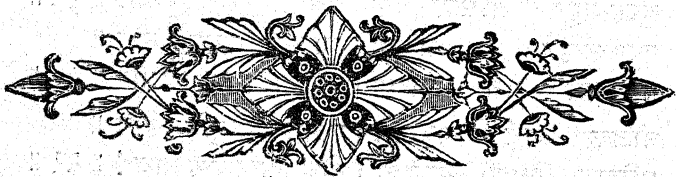
॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ दयागुरुकी ॥ ❀ ॥

❀॥ सत्यन्यायी पारखनिष्ठ पारखी सन्त, साधु शिरोमणि—॥❀॥

सद्गुरु श्रीगुरुदयालसाहेब विरचित—

एकादश शब्द नामक षष्ठ ग्रन्थः प्रारम्भः ६

[पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम् श्रीसद्गुरुपद वन्दना ॥ ❀ ॥

साखीः—श्रीकबीर पारखी गुरु ! बन्दौं प्रथम महान ॥
सकलो सन्त समाजमें । सर्वोपरी जहान ॥ १ ॥
अतिशय भारी गुरुपद । पारख पद सो चीन्ह ॥
दया कबीर गुरु साहेब ! जगमें परगट कीन्ह ॥ २ ॥
पारखी गुरु परखायके । सब भ्रम कीन्ह विनाश ॥
निजस्वरूप स्थिति पाय जीव । मुक्त भये नहिं आश ॥ ३ ॥
कल्पित धोखा जाल अमित । गुरुवनके विस्तार ॥
फँसे जीव सकलो तहाँ । गुरु पारखी भव पार ॥ ४ ॥

साखीः—गुरुदयाल दया करी। धोख कल्पना टाल ॥
एकादश यहि शब्दमें। दर्शायो सब जाल ॥ ५ ॥
जगकर्ता संशय अहै। साखी न जानै भेद ॥
कर्म न चीन्है बावरे! जैनी भ्रममें खेद ॥ ६ ॥
प्रेरक प्रेरे भर्ममें। शब्द न साधै कोय ॥
मुक्ति केरी आशमें। दुनियाँ जाय बिगोय ॥ ७ ॥
राम कहै धोखा बहै। बीबी जाल फन्दान् ॥
परख शब्द टकसार बिन। हंसा सबहिं भुलान् ॥ ८ ॥
सो करि शब्द विस्तारयुत। परखायो गुरुज्ञान ॥
गुरुदयाल निर्णय कह्यो। सारशब्द परमान ॥ ९ ॥
रामस्वरूप सोई मूलकी। कहूँ टीका विस्तार ॥
पाठन अर्थ प्रमाण सो। लेख लिखौं सो सार ॥ १० ॥
शब्द सरल आहैं तदपि। भाव छिपा तहाँ गूढ़ ॥
गुरुमुख कुञ्जी खोल बिनु। भेद न जानै मूढ़ ॥ ११ ॥
वर्तमानमें रामस्वरूप। सन्त पढ़ैं यहाँ आय ॥
टीका होय भविष्यको। परम्परा ठहराय ॥ १२ ॥
बोध दाता साधु गुरु। बन्दगी पद त्रयबार ॥
रामस्वरूपदास सदा। गुरुकी दया आधार ॥ १३ ॥
धन्य! धन्य! पारखी गुरु! सद्गुरु बन्दीछोर! ॥
रामस्वरूप ठहरायके। मुक्त कियो घनघोर ॥ १४ ॥
विघ्न निवारण मङ्गल। गुरुपद सुखकी खान ॥
रामस्वरूप बन्दा गुरु! पारख ज्ञान निधान ॥ १५ ॥
गुरु गुणके स्मरण किये। मन विक्षेपको नाश ॥
रामस्वरूप स्थिरता हिये। पारख बोध उजाश ॥ १६ ॥
इन्द्रीदश मन एक मिलि। एकादश तन जाल ॥
सो घेरा बिच जीव सदा। बन्धे मन सोइ काल ॥ १७ ॥

साखीः— माया प्रकृति एकादश । जाल कठिन विस्तार ॥
ग्यारह शब्द कहिके यहाँ । गुरुदयाल उद्धार ॥ १८ ॥
गुरु कबीर उपकार बड़ । दीन्हा पारख बोध ॥
रामस्वरूप गुण गाऊँ सदा । निज-पर मनहिं प्रबोध ॥ १९ ॥
युग सहस्त्र वसु सम्वत । चैत्र कृष्ण तिथि आठ ॥
शुरू टीका बुधवासर । रामस्वरूप लिख पाठ ॥ २० ॥
॥ ❀ ॥ इति आदि मङ्गलाचरण पद समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ अथ मूल ग्रन्थः ग्यारह शब्द सटीक प्रारम्भः ॥

॥ ❀ ॥ प्रथम–शब्द ॥ १ ॥ ❀ ॥

पण्डित ! मोहिं कहो समुझाई ! ॥ १ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— [संसारमें ज्ञानी-अज्ञानी, और मूर्ख तथा पण्डित सब कोईने अनुमान-कल्पनासे कोई एक जगत्का कर्ता मान रखे हैं, उस बारेमें तहाँ ग्रन्थकर्ता पण्डितोंसे पूछते हैं किः—]

हे पण्डित ! हे ज्ञानी ! बुद्धिमान् विद्वान् लोगो ! आप अपने समझ बोधका निर्णय मुझसे वा मुझे समझाय-बुझायके ठीक-ठीकसे कहिये कि— ॥ १ ॥

जगको कर्ता काहि बतावो । कासों सृष्टि उपाई ? ॥ टेक ॥ २ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— चराचर जगत्को उत्पन्न करनेवाला कोई एक कर्तापुरुष है, ऐसा जो आप लोग अनुमानसे मानते हो, तो बताओ ! वह ऐसा विचित्र कर्तापुरुष आप किसको बतलाते हो ? उसका रूप, रङ्ग, आकार, प्रकार, गुण, लक्षण क्या है ? कैसा है ? वह कर्ता कहाँ रहता है ? और, सृष्टि = यह सारा संसार प्रथम नहीं था, तो पीछेसे सृष्टि किसके द्वारा किस तरहसे

उत्पन्न हुयी ? कहाँसे उत्पन्न होके आयी ? इस बारेमें आप लोग क्या मानते हो ? सो हमें भी समझाके कहो ? वास्तवमें जड़-चैतन्य-रूप यह जगत् तो अनादि कालका स्वतः ही है। जिसके आदि कर्ता न हो, सोई अनादि होता है। फिर कहो तो भला ! ऐसे जगत्का कर्ता तुम किसको-किस प्रकारसे बतलाते हो ? और जड़-सृष्टि तथा चैतन्य-सृष्टि किससे उत्पन्न भयी है ? यहाँ तो नरजीवोंसे ही वाणी-खानीकी सृष्टि भयी है, यह न जानके और ही जगत् कर्ता मानके कई मनुष्य धोखामें पड़के भूल रहे हैं। उसे सत्सङ्ग द्वारा समझना चाहिये। यह शब्दका टेक या ठहरावमें गुरुवा लोगोंकी मुख्य टेकके बारेमें प्रश्नरूपसे दरशाया गया है। ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

मच्छ कुच्छ बराह नरसिंहहि । सतयुग वरणहु चारी ॥ ३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! ये पौराणिक पण्डित लोग चार युगोंमें मिलायके मुख्य दश अवतार प्रगट होनेको मानते हैं। तहाँ उनसे ही पूछते हैं कि— हे पण्डित ! चार युगरूप जगत्में ही समय-समयपर अवतार होनेको तुम लोग मानते हो। प्रथम सत्ययुगमें मुख्य चार अवतार होनेका वर्णन किये हो। उसमें, मच्छ = १. मत्स्य अवतारः—(भागवतादि ग्रन्थोंमें लिखा है कि—) जब सृष्टिके पहले विष्णुके नाभिकमलमेंसे ब्रह्माजी चार हाथोंमें चार वेदोंका पुस्तक लिये हुए प्रगट भये, और उन वेदोंको वे पढ़ने लगे थे, इतनेमें शङ्खमें रहनेवाला शङ्खासुर नामक दानव आके ब्रह्माके हाथोंसे जबरदस्तीसे चार वेदोंका पुस्तक छीनके समुद्रमें भाग गया। तब ब्रह्माने शोकसे विह्वल होके रो-रोके विष्णुकी पुकारा करते भये, फिर विष्णुने शङ्खासुर द्वारा वेदोंके छीने जानेका हाल जानकर उस वक्त मछलीका रूप बनाकर महामत्स्यका अवतार-से उस शङ्खासुरका पीछा किया। तब उसने वेदोंके पुस्तकोंके पृष्ठोंको समुद्रके पानीमें छिटकाके फेंक दिया, और वह भागा। परन्तु, मत्स्य-

अवतारने उसपर धावा करके उसे मार डाला। पश्चात् समुद्रमें तैरते हुए वेदोंके पृष्ठोंको बटोर करके लाया, पुनः वह वेद ब्रह्माको सौंपकर सुरक्षित रखनेको बतलाकर चला गया, इत्यादि इसके बारेमें पुराणोंमें कल्पित कथा लिखी हुई है। दूसरा, २. कच्छ = कच्छप (कूर्म) अवतारः— देवता और दानव मिलकर समुद्र मथन करते समय मन्दराचल पहाड़के नीचे आधार न होनेसे डूबने लगा था, तब उन सबोंके प्रार्थना करनेपर विष्णुके विशालकाय अवतारी कछुवेने समुद्रके नीचे जाके पर्वतको आधार देके थामा, जिससे समुद्र मथन होके चौदह रत्न निकले, इत्यादि कल्पित कथन वर्णन भया है। ३. वराह = सूअरके रूपवाला, अवतारः— पृथ्वी महासागरमें डूबकर रसातलमें चली गयी थी, दानव लोगोंने उसे दबा रक्खा था, तब ब्रह्माके आराधनासे वराह अवतार प्रगट हुआ। सो पर्वताकाररूप धारण करके समुद्रमें गोता लगाकर नीचे चला गया, गेंद समान पृथ्वीको दोनों दाढ़ोंके बीचमें उठाके ऊपर ले आया। उस वक्त हिरण्याक्ष दैत्यने रुकावट डाला, और लड़ने लगा। युद्धमें उस हिरण्याक्षको मार करके वराहने पृथ्वीको लाके उसके पूर्व जगहमें स्थापित कर दिया, और ब्रह्माको उसपर सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा देकर गायब हो गया, इत्यादि कल्पित कथा कहा है। और चौथा अवतार, नरसिंह = ४. नृसिंहः— जिसने कटिके नीचे आधा भाग मनुष्यका तथा ऊपर आधा भाग सिंह जानवर (पशु) का ऐसा कपटसे छद्मरूप बनाके खम्बा फोड़कर प्रगट हुआ, और हिरण्यकशिपु दैत्यको पकड़कर नाखूनोंसे उसका पेट फाड़के मार-डाला, और भक्त प्रह्लादको बचाया, इत्यादि कल्पित कथा पुराणोंमें वर्णन किया है। इस प्रकारसे मच्छ, कच्छ, वराह और नरसिंह नामसे यही चार अवतार सत्य युगमें हुए हैं, ऐसा तुम्हीं गुरुवा लोग पुराणोंको पढ़-पढ़के कल्पनाका विस्तार बढ़ाके वर्णन करते हो, सो ऐसे कल्पित कथाका वर्णन कर ही रहे हो॥ २॥

बावन परशुराम औ रामहि । त्रेता तीन विचारी ॥ ४ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और तैसे ही ५. वामन अवतारः—राजा बलिके अति दानमें विघ्न करनेके लिये हुआ था। बावन अंगुलका इतना बड़ा आकारवाला ब्राह्मण पुत्रने ब्रह्मचारीके रूपमें जाके बलि राजा-के यज्ञमें खड़ा हुआ। फिर छल, बल, कपटसे तीन हाथमात्र पृथ्वी दानमें माँगकर सङ्कल्प करायके फिर बलिको धोखा देके तीनलोक नाप लेनेका नाटक किया। फिर वचनबद्ध बलिको बाँधके पाताल लोकमें रहनेको भेज दिया। ऐसा कपट जालका पसारा किया, इत्यादि कहा है। ६. परशुराम अवतारः— जमदग्नि मुनिके छोटे पुत्रका नाम परशुराम था। एक समयमें उसने पिताके आज्ञासे माता, और भाइयोंका शिर भी काट लिया था, और राजा सहस्त्रबाहुने जमदग्निका कामधेनु छीनके ले गया था, किन्तु गाय भागके उनके ही पास आगयी, तब मौका पाके राजाके सिपाही लोग आके जमदग्निके शिर काटके गाय लेके चले गये। पीछे परशुराम आये, और पिताके हत्या होनेमें कारण पूर्वोक्त वह सब बातको जान करके अति क्रुद्ध होके फरशा उठाके लड़नेके लिये चल पड़े। फिर युक्ति-प्रयुक्तिसे युद्ध कर ससैन्य सहस्त्रबाहु राजाको मारकर और अनेकों क्षत्रियोंसे लड़-भिड़के सबोंको परास्तकर इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्री किया। पश्चात् राम, लक्ष्मणसे जनकपुरमें वाद-विवाद करके शान्त होने-पर तपस्या करनेमें लगे, इत्यादि वर्णन हुआ है, और ७. राम अवतारः— राजा दशरथकी बड़ी रानी कौशल्याके गर्भसे रामका जन्म हुआ। जनकपुत्री सीतासे विवाह किया। फिर कैकेयीके कपटसे पिताके आज्ञा होनेसे १४ वर्षके वनवासको सीता, और लक्ष्मण सहित गये। सुग्रीवसे मित्रता करके बालीका बध किया। लङ्का जानेके लिये समुद्रमें सेतु बाँधा, और युद्धमें रावण, कुम्भकर्णआदिको मारकर १४ वर्षकी अवधि पूरा होनेपर अयोध्यामें आके राज्य किया, इत्यादि रामायणादिमें वर्णन किया है। इस प्रकार वामन, परशुराम,

और राम, यही तीन अवतार त्रेतायुगमें हुआ, ऐसा पौराणिकोंने विचार किये हैं। सोई हे पण्डित! तुम लोग भी प्रमाणिक होनेका विचार करते हो। परन्तु, सत्यासत्यका निर्णय करके सारका विचार तो तुम लोग करते ही नहीं हो, यही तुम्हारा बड़ी भारी भूल है ॥ ४ ॥

कृष्ण बौद्ध द्वापर दुइ वरणहु। महिमा गावहु ताकी ॥ ५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! ये पण्डित लोग द्वापरमें दो अवतार होनेका वर्णन करते हैं। सो ८. कृष्ण अवतारः— वसुदेवकी स्त्री देवकीके गर्भसे कृष्णने जन्म लिया। नन्द-यशोदाके यहाँ उनका पालन-पोषण हुआ। गोप स्त्रियोंसे विषय क्रीड़ा किया। पीछे कंसको मारकर लोकमें प्रसिद्ध हुआ। और अनेकों राजाओंको भी छल, बल, कपटसे मारा और मरवाया। द्वारकामें राजधानी बसाया। बहुतसी स्त्रियोंसे विवाह भी किया। महाभारतके युद्धमें भी प्रमुख रहा। अन्तमें यादव कुल संहार होनेपर कृष्ण भी उसी निमित्तसे मर गये। इत्यादि कथा महाभारत, भागवत आदिमें विस्तारसे वर्णन किया है।

९. बौद्ध अवतारः— शुद्धोदन राजाके पुत्र सिद्धार्थ, जिसका नाम गौतम बुद्ध प्रसिद्ध भया है। वे राज्य त्याग करके भिक्षु होकर भ्रमण करते रहे। उन्हींसे बौद्धधर्म स्थापित हुआ है। दूसरा हिन्दू लोग जगन्नाथको ही हाथ-पाँव बिना ठूँठा बौद्धका अवतार मानते हैं। इसने रक्तबीज दैत्यको मारा, जाति-पाँतिका भेद मिटाया, ऐसा भी कहा है। ऐसे कृष्ण और बौद्ध यही दो अवतार द्वापर युगमें हुए, ऐसा हे पण्डित लोग! तुम लोग वर्णन करते हो, और उन्हीं नव (९) अवतार वा कृष्ण, बौद्ध ये दोनोंका विशेष-विशेष महिमा-महात्म्य, गुणानुवाद, विस्तारसे वर्णन करके गाते हो, और उनके जड़-मूर्तिका दर्शन करनेके लिये जहाँ-तहाँ धाम, क्षेत्रोंमें, तीर्थोंमें जाके ताकते वा तकाते हो, तुम लोग तो ऐसे भ्रम चक्रमें पड़े हो ॥ ५ ॥

नौ सिक्का वोसूल दफतरमें । कली निकलङ्की बाकी ॥ ६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और जैसे सरकारी, दफतर=बही-खातामें वा रजिस्टरमें कर, लगान वा टैक्सकी सरकारी सिक्का वा नकद रुपया चुकता मिलनेकी वसूली और बाकीका हिसाब दर्ज करके लिखा रहता है । जिसके आधार, प्रमाणसे बाकीका सिक्का भी वसूल किया जाता है । उसी प्रकारसे इन भ्रमिक गुरुवा लोगोंने भी उनके, दफतर=पुराण, शास्त्र आदि बही-खातारूप रजिस्टर्ड कापी वा ग्रन्थोंमें, नौ सिक्का=कलदार, सच्चा, सरकारी रुपयाके समान— मच्छसे लेके बौद्धतक, नौ अवतार उपरोक्त प्रकारसे तीन युगोंमें, वोसूल=चुकता वा पूरा हो गये, कहके उन्होंके चरित्र महिमा असम्भव कथन लिखा हुआ है । ऐसे नौ संख्यातक तो दफतरमें वसूल दर्ज हो चुका है । परन्तु एक अवतार जिसका नाम कल्की वा निष्कलङ्की है, सो होना बाकी है । वह कलियुगके किसी समयमें होगा, ऐसा कहते हैं । अर्थात् नौ अवतार तो प्रगट होके अपना-अपना कार्यकाल पूरा करके अन्तर्धान भी हो चुके हैं, और दशवाँ निष्कलङ्की अवतार होना बाकी है । सो सम्भल देशके मुरादाबादमें किसी वैष्णव ब्राह्मणकी कुवाँरी कन्यासे उत्पन्न होनेवाला है । जो कि प्रगट होके कलिञ्जर दैत्यको मारेगा, इत्यादि कपोल-कल्पनाको गुरुवा लोगोंने दृढ़ कर रखे हैं । उपरोक्त दशोंको विष्णुके प्रधान दश अवतार माने हैं । जिनके उपासनामें भक्त लोग अन्धाधुन्ध भूले पड़े हैं । वही कल्पना दृढ़ाके दूसरे लोगोंको भी भुला, भ्रमा रहे हैं ॥ ६ ॥

दफ्तर खोलै बाकी बोलै । उगारि न काहू कीन्हा ॥ ७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ये पौराणिक भ्रमिक पण्डित गुरुवा लोग कथावाचक उपदेशक बनके अबोध जनताके बीचमें, दफतर=बहीखाता, रजिस्टर्डरूप पुराणादि ग्रन्थोंको खोलके बाँचते

वा पढ़ते, कथा सुनाते हैं। तहाँ कहते हैं कि— पहिले सत्ययुगमें मत्स्य अवतार हुआ, फिर कूर्म, वराह आदि क्रमशः नौ अवतारतक होनेका उनके जन्म, कर्म, लीला, महिमा आदि मनमाने ढङ्गसे वर्णन करनेके उपरान्त अन्तमें दशवाँ एक अवतार निष्कलङ्की होना बाकी है, ऐसा बोलते हैं, और कलियुगमें जब संसारमें चारों तरफ पाप-ही-पाप होने लगेगा, अनीति-अन्याय बढ़ जायगा, दानव समाजकी बढ़ती हो जायगी, उनमेंसे एक बड़ा अत्याचारी पापी कलिअुर दैत्य सबके लिये दुःखदाई हो जायगा, तब कल्की अवतार प्रगट होके उसको संहार करेंगे, और भूमिका भार हरके धर्म-स्थापन करेंगे, अतः तुम लोग अभी विधर्मियोंसे घबराओ नहीं, परमात्माका भजन, स्मरणमें लगे रहो, तो अन्तमें भला ही होगा, इत्यादि बाकी बोलके दफ्तर खोलके लोगोंको भुलाये और भुला रहे हैं। ये गुरुवा लोगोंने किसीको भी भ्रम बन्धनोंसे छुटकारा नहीं किया। अरे भाई ! उन माने हुए दश अवतारोंने, काहू = किसी जीवको भी, उगरि = छुटकारा वा मुक्त किये नहीं। फिर उन्होंकी उपासना करनेसे नर-जीवोंको क्या लाभ होगी ? कुछ नहीं। अरे ! वे अवतार खुद ही कर्म भोगोंसे उरिण नहीं हो सके, तो दूसरे जीवोंको क्या कैसे उरिण करेंगे ? ॥ ७ ॥

कर्म पियादा सबके पीछे । संशय मसी मुख दीन्हा ॥ ८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! शुभाशुभ कर्मरूपी, पियादा = सिपाही, अपराधी जीवोंको पकड़के चौरासी योनियोंमें डालनेके लिये सब जीवोंके पीछे-पीछे ही लगा हुआ है। अतः जिनको गुरुवा लोग दश अवतार माने हैं, वे भी चौरासी योनियोंके कर्म-भोगी बद्ध जीव ही हुए हैं। सो कैसे कि— सुनिये ! मच्छ, कच्छ, दोनों जलचर अण्डज खानीके पाप भोगी जीव हैं। वराह = सूअर पशु ही है। नृसिंह = सिंहके खाल ओढ़े हुए, कोई नरपशु ही था। वामन = पाप भोगी बौना था। परशुराम— घातकी क्रूर हत्यारा

एक ब्राह्मण रहा। राम—क्षत्रिय पुत्र मोही रहा। कृष्ण—कामी, और कपटी छली रहा। बौद्ध— ठूँठा होनेसे पाप भोगी भया। कल्कीको तो घोड़ारूपमें माना है, वह अभीतक प्रगट भया नहीं है, तो कहीं चौरासी योनियोंके गर्भमें छिपा होगा। इस तरहसे उन सब अवतारोंके पीछे-पीछे उनके पूर्वजन्मके कर्म, अध्यासरूप पियादा लगा, जिसने उन सबोंको कर्मके बेड़ी-हथकड़ी डाल दिया; और उन्हें अपराधी घोषित करके न्यायाधीश कर्मने जन्म-मरणका दण्ड दिया, तहाँ, संशयरूपी मसी=काली स्याही वा कर्म-अध्यासकी कालिमा अज्ञानता उनके मुखमें वा अन्तःकरणमें पोत दिया वा स्याही लगा दिया, और चौरासी योनियोंके बन्दीखानामें डाल दिया। अब कहो! उनके उपासक लोगोंकी कैसे भलाई होगी? यद्यपि कर्म-कुकर्मके पियादा सबोंके पीछे लगा हुआ है। तथापि भ्रमिक वेदान्ती लोग संशयरूप वाणीके प्रमाणसे, मसी=तत्त्वमसिरूप मुख्य अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, ऐसे मुखसे असिपद ब्रह्मका बोध दृढ़ करके भ्रम धोखाको ही पक्का कर दिये हैं। अब वर्तमानमें गुरुवा लोग सब अपने-अपने मुखमें, मसी=स्याही लीपा-पोती करके संशयका मसी सबको लगा रहे हैं। बिना पारख ॥ ८ ॥

जब एकौ अवतार न होते। तबकी गति कहु भाई!॥ ९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे भाई! यदि तुम पण्डित, चतुर, समझदार हो, तो जो बात मैं तुमसे पूछता हूँ, उसका उत्तर ठीक-ठीकसे बताओ! तुम्हारे पूर्वोक्त कथनसे सत्ययुगमें चार अवतार, त्रेतामें तीन, द्वापरमें दो और कलियुगमें एक अवतार होते हैं। उनकी कथा कहके तुम मुक्ति बतलाते हो। अब यह बताओ कि— जब सत्ययुगके पहले एक भी अवतार संसारमें उत्पन्न नहीं हुआ था, तब उस वक्त जीवोंकी गति-मुक्ति होती थी कि नहीं? हे भाई! तब उस वक्त जीवोंकी क्या, कैसे गति होती थी? सो खुलासा करके कहो। जब तुम कहते हो कि— भगवान् ही एकमात्र जीवोंके गति,

मुक्ति करनेवाले हैं। धर्मके हानि होने पर दुष्टोंके संहार और भक्तोंके रक्षाके लिये अवतार होता है। यह तो पीछेकी बात भयी। इससे प्रथम अवतारोंकी ही जब उत्पत्ति नहीं हुई थी, तबकी गति, हाल-चाल क्या कैसी थी ? सो वह मूलकी बात कहो ? ॥ ९ ॥

की पूरब की अगति जीव सब। की बीचहिं सुगति सुपाई ॥१०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे कर्तावादी! यह बताओ! की=अथवा पूर्व वा प्राचीनकालमें अवतारोंकी उत्पत्ति होनेसे पहिले सब जीवोंको एक समान, अगति=अधोगति वा नरकवास ही होता था, वा सुगति, मुक्त भी होता था कि नहीं ? की=अथवा पहले जबतक अवतार संसारमें प्रगट नहीं हुआ था, तबतक सब जीव दुर्गतिसे भवबन्धनोंमें पड़े थे, और बीचमें एकाएक मत्स्यादि अवतार प्रगट होके विचित्र-विचित्र कर्म-कुकर्मकी लीला किये। जिसे कपोल कल्पनासे-मनगढ़न्त कथा, पुराणोंमें गुरुवा लोगोंने लिखे, सुनाये, जिससे जगत्-जीवोंने उसे सुनके, गुण गाके, तब बीचहिंमें अच्छी तरहसे, सुगति=मुक्ति पाते भये, ऐसे कहते हो क्या ? यदि ऐसा ही है, कहके मानते हो, तो सुनो ! तुम जिन्होंको अवतारी पुरुष मानते हो, वे तो चारखानीके कर्म-भोगी जीव हैं। उन्होंने ही पहिलेके, और किसी अवतारोंकी कथा न सुना होनेसे उनके भी तो मुक्ति नहीं भयी होगी। उनके काम, क्रोध, लोभ, मोहादि कुकर्मसे वे स्वयं ही बन्धनोंमें पड़े, मुक्त नहीं हो सके। तो फिर उन्होंके कुकर्मोंकी लीला, कथा सुननेसे नाम स्मरण करनेसे बीचमें दूसरे जीवोंको कैसे सुगति वा गति-मुक्ति मिल सकती है, कभी नहीं मिल सकती है। अतः अवतारादिसे गति मानना, सरासर महाअज्ञानता है। जीव स्वयं अपने स्वरूपको भूलके कर्म बन्धनोंमें पड़े हैं, और सद्गुरुकी दयासे पारखबोध होनेपर नरदेहके बीचमें ही स्वयं मुक्त हो जाते हैं। ऐसा जानके सत्सङ्गमें लगना चाहिये ॥ १० ॥

जगत आदि अवतार मध्यमें । कृतम कर्ता मानी ॥ ११ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! विचार करके देखिये ! ये ईश्वरादि जगत्कर्ता माननेवाले बड़े अविवेकी हुए, और हो रहे हैं । जिस जगत्की ये उत्पत्ति कथन किये हैं, सो पाँच तत्त्वके ब्रह्माण्ड वा संसार तो, आदि = सर्व प्रथमसे ही ज्योंका-त्यों मौजूद रहा ही हुआ है, और उसी आदि जगत्के मध्यमें समय-समयपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश पैदा भये, बढ़े, नाना कर्त्तव्य किये, अन्तमें वे सब मर भी गये । तैसे ही माने हुए मत्स्य, कूर्म आदि दश अवतार भी संसारमें बीच-बीचमें ही उत्पन्न हुये, तथा कर्म-कुकर्म करके समय पायके वे सब भी नाश हो गये । फिर कहो तो भला ! उन अवतारों-को जगत्की सृष्टिकर्ता, धर्ता, हर्ता कैसे मानना ? जगत्के मध्यमें वे पैदा भये, तब जगत् प्रथम आदिसे ही रहा । फिर मध्यवालेको आदि जगत्का कर्ता मानना कितनी बड़ी भूलकी बात है ? अरे भाई ! इन अविवेकी पण्डित गुरुवा लोगोंने तो, कृतम = नकली, कल्पना, असत्यवाणीको ही, कर्ता = मालिक, सत्य चैतन्य मान लिये हैं । कृतमको कर्ता माननेवाले इन्होंमें कुछ भी सच्ची समझ बुद्धि नहीं है । पहिले तो मत्स्यादिको अवतार माना हुआ ही मन-गढ़न्त कोरी कल्पनामात्र है । सो भी पीछेसे पैदा भये हैं, उन्हें ही चराचर जगत्का कर्ता मानना मिथ्या कृतमरूप कल्पना ही है । अतः यह बात मानने योग्य नहीं है । वाणीको बनानेवाला नरजीवकर्ता है, बिना पारख कृत्तिम वाणीको ही मान-मानके नरजीव भूल रहे हैं ॥ ११ ॥

कर्ता आदि कि मध्य चाहिये । पुत्रहि पिता बखानी ॥ १२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ ! अब विचार करिये कि— जिसको जगत्कर्ता माना है, सो जगत्के आदिमें मौजूद होना चाहिये कि— कार्यरूप माना हुआ जगत्के मध्यमें वा अन्तमें प्रगट होना चाहिये ? अब आप ही न्याय, निर्णयसे सच्ची

बात कहिये ? जैसे घड़ोंका कर्ता कुम्हार घड़ोंसे प्रथम ही रहता है, तभी वह इच्छानुसार घड़ाओंको बनाता है, और प्रथम पिताके रहनेसे उसके द्वारा जो पीछेसे पैदा होता है, सो पुत्र कहलाता है। तहाँ कोई पुत्रको ही पिता बखान करे, यानी पिताका कर्ता पुत्रको माने, तो कितनी अनसमझ मूर्खताकी बात होती है। हरहालतमें कार्य पीछेसे होता है, और कर्ता प्रथमसेही मौजूद रहता है। परन्तु, संसारके बीचमें पुत्ररूपसे जो दश अवतार उत्पन्न हुए, उन्हें ही अविवेकी गुरुवा लोगोंने मूढ़तासे हठ पकड़के जगत्‌के पिता, कर्ता, परमात्मा, भगवान्, परमेश्वर, इत्यादि नामोंसे झूठ ही महिमा बढ़ायके अठारह पुराण, शास्त्र आदि बड़े-बड़े ग्रन्थ बखान किये हैं, और वेदान्तियोंने भ्रमसे ब्रह्म वा आत्माको ही जगत्‌कर्ता कथन किये हैं। नरजीवकी कल्पनासे वाणी द्वारा वैखरीसे जो पैदा भया, सो ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, अवतार, आदि वाणीका कार्य अंशरूप होनेसे शब्दका पुत्ररूपमें पैदा हुआ। परन्तु, बेपारखी लोगोंने उन्हें ही पितारूपमें जगत्‌कर्ता ठहरा करके माने हैं। महान धोखामें गिरे पड़े हैं। उसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे निर्णय करके यथार्थ जानना चाहिये ॥ १२ ॥

दश चौबीस जगतमें जन्में । जगत कहो किन कीन्हा ?॥ १३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे अवतारोंको जगत्‌कर्ता मानने वाले लोगो ! सुनो ! तुम्हारा माना हुआ मच्छसे लेके कल्कीतक मुख्य दश अवतार, और १. मनु। २. नारद। ३. विष्णु (ऋषभदेव)। ४. सनकादि। ५. मोहिनी। ६. कपिल। ७. व्यास। ८. दत्तात्रेय। ९. राजापृथु। १०. हयग्रीव। ११. बद्री। १२. हंस। १३. धन्वन्तरी। और १४. यज्ञ पुरुष, ये मध्यम (गौण) चौदह अवतार, और प्रथमके दश मिलाके सब चौबीस अवतार हुए, वे तो समय-समयपर आगे-पीछे आके इसी जगत्‌में ही जन्मे वा जन्म लिये, तहाँ पूर्व कर्मानुसार देह धारण करके उत्पन्न भये, और सुख-दुःखादि फल भोगके आयु पूर्ण होनेपर देह छोड़के मर गये। देखो ! मच्छ

अवतार होनेसे पहले सारा संसार पिण्ड-ब्रह्माण्ड रहा ही। तुम्हारे ही कथनसे विष्णु, ब्रह्मा, शेषनाग, लक्ष्मी आदि स्त्री-पुरुष सब रहे ही। समुद्र, पृथ्वी आदि भी रहा, सूर्य, चन्द्रादि खगोल भी रहे, वेदोंकी पुस्तक, ताड़ पत्रादिमें लिखा हुआ ब्रह्माके पासमें रहा, और शङ्खासुर आदि विरोधी पार्टीके लोग भी रहे। ऐसे महा ब्रह्माण्डमें पीछेसे कहीं तुम्हारे मच्छ अवतारने जन्म लिया। इसी प्रकार कच्छ, वराह आदि सब देहधारी अवतार कर्मानुसार पीछेसे ही पैदा होते भये। अब जरा सोच-विचारके कहो कि— इस पाँच तत्त्वके ब्रह्माण्डरूप जगत्को किसने, कैसे उत्पन्न किया? क्योंकि, तुम्हारे चौबीसों अवतारोंके जन्म होनेके पहिलेसे ही सारा जगत् ज्यों-का-त्यों ही था। फिर पूर्वमें जगत्को सृष्टिको किसने किया? यदि पाँच तत्त्व नहीं थे, तो वह कहाँ रहता था? पाँच तत्त्व कहाँसे लाया? अभावसे भावकी उत्पत्ति तो नहीं हो सकती है। अतः तुम्हारा जगत्कर्ता मानना निरर्थक होनेसे मिथ्या है ॥ १३ ॥

कौन रूप कर्ताको कहिये। मोहि बतावो चीन्हा ? ॥ १४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अगर तुम हठ करके जगत्का कर्ता कोई मानते ही हो, तो हे कर्तावादी! उस कर्ताका स्वरूप कहो कैसा है? साकार है कि— निराकार है? एकदेशी है कि— सर्वदेशी है? दृश्य है कि— अदृश्य है? देहधारी है कि— विदेह है? जड़ है कि— चैतन्य है? अब कहिये! उस कर्ताका कौन रूप है? आकार, प्रकार, गुण, लक्षण उसका क्या कैसा है? क्या तुमने कर्ताको जगत् उत्पत्ति करते हुए अपने आँखोंसे देखा है? कौनसी चीज पहिले नहीं थी, जिसे कर्ताने उत्पन्न किया? क्या आकाश और वायु नहीं थे? कि अग्नि, जल, पृथ्वी नहीं थी, यदि ये तत्त्व नहीं थे, तो तुम और तुम्हारे इष्टकर्ता कहाँ ठहरे थे? और कर्ताको सृष्टि करते हुये तुमने नहीं देखा है, तो फिर तुमने किस प्रमाणसे मान लिया कि— जगत्का कोई कर्ता है? और

कहो अभी वह कर्ता जीवित है कि नहीं ? कि मर गया है? अरे भाई ! कर्ताका कौन रूप कहते हो ? सो उसका चिन्ह वा लक्षण पहिचान करनेकी निशानी ठीक-ठीक खुलासा करके मुझे बताओ, समझावो; फिर मैं तुम्हें उसमेंकी कसर-खोट निर्णय करके बतलाऊँगा । पहिले तुम मुझे उसका चिन्ह बतलावो ॥ १४ ॥

ब्रह्म कि इच्छा जगत कि उत्पाति । गावो गाल बजाई ॥ १५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— (ऊपरके चौपाईमें कर्ताका चिन्ह पूछे थे, उस बारेमें कर्तावादी कहते हैं कि— देखो ! महाराज ! आपने जो पूछे हैं, उसका उत्तर हम थोड़ेसेमें कह देते हैंः—) परब्रह्म, परमात्माकी स्वयं इच्छा मात्रसे यह सारे चराचर जगत्की उत्पत्ति हुयी है । ब्रह्म-परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, वह जो चाहे सो कर सकता है, उसके लिये कोई बात कठिन वा असम्भव नहीं है । उसका रूप— निराकार, निर्गुण है, परन्तु आवश्यकता पड़नेपर वही जगत्कर्ता अपने इच्छासे साकार रूपमें अवतार धारण करके भी प्रगट होता है, लीला पूर्ण होनेपर फिर निराकारमें ही समा जाता है, इत्यादि वेद, शास्त्र, पुराण आदि धर्म ग्रन्थोंमें लिखा है, वही बात हम प्रमाण मानते हैं, इत्यादि उत्तर कहा । तहाँ ग्रन्थकर्ता फिर कहते हैं कि— हे कर्तावादी ! तुमने, ब्रह्मकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति होती है, ऐसा जो अभी कहा, सो तुम्हारा गाल बजाना निरर्थक है । अरे ! जो बात तुम गाल बजाय-बजायके राग-तानसे अलापते गाते हो, सो तो मिथ्या धोखा है, और जिसका तुम गुण गाते हो, उसमें तो कुछ भी सार नहीं है, असार है । भ्रमिक होके अभी तुम गाल बजायके मनमाने जो कुछ भी गाओ । परन्तु, उससे तुम्हारा कुछ भी लाभ होनेका नहीं, आखिरमें हाथ कुछ नहीं आयेगा, जड़ाध्यासी होके देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें ही चले जाओगे ॥ १५ ॥

ब्रह्म शब्द नपुंसक वरणहु । कौने अकिल चोराई ?॥ १६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे कर्ता ब्रह्मवादी ! तुम बड़े अविवेकी मूढ़ बने हो। शब्दके अर्थपर तो तुम लोग कुछ भी ख्याल नहीं रखते हो। मनमाने वैसे बकते जाते हो, इसपर भी पण्डित होनेकी दम्भ पकड़ते हो। सुनो ! व्याकरणकी रीतिसे "ब्रह्म" यह शब्दको पुरुषत्त्व लिङ्गसे हीन, क्लीव यानी नपुंसक-लिङ्गवाला अर्थात् हिंजड़ा वर्णन किया गया है, और कभी तो तुम खुद ही ब्रह्म शब्दको नपुंसक = निरिच्छ, निष्क्रय, निर्गुण, निराकार वर्णन करते हो। फिर पोछेसे उस बातको भुलाकर ब्रह्मकी इच्छासे ही जगत्की उत्पत्तिकी कथन गाल बजाय-बजायके कहते हो। अरे भाई ! तुम्हारी बुद्धि-विचारको वा अक्लको किसने चुरा लिया है, वा कहाँ गायब हो गया है ? जैसे नपुंसकमें सम्भोग करके सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा शक्ति प्रगट नहीं हो सकती है, उस बारेमें वह असक्त निकम्मा रहता है। तैसे ही प्रकृति-पुरुषसे परे माना हुआ ब्रह्म नपुंसक है, देहरहित निर्गुण, निराकार है, तो फिर उसमें जगत् उत्पत्ति करनेकी इच्छा कैसे, कहाँसे आयेगी ? देह-इन्द्रिय, चित्त-चतुष्टयके बिना भी कहीं इच्छा हो सकती है ? कदापि नहीं। अब कहो ! तुम कितने बड़े भारी भूलमें पड़े हो ? गुरुवा और कल्पनारूपी चोरोंने तुम्हारे अक्ल, समझ, बुद्धिरूपी पूँजीको चुराके तुम्हें मूँजी, उल्लू ही बना दिया है, अब तो भी ख्याल करो, चेतो कि— तुम्हारे अक्लको किसने हरण किया है ? ॥ १६ ॥

एकै ईश सकल घट व्यापिक । श्रुति कहै आवै न जाई ॥ १७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो ! अब ईश्वरवादी, वेदवादीकी कथन सिद्धान्त भी सुन लीजिये ! एक परमेश्वर कर्ता पुरुष है, वह ईश्वर एक ही सकल घटोंघट चराचर विश्वमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। अखण्ड निरन्तर एकरस, ओत-प्रोत भरा हुआ होनेसे वह कहींसे आता भी नहीं, और कहीं जाता

भी नहीं है। निराकार आकाशवत् ज्यों-का-त्यों सदा व्यापक बना ही रहता है। ऐसा वेदमें लिखा है। सोई बात श्रुति प्रमाणसे पण्डित लोग कहते हैं, वा कहे हैं, और कह रहे हैं ॥ १७ ॥

जबहिं जीव यह काया त्यागै । ईशहि अछत गन्धाई ॥ १८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! अब उस बातमें विचार कर लीजिये कि— ईश्वर सर्वव्यापक है, तो प्रथम, जीव इस शरीरको छोड़ करके कैसे और क्यों, कहाँ निकल जाता है ? दूसरा, जब यह कायाको त्याग करके जीव निकल जाता है, तब शरीर मुर्दा हो जाता है, सो क्यों होता है ? तीसरा, ईश्वर सर्वत्र व्यापक होनेसे जीवके देह छोड़नेपर मुर्दा देहमें भी उस ईश्वरके अस्तित्त्व व्यापक गुण तो कायम ही रहता है, फिर उस शक्तिमान् ईश्वरके मौजूद रहते हुए भी शरीर सड़ने, गलने लगना, देहमेंसे दुर्गन्ध फैलना, विनाश होना, ऐसा क्यों होने लग जाता है ? जीव रहता है, तबतक तो देह सुन्दर ही रहता है। किन्तु, कर्म-भोग पूरा होनेपर देह छोड़के जीव निकल जाता है। तब भी तो वहाँ ईश्वर रहता ही है। फिर ईश्वरके, अछत = रहते हुए भी देह सड़कर दुर्गन्ध आने लगता है। इसीसे मालूम होता है कि— व्यापक माना हुआ ईश्वर मिथ्या कल्पनामात्र है। उसके शक्तिका प्रत्यक्ष बोध कहीं किसीको नहीं होता है, वा नहीं हो सकता है। ऐसा जान लो ! ॥ १८ ॥

ब्रह्म कि छाया वरणहु माया । सो रूप बिहून बताई ॥ १९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे भ्रमिक, मिथ्यावादी, वेदान्ती लोगो ! तुम लोग माया-प्रकृतिको, परब्रह्मकी छाया = प्रतिबिम्ब वा परछाँही ठहराकर कल्पित वाणीका वर्णन करते हो। और, सो = ब्रह्मको, रूप बिहून = जिसका रूप-रेखा, आकार-प्रकार कुछ भी नहीं, रूपसे रहित अरूप, यानी निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, बतलाते

हो ! और वेद, शास्त्रोंमें भी ब्रह्मको निराकार आकाशवत् ही बतलाया हुआ है। अब विचार करो कि— बिना रूपवाले शून्यका कहीं छाया वा प्रतिबिम्ब हो सकता है ? कदापि नहीं हो सकता है। इसलिये मायाको ब्रह्मकी छाया बतलाना भी सरासर मिथ्या है ॥ १९ ॥

बिना रूपको छाया नाहीं। शून्य समान सगाई ॥ २० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— क्योंकि, जहाँ कहीं भी छाया पड़ती है वा परछाँहीं दिखाई देती है। सो साकार, दृश्य रूपवान पदार्थोंका ही होता है। बिना रूप, आकार और प्रकाशके न होनेसे तो कहीं कुछ भी छाया प्रगट होती ही नहीं है। यह बात सब कोई जानते हैं। दिनमें सूर्यका प्रकाश और साकार पदार्थका सम्बन्ध पाके एक भागमें छाया पड़ता है। तैसे ही रात्रिमें दीपक, चन्द्रमा आदिके प्रकाश स्थूल पदार्थमें पड़के दूसरे तरफ छाया दिखता है। परन्तु, बिनारूपके कहा हुआ ब्रह्मके छाया त्रिकालमें हो नहीं सकता है। अतः मायाको ब्रह्मका छाया मानना सरासर भूल है। परन्तु, भ्रमिक लोग शून्य आकाशवत् ब्रह्मको निराकार मानके धोखासे उसमें, सगाई = प्रेम, प्रीतिका सम्बन्ध लगाये हैं, वृत्तिको शून्य करके निर्विकल्प शून्य समाधिमें समाये, जड़ाध्यासी भये। इसीसे देह छूटनेपर शून्य गर्भवासमें ही जाके समाते हैं, बिना पारख ॥२०॥

बाजीगर सब पोथी पण्डित ! भानमतीके कल्ला ॥ २१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे पारखहीन पण्डित लोगो ! वास्तवमें तुम सब बाजीगर वा मदारीके समान झूठा तमाशा दिखाके अज्ञानी लोगोंको भुलानेवाले ठग बने हो ! वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि तुम्हारी, सब पोथी = पुस्तक, पत्रा आदि वह इन्द्रजाल दिखलानेकी सामान सरीखी नकली हैं। और तुम्हारे अद्वैत, द्वैत, विसिष्टाद्वैत आदि सब सिद्धान्त भी सरासर, भानमतीके = ठग, धूर्त, बाजीगरके दिखाया हुआ, कल्ला = करामात, कला, कौशल,

खेल, तमाशाके सरीखी झूठीवाणी कल्पनाका कथन, प्रतिपादनमात्र भ्रम, धोखा ही भरा है। उसमें सत्य-सार कुछ भी नहीं है ॥ २१ ॥

कहहिं कबीर कोई नहिं चीन्है। सबै लोग कहैं भल्ला ॥ २२ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः—सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबका कहा हुआ सत्य सिद्धान्त पारखपद बीजकमतको कोई भी विवेक करके चीन्हते, समझते तो नहीं हैं। भूलके सब लोग झूठे भ्रममें ही लगे हैं। जैसे बाजीगरके तमाशा झूठा होनेपर भी मूर्ख लोग उसे वाह भाई! भला, अच्छा खेल दिखाया, कहके प्रशंसाकर रुपया, पैसा इनाममें दे देते हैं; और कोई सत्य उपदेशक आया, तो उसके बात भी नहीं सुनते हैं। तैसे ही पक्षपाती, अविचारी, अज्ञानी लोग उन धूर्त गुरुवा लोगोंके कला वा चालको परखके कोई चीन्हते नहीं हैं। किन्तु, योगी, ज्ञानी, भक्त आदि किसी मतवादीके चेले होके उनका ही बड़ाई करनेमें लग जाते हैं। वाह गुरुमहाराज! आपने अच्छा उपदेश दिये, परमात्मा प्राप्तिके लिये अच्छा, उत्तम, भला साधना बतलाये हैं, इत्यादि कहके सबै लोग, भल्ला-भल्ला = अच्छा-अच्छा पुकारके बड़ाईकी बात कहते हैं, और भ्रम धोखेमें ग्रसित होके पड़ रहे हैं। इसी-से जीव अध्यासवश आवागमन चक्रमें पड़ रहे हैं। सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने बीजकमें जो गुरुमुख निर्णय कहे हैं, उसको ये लोग कोई चीन्हते नहीं हैं। बिना पारख सबै लोग वेद, और कुरानादिके वाणी-जालको ही अच्छा समझके भूले, और भूल रहे हैं। उसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें अच्छी तरहसे समझके भूल मिटाना चाहिये ॥ २२ ॥

॥ ❋ ॥ द्वितीय-शब्द ॥ २ ॥ ❋ ॥

१. पण्डित! संशय गाँठि न छोरे! ॥ २३ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे सन्तो! ये वेद, शास्त्रोंके ज्ञाता पण्डित कहलानेवाले लोग पक्षपाती अविवेकी बने

हैं। इसीसे वे अपने हृदयसे भी संशयकी गाँठि भ्रान्तिको खोलके अध्यासको नहीं छोड़ते हैं, और दूसरे मनुष्योंके अन्तःकरणकी भ्रम-भूल भी परखाके मिटा नहीं सकते हैं। बल्कि, और भी भ्रमाके छोड़ देते हैं। अथवा हे पण्डित! तुम लोग वाणी-कल्पना कृत संशयग्रन्थीको परखके छोड़ते नहीं हो, इसीसे भवबन्धनमें ही पड़े रहते हो, तहाँ तुम्हारी पण्डिताई चालाकी कोई काममें नहीं आती है॥ २३ ॥

२. संशय सनकी गाँठ परी तेहि । दुविधा जलमें बोरे ॥टेक॥२४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे सन, पाट, अम्बाड़ी, आदि-की रस्सी बनायी जाती है। उसमें सनसे बटी हुई रस्सीमें उलझके कहीं गाँठ पड़ जाय, कोई उसे सूखेमें न खोलके पानीमें बोरके, यानी भिगोके खोलना चाहै, तो वह और भी मजबूत गाँठ हो जायगी, इससे खुलेगी ही नहीं। उसका परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। यदि सूखा ही खोलै, तो खुल भी जाती है। गीला होनेपर अकड़के ऐंठ जाती है, फिर वह नहीं खुलती है। इसी प्रकारसे नरजीवोंकी हृदयमें, संशय = दुविधा, सन्देह, भ्रम, भूल, अध्याससे, सनकी = सनकपना, चञ्चलता, पागलपना, विषयवासना, काम, क्रोधादि तथा कल्पनादि वाणी-खानीकी बड़ीभारी, गाँठि = उलझन, फँसाव, जालोंमें जाके जीव पड़ गया है। तहाँ उस बन्धनरूप गाँठ छुड़ानेके लिये अबोध मनुष्य सब गुरुवा लोगोंके पासमें गये। उन्होंने कर्ता परमात्मा, खुदा आदिकी दुविधामें डालके, जलमें = वेद, शास्त्र, कुरान आदिकी कल्पितवाणीमें लगाके मनुष्योंको, बोरे = भ्रममें डुबा दिये, और भी भ्रमिक जड़ाध्यासी बना दिये। अथवा सन्मुखमें खानी जाल विषयोंकी गाँठि मनमें पड़ी थी, उसे पण्डितोंने ब्रह्म, ईश्वरादिकी दुविधावाली वाणी कल्पनाके जलमें ले जाके बोर दिये। तहाँ विषय ग्रन्थीमें संशय-ग्रन्थी मिलके बन्धन, और भी मजबूत हो गया। बिना पारख इस डबल बन्धनोंसे कोई नहीं छूटे, और छूट भी नहीं सकते हैं। अतः परख करके उस संशयको मिटाना चाहिये ॥ २४ ॥

३. जग उतपति कहैं एक ब्रह्मते। पुनि जगमें ब्रह्म बताई ॥२५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! पण्डितोंके वह प्रबल संशय ग्रन्थी क्या है? सो उसके बारेमें यहाँ कहते हैं, सुनिये! ब्रह्मको कर्ता माननेवाले लोग कहते हैं कि— एक ब्रह्म-परमात्मासे ही पिण्ड, ब्रह्माण्डरूप यह सारा जगत् उत्पत्ति भया है, ऐसा कहे हैं। पुनि=फिर उसी कार्यरूप जगतमें ही कारण-कर्तारूप ब्रह्मको परिपूर्ण व्यापकरूपसे रहा हुआ बताये हैं। अर्थात् गुरुवा लोगोंने ऐसा कल्पना किये हैं कि— पहले जड़, चेतनरूप जगत् पदार्थ कुछ भी नहीं था, केवल ब्रह्म निराकार था। बहुत काल बाद ब्रह्ममें स्वाभाविक इच्छा उदय भयी कि— "मैं एकसे अनेक जगत्रूपमें प्रगट हो जाऊँ।" तब उसी वक्त सारा जगत् प्रगट हो गया। फिर जगत्को देखके ब्रह्म खुश हो गया, और स्वयं भी उसी जगत्में समाके व्यापकरूपसे रह गया। उसकी लीला अपरम्पार है, इत्यादि प्रकारसे भ्रमिकोंने बताये हैं ॥ २५ ॥

४. मुक्ति कहैं ब्रह्मके जाने। फिर चौरासी आई ॥ २६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और उसी ब्रह्मको वेदान्त प्रमाणसे अद्वैत जान लेनेसे ब्रह्मज्ञानसे जीवोंकी मुक्ति हो जाती है, ऐसा भी कहे हैं। जीव-ब्रह्मकी एकता करके तहाँ "अहं ब्रह्मास्मि, एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति"— मैं ब्रह्म हूँ! एक ब्रह्म है, दूसरा कुछ नहीं; ऐसा भी कहा, तो भी ब्रह्मकी स्वभाविक इच्छासे जगत् चौरासी योनियाँ बनकर वह ब्रह्म बननेवाला जीव घूम-फिरके फिर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही गिर-गिरके चला आता है। अब कहिये! ब्रह्मज्ञान होनेसे भी क्या लाभ हुआ? कुछ नहीं। बिना विचार यही सब संशय गाँठि पड़ी है, बिना पारख वह किसीके नहीं छूटती है। ब्रह्म ही भ्रम है, तो उससे जगत्की उत्पत्ति क्या होगी? और कर्ता सदा कार्यसे न्यारा रहता है, वह कभी कार्यमें नहीं मिल सकता है, कुम्हार

घड़ा बनाके कभी घड़ामें मिल नहीं सकता है। तो ब्रह्म, जगत्में कैसे मिलेगा? और ब्रह्म निराकार है, तो फिर वह जाननेमें क्या आयेगा? मिथ्या मानन्दीसे मुक्ति तो नहीं होती है। अतः अध्यासी जीव फिर चारखानी चौरासी योनियोंमें ही चला आता है ॥ २६ ॥

५. जगको चार खानि चौरासी। बड़े-बड़े कहैं सुजाना ॥ २७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, व्यास, वशिष्ठ, नारद, बाल्मिकी, षट्शास्त्री, सुजाना = वेदके अच्छे जानकार पण्डित वा विद्वान् लोगोंने इसी जगत् वा संसारको ही चारखानी चौरासी योनियोंका भूमिका वा घर कहे हैं, और अभीके ज्ञानी, सुजान लोग भी जगत्को चौरासी योनियोंका अड्डा कह रहे हैं। जहाँ चारखानीकी बन्दी-गृहमें जीव सब कर्मानुसार बद्ध पड़े हैं। एक तरफ बड़े-बड़े लोगोंने तो ऐसा फैसला करके कहा है ॥ २७ ॥

६. तेहि जगको बैराट बखाने। विश्वरूप भगवाना ॥ २८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और दूसरे तरफ उसी चौरासी योनियोंकी घररूप जगत्को ही विराट परमात्माका सर्वाङ्ग स्वरूप कथन करके उसे ही विश्वरूपमें स्थित खास भगवान्-परमात्मा बखान किये हैं। अब कहिये! एक ही जगत्को दो-दो प्रकारसे मानना कितनी बड़ी भारी मूर्खता है। यदि जगत् ही विश्वरूप भगवान्का स्वरूप है, तो फिर धर्म-कर्म करके मुक्तिकी इच्छा करनेकी क्या आवश्यकता है? तहाँ ईश्वर प्राप्तिके लिये नाना साधना करना, फजूल हुआ कि नहीं?। वही चौरासी योनियोंका भूमिका हुआ, फिर भवबन्धनोंसे छूटना ही असम्भव होवेगा। अतः यह दो मुखकी बात झूठी है। विश्वरूप भगवान् मानना कोरी कल्पनामात्र है, ऐसा जानिये! ॥ २८ ॥

७. नित उतपति नित परलय होई । जाको जगत ब्रह्म कहो भाई ! ॥ २९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे वेदान्तो भाई ! सुनो ! जहाँ नित्यप्रति कार्य पदार्थोंकी उत्पत्ति होती रहती है, अध्यासी जीव देह धारण करके चारखानियोंमें जन्म लेते रहते हैं, और नित्यप्रति कार्योंका नाश वा प्रलय होता है, तैसे भोग पूरा होनेपर मृत्यु भी होता रहता है। ऐसा बनाव-बिगड़ाव और आवागमन जहाँ लगा है, उसे ही संसार कहते हैं। जिसको सब कोई जगत् बन्धनका घर कहते हैं, उसे ही तुम अपने मिथ्या भावनासे ब्रह्म कहते हो, तो भला ! इससे कौन फायदा हुआ। जिसे सब विष कहते हों, उसे ही तुम अमृत समझके खाजाओ, तो क्या हानि नहीं उठाओगे ? अवश्य दुःख पाओगे। तैसे हे भाई ! जगत्को ही ब्रह्म कहके माननेसे तुम्हारी मुक्ति कदापि नहीं हो सकती है। ऐसा जान लो ! ॥ २९ ॥

८. विश्वरूप भगवान भयो तब । चौरासी केहि ठाँई ? ॥ ३० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— इतनेमें भी तुम्हारे समझमें नहीं आता है, तो हे मूढ़ ! यह तो बतावो, यदि यह, विश्व = सारा संसाररूप ही एक भगवान्, ब्रह्म, परमात्माका विराट स्वरूप तुम्हें निश्चय भया है, यही बात ठीक है कहोगे, तब चारखानी-चौरासी योनियोंके बन्धनकी जगह, नर्ककुण्ड, किस ठिकानेमें हुआ ? सब उसीके भीतर हुआ कि नहीं ? फिर तो मुक्तिके लिये तुम्हारी साधनाएँ प्रयत्न करना सब निष्फल व्यर्थ हो गया। व्यापक विराटरूप ब्रह्म माननेवालोंकी मुक्ति कदापि नहीं हो सकती है। अतः इस भ्रम धोखाको परखके त्यागना चाहिये ॥ ३० ॥

९. छिनमें जगको ब्रह्म बतावो । छिनमें ईश बखानी ॥ ३१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे भ्रमिक पण्डितो ! तुम्हारी समझ बुद्धि तो क्षणिक चञ्चल होगई है। किसी एक बातका भी तो निश्चय तुम्हें

नहीं है। क्योंकि, कभी क्षणभरमें ही तुम सारा जगत्‌को एक अद्वैत ब्रह्मका स्वरूप कथन करके व्यापकरूपमें जगत्—ब्रह्मको एक ही बतलाते हो, और कभी तो क्षणभरमें उस बातसे पलटके विश्वरूप साकार भगवान् है, कहके जगत्‌को ही विराटरूप परमेश्वर बखान करते हो। पूर्वके ऋषि-मुनियोंने भी वैसे ही क्षणिक कल्पना प्रगट करके श्रुति, स्मृतिमें वही बात वर्णन करके लिख रखे हैं। तहाँ ईश्वरको पुरुषरूपमें, और ब्रह्मको नपुंसकरूपमें माने हैं। कहीं ब्रह्म, ईश्वरका लक्षण न्यारा-न्यारा, और कहीं एक ही बतलाये हैं। कहीं ब्रह्मसे ईश्वरकी उत्पत्ति, उससे प्रकृति आदि क्रमसे जगत्‌की उत्पत्ति कहा है। घड़ी भरमें कभी जगत्‌को ही ब्रह्म कहते हैं, तो घड़ी भरमें उसे ईश्वरका स्वरूप बतलाते हैं। ऐसे आवबाव बकके बेठेकानके बात कहते हैं ॥ ३१ ॥

१०. छिनमें जगतको जीव कहत हो। छिनमें माया मानी ॥३२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और कभी उस बातसे भी उलटके हे पण्डित ! तुम क्षण भरमें ही उसी जगत्‌को चारखानी चौरासी योनियोंमेंके जीव समूहके रहनेके, कर्म भोगनेके भूमिका कहते हो, और कभी तो परमाणु समूहवत् सारा जगत् ही जीवका स्वरूप है, ऐसा कथन करते हो, और कभी क्षणभरमें ही उस बातको भी मिटाके माया-प्रकृतिके मुख्य स्वरूप ही यह जगत् है, ऐसा मानते हो। कोई जगत्‌को माया मानते हैं, तहाँ मायाको जड़-चैतन्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय, अचिन्त्य शक्तिवाली माने हैं। कोई पाँचों तत्त्वोंके भाग कार्य-कारणको भी जीव ही कहते हैं, और कहीं जीवको चैतन्य मानते हैं, तो कहीं उसे अंश, पराप्रकृति आदिके रूपमें जड़ ही ठहराते हैं, और कोई मायारूप जड़ तत्त्वोंको ही सब कुछ सार मानते हैं। इस तरह मनमाने, उटपटाङ्ग, अण्टसण्ट मिथ्या कथन करके अपने भूले हैं, और दूसरोंको भुला रहे हैं, बिना विवेक ॥ ३२ ॥

११. जग छूटनको शरण ईशकी। ईश ब्रह्म जग आया ॥ ३३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे पण्डित लोगो! अबोध नरजीवोंको तुम लोग हरतरहसे भ्रमाते, भुलाते हुए ठगते फिरते हो। संसारमें नाना दुःखोंसे दुःखित मनुष्य वर्ग आयके जब तुम लोगोंसे दुःख निवृत्तिका उपाय पूछते हैं, तब तुम लोग उन्हें ऐसा समझाते हो कि— यदि जगत्के समस्त दुःखोंसे छूटना चाहते हो, तो परमेश्वरकी शरणागत होओ; और पुकार-पुकारके कहो कि— "हे हरिः! त्वमेव शरणं अहं" तब दयालु ईश्वर तुम्हें जगत् दुःखोंसे छुड़ा देंगे, इत्यादि उपदेश देते हो। जब उसके शरण-ग्रहण करनेके लिये कोई जिज्ञासु मनुष्य ईश्वर और ब्रह्मकी खोजी, तलाशी करते हैं। चारों दिशाओंमें चार धाम, चौंसठ तीर्थोंमें घूम-फिरके आते हैं, वहाँ पानी, पत्थरादि अष्ट प्रतिमाके सिवाय और कुछ हाथ नहीं आता है। तब तुम्हारे गुरुवा लोगोंके शरणमें आके उनका पता पूछते हैं— तब तुम लोग अन्तमें वेद-वेदान्तके प्रमाणसे निर्णय करके "सर्वंखल्विदंब्रह्म नेहनानास्ति किंचन"— सर्वरूप एक ब्रह्म ही है, नानात्त्व और कुछ भी नहीं है। "एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति" एक ब्रह्म है दूसरा कुछ नहीं है। "ईशावास्यमिदंसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ॥" ई० उ० १ ॥ —पिण्ड, ब्रह्माण्डरूप इस जगत्में स्थूल-सूक्ष्मादि, दृश्य, अदृश्य जो कुछ भी पदार्थ है, सो वह सब ही विराटरूप परमेश्वरका ही स्वरूप है, ऐसा जानो॥ इत्यादि निर्णयसे जो ठहराया, सो ईश्वर और ब्रह्म दोनों ही जगत्रूप बनके आया, अतः जगत्से न्यारा तो वे हुए ही नहीं ॥ ३३ ॥

१२. का कीशरण जाय दुःख छूटै। मोहि कहो कर दाया!॥३४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे पण्डित! अब कहो तो भला! तुम्हारे ही निर्णयसे जगत्, ईश्वर, ब्रह्म, ये तीनोंके स्वरूप एक हुआ, सिर्फ नाम मात्रका फरक हुआ। अब किसके शरणमें जायके

जगत्के त्रयताप, जन्म-मरणादिका दुःख जीवोंका छूटेगा ? तुम तो वेद, शास्त्रादिके ज्ञाता, धुरन्धर विद्वान् हो, अतः हे पण्डित ! मुझे दया करके इस शङ्काके समाधान तुम खुलासा करके कहो ! कोई अपनेसे भिन्न समर्थ देहधारी मनुष्य हो, तो उसके शरणमें जाया भी जा सकता है, और वह भी अपने शक्तिभर सहायता भी कर सकता है। परन्तु, यहाँ तो वैसी बात नहीं है। बिलकुल उसके विपरीत बात है। जीवोंने जगत्में कर्मानुसार दुःख पाये, तो उससे छूटनेके लिये गुरुवा लोगोंने ईश्वरकी शरण बताये। तहाँ जो निर्णय किया, तो वह ईश्वर वा ब्रह्म, जगत्रूप ही ठहरा। अब किसकी शरणमें जायके जगत्के दुःख छूटै ? किन्तु, ऐसी हालतमें वह दुःख कभी छूट नहीं सकेगा ॥ ३४ ॥

१३ निज हित कोई विदेश गया जो। वहाँसे कोई जो आया ॥३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः-- हे सन्तो ! दृष्टान्तमें जैसे कोई पुरुष अपने हित, स्वार्थके वास्ते धन कमानेके लिये विदेश वा दूर देशमें चला गया, तथा उसने वहीं विदेशमें ही अपना धन्धा कारोबार जमा लिया, खूब सम्पत्ति इकट्ठा करके आरामसे रहने लगा। कुछ कालके बाद वहाँसे उसके द्वेषी, प्रतिद्वन्द्वी कोई मनुष्य व्यापारको निकाला, सो घूमते-घूमते जो कि, उसके गाँव-घरमें भी आ गया। लोगोंसे पता चला कि, शिवदत्तको वह जानता है, जहाँ वह था, वहीं पासमें शिवदत्त रहता था। तब उत्सुकतापूर्वक उस परदेशीसे शिवदत्तके पिता-मातादि परिवारोंने आके पूछा कि— कहिये महाशय ! आप हमारे पुत्र शिवदत्तके हाल, समाचार जानते हैं ? वह किस हालतमें है ? उसका सन्देशा कुछ लाये हैं, तो बतलाइये ? इत्यादि बात पूछने लगे। उसके उत्तरमें वह द्वेषी पुरुष बोला कि— सुनिये ! वह शिवदत्त भी अब कुछ दिनोंमें यहाँ आता ही होगा। ऐसा सुनके परिवारके लोग खुश हुये। फिर कहा कि— वह रोगी होनेसे बड़ा दुःखी है। तब वे लोग भी दुःखी

होने लगे। कुछ देरमें फिर बोला कि— अरे! जबसे उसका कहीं पता लगता ही नहीं कि, कहाँ रहता है । ऐसा सुनके घरवाले उदास हो गये। फिर थोड़ी देरमें उसने कहा कि— हाँ! हो! सुनो! वह शिवदत्त तो अकालमें मर गया, ऐसा सुननेमें आया था, जैसा हो भगवान् जाने! मृत्युके झूठे समाचार सुनके परिवारके लोग रोने-चिल्लाने लगे। सब शोकसागरमें डूब गये। इन्होंने उसका कुशल समाचार पूछा, तो उस द्वेषीने चार विधिसे बोल दिया। किन्तु, एक बातका भी निश्चय करके नहीं बताया, अब कहो! उसके समाचारसे कौन स्थिति उन्होंने पाये? कुछ भी स्थिति नहीं पाये, और भी भ्रम-चक्रमें पड़ गये।

तैसे ही सिद्धान्तमें जो कोई मुमुक्षु अपना हित-कल्याण वा मुक्ति प्राप्ति करनेके लिये विदेशरूप गुरुवा लोगोंके सङ्गतमें गये। वहाँ वेद, शास्त्र आदिको पढ़ते हुये जीवन बिताने लगे, और दूसरा सत्सङ्गी पारखी साधु-सद्गुरुकी सत्सङ्गमें लगके सद्गुणोंको धारण कर निज स्थितिमें सुखी रहने लगा। उधर वेद,शास्त्रोंके पढ़नेवाला इसका द्वेषी बना। पण्डित होकर वह गाँव-गाँवमें घूमने लगा। वहाँ गुरुकुलसे एक बड़ाभारी पण्डित आया है, ऐसा संसारमें प्रसिद्धि हो गया. वहाँ उसके पाससे होकर जो कोई गाँवमें आया, उसने उसकी बड़ाई ही किया ॥३५॥

१४. पूछै कुशल चार विधि बोलै। कहो कौन थिति पाया? ॥३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—तब और जिज्ञासु मनुष्य भी उस पण्डितके पासमें आके पूछने लगे कि— हमारा जीवका कुशल कैसे होगा? हे पण्डितजी! कृपा करके बतलाइये! तब उसने चार विधिसे चार वेदोंका सिद्धान्त कहा—ऋग्वेदसे-प्रज्ञानं ब्रह्म॥ यजुर्वेदसे—अहं ब्रह्मास्मि॥ अथर्ववेदसे–अयमात्मा ब्रह्म॥ सामवेदसे— तत्त्वमसि॥ जिसका अर्थः— प्रज्ञा वा बुद्धिरूप ज्ञानस्वरूप ही ब्रह्म है। मैं ही ब्रह्म हूँ! यह आत्मा ही ब्रह्म है। तू वह ब्रह्म है। ऐसा बताके भुलाया॥ अथवा १. जगत् ही ब्रह्मरूप है। २. विराटरूपमें जगत् सब ईश्वरका

स्वरूप है, इसीसे विश्वरूप भगवान् है। ३. जगत् चारखानी चौरासी योनि है, सो जीवका रूप है। ४. यह जगत् तो मिथ्या मायाका पसारा मात्र है। ऐसे चार प्रकारसे बतलाये हैं ॥ अथवा—१. देहवादमें—स्थूल देहको ही अपना स्वरूप माने हैं। २. वीर्यवादमें वीर्यको ही श्रेष्ठ ठहराये हैं। ३. तत्त्ववादमें तत्त्वसे बढ़के और कुछ भी नहीं है, ऐसा कहा है। ४. शून्यवादमें शून्यको ही सर्वोपरि कहा है। ऐसे चार प्रकारसे बोले हैं ॥ अथवा—१. वेदान्ती लोग अद्वैत मतको सिद्ध करते हैं। २. उपासक भक्त लोग द्वैतवादको मानते हैं। ३. रामानुजी, आर्यसमाजी आदि विसिष्ठाद्वैतवादको स्वीकार करते हैं। और ४. वाममार्गी और नास्तिक लोग पञ्चमकार सेवनसे ही लाभ, गति मानते हैं। इस तरह कुशल पूछनेवाले जिज्ञासुओंको गुरुवा लोग चार-चार विधिसे बताके जहाँ-तहाँ भटकाते हैं। अब कहो! उसमें लगनेवाले भ्रमिक लोग कौन, किसने, निज़स्वरूपकी स्थिति पाके मुक्ति पाये? बिना पारख, किसीने भी स्थिति नहीं पाया। जड़ाध्यासी हो नाहक जन्म गँवाया, चौरासी योनियोंमें झुलाया ॥ ३६ ॥

१५. ज्ञान कहानी अद्‌बुद बानी । स्थिति बिनु भये दुखारी ॥ ३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो! गुरुवा लोगोंने वेद-वेदान्तसे ब्रह्मज्ञान विषयक कहानी जो कहे हैं, सो वाणी अद्‌बुद = आश्चर्यमय बुद्धि विचारसे हीन पागलोंकी प्रलापके तरह ही बके हैं। क्योंकि, विवेक करनेसे उसमें कुछ भी सार दिखाई देता नहीं है। ब्रह्म चराचरमें सर्वत्र सम-समान पूर्ण भरा हुआ है। उसके बिना कहीं अणुमात्र भी जगह खाली नहीं है, सो ब्रह्म मैं ही हूँ! और तू ही ब्रह्म है! सब जगत् ही मेरा स्वरूप है! इत्यादि अद्‌बुद बानी कहे हैं। परन्तु, निज स्वयं स्वरूपकी पारख स्थिति प्राप्त भये बिना भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर व्यर्थ ही नर-जन्म बिताये। शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंमें जाके, दुखारी = दुःखोंके भोगी भये, और दुःख भोग ही रहे हैं। अर्थात् ब्रह्मज्ञानकी आश्चर्य-

मय वाणी वेदान्तका कथन तो खूब किये हैं। परन्तु, स्वरूपकी स्थिति न होनेसे वे सब आवागमनमें पड़के दुःखित भये और हो रहे हैं, बिना पारख ॥ ३७ ॥

१६. कहहिं कबीर समुझि कहु पण्डित! साँच एक कि चारी! ॥३८॥

टीकाः— यहाँपर गुरुदयालसाहेब कहते हैं कि— हे पण्डित! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जो पारख निर्णय कहा है, उसको समझ-बूझके कहो, तुम्हें क्या बोध भया है? नित्य-सत्य वस्तु एक है, कि चार हैं? अथवा, चार वेदोंका कहा हुआ, चार महावाक्य सच्चा है कि— तुम्हारा माना हुआ एक परमात्मा सच्चा है? सो कहो। अथवा, चारखानियोंके न्यारे-न्यारे जीव सत्य हैं, कि सबको गोलमाल करके माना हुआ एक ब्रह्म सत्य है? सो कहो। अथवा, एक नरजीव जिसने वेद बनाया, सो सत्य है कि— चार वेद सत्य हैं? सो कहो। अथवा, एक पारख सिद्धान्त सत्य है कि— चार अन्य कल्पित सिद्धान्त सत्य हैं? सो इस बारेमें तुम्हें क्या निश्चय होता है? कैसे होता है? वह समझ-बूझके हे पण्डित! प्रमाण देके कहो! और पक्षपातको त्यागके, सत्यसारको ग्रहण करो, तभी हित होगा, सो जानो ॥ ३८ ॥

॥ ※ ॥ तृतीय—शब्द ॥ ३ ॥ ※ ॥

१. सन्तो! साखी सब कोइ गावैं! ॥ ३९ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो! साखी, शब्द, कवित्त, सवैया, दोहा, छन्द आदि पदोंको तो सब कोई मजेसे जिसको जो भाया, सो गाते-सुनाते, कीर्तन, कथा आदि करते फिरते हैं। परन्तु, रहनी-रहस्यको धारण किये बिना वे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें खुलासा करके कहे हैं, सो सुनिये!—

साखीः— ४ "गावै कथै विचारै नाहीं, अनजानेका दोहा ॥
कहहिं कबीर पारस परसे बिना, जस पाहन भीतर लोहा ॥" बी० सा० २४९॥

इस प्रकारसे साखी तो सब कोई गाते, कथते हैं, परन्तु, अर्थका विचार तो कुछ करते ही नहीं हैं। अनजानमें दोहरा खानी, वाणी जालोंमें पड़ जाते हैं, और कभी भवबन्धनोंसे छुटकारा नहीं पाते हैं। अथवा, षट्दर्शनोंके भेषधारी साधु-सन्त लोग सब कोई सर्वका साक्षी एक परमतत्त्व परमात्मा है, ऐसा कहके अनुमान, कल्पनासे सब उसीके गुणानुवाद गाये, वा गाते हैं, और गा रहे हैं। परन्तु वह साक्षी कैसा है? साक्षीका लक्षण क्या होना चाहिये? इसका भेद वे कोई जानते ही नहीं हैं। बिना विवेक भूल-भुलैयाके चक्रमें पड़े हुए हैं ॥ ३९ ॥

२. जो कोई साखी ताहि बतावै। सो वादी भरमावैं ॥टेक॥४०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जो कोई योगी, ज्ञानी, भक्त लोग अनुमानसे, ताहि = उसी कल्पित ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, आदिको, साखी = साक्षी, सर्वद्रष्टा त्रिकालज्ञ, बतलाते हैं, सो मिथ्या मानन्दी मनका भ्रममात्र ही है। इसीसे, वादी = वे मतवादी व्यर्थ ही अविवेकसे अपने भ्रममें पड़ जाते हैं, और दूसरोंको भी भ्रमाते, भुलाते हैं, और जो कोई पारखी सन्त सत्य-न्यायकी बात बताते हैं, साक्षी चैतन्य जीव ही सत्य है, जीवसे परे और दूसरा कोई साक्षी नहीं है। ऐसा दरशाते हैं। सो निर्णय सुनके मतवादी लोग घबरा जाते हैं, अपने मतकी पुष्टीके लिये वेद, शास्त्रादिका प्रमाण देके एक-दूसरेको भ्रमाते फिरते हैं, और जो कोई साखी तो कहते हैं, परन्तु, उसका यथार्थ अर्थ जानते नहीं हैं, उल्टी समझ रखते हैं। यदि उन्हें सच्चा अर्थ बता दिया जाता है, तो वे मतवादी तिलमिलाके चक्कर खा जाते हैं, भ्रममें पड़के पछाड़ खा जाते हैं। अतः बिना पारख साक्षी जीवकी वह कठिन भ्रम, भूल छूट नहीं सकता है ॥ ४० ॥

३. सो बादी कोई चीन्हत नाहीं। ब्रह्मा विष्णु महेशा ॥ ४१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! मतवादी भ्रमिक लोग व्यर्थके वाद-विवाद करते फिरते हैं, तहाँ ब्रह्म, ईश्वरादि मानन्दी, कल्पनाके झगड़ा असार है, उसे माननेवाले जीव ही सत्यसार है। परन्तु, उसे कोई चीन्हते वा पहिचानते नहीं हैं। व्यर्थके आत्मवाद, ब्रह्मवाद, करते हैं, सो तो धोखामात्र है, किन्तु, उसे कोई चीन्हते नहीं हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव भी प्रथम उसी धोखामें पड़े रहे। कर्मवादसे ब्रह्माने ब्रह्मको ही साक्षी कर्ता माना है। उपासनावादसे विष्णुने आत्माको ही साक्षी ठहराया है। और योगवादसे महेशने भी निर्विकल्प ब्रह्मको साक्षी माना है। फिर उन्होंने वही उपदेश जगत्में अन्य लोगोंको दृढ़ाये हैं। पश्चात्के और मतवादी लोगोंने भी उन्हीं ब्रह्मादि तीनोंको ही साक्षी परमात्मारूप ठहराके माने हैं। ऐसे सो उस भ्रमको वादी लोग कोई नहीं पहिचानते हैं, ब्रह्मादि भी उसी भूलमें ही पड़े थे ॥ ४१ ॥

४. तीनों न्याव निबेरन लागे। कहि साखी उपदेशा! ॥ ४२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो!, तीनों=ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोंने जब संसार प्रपञ्च, झगड़ाका न्याय, निर्णय, निबेरा, करने लगे, तो अन्तमें एक आत्मा, साखी=सबका साक्षी है, सूत्रमणि न्यायसे घट-घट बासी है, ऐसा उपदेश कहे हैं। आत्मा साक्षीके ऊपर ही उन्होंने विश्वास करके फिर मत-मतान्तरोंका विस्तारसे फैसला किया है। परन्तु, यह नहीं पहिचाने कि, वादी, प्रतिवादी दोनों पक्ष स्वतन्त्र होते हैं, तब तीसरा साक्षी उसके होता है। यहाँ तो वादी-प्रतिवादीका पता ही नहीं है, सारा चराचरको ही साक्षीस्वरूप आत्मा माने हैं। अब बताइये! एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है, तो साक्षीस्वरूप आत्मा है, कहके किसने, किसको उपदेश दिया? उपदेश देने, लेनेवाला,

दोनों न्यारा-न्यारा हुआ कि नहीं ? फिर एक अद्वैत कहना, तथा साक्षी बताना कितनी बड़ी भारी भूल है। सो ब्रह्मादि भी व्यर्थके धोखामें ही पड़े थे, उस भ्रमको उन्होंने नहीं पहिचाना। अभी उनके अनुयायी वैसे ही वाद-विवाद, व्यर्थके बकवाद करके धोखेमें ही पड़े हैं, बिना पारख ॥ ४२ ॥

५. सनकादिक वशिष्ठ व्यास मुनि । नारद शुक मुनि ज्ञानी ॥४३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! प्राचीनकालके ऋषि, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भक्त, कर्मी, गृहस्थ, साधु, संन्यासी, ब्रह्मचारी इत्यादि सब लोग एक आत्मा साक्षी मान-मानके भ्रम चक्रमें ही पड़े रहे। बिना पारख उन्हें निज सत्य-स्वरूपका बोध नहीं हुआ है। तहाँ उनमेंसे मुख्य-मुख्य थोड़े लोगोंके नाम और संक्षिप्त परिचय दरशाते हैं, सो सुनिये! :—

ब्रह्मादि तीनों गुरुवा लोगोंके नाम तो ऊपरके चौपाईमें कहा ही जा चुका है। अब उनके सन्तान तथा अनुयायी लोगोंके नाम कहते हैं।

१. सनकादिकः— सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, ये चारों भाई ब्रह्माके प्रथम मानस पुत्र कहलाते हैं। वे सदा पाँच वर्षके कुमारके समान ठिंगने, अथवा विषय-विकारसे रहित शुद्ध अन्तःकरणवाले रहे, ऐसा कहा है। उन्हें ज्ञानी और भक्ति-मार्गके मुख्य आचार्य, भक्ताग्रगण्य माना है, (विस्तार वैराग्यशतकमें लिखा जा चुका है।) इत्यादि ॥

२. वशिष्ठः— मित्रावरुणसे वशिष्ठजीकी उत्पत्ति कही गयी है, और फिर निमिके शापसे देह त्यागकर वे आग्येय-पुत्र हुये। वैसे वे सृष्टिके प्रथम कल्पमें ब्रह्माजीके मानसपुत्र थे। उनकी पत्नीका नाम अरुन्धती था। वशिष्ठ सूर्यवंशके पुरोहित थे। कर्मनिष्ठ तथा ब्रह्मज्ञानी थे। शत्रुताके कारण विश्वामित्रने सौ पुत्र वशिष्ठके मार दिये थे। तो भी वे क्षमा करते रहे। किन्तु, गुणग्राही होनेसे एकान्तमें विश्वामित्रके तपस्याकी प्रशंसा किया, जिसे सुनके

विश्वामित्र आके उनके चरणोंमें पड़े, और वशिष्ठने जो रामचन्द्रको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया, सो बड़ा पुस्तक योगवाशिष्ठमें लिखा है, इत्यादि वर्णन हुआ है ॥

३. व्यास मुनिः— वशिष्ठके पौत्र पाराशर मुनिके वीर्यसे सत्यवतीके गर्भसे व्यासका जन्म हुआ। एक द्वीपमें व्यासजीका जन्म हुआ था, इससे उनका नाम द्वैपायन पड़ा है, और शरीरका श्यामवर्ण होनेसे कृष्ण-द्वैपायन नामसे भी कहे जाते हैं, और वेदोंका विभाग करनेसे वेदव्यास भी कहलाये हैं। उन्होंने वेदोंका चार भागोंमें वर्गीकरण कर दिया। फिर महाभारत, महापुराण और भागवतादि ग्रन्थ बनाये, और अठारह पुराणोंकी रचना भी व्यासके नामसे ही हुई हैं। वेदान्त ग्रन्थमें उत्तरमीमांसा (ब्रह्मसूत्र) व्यासकृत माना जाता है। शुकदेव आदि कई एक इनके पुत्र उत्पन्न हुए हैं। व्यास कर्मकाण्डी, भक्त और ज्ञानी बने रहे, इत्यादि कहा है ॥

४. नारदः— पूर्वकल्पमें नारद उपबर्हण नामके गन्धर्व थे। ब्रह्माके सभामें अनुचित काम-चेष्टा करनेसे उसे शूद्र योनिमें जन्म लेनेका ब्रह्माने शाप दे दिया। उसीसे वे शूद्रा दासीके पुत्र हुए, और सन्तोंकी जूठन खाते हुए भक्त बनके रहे। कुछ कालमें माँ मर गयी, तो जङ्गलमें जाके तपस्या करते रहे, कालान्तरमें मृत्युको प्राप्त हुये। दूसरे कल्पमें नारद ब्रह्माके मानस पुत्र होके उत्पन्न हुए, और भक्ति-मार्गमें अग्रसर हो गये। व्यासको भागवत बनानेकी प्रेरणा किया। प्रह्लादकी माता कधायूको तथा बालक प्रह्लादको भी उन्होंने भक्तिका उपदेश दिया। तथा ध्रुव भक्तको भी भक्तिमार्ग बताये। दक्षके सब पुत्रोंको उदासीन भक्त बना दिया। जिससे कुपित होके दक्षने 'तुम दो घड़ीसे अधिक कहीं ठहर नहीं सकोगे।' ऐसा शाप दे दिया। एक समय मायाको जीतनेका उन्हें अभिमान हुआ, जिससे विष्णुने युक्तिसे उनको गिरा दिया। तहाँ वे नारदी स्त्री बनके दुःख पाये, और श्रीनगरकी राज-कन्याको देखके मोहित होके विष्णुसे रूप माँगकर स्वयंवरमें गये, वहाँ

अपमानित होके खिसिया गये, इत्यादि कथा पुराणोंमें बहुतसी प्रचलित हैं। नारद मुख्य करके भक्त हुए थे ॥

५. शुकमुनि ज्ञानीः— शुकदेवकी जन्म सम्बन्धी विविध कथाएँ विभिन्न पुराणोंमें एवं इतिहास ग्रन्थोंमें मिलती हैं। कहीं लिखा है किः— एक लीला शुक था, एक समय महादेव पार्वतीको अमर कथा सुना रहे थे, वह शुक भी उड़ते-घूमते वहाँ पहुँच गया। पार्वतीको नींद आ गई, तो वही शुक बीच-बीचमें हुँकार भरने लगा। अन्तमें महादेवको मालूम हुआ, तो त्रिशूल उठाके वे उसे मारनेको दौड़े, वह उड़ता हुआ भागा, और आके व्यास पत्नीके मुखसे उनके उदरमें प्रविष्ट हो गया, और माता वटिकाके गर्भमें बारह वर्षतक बैठा रहा। पश्चात् बहुत समझानेपर गर्भसे वह बाहर आया, तो फिर और वैसे ही जङ्गलके तरफ चला गया, इत्यादि और भी बहुत प्रकारके कथा कल्पित वर्णन किये हैं। शुकदेव बाल-ब्रह्मचारी, महामुनि, ज्ञानी, अवधूत विरक्त रहे। व्याससे ही पीछे भागवत पढ़े, व्यासके कहनेसे जनकके पास जाके उन्हें गुरु मानके आत्मज्ञानका उपदेश सुनके सन्देह मिटाये, और राजा परीक्षितको भी सात दिनोंमें भागवतका कथा सुनाये। ब्रह्मज्ञानियोंमें अग्रगण्य माने गये हैं, इत्यादि कथा वर्णन भया है, (विस्तार वैराग्यशतकमें लिखा है।) सो जानिये ! ॥ ४३ ॥

६. याज्ञवल्क्य जनक दत्तात्रेय । कहि साखी सहिदानी ॥४४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और ६. याज्ञवल्क्यः— प्राचीन समयके ब्रह्मवादियोंमें मुनि याज्ञवल्क्य प्रसिद्ध भया है। ऋषि वैशम्पायन इनके मामा लगते थे। मैत्रेयी और कात्यायनी इनकी ये दो पत्नियाँ थीं। जनकके सभामें बहुतोंको इन्होंने शास्त्रार्थमें परास्त किया, और राजा जनकके भी विविध शङ्काओंका समाधान करके सन्तुष्ट किया। जनक उन्हें गुरु मानता था। अन्तमें गृहस्थाश्रम त्याग करके संन्यासी हुए, योग साधनोंमें लगे, उसीमें जीवन बिताये। इसीसे वे योगेश्वर याज्ञवल्क्य प्रख्यात भये, इत्यादि और

भी बहुत सी कथा वर्णन भया है ॥

७. जनकः— महाराज निमिका शरीर मन्थन करके ऋषियोंने जिस कुमारको प्रगट किया, वह 'जनक' कहा गया। माताके देहसे न उत्पन्न होनेके कारण 'विदेह' और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण 'मैथिल' भी उनकी उपाधि हुई, ऐसी कल्पना किये हैं। इस वंशमें आगे चलकर जो नरेश हुए, वे सभी जनक और विदेह कहलाये। इसी वंशमें उत्पन्न सीताजीके पिता महाराज जनकका नाम 'सीरध्वज' था। वे बड़े ब्रह्मज्ञानी, वेदान्ती थे। समय-समय पर बड़ी-बड़ी सभा एकत्र करके ब्रह्मज्ञानकी चर्चा किया करते थे। उपनिषद् आदि ग्रन्थोंमें सो विस्तारसे लिखा है। सीताका विवाह उन्होंने रामसे कर दिया था। अष्टावक्र मुनिको भी जनकने गुरु माना है। विशेषतः ब्रह्मज्ञानी वे प्रख्यातरूपसे कहलाये थे, इत्यादि ॥

८. दत्तात्रेयः— अत्रि मुनिके वीर्यसे माता अनुसूयाके गर्भसे दत्तात्रेयका जन्म हुआ। ये अवधूत विरक्त बने रहे! राजा यदुको इन्होंने उपदेश दिया है। चौबीस गुरुओंके द्वारा अपनेको ज्ञान गुण ग्रहण होनेको बताया है। ये भी एक प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं, इत्यादि पुराणोंमें बहुत-सी कथा वर्णन भया है ॥

इस प्रकार सनकादिसे लेके दत्तात्रेय पर्यन्त मुख्य आठ हुए और भी बहुतेरे वेदान्ती आत्मज्ञानी हुये; उन सबोंने, सहिदानी= निशानी, पहिचानी वा सिद्धान्त परिचयके लिये एक आत्मा वा ब्रह्मको ही, साखी=सर्वका साक्षी, द्रष्टा, निराकार-निर्गुण पूर्ण व्यापक कहे हैं। तहाँ साचीका यथार्थ लक्षण न घटनेसे निज-पर साक्षी जीवोंको धोखामें ही डाले हैं। अतः जड़ाध्यासी हो बद्ध हुए और हो रहे हैं, बिना पारख ॥ ४४ ॥

७. अष्टावक्र हस्तामल शङ्कर । मुनि अगस्ति कपिलादी ॥ ४५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! उसी प्रकार और लोग भी भ्रमिक हुए हैं, सो सुनिये!ः—१. अष्टावक्रः— कहोड़ मुनिके पुत्र

अष्टावक्रका सुजाताके गर्भसे जन्म हुआ। इनके आठों अङ्ग विषम-टेढ़े थे। जनकके राज-सभामें जाके इसने प्रसिद्ध बन्दी-नामक पण्डितको शास्त्रार्थमें परास्त करके पिताको कैदसे छुड़ा लाया था। एक समय जनकके सभामें जाके राजाकी शङ्काओंका समाधान किया, जिससे जनकने उन्हें गुरु करके मान लिया। इस प्रकार वह ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं, (विस्तार वैराग्यशतकमें लिखा है।) इत्यादि ॥

१०. शङ्करः—प्रथम तो इस नामसे महादेव प्रसिद्ध भये हैं, उनके गुण, कर्मादिको तो सब कोई जानते ही हैं। वे योग मार्गके प्रवर्तक, ब्रह्मज्ञानी भये हैं। और द्वितीय शङ्कर नामसे शङ्कराचार्य संन्यासीको जानना चाहिये। ईसासे लगभग चारसौ वर्ष पूर्व ही केरल देश निवासी ब्राह्मण शिवगुरुकी पत्नी सुभद्रा माताके गर्भसे शङ्करका जन्म हुआ। ये अत्यन्त तीव्र बुद्धिके थे। नदी पार करतेमें मगरने आके उनका पैर पकड़ा, ऐसे कठिन समयमें मातासे संन्यास लेनेकी आज्ञा प्राप्त कर संयोगसे मगरके चंगुलसे छूटे, फिर आठ वर्षके उम्रमें ही घरसे निकल पड़े। नर्मदा तटपर आके, स्वामी गोविन्द भगवत्पादसे दीक्षा ली। फिर उपयुक्त समय पर गुरुकी आज्ञा पाकर काशी आकर वेदान्त सूत्रपर भाष्य लिखे, और भी उपनिषदादि बहुतसे ग्रन्थोंमें भाष्य रचना किये, कई ग्रन्थोंकी रचना भी किये। कई लोगोंको शिष्य भी बनाये, और चारों धामोंमें. भ्रमण करके शास्त्रार्थमें विजयी भये। इसीसे चार दिशामें चार धामपर चार मठ स्थापित किये। उन्हींमेंसे दश नाम संन्यासीकी प्रथा भी प्रचलित हुयी। ये अद्वैतवादी थे, अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तका ही उनके ग्रन्थोंमें मुख्यरूपसे वर्णन किया है। इत्यादि इनकी जीवनी कहा हुआ है ॥

११. हस्तामलः—श्रीबली नामक ग्राममें रहनेवाला प्रभाकर नामक ब्राह्मणकका पुत्र हस्तामलकका जन्म हुआ। यह छोटेपनसे जड़-मूढ़के समान रहा करता था। एक समय शङ्कराचार्य उस

ग्राममें पहुँचे। तब प्रभाकरने पुत्रको ले जाके उनके चरणोंमें झुका दिया। वह बहुत देरतक झुका रहा, उसे हाथ पकड़के उठाये, तो उसके पिता बोला कि— यह पहलेसे ही ऐसे ही जड़-मूढ़ पड़ा रहता है, अभी तेरह वर्षका हो गया, तो भी कुछ समझता नहीं है, इत्यादि कहा। तब शङ्कराचार्यने उसे पुकारके "हे बालक! तू क्यों जड़-मूढ़के समान चेष्टा करता है?" कहके पूछा, तब वह एका-एक बोल उठा और संस्कृतमें श्लोक छन्दमें १४ श्लोकतक धड़ाधड़ कहता गया, और उनके शिष्य बन गया। ज्ञान प्रत्यक्ष होनेके कारण शङ्कराचार्यने उसका नाम हस्तामलक रक्खा। वह उनके सब शिष्योंमें मुख्य-प्रधान होता भया। उसने प्रथम जो १४ श्लोक बोला था, वह हस्तामलक-स्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। यह भी एक अद्वैत ब्रह्मवादी शङ्करमतके अनुयायियोंमें मुख्य भया है। उसी अद्वैत मतका वह प्रचार करता रहा, इत्यादि॥

१२. मुनि अगस्तिः— अगस्त्य मुनिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी कथाएँ मिलती हैं। कहीं मित्रावरुणके द्वारा वशिष्ठके साथ ही घड़ेमें पैदा होनेकी बात लिखी है, और कहीं पुलस्त्यकी पत्नी हविर्भूके गर्भसे विश्रवाके साथ इनकी उत्पत्तिका वर्णन आता है। किसी-किसी ग्रन्थके अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पुलस्त्यतनय दत्तोलि ही अगस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हुए; और समुद्र पी लेनेकी कथा, तथा नहुषको सर्प होनेका शाप देना, रामचन्द्रसे मिलाप, स्तुति, और राजा शङ्खके साथ विष्णुके दर्शन, इत्यादि इनके बारेमें पुराणोंमें कल्पित कथा वर्णन हुआ है। अगस्त्य-संहिता नामका ग्रन्थ इनका ही बनाया हुआ कहते हैं। ये वेदके एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि माने गये हैं, इत्यादि कहा गया है॥

१३. कपिलादिः— कर्दम मुनिकी पत्नी देवहूतिके गर्भसे कपिलका जन्म हुआ। ये सांख्यज्ञानी हुए, उन्होंने सांख्यशास्त्रका रचना किये। सर्व प्रथम वह ज्ञान अपने माता देवहूतिको ही समझाये।

फिर गङ्गासागर सङ्गममें जाके वहाँ कुटि बनाके निवास किये, और तपस्यामें संलग्न भये, और सगर राजाके सम्पूर्ण पुत्र इन्हींके क्रोधसे मारे गये, ऐसी कथा पुराणोंमें आया है, (विस्तार वैराग्य-शतकमें लिखा है।), इत्यादि कपिलके बारेमें वर्णन हुआ है। और भी— अत्रि, भृगु, ऋभु, शुक्राचार्य, बृहस्पति, विश्वामित्र, शाण्डिल्य, मार्कण्डेय, कण्डु, दधीचि, च्यवन, उद्दालक, आरण्यक मुनि, मुद्गल ऋषि, शौनक, मैत्रेय, कणाद, पतञ्जलि, जैमिनि, यमदग्नि, इत्यादि अनेकों प्रख्यात ऋषि-मुनिगण हुए हैं। उन सबोंने ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, आदि अनुमान-कल्पनाके, सिद्धान्तको ही माने हैं। ग्रन्थोंमें उन्होंके मन्तव्य जाहिर करके विस्तारसे लिखा हुआ है ॥ ४५ ॥

८. गौतम लोमश वालमीक मुनि । सब साखीके बादी ॥ ४६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और १४. गौतमः— सप्त ऋषियोंमें गौतमका भी नाम आता है। कल्याण २४।१ पृष्ठ ८१८ में लिखा है— राजा वृद्धाश्वकी पुत्री अहल्या इनकी पत्नी थी। उनके पुत्रका नाम शतानन्द था, जो निमिकुल-जनक वंशके पुरोहित थे। लिखा है— इन्द्रके साथ व्यभिचार होनेसे गौतमने अपनी स्त्री-अहल्याको पाषाण होनेका शाप दिया था, प्रार्थना करनेपर रामके चरण-रजसे मुक्त होनेका वरदान भी दिया था, फिर वैसा ही परिणाम हुआ, इत्यादि कल्पना करके माने हैं, और न्यायशास्त्रके कर्ता गौतममुनि ही हुए हैं। उन्हें धनुर्विद्या पारङ्गत भी माना है, स्मृतिकार भी रहे। ये कट्टर कर्ता ईश्वरवादी हुए, इत्यादि इनके बारेमें ग्रन्थोंमे वर्णन भया है ॥

१५. लोमशः— ये महातपस्वी लोमश मुनि व्यासके शिष्य रहे। स्कन्द महापुराण, केदार खण्डके प्रारम्भमें ऐसा ही लिखा है। लोमशके मुख द्वारा ही स्कन्द पुराणमें शिव-धर्मका विस्तारसे वर्णन हुआ है, और राजा इन्द्रद्युम्नके पूछनेपर लोमशजीने कहा है कि— राजन्! प्रत्येक कल्पमें मेरे शरीरसे एक रोम टूटकर गिर जाता है। जिस दिन सब रोएँ नष्ट हो जायेंगे, उस दिन मेरी मृत्यु

हो जायगी। देखो! मेरे घुटनेमें दो अंगुलतक रोएँसे खाली हो गया है। इसीसे मैं डरता हूँ, जब मरना ही है, तब घर बनाकर क्या होगा? फिर राजाके पूछनेपर, ऐसी बड़ी आयु शिवके वरदानसे मिला हुआ वर्णन किया है, इत्यादि लिखा है॥

१६. वालमीक मुनिः— रत्नाकर नामक अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न एक ब्राह्मण था। लुटेरे डाकूओंके कुसङ्गसे वह भी क्रूर हृदयवाला डाकू हो गया था। वनमें छिपा रहता, और उधरसे निकलनेवाले यात्रियोंको लूट-मारकर जो कुछ मिलता, उससे अपने परिवारोंका भरण-पोषण करता था। संयोगवश एक दिन उधरसे नारदजी निकले, रत्नाकरने उन्हें भी ललकारा। नारदने निर्भय होकर बड़े स्नेहसे कहा— 'भैय्या! मेरे पास धरा ही क्या है? परन्तु, तुम प्राणियोंको क्यों व्यर्थ मारते हो?' 'जीवोंको पीड़ा देने, और मारनेसे बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है। इस पापसे पापीको भयङ्कर नरकोंमें पड़ना पड़ता है।' ऐसा सुनके वह बोला— मैं यह कर्म अपने परिवारोंके पालन-पोषणके लिये करता हूँ! नारदने कहा— 'भाई! तुम जिनके लिये इतना पाप करते हो, वे इस पापमें भाग बाँटेंगे कि नहीं— यह उनसे पूछ आओ। डरो मत, मैं तबतक यहीं रहूँगा, भागूँगा नहीं। विश्वास न हो, तो मुझे एक वृत्तसे बाँध दो।' तब उसने उन्हें बाँधके घर गया। घरके सभी लोगोंसे उसने हमारे पापमें हिस्सा बटाओगे कि, नहीं? कहके पूछा। सबोंने एक ही उत्तर दिया— हम पापके हिस्सेदार नहीं हैं। तुम चाहे जिस रीतिसे धन लाओ, उससे हमें क्या सरोकार, हमारा पालन-पोषण करना तुम्हारा कर्तव्य ही है, चाहे जैसे भी करो। सब परिवारोंके ऐसे वचन सुनके वह तो सन्न हो गया, शोकके मारे पागल-सा हो गया। एक क्षणमें उसके सारे मोहके बन्धन टूट गये। फिर रोता, दौड़ता हुआ वनमें नारदके पास आके, उनके बन्धन खोलके चरणोंपर गिर पड़ा। फिर रोते हुए कहने लगा— मेरे जैसे अधमका कैसे उद्धार होगा।

नारदने राम-नामका दीक्षा दिया। परन्तु, वह मरा-मराके सिवाय सीधा बोल नहीं सका। तो वैसे ही उल्टा नाम जपनेको आदेश देकर नारदजी चले गये। फिर प्रेमपूर्वक रत्नाकर एक आसनमें बैठकर उल्टा ही नाम जपने लगा। पश्चात् ऐसा लिखा है कि— एक आसनसे बैठके तपस्या करतेमें उसके शरीरपर दीमकोंने घर बना लिया। वह उनकी बाँबी-वल्मीकसे, ढक गया। अर्थात् जिसमें वह रहता था वह आसनरूप कुटीके चौतरफ दीमकोंने घर बना लिया। अन्तमें ब्रह्माजी इस तपस्वीके पास आये। उसे जगाकर ऋषि वाल्मीकि कहकर पुकारा। इस प्रकार वल्मीक (दीमककी मिट्टीके ढेर) से निकलनेके कारण उस दिनसे वह मुनि वाल्मीकि कहलाया। फिर तो वह परम दयालु हो गया। जब उसके सामने एक दिन एक व्याधने क्रौंच पक्षीके जोड़ेमेंसे एकको मार दिया, तब दयाके कारण व्याधको डाँटते हुए शाप देते समय उनके मुखसे एक श्लोक बनके निकला। उसी छन्दसे वाल्मीकिजी आदि कवि हुए। पीछे श्लोकोंमें उन्होंने रामायण बनाये, जो वाल्मीकीय रामायणके नामसे प्रसिद्ध भया है। तमसा नदीके तटपर इनका आश्रम रहा। वनवासके समय राम इनसे मिले थे। जिस समय सीताको रामने त्याग किया, तब वाल्मीकिके आश्रममें ही जाके सीता रहीं। वहीं लव-कुशकी उत्पत्ति हुई। ऋषिने रामायण, गानकी शिक्षा लव-कुशको ही पहले दी। इत्यादि कथा पुराणोंमें विस्तारसे इनके बारेमें लिखा हुआ है॥

इस प्रकार अष्टावक्रसे लेके वाल्मीकि मुनितक इधर भी आठ ऋषि-मुनि प्रसिद्ध हुए। ये सब लोग भी द्रष्टा साक्षी निजस्वरूपका विवेक छोड़कर सर्वत्र परिपूर्ण एक आत्मा ही कोई सर्वद्रष्टा सर्वसाक्षी है, ऐसा कल्पनासे मानके व्यर्थ ही सब लोग साखीके वादी भये, तो भ्रम धोखामें पड़े। बिना पारख डावाँडोल हो गये, आवागमनमें गिर पड़े॥ ४६॥

६. भारद्वाज मुनि गरुड़ भुशुण्डी। बादी ईशहि गावे ॥ ४७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! तैसे ही और भी तीन लोगोंका इसमें परिचय सुन लीजिये! जो ईश्वर वादी भये हैं, जिन्होंने ईश्वरके गुण गाये हैं।

१७. भारद्वाज मुनिः— बृहस्पतिके भाई उतथ्यके पुत्र भरद्वाज मुनि हुए। ये ब्रह्मनिष्ठ, श्रोत्रिय, तपस्वी और परम भक्त थे। प्रयागमें इनका आश्रम था। वनवासमें एक रात्रि उनके आश्रममें रामने निवास किया था। तपस्यामें ही उन्होंने जीवन बिताया, इत्यादि ॥

१८. गरुड़ः— इनके पिताका नाम कश्यप और माताका नाम विनता था। गरुड़के बड़े भाईका नाम अरुण कहा गया है। विनताके सौत कद्रूने छल-कपटके शर्तमें हराके धोखा देके विनताको दासी बना रखा था। स्वर्गसे अमृत कलश लाके देनेपर दासी-पनासे मुक्त होओगी, कहने पर गरुड़ने जाके अपने पराक्रमसे देवताओंको हराकर अमृतका कलश लाके नाग और कद्रूको सौंप दिया। इस तरह माताको दासीपनासे मुक्त किया। उधर असावधानी पाके इन्द्रने आके कलश उठा ले गया, और भक्तिके वश हो, गरुड़ विष्णुके वाहन (सवारी) बना। गरुड़पुराण इन्हींके नामसे बना है; ऐसा प्रसिद्ध है। इत्यादि कथा पुराणोंमें वर्णन भया है ॥

१९. भुशुण्डिः— इसका पूरा नाम "काक भुशुण्डि" है। इनके बारेमें रामायण उत्तरकाण्ड और अन्य पुराणोंमें भी लिखा है। गरुड़के पूछनेपर काक-भुशुण्डिने बताया कि— पूर्व जन्ममें पूर्वके किसी कल्पमें मेरा जन्म अयोध्यामें हुआ था। मैं जातिसे शूद्र था। उज्जयिनीमें जाके ब्राह्मण गुरुसे मैंने दीक्षा ली। उस समय मेरे मनमें बड़ा भेद-भाव था। एक दिन मैं शिव मन्दिरमें बैठा मन्त्रका जप ध्यान कर रहा था। उसी समय मेरे गुरु वहाँ आये, पर मैंने उठकर उन्हें प्रणाम नहीं किया। मैं जप कर रहा हूँ, इस अभिमानमें फूला बैठा रहा। दयालु गुरुने तो इसका कुछ भी बुरा नहीं माने।

किन्तु शङ्करने कुपित होके उसी समय शाप दे दिया—'तुम्हें एक हजार बार कीट-पतङ्ग आदिमें जन्म लेना पड़ेगा।' यह सुनके दयालु गुरुने दुःखी होके अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना किये। उससे सन्तुष्ट होके शङ्करने अन्तिम जन्म ब्राह्मणका होगा, भक्तिमें इसकी मति रहेगी, ऐसा आशीर्वाद दिये। पश्चात् कर्मानुसार अनेक योनियोंमें भटकनेके बाद मुझे ब्राह्मण शरीर मिला। बचपनमें ही माता-पिता मर गये थे। साकार भक्तिमें मेरा प्रेम था। ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें मैं घूमने लगा। घूमता हुआ मैं महर्षि लोमशके पास जा पहुँचा। उन्होंने मुझे निर्गुण ब्रह्मतत्त्वका उपदेश दिया। मैं उसका खण्डन करके सगुणका समर्थन करने लगा। बार-बार वैसे ही ढङ्ग होनेसे अन्तमें ऋषिको क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दिया। 'दुष्ट ! तुझे अपने पक्षपर बड़ा दुराग्रह है, अतः तू पक्षियोंमें अधम कौआ हो जा।', इसीसे मैं फिर काक देहधारी हो गया। मैं ऋषिको प्रणाम करके उड़ जाने लगा। तब उन्होंने दया करके आशीर्वाद दिया, पास बुलाके राम-नाम मन्त्र दिया, रामके बालरूपका ध्यान बताया। तब गुरुकी आज्ञा लेकर मैं नीलाचलपर चला आया। अब यहीं रहकर ध्यान, गुणगान किया करता हूँ, इत्यादि कथा वर्णन किया है। गरुड़को काक भुशुण्डिने जो उपदेश दिया है, वह रामायण उत्तरकाण्डमें आया है॥

इस प्रकार सनकादिकसे लेकर भरद्वाज मुनि, गरुड़ और काक भुशुण्डितक जितने भी ऋषि-मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भक्त, इत्यादि हुए, वे सब ईश्वरवादी ही भये हैं। सगुण-निर्गुण कल्पित ईश्वरके ही गुण उन्होंने भली विधिसे कथन करके गाये हैं। अपने सत्य स्वरूपको तो उन्होंने जाने ही नहीं। व्यर्थ ही वादी बनके एक ईश्वर कर्ता, धर्ता, हर्ता, सर्वशक्तिमान् है, उसीकी उपासना ध्यान, धारणा करना चाहिये, इत्यादि प्रकारसे महिमा गाये हैं। भ्रम-धोखाके पीछे लगके जन्म बिताये हैं॥ ४७॥

१०. साखी बाद चीन्ह परे नहीं। वेदहु नेति सुनावै ॥ ४८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और वेद, वेदान्त शास्त्रके प्रमाणसे, साखी = साक्षी वा गवाही दे-ले करके गुरुवा लोगोंने आत्मा-ब्रह्म वा ईश्वरको सर्वका साक्षी घट-घटवासी निश्चय करके नाना मतवाद स्थापित कर लिया है। परन्तु वह साक्षीका साक्षात्कार तो किसीको भी नहीं हुआ है। व्यर्थ ही सब धोखेमें भूले पड़े थे। वह धोखा साक्षीका वाद क्या चीज है ? सो किसीको भी चीन्हनेमें नहीं आया वा चीन्ह पड़ा नहीं, तो अगम, अपार, अवाच्य कहके भ्रममें ही रह गये। वेदमें भी आखिरमें "नेति-नेतिति श्रुतिः"— अर्थात् उस परमात्माकी इति, आखिरी, अन्त, हद्द, पता, पार, कुछ है ही नहीं है। उसके इति तो कुछ जाना नहीं जाता है, ऐसा लिख दिया वा न इति कह दिया है। वेद प्रमाणसे साक्षी ब्रह्मका वाद प्रतिपादन मतवादी लोग कर रहे थे, जब वेदने भी अन्तमें 'नेति-नेति' सुनाया, तब तो आधार ही उनका टूट गया। परन्तु, गुरु पारख पाये बिना यह भ्रम-धोखा किसीको भी चीन्ह नहीं पड़ा है। अतः वे सब भ्रमिक लोग जड़ाध्यासी बद्ध हुये और हो रहे हैं ॥ ४८ ॥

११. ध्रुव प्रहलाद आदि भक्त सब। श्रीमत चारिउ भाई! ॥४९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और सुनिये !

२०. ध्रुवः— स्वायम्भुव मनुके दो पुत्र हुए— प्रियव्रत और उत्तानपाद। उनमेंसे राजा उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं। सुनीति एवं सुरुचि उनका नाम था। सुनीतिके पुत्र थे ध्रुव और सुरुचिके पुत्र उत्तम था। राजा छोटी रानी सुरुचिमें आसक्त था। पिताके गोदमें बैठनेको जाने लगनेपर सौतेली माँके कटु वचनसे व्यथित होकर माताके अनुमतिसे पाँच वर्षकी अवस्थामें ही ध्रुव घरसे निकलके वनमें तपस्या करनेको चला गया। रास्तेमें नारदजी मिले, उन्होंने दीक्षा देके ध्यानकी युक्ति बता दिये। पाँच महीनेतक

लगातार कठिन व्रत, तपस्या किया, तत्पश्चात् विष्णुने आके दर्शन देके मनोवाञ्छित वरदान देकर घर जानेको कहा, तब ध्रुव घर चले आये, और पिताके पीछे राजा भया। भाई उत्तम यक्षोंसे युद्ध करके मारा गया। इसी कारणको लेके ध्रुवने भी यक्षोंसे संग्राम किया। अन्तमें मनुने आके समझानेसे मानकर घर जाकर भक्ति मार्गमें ही जीवन भर लगा रहा, इत्यादि वर्णन भया है ॥

२१. प्रहलादः— हिरण्यकशिपुका यह छोटा पुत्र था। इसकी माताका नाम कधायू था। जब यह गर्भमें था, तभी इसका पिता तपस्या करनेको चला गया था। उसी बीचमें इन्द्रने आके कधायूको बन्दी बनाकर ले जा रहा था, तो रास्तेमें नारद मिले, उन्होंने इन्द्रको समझाया, तो उसने उसको छोड़ दिया। फिर कधायू नारदके आश्रममें ही आके रहने लगी। और नारदजीने उसे भक्ति मार्गका उपदेश देके भक्ति दृढ़ा दिया। पीछे जब वरदान पाकर हिरण्यकशिपु लौटा, तब कधायू भी उसके पास आ गयी और प्रह्लादका जन्म हुआ, भक्ति मार्गका ही उसे माताने शिक्षा दिया, शुभ संस्कारी होनेसे वह पक्का विष्णु भक्त बना। हिरण्यकशिपुके पूछने पर उसने विष्णुका गुण गाया। जिससे वह क्रोधित होकर नाना तरहके कष्ट देके पाँच वर्षके प्रह्लादको मारनेकी चेष्टा किया। किन्तु, असफल होके अन्तमें आप ही मारनेको उद्यत भया, फिर तब नृसिंहने प्रगट होके हिरण्यकशिपुको पकड़ कर जङ्घामें रखके नाखूनोंसे पेट फाड़के उसे मार डाला। अनेकों कष्ट सहन करनेपर भी प्रह्लादने भक्ति पक्ष नहीं छोड़ा। कम उमरमें था, पिता क्रोध करके उसे मारना चाहता था, तो भी वह घबराया नहीं। निर्भय होके भक्तिमें लगा रहा, इत्यादि वर्णन है ॥

ऐसे भक्त ध्रुव, प्रह्लाद, पुण्डरीक, गोकर्ण, इन्द्रद्युम्न, श्वेत, पुण्यनिधि, अक्रूर, पाण्डव, उद्धव, विदुर, सुधन्वा, मयूरध्वज, हनूमान, सञ्जय, इत्यादि सब प्रेमी भक्त लोग हुए हैं। और श्रीमतको माननेवाले

श्रीमान् चारिउ-भाई = राम, भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न ये चारों महाराजा दशरथके चार पुत्र हुए हैं। उनमें कौशल्याके गर्भसे रामचन्द्रका जन्म हुआ। ये पहले उत्पन्न हुए। कैकेयीसे भरत पैदा हुए। और सुमित्राके लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न ये दो पुत्र पैदा भये। इनके चरित्र रामायण आदि ग्रन्थोंके द्वारा सब जानते ही हैं। कितने भक्त तथा वैरागी लोगोंने रामचन्द्रको विष्णुका अवतार ठहराके उनके तीनों भाईको उनके पार्षद माने हैं। और ध्रुवादि सब भक्त तथा राम आदि चारों भाइयोंने भी कोई एक साक्षीस्वरूप कर्ता परमात्मा कल्पनासे माने थे ॥ ४९ ॥

१२. दश अवतारको साखी मानी। तिनहूँ साख बताई ॥ ५० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! कितनेक ऋषि-मुनि, भक्तोंने, दश अवतार = मत्स्यसे लेके कल्कीतक माने हुए विष्णुके दश अवतारोंको सर्वशक्तिमान् साक्षी परमेश्वरका अंशस्वरूप करके माने हैं। जिसके लिये प्रमाण वेद, शास्त्र, पुराणोंमें बहुत जगह लिखा है। परन्तु, तिनहूँ = वे माने हुए परमेश्वर साक्षी स्वरूप दश अवतारोंने भी अपनेको अबोध, अज्ञानी देहधारी एकदेशी विकारी मानके और दूसरा ही कोई निर्विकार, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, परमात्मा साक्षी कर्ता-पुरुष पृथक् ठहराये हैं। परशुराम, राम, कृष्ण, बौद्ध, आदिकोंने खुद अपने ही मुखसे साक्षी, गवाही देके ऐसे साख बताये हैं। सो बात रामायण, गीता, भागवत, महाभारत आदि पुराणोंमें प्रसंगानुसार वर्णन हुआ ही है। अब कहिये! निज-स्वरूपको भूलके भ्रममें पड़े, तो एकने दूसरेको, दूसरेने तीसरेको साक्षी बताया, इस तरहसे आगे-आगे बताते गये, परन्तु, अन्तमें साक्षी ब्रह्मका कहीं पता ही नहीं लगा, तो जगत्‌रूप ब्रह्म मानके धोखेमें रह गये, बिना विवेक ॥ ५० ॥

१३. कश्यप आदि सकल मुनि जेते। बादीमें चित्त दीन्हा ॥५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और सुनिये!—

२२. कश्यपः— ब्रह्माके छः मानसिक पुत्रोंमें प्रथम पुत्र मरीचिके

कश्यप नामक पुत्र हुए। दक्ष प्रजापतिने अपनी तेरह कन्याओंका विवाह कश्यपके साथ कर दिया। इन सबकी इतनी सन्तानें हुईं कि— उन्हींसे यह सम्पूर्ण सृष्टि भर गयी। देव, दैत्य, दानव, मानव, असुर, सिंह— व्याघ्रादि पशु, गरुड़ादि पक्षी, नाग, इत्यादि और स्थावर-जङ्गम सब कुछ कश्यपसे उत्पन्न होनेसे कश्यप गोत्री कहलाते हैं। ऐसे विचित्र भूठी कल्पना किये हैं। इत्यादि प्रकारसे पुराणोंमें कश्यपके बारेमें बहुतसी बातें, कथाएँ कही गई हैं॥

कश्यप आदिमें उनके पिता मरीचिके भाई— अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, और क्रतु ये सगे पाँच भाई भये हैं। और ऋषि मुनियोंमें सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग, जड़भरत, इत्यादि मुनिगण प्राचीन-कालमें जितने भी हुए हैं, वे सब तथा शौनकादि अट्ठासी हजार मुनि वर्ग सबके सब वाणीके मिथ्या वाद-विवाद, मतवाद, आत्मा, ब्रह्म, ईश्वरवाद, कर्तावाद इत्यादिमें ही सबोंने चित्त लगा दिये थे। व्यर्थके धोखाको ही चित्तमें धारण किये थे। सो उनकी मानन्दीके वाणी शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थोंमें लिखी हुई धरी हैं। उससे मालूम होता है कि— उन्होंको निज स्वरूपका यथार्थ बोध नहीं हुआ था। अतः जड़ाध्यासी होके भवबन्धनोंमें ही जकड़ पड़े, बिना पारख॥५१॥

१४. अध्यारोप अपवाद कल्पना। सब काहू मिलि कीन्हा॥५२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! उन मतवादी सब कोईने अनुमान, कल्पनामें मिल करके, अध्यारोप = वाणीकी विधिसे मत, सिद्धान्त स्थापन करना। और फिर दूसरे पक्षमें उलटके, अपवाद = उसको निषेध करना, अर्थात् प्रतिपादित सिद्धान्तको द्वैत बताके तोड़ना वा खण्डन करना, ऐसा किये और वैसे ही कर रहे हैं। प्रथम तो विधि करके ब्रह्म-जगत्के गुण-लक्षण न्यारा-न्यारा बताना, फिर अद्वैत सिद्धान्तमें जगत्को मिथ्या भ्रान्ति बताकर एक ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा कहना। ज्ञानी, योगी, भक्तोंने सबोंने मिलके जो अध्यारोप और अपवाद किये, सो मिथ्या भ्रम कल्पनामात्र है।

बिना पारख उसकी पहिचान न हुयी । इसीसे वे सब भूलमें ही पड़े रहे, और आवागमनमें जा पड़े ॥ ५२ ॥

१५. आश्रम वर्ण चारि षट दर्शन । वैरागी संन्यासी ॥ ५३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उन गुरुवा लोगोंने, चार वर्ण = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बनाये हैं। फिर उसके भीतर स्थितिके लिये चार आश्रम = ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासकी अवधि कायम किये हैं। और षट् दर्शनः— योगी, जङ्गम, जैन, संन्यासी, दरवेश, तथा ब्राह्मण-ब्रह्मचारी, ये मुख्य माने हैं। तथा मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त, ये षट् शास्त्र भी षट् दर्शन कहलाता है। अथवा षट् शास्त्रोंके कर्ताओं-को भी षट् दार्शनिक कहते हैं। कहा हैः—

श्लोकः— "गौतमस्य कणादस्य कपिलस्य पतञ्जलेः ॥
व्यासस्य जैमिनेश्चापि दर्शनानि षड़ेव हि ॥"

और वैरागीः— यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, रामानन्दाचार्य, वल्लभाचार्य, इत्यादि वैष्णव भक्तोंसे जो पन्थ चला, सो वैरागी सम्प्रदाय कहलाया। संन्यासीः— दण्डी और दिगम्बर दो भेद संन्यासियोंमें हैं। और शङ्कराचार्यसे दश नाम संन्यासियोंमें प्रचलित हुआ। आश्रम, तीर्थ, आरण्यक, वन, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती, और पुरी, यही संन्यासियोंके चार मठोंके शाखाएँ दश नाम कहलाता है। ऐसे सब भेषधारी वर्णाश्रमी विस्तार हुए, परन्तु, बिना पारख वे सब भ्रम चक्रमें ही फिरे, और फिर रहे हैं ॥ ५३ ॥

१६. हिन्दू तुरुक दोउ मिलि गावैं । कहैं साखो अविनाशी ॥५४॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! इधर वेद, शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थ, और ईश्वरादि कर्ता माननेवाले हिन्दू लोग, और उधर कुरान, कितेब तथा खुदा, अल्लाह आदिको मालिक माननेवाले, तुरुक = मुसलमान लोग ये दोनों पक्षवाले, और इसाई, पार्सी, बौद्ध, जैन, आदि

विभिन्न मतवाले सब लोग भी खानी-वाणी ये दोनोंमें मिल करके कोई अविनाशी साक्षी आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, गॉड, सूर्य, विज्ञान, अरिहन्त इत्यादि परमेश्वर हैं, कहके ऐसे-ऐसे वाणी कल्पनाको ही गायन किये, और अभी वैसे ही गा रहे हैं। अविनाशी ईश्वरादि कर्ता होनेका साक्षी— प्रमाण तो उन्होंने बहुत दिये हैं। परन्तु, उसका कहीं पता लगता ही नहीं है। सबका जनैया, सबको थापन करने-वाला निजस्वरूप चैतन्य जीव है, उसके तरफ लक्ष लगाके भ्रमको तो कुछ मिटाते ही नहीं। इसीसे वे लोग जड़ाध्यासी होके आवागमन-के भटकामें पड़े, और पड़ रहे हैं, बिना विचार ॥ ५४ ॥

१७. बादी साखि शिष्य होय बैठा । बादी रार बढ़ावै ॥ ५५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! मतवादी लोग व्यर्थमें ही सच्चा साक्षीका पता न पाकर झूठा ब्रह्म, ईश्वर, खुदादिको साक्षी मानकर वाणी कल्पनाको दृढ़ करके कोई गुरु तो कोई शिष्य होयके बैठे हैं। वादी लोग साखी-शब्दरूप वाणीके शिष्य होयके धोखेमें बैठे, उनके हाथमें तो सार कुछ आया ही नहीं। तथापि, बादी = मतवादी प्रचण्ड होके व्यर्थके, रार = तकरार, झगड़ा बढ़ाये। तहाँ भ्रम, बन्धन बढ़ता ही गया। किसीको भी मुक्ति स्थिति मिली नहीं। ये वादी लोग कहीं गुरुवा बने, और कहीं साखीके शिष्य बन बैठे। परन्तु, वादी लोग जहाँ गये, वहीं वाद-विवाद करके रार बढ़ाये, आत्माको व्यापक पूर्ण मानके गाफिल भये हैं ॥ ५५ ॥

१८. तेहि बादी सुर नर मुनि जहँड़े । बादी अन्त न पावै ॥५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! और उसी मिथ्याके मानन्दी आत्मवाद, ब्रह्मवादमें भूलके व्यर्थ ही वादी बने हुए, सुर = देवता, सतोगुणी मनुष्य, ज्ञानी लोग, नर = पुरुष, रजोगुणी मनुष्य, कर्मी लोग, और मुनि = मननशील, तपस्वी, तमोगुणी मनुष्य, योगी लोग— ये सब भी बिना विवेक, जहँड़े = भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए, भटकनामें

पड़े। इसीसे वे मतवादी घनचक्रमें फिरने लगे। तहाँ ब्रह्म, ईश्वर, खुदाका अन्त वा पता तो कुछ पाये नहीं, अतः बेअन्त, अपार, अगम, अगोचर मानके शिर ठोंकके रह गये। यह सब तो मेरा ही अनुमान, कल्पना है, ऐसा न जानके वादियोंने भ्रमका अन्त नहीं पाये। अन्तमें देह छूटनेपर जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंके चक्रमें जायके पड़े। बिना पारख कठिन बन्धनमें जकड़ गये ॥ ५६ ॥

१९. बिना बादि कोई साखी नाहीं। साखी सबको प्राना ॥५७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे वादी-प्रतिवादी दो पूर्वसे मौजूद रहे बिना तीसरा साक्षी कोई भी हो नहीं सकता है। झगड़ा, फैसला करनेके लिये सबोंको साक्षीके प्रमाणकी आवश्यकता होती है। तभी साक्षीके कहे मुताविक निर्णय करके फैसला होता है। उसी प्रकार वादी, मतवादी मनुष्य प्रथमसे हुए बिना, और कोई भी साक्षी आत्मा, ईश्वर आदि ठहरते नहीं हैं। जीवके बिना स्वतन्त्र साक्षी ईश्वरादि कहाँ है? उसका गुण, लक्षण तो बताओ? कहीं नहीं। परन्तु, भ्रमिक अबोध मनुष्य झूठा पक्ष पकड़के कोई एक साक्षी ईश्वर, ब्रह्म आदि मान रहे हैं। अब वह वेद, शास्त्रादिके साखी-शब्दोंका सबूतसे माना हुआ साक्षी-परमात्मा सबोंको प्राणके समान प्रिय हो रहा है। आत्माको सबोंके घटोंघटमें भरा हुआ सबोंका प्राण ही माने हैं। वही सब मतवादियोंने मुख्य प्रमाण माने हैं। बिना विवेक सब लोग धोखेमें पड़ रहे हैं ॥ ५७ ॥

२०. कहहिं कबीर साखी शब्द सब। झगरे माँहि समाना ॥५८॥

टीकाः— यहाँपर ग्रन्थकर्ता सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णय कहते हैं कि— हे सन्तो! गुरुवा लोगोंने जो सबका कर्ता शब्द ब्रह्म (ॐ) को सबका साक्षी मानके वेद-वेदान्त आदिके नानावाणी कहे, तथा भाषामें साखी, शब्दादि-पद कथन करके कहे हैं, सो, झगरा = वेदके सार सिद्धान्त अन्तिम ब्रह्म सिद्धान्तके

धोखेमें ही जायके वे समाये हैं, और चराचर व्यापक एक ब्रह्म सत्य मानके जड़ाध्यासी हो, आवागमनके झगड़ामें ही समाये हैं। अब वही पूर्वके गुरुवा लोगोंका कहा हुआ वाणी साखी-शब्द आदिका पक्ष पकड़-पकड़के सब कोई मतवादी लोग अपने-अपने मत, पन्थ, ग्रन्थादिको बड़ा श्रेष्ठ बता-बताके वे सब अभी भी झगड़ा, फसाद, खैंचातान, राग, द्वेषादिमें समा रहे हैं। इसी कारणसे पारखहीन मनुष्य खानी, वाणीके कठिन बन्धनोंमें अरुझके चौरासी योनियोंके चक्रमें भ्रमण कर रहे हैं। अतः पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर उस भूलको परखके मिटाना चाहिये। तभी मुक्ति हो सकेगी ॥ ५८ ॥

॥ ❋ ॥ चतुर्थ—शब्द ॥ ४ ॥ ❋ ॥

१. सन्तो ! कर्म न चीन्है कोई ! ॥ ५९ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो ! यह कर्म क्या चीज है ? वह किससे कैसे बनती है ? फिर परिणाममें उसका फल क्या होता है ? इसका रहस्य बिना पारख मतवादी लोग कोई भी चीन्हते वा पहिचानते नहीं। देहधारी जीवोंसे इच्छा करके तन, मन, वचनादि द्वारा अन्य जीवोंको सुख, दुःख पहुँचानेसे शुभाशुभ कर्म बनता है। सो उसका फल भोग भी देह धारण करके ही जीवोंको होता है। कर्ता जीवके अधीन कर्म होता है, कोई भी कर्म जीवके बिना स्वतन्त्र नहीं होता है। किन्तु, वह कर्मके रूपको कोई नहीं चीन्हते हैं। जिस कर्मसे जीवोंको बन्धन, आवागमन होता है, उसी कर्ममें सब कोई लगे, और लग रहे हैं, बिना विचार ॥ ५९ ॥

२. ताहि कर्म करि खोजे सबहीं। पण्डित औ दुनियाई ॥टेक॥ ६०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और उसी कर्म करके सुखको चाहते हैं, जिससे दुःख ही प्राप्ति होती है। तथा सुखके लिये ही, पण्डित = विद्वान्, योगी, ज्ञानी, भक्तादि, और दुनियाई =

संसारी, अज्ञानी, विषयासक्त ऐसे सब हीं लोग नाना कर्म कर-करके, ताहि = उसी कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवतादिको जहाँ-तहाँ खोजते-फिरते हैं। वह कोई वस्तु ही नहीं है, तो मिलेगा कहाँसे ? प्राप्ति तो कुछ होती नहीं है। परन्तु, आशा-भरोशा लगाके सब कोई उसे खोजे, और खोज रहे हैं। पण्डित लोग ज्ञान, ध्यानादि साधनाएँ करके उसके खोजमें लगे हैं, और मूर्ख संसारी लोग कुकर्म हिंसा, बलिदान, देवी आदिकी पूजा कर-कराके सुखको खोज रहे हैं। जिस कर्म करके जीवोंको बन्धन दृढ़ होता है, वही-वही कर्म करके धोखेका खोज कर रहे हैं, इसीसे वे सब महान कठिन बन्धनोंमें पड़े हुए हैं, बिना विवेक ॥ ६० ॥

३. जिन्ह कीन्हों षट चार अष्टदश। सुर नर मुनि पढ़ि भूले ॥६१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! संसारमें पूर्वके और अबके, सुर = देवतारूप सतोगुणी मनुष्य, नर = रजोगुणी पुरुष, मुनि = मननशील तमोगुणी, तपस्वी, ऐसे त्रिगुणी लोग वेद, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थोंको ही पढ़-पढ़के मिथ्यावाणी कल्पनाका ही प्रतीति करके निजस्वरूपको भूले, और भूल रहे हैं। परन्तु, जिस चैतन्य नरजीवोंने, चार = चार वेद, षट् = षट् शास्त्र, और अष्टदश = अठारह पुराण आदिकी वाणीका कल्पना कर-करके नाना ग्रन्थोंकी रचना, निर्माण किया, उसको तो कोई पहिचानते ही नहीं। ग्रन्थ पढ़के आत्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि देवी, देवता, भूत, प्रेत, ऋद्धि-सिद्धि, आदि कल्पनासे मान-मानके भूले और भुलाये जा रहे हैं, सुर, नर, मुनि आदि सब कोई उसी महा भूलमें पड़े। उन्होंने जड़-चैतन्य, सत्य, असत्यका विवेक कुछ भी नहीं किये ॥ ६१ ॥

४. कृतम कर्ता गावन लागे। फिर-फिर योनी भूले ॥ ६२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और, कृतम = कृत्तिम, नकली, कल्पित वाणीसे कोई एक जगत्कर्ता ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मादि अनुमान करके उसीका गुण गाने लगे। उसको भी ठहरनेवाला,

मानन्दी कर्ता चैतन्य जीव प्रत्यक्ष सत्य है। परन्तु, सो निज स्वरूपका विचार तो किसीने भी किया नहीं। मिथ्या वेदादिके वाणी पढ़-पढ़ाके कृतमको ही कर्ता कहके गाने लगे। उसकी महिमा गुणानुवाद बहुत वर्णन किये। परन्तु, यथार्थ भेदको तो कुछ जान ही नहीं पाये। इसीसे घूम-फिरके जीतेतक नाना मत-मतान्तरोंके, योनियोंमें प्रवेश करके बहुविधि साधनोंमें भूलते भये। पश्चात् जड़ाध्यासी होके देह छूटनेपर कर्मानुसार फिर-फिराके पशु, पक्षी, उष्मजादि चौरासी योनियोंमें जा-जाके आवागमनके भूलामें भूले, और भूल रहे हैं। निज स्वरूपकी स्थितिमें स्थिर हुए बिना, कोई भी इस भूलासे नहीं छूट सकते हैं ॥ ६२ ॥

५. ज्ञान भक्ति वैराग्य योग करि । साधन करि करि ध्यावै ॥६३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! बन्धनकारक कर्मको न पहिचान करके कोई ज्ञानी बने, वे विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, शमादि षट् सम्पति सहित ज्ञान साधना करके क्रमशः सप्तज्ञान भूमिकासे ऊपर चढ़ने लगे। ब्रह्म, आत्माको ध्येय ठहराकर उसीका ध्यान करने लगे। कोई नवधा भक्तिकी आश्रय लेकर सगुण-निर्गुणकी भक्ति करने लगे; कोई प्रेम लक्षणा भक्तिमें अलमस्त भये। मानसिक ध्यान, पूजा, आदि मनकी कल्पना चक्रमें कोई लगे हैं। कोई वैराग्य धारण करके अरण्य निवासी भये। अन्नको छोड़-कर वनकी कन्द, मूल, फल, फूल, पत्तियाँ आदि खाकर निर्वाह करने लगे। कोई तपस्वी भये। कोई हठयोग, राजयोगादि अष्टाङ्ग योगोंके अभ्यासी भये। इत्यादि प्रकारसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योगादिके नाना साधनाएँ कर-करके धोखाके पीछे ही धाय-धायके दौड़े, तो भ्रम खाँचमें जाके गिर पड़े, गाफिल भये हैं ॥ ६३ ॥

६. कृतम आगे कर्ता नाचै । जहाँ तहाँ दुःख पावै ॥ ६४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! देखिये ! कितनी बड़ी भारी भूल है, इन लोगोंकी, कृतम = कृत्तिम, नकली, बनावटी,

झूठाके, आगे = सामनेमें, कर्ता = चैतन्य नरजीव स्वयं धोखेमें पड़के मनमाने नाच, खेल, तमाशा कर रहे हैं, नाच रहे हैं। अर्थात् कोई पत्थरादि जड़ मूर्तिकी देवी, देवता बना करके बड़े-बड़े मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित कर उसमें शिर पटक-पटकके, कृतम = जड़मूर्तिके आगे कर्ता— कारीगर मनुष्य नाना विधिसे नाचे और नाच ही रहे हैं। कोई वाणी कल्पनासे निराकार, निर्गुण ईश्वरादि मान करके उस भ्रमके आगे मानन्दी-कर्ता जीव बहुत प्रकारसे साधनाएँ करके नाचे। जहाँ-तहाँ = कर्म, भक्ति, योग, ज्ञान, विज्ञान और विषयादि जहाँ-जहाँ भी चले गये, तहाँ-तहाँ ही नाना तरहसे दुःख ही पाये। कहीं भी नित्य सुख वा मुक्ति नहीं मिली है। अभी भी वैसे ही बन्दरवत् नाचके दुःख पा रहे हैं। तो भी चेत करके उस भ्रमको नहीं त्यागते हैं। सत्सङ्ग-विचार करके पारख गुरुपदमें नहीं लगते हैं, वे अभागे ही बने हैं, बिना विवेक ॥ ६४ ॥

७. पाँच तत्त्व त्रिगुण करी कर । तीनों लोक प्रवेशी ॥ ६५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! मनुष्योंने, कर = अपने हाथसे नाना कर्म, कुकर्म, कर्तव्य करके अन्तःकरणमें जड़ाध्यासको टिकाये। जिससे पाँच तत्त्व और त्रिगुणके कार्य भागोंका सम्बन्ध करके देह बनाकर गर्भसे बाहर जन्म लेके आये। फिर वे जीव संसारमें काम, क्रोध, मोह, तथा स्त्री, पुत्र, धन, यही तीन लोकमें प्रवेश किये, तो तहाँ बन्धायमान भये हैं। तैसे ही ज्ञानी, योगी, भक्त, ये तीनोंने स्वर्ग, मृत्यु, पातालमें, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक, ऐसे तीन लोक मानके वे उसीमें प्रवेश करना चाहते हैं। अथवा पाँचतत्त्व त्रिगुणरूप समस्त पिण्ड, ब्रह्माण्डमें ब्रह्म व्यापक है, ऐसा कल्पना करके वे द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैतके तीन लोकमें प्रवेश किये हैं। उसी अध्यासवश तीनों लोकके सब जीव जगत्के तीन खानीमें जाके बद्ध भये और बद्ध हो रहे हैं। अथवा परमेश्वरने प्रथमारम्भमें पाँचतत्त्व सहित त्रिगुणको उत्पन्न करके तहाँ तीन

लोक बनाया। फिर तीनों लोकोंमें प्रवेश करके वह व्यापकरूपसे सर्वत्र पूर्ण होके रह गया। ऐसे कल्पना किये हैं ॥ ६५ ॥

८. कर्ताके गले कृतम फाँसी। डारैं सब उपदेशी ॥ ६६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! चारखानीमें देहका निर्माणकर्ता, और सम्पूर्ण वाणी कल्पनाका कथन कर्ता, और मानन्दीकर्ता, ऐसे तो मनुष्य जीव ही प्रत्यक्ष हैं। उन्हीं कर्ता नरजीवोंके गलेमें वा अन्तःकरणमें फँसायके, कृतम = नकली कल्पित वाणीकी जाल और विषयोंकी जालमें चौतरफसे बाँधके, उपदेशी = उपदेश देनेवाले ब्रह्मादि, सनकादि, योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुवा लोगोंने सबोंके गलेमें भीतर-बाहरसे फाँसी डाल दिये हैं, उसी फाँसीमें लटक-लटक करके छटपटाके निजपदकी स्थितिसे सबके-सब मारे गये। काल गुरुवा लोगोंके फन्दा-फाँसीसे कोई बिरले पारखी ही छूटे हैं। नहीं तो और सब भुलाय गये हैं, कोई नहीं बच पाये हैं। सब उपदेशिक लोग ही कर्ताके गलेमें कृतमके फाँसी डाले, और डालते ही जा रहे हैं। ऐसे निर्दयी काल-कठोर बने हैं ॥ ६६ ॥

९. तुरुक कहैं कून्न फैकून्ना। भई मिटी दुनियाई ॥ ६७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! इस शब्दमें आधा भाग आठ चौपाईतकमें हिन्दुओंकी कसर-खोटकी निर्णय करके कहा गया है। अब बाकीके आठ चौपाईयोंमें मुसलमानोंकी मजहबका कसर-खोट निर्णय करके दरशावेंगे, सो ध्यानपूर्वक सुनिये!, तुरुक = मुसलमान लोग उनके मजहबमें सृष्टिकी उत्पत्ति-प्रलय होनेके बारेमें उसकी भेद बात ऐसा कहते हैं कि— पहले जगत् कुछ नहीं था, खुदा अकेला ही था। उसको जगत् बनानेकी इच्छा उदय हुयी, तब खुदा वा अल्लामियाँने जोरसे "कून्न-कून्न" शब्द किया, मानों मुख ही से घण्टी बजायी हो, ऐसा हुआ। ऐसे खुदाके हुक्मसे गैबसे

जोरोंके साथ बड़ी भारी आवाज हुई। सो उसी 'कून्न' शब्दकी ध्वनिसे आशमानसे लेकर जमीनतक सारी दुनियाँकी उत्पत्ति कुनकुनाते हुए एक साथ हो गयी। हमेशा उत्पत्तिके लिये ऐसा ही नियम हुआ करेगा। और फिर जब खुदाको उदासी आके दुनियाँ मिटा देनेकी अरमान वा इच्छा होगी, तब खुदा-ताला जोरोंसे फिर "फैकून्न-फैकून्न" शब्द प्रगट करेगा। जिससे उसी वक्त सारी दुनियाँ एकदम फना या विनाश हो जायगी। इस तरह कून्न शब्द होनेसे सृष्टि उत्पत्ति भयी, और फैकून्न शब्द होनेपर सब दुनियाँ मिट-मिटाके नाश हो जायगी। ऐसी मिथ्या कपोल कल्पना किये हैं ॥ ६७ ॥

१०. ताहि सखुनको चीन्हत नाहीं। अहमक मोलना भाई! ॥६८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैः— हे भाई! जरा विचार तो करो! बिना कारण, बिना प्रयोजन बेठिकानसे कहीं शब्द ही मात्रसे दुनियाँ की उत्पत्ति वा प्रलय हो सकती है? ऐसा तो कभी हो नहीं सकतो है। फिर जगत् नहीं था, तो वह खुदा भी कहाँ कैसे रहा था? बिना देहके निराकारमें कभी इच्छा हो ही नहीं सकती है। और उपादान कारण हुए बिना इच्छामात्रसे कोई वस्तु बन ही नहीं सकती है, इसलिये इनका कथन छोकरोंके झूठी कहानीवत् है। वह 'कून्न-फैकून्न' शब्द तो मनुष्योंसे कल्पना करके होती भयी। और मुखसे बोली गयी, ताहि = उसी, सखुनको = शब्द वा वाणी कल्पनाको कोई विवेक करके चीन्हते-पहिचानते नहीं। इसीसे वे, मोलना = मौलवी वा मुल्ला मुसलमानी-धर्मके उपदेशक! (उन्हें पण्डित पुरोहितके समान माने हैं।) वे खुद ही, अहमक = नादान, दुर्बुद्धि, मूर्ख वा अज्ञानी बने हैं। फिर वे दूसरोंको सच्ची बात क्या समझावेंगे?। हे मौलबी! तुम यह बताओ कि— पहले यह जगत् नहीं था, फिर खुदाके 'कून्न' करनेसे दुनियाँ उत्पन्न हुआ, और 'फैकून्न' करनेसे नाश हो जायगो। सो यह बात तुमने कैसे जानी? क्या तुम उस वक्त दोस्त बनके

खुदाके साथ रहे थे ? यदि तुम थे, तो जगत् सब भी रहा ही। यदि तुम नहीं थे, तो तुम्हारी यह बात सरासर झूठी ही ठहरी। अपने स्वयं ही शब्द कल्पना करके कहे हो, फिर उसी शब्दको चीन्हते नहीं हो, इसीसे ये मोलना अहमक बने हैं। हे भाई ! तुम लोग इनकी धोखा जालमें मत पड़ो ॥ ६८ ॥

११. काजी सो जो काज करावै । नहिं अकाज सो राजी ॥६९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो !, काजी = मुस्लिम धर्मके अनुसार न्याय-नीतिसे चलानेवाला। और इन्शाफ करनेवाला न्यायाधीश, जजके तरह हो, उसे 'काजी' कहते हैं। असलमें तो काजी सोई है कि—जो मनुष्योंसे सत्कर्म करावे, दया, धर्म, शील, सन्तोष, सत्यकी राहसे चलावे। सबोंके हित, कल्याण हो, वैसे शिक्षा देवे। और अकाजसे कभी भी राजी-खुशी नहीं होता हो। अर्थात् चोरी, हिंसा, व्यभिचार, अत्याचार, झूठ, ठगाई, इत्यादि कुकर्म सोई अकाज, दुःखदायी बन्धनकारी है, उसमें प्रसन्न होके कभी लगने-लगानेवाला न हो, सोई हितकर सच्चा काजी है। अतएव हे मुस्लिमो ! जीवका कल्याण हो, वैसा उपदेश देके सत्कर्म करानेवाले हों, उन्हींको असली काजी जानो। उनके ही कहे अनुसार न्याय-नीतिसे चलो। वे काजी हिंसा, वैर, घात आदिमें कभी राजी नहीं रहते हैं, ये ही लक्षण उनके पहिचानके है ॥ ६९ ॥

१२. जो अकाजकी राह चलावै । सो काजी नहिं पाजी ! ॥७०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और जो शख्स, अकाजकी = जीव-हत्या, हिंसा, मारपीट, झगड़ा, मांस-मदिरा-भक्षण, पर-स्त्री गमन, वेश्यागमन, दुराचार, झूठ, छल, कपट, साम्प्रदायिक द्वेष, कलह इत्यादि बुराई, कुकर्म, अन्याय, अनीतिके ही कुमार्गसे अबोध मुस्लिमोंको भुलाय-भ्रमायके चलाते हैं, उल्लू सीधा करके अपने स्वार्थ सिद्धिके लिये मनुष्यके न करने लायक पैशाचिक-दानवी

कृत्य भी करते-कराते हैं। और जो धर्मान्ध, दुर्बुद्धि, निर्दयी बने हैं, सो वे इन्शाफ करनेवाले सच्चा काजी कभी हो नहीं सकते हैं। किन्तु, महामूर्ख, बदमाश, वह बड़ा पाजी है; पापी, कलङ्कित, दुष्ट, हिंसक, कामी, क्रोधी, आदि जो हैं, वही पाजी कहलाते हैं। अतः हितेच्छुक मनुष्योंने वैसोंकी कुसङ्गति साथ कभी नहीं करना चाहिये। सावधानीसे सदा दूर ही रहना चाहिये। उन्हें पहिचानके उनसे अलग हो जाना चाहिये ॥ ७० ॥

१३. कल्मा बाँग निमाज गुजारै। गाफिलको हैं गाई ॥ ७१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और ये मुसलमान लोग कुरानके प्रमाणसे, कल्मा = मुस्लिम धर्ममें कल्माको मूल मन्त्र माना है।—"ला इलाह इल्लिलाह मुहम्मद रसूलिल्लाह।" इत्यादि पाँच कलमा कहा है। वही मुसलमान लोग पढ़ा करते हैं। बाँग = मुल्ला लोग मसजिदोंमें खड़े होके शाम-सबेरे नमाजका समय बतानेके लिये चिल्लाके ऊँचे शब्दसे पुकारा करते हैं। उसे 'अजान देना' वा बाँग पुकारना कहते हैं, सो वे लोग समय-समयपर पुकारा करते हैं। निमाज = मुसलमान लोग नित्य पाँच बार खुदाकी प्रार्थना करते हैं, उसे नमाज पढ़ना कहते हैं। ऐसे वे लोग कल्मा, बाँग, नमाज पढ़ते हुए दिन वा आयु गुजारते हैं; समय बिताते हैं। परन्तु, जिसके लिये वे इतना सारा प्रयत्न करते हैं, गुण गाते हैं, सो क्या है? मनकी कल्पना भ्रम ही है। सो उसका भेद न जानके वे सब लोग गाफिलीमें ही पड़े हैं। गाफिल होके मिथ्याका ही गुण गाये हैं। अतः बिना विवेक सब अचेत गरगाफ हुए, और हो रहे हैं। उसे विवेक करके समझना चाहिये ॥ ७१ ॥

१४. दोजख पीछे भये दिवाने। खसलत कहैं खुदाई ॥ ७२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और, खुदाई = खुदा वा अल्लाह मियाँको मुसलमान लोग, खसलत = खास करके सत्य, नित्य, सबका मालिक कहते हैं। और उसीकी यादगारी, प्रार्थना, रटन

कर-करके, दिवाने = पागल ही भये हैं। पागलपनामें खुदाके नामसे, हलाल = जीवहिंसा, हत्या आदि बहुत-सी पापकर्म, अनीति किये, कराये, इसीसे वे सब पीछे मर-मरके, दोजख = नरककुण्डमें जाके गिर पड़ेंगे। चौरासी योनियोंके गर्भवासमें चले जावेंगे। इस तरफ तो वे कुछ ध्यान ही नहीं देते हैं, अथवा पीछे दोजख वा नरककी दुःखोंका भयानक वाणी सुनके और आगे, बिहिस्त = स्वर्गकी रोचक शब्दसे सुख मान करके बिहिस्त जानेकी इच्छा बढ़ायके मुस्लिम लोग दिवाने हो गये। तहाँ दया-धर्मको छोड़कर क्रूर, निर्दयी बनके कुकर्म करने लगे, और जिस खुदाको खास सत्य मानते हैं, खसलत कहते हैं, उसका तो कहीं पता ही नहीं लगता है; और सत्य, चैतन्य-जीवको तो वे लोग कुछ जानते वा मानते ही नहीं हैं। इसीसे जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंमें पड़के दुःख भोगा करते हैं, बिना विचार ॥ ७२ ॥

१५. निराकार बेचून बखानै। जगमें गोता खाई ॥ ७३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! हिन्दू और मुसलमान दोनों ही महा भ्रम-चक्रमें पड़े हैं। उनमें हिन्दुओंके गुरुवा पण्डित लोग ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित कर्ताको स्वरूपसे निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, अगम, अपार वर्णन करते हैं। जब उसका कहीं पता नहीं लगा, तो जगत्में ही व्यापक ठहराते हैं। तैसे ही मुस्लिमोंके गुरुवा, पीर, काजी लोग, खुदा वा अल्लाहको कर्तापुरुष मान करके उसे बेचून, बेनमून, लामुकाम, गोयमगोय बखान करते हैं। जब कहीं पता नहीं लगा, तो आखिरमें हारके खालिक खलकमें भरा हुआ है, ऐसा बतलाते हैं। इस तरहसे वे दोनों ही जगत्रूप भवसागरके बीच धारामें ही गोता खाये हैं। आवागमनमें पड़के गर्भवासमें गहरी गोता लगा रहे हैं; बिना सत्सङ्ग दुःख भोगी हो रहे हैं ॥ ७३ ॥

१६. कहहिं कबीर पण्डित औ काजी। दोनों अकिल गमाई ॥ ७४ ॥

टीकाः— यहाँपर श्रीगुरुदयालसाहेब सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका

कहा हुआ निर्णय कहते हैं कि— हे सन्तो ! इस प्रकारसे हिन्दू पण्डित लोग और मुस्लिम काजी लोग अपने-अपने सम्प्रदायके बड़े गुरुवा लोग तो कहलाये, परन्तु, जीवोंको बन्धनकारी कर्मके रहस्य खानी-वाणी जालोंको ठीक तरहसे न चीन्हके उन दोनोंने अपनी-अपनी, अकिल = मनुष्य पदकी सद्‌बुद्धि, विवेक-विचार, सत्यबोध, वैराग्य आदि सद्गुण गमाके खो दिये हैं। पशु-बुद्धि लेके मनुष्य पदसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये, और अध्यास वश चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ गये और पड़ रहे हैं, बिना पारख ! अतएव मुमुक्षुओंको चाहिये, कि— हिन्दू-मुस्लिमोंकी पक्षपात, हठ, दुराग्रहको दिलसे छोड़कर विवेकी-पारखी साधु-गुरुकी सत्सङ्ग-विचार करते हुए सत्यबोधको लेके अपना यह मनुष्य जीवनको सफल करना चाहिये ! सार ग्रहण करना चाहिये ! ॥ ७४ ॥

॥ ❀ ॥ पञ्चम–शब्द ॥ ५ ॥ ❀ ॥

१. सन्तो ! जैनीको भ्रम भारी ! ॥ ७५ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे सन्तो ! विवेक-दृष्टिसे देखिये ! इन जैन मतवादियोंको बड़ा भारी भ्रम-धोखा, भूल लगा हुआ है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक रमैनी ३० में कहा हैः—

"औ भूले षटदर्शन भाई ! पाखण्ड भेष रहा लपटाई ॥ १ ॥
ताकर हाल होय अदबूदा । छौ दर्शनमें जैनि बिगूर्चा ॥"बी०र०३०॥

—और हे भाई ! षट्‌दर्शनके लोग निजस्वरूपको भूले, तो पाखण्डके भेषमें लिपट रहे हैं। वैसे तो षट्‌दर्शनके सब लोग बिना पारख भ्रम धोखेमें पड़े ही हुये हैं। तो भी षट्‌दर्शनोंमें सबसे ज्यादा जैनी लोग धोखेमें पड़े हैं। उनके हाल अदबुद वा आश्चर्यमय बुद्धिहीन हुआ है। बड़े भ्रमिक हुये और हो रहे हैं। पक्षपातमें निपुण बने हैं, इत्यादि ॥

इस प्रमाणसे भी जैनियोंको बड़ा भारी भ्रम-भूल लगा हुआ है, ऐसा साबित होता है। उसके बारेमें उसका कारणका खुलासा करके निम्न पदोंमें कहा है ॥ ७५ ॥

२. जैन नाम जाकी जय नाहीं । छौकी राह पसारी ॥ टेक ॥ ७६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! देखिये ! जैन शब्दमें दोनों अक्षर अलग-अलग करिये "जै" "न" होता है। वह नाम ही अर्थ प्रगट करता है कि— जै-न कहिये जिसके जय वा जीत-विजय कल्याणरूप हित होनेवाला नहीं है। क्योंकि, भ्रम-धोखा उनका छूटा नहीं है, इसीसे उनका जय नहीं होता है, और जैनियोंने एक सत्यमार्गको त्याग करके झूठी छौ पदार्थकी मानन्दी दृढ़ करके झूठ-मूठके मार्ग जैन मतका पसारा वा विस्तार किये हैं। उनके भ्रम मानन्दीसे मनुष्योंका कुछ भी हित, कल्याण होनेवाला नहीं है। इसीसे जिसको निजस्वरूपका बोध नहीं हुआ, उसने अपना जैन नाम धराया। तहाँ जिसके जैन नाम है, उसके तो जय होनेवाला नहीं है, यह अर्थ निकला। उनके समझका अनर्थ हो गया। छौकी = षट् द्रव्यकी कल्पना करके जो रास्ता पसारे हैं, सो भटकानेवाला, बन्धनोंमें डालनेवाला ही हुआ। बिना विचार यह भेद उन्होंने नहीं जाने हैं ॥ ७६ ॥

३. जीव द्रव्य पुद्गल कहि बरनै । धर्म अधर्म सो चारी ॥ ७७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! जैनियोंके षट्द्रव्योंके नाम ऐसा कहा है कि— १. जीव द्रव्य है। २. पुद्गल (परमाणु वा शरीर) को भी द्रव्य कहके वर्णन किये हैं। ३. धर्म द्रव्य। ४. अधर्म द्रव्य सो यही चार द्रव्योंके नाम उन्होंके माने हुये हैं ॥७७॥

४. पँचयें काल द्रव्य कहि छठयें । पात्र अकाश विचारी ॥ ७८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! तथा ५. पाँचवें काल वा समयको भी नित्य द्रव्य कहा है, और ६. छठयें इन पाँचों द्रव्योंका

रहनेका, पात्र = वर्तन वा जगहरूप शून्यको आकाश द्रव्य कहके नित्य होनेका विचार किये हैं। परन्तु, आकाशकाय, वायुकाय, तेजकाय, जलकाय, पृथ्वीकाय, सबको जीव-ही-जीव माने हैं। परमाणु समूहको भी जीव ही ठहराये हैं। इसीसे जीवके सत्य चैतन्य अखण्ड स्वरूपको उन्होंने कुछ जाने नहीं हैं। पुद्गल = शरीर, यह तत्त्वोंकी कार्य होनेसे वह नित्य द्रव्य कदापि हो नहीं सकता है। सिर्फ परमाणुको ही नित्य द्रव्य माना जा सकता है। धर्म, अधर्म वा पाप-पुण्य भी द्रव्य नहीं ठहरते हैं। काल वा समय सूर्य करके होता है, इसीसे वह भी नित्य द्रव्य हो नहीं सकता है, और आकाश शून्य पोल है, वह कोई वस्तु वा पदार्थ नहीं है, अतः वह भी कोई द्रव्य नहीं है। (इसका निर्णयसे विस्तार वर्णन 'निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन' में जैनमत वर्णनमें देखिये ! और इस ग्रन्थमें श्रीकबीरपरिचय साखी संख्या १२२ की टीका (पृष्ठ १०२९ से १०३१ तक) में भी खुलासा किया है, वहाँ देखिये !), ऐसे षट् द्रव्योंको अनादि स्वयं मानके जैनियोंने अनेकों भेदसे विचार किये हैं, सो सब मनकी कल्पना भ्रम-भूल ही है, उसमें सत्य-सार कुछ भी नहीं है। सो सत्सङ्ग द्वारा निर्णय करके सार, असारका विचार करना चाहिये ॥ ७८ ॥

५. अपने-अपने गुण कर्मनके । ये षट कर्ता मानी ॥ ७९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ये भ्रमिक जैनी लोगोंने ऊपर कहे हुए षट्द्रव्योंको ही अपने-अपने गुण-कर्मोंके सहित नित्य पदार्थ, और उसे ही षट्कर्ता भी अनादि ठहरा करके मान लिये हैं। परन्तु, वह तो निर्णयसे मिथ्या कल्पना ही ठहरता है। उन्होंने अपने-अपने स्वभाव, समझ, गुण; कर्मोंके अनुसार ही अनुमान, कल्पना बढ़ा करके वाणी बनाये हैं। तहाँ अपनेको भूलके वही षट् द्रव्यको ही सृष्टिका कर्ता मान लिये हैं, अपने तरफ तो उन्होंने कुछ भी ख्याल नहीं किया कि— यह सबको तो हमने ही माने हैं, फिर वह कर्ता कैसे होगा ? कारण-कार्य वस्तु प्रथमसे

रहे बिना कर्ता कहाँ रहेगा ? और छः कर्ता मिलके उत्पत्ति किस चीजकी हुयी ? कैसे, कहाँपर हुयी ? इत्यादि बातका उत्तर जैनीलोग नहीं दे सकते हैं। अतः वे बड़े भ्रम, भूलमें पड़े हैं ॥ ७९ ॥

६. कियो न काहु अनादि निधान है । जिन कियो ताहि न जानी ॥८०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और भ्रमिक जैनी लोग कहते हैं कि— जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश, ये छहों द्रव्योंको, कियो न काहु = किसीने बनाके उत्पन्न किया नहीं है। बल्कि उक्तषट् द्रव्य, अनादि = जिसका कोई आदि न हो, स्वतः वा स्वयं सिद्ध है, और निधान = सब सारका खजाना वा खदान भी वही है। इत्यादि प्रकारसे उसे ही सर्वोपरि माने हैं। परन्तु, जिन = जिस नरजीवने वा मनुष्योंने, कियो = यह सबोंकी कल्पना-मानन्दी किया, और वाणीकी विस्तार किया, उक्त षट् द्रव्योंका कथन करके वर्णन किया है, ताहि = उस सत्य-चैतन्य जीवको वा निजस्वरूपको तो, न जानी = पारख विचार करके उन्होंने कुछ भी जाने ही नहीं। अतः मिथ्या कल्पनामें ही गरगाफ पड़े हैं। अर्थात् जिसने यह सारा अनुमान विस्तार किया, उस सत्य-चैतन्यजीवको तो विवेकसे नहीं जाने वा जानते नहीं हैं, और षट्द्रव्यको अनादि खजाना मानके भूठेमें ही भूले हुए हैं। ऐसे अविचारी मूढ़ ही बने हैं ॥ ८० ॥

७. ज्यों पुद्गलको त्याग निमित्ते । साधन अमित कमावै ॥८१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैनी लोग देह त्याग होनेको ही मुक्ति मानकरके फिर ज्यों-त्यों करके, पुद्गल = शरीरको त्याग कर देनेके निमित्तसे धोखेमें पड़के, अमित = बहुत-बहुत प्रकारके साधनोंके कमाई कमाते हैं। अर्थात् उपवास बढ़ाते-बढ़ाते चालीस-चालीस दिनतक अन्न-जलका त्याग कर देते हैं। यदि उसी बीचमें शरीर छूट जाय, तो उसे मुक्ति मानते हैं। कोई फल, फूल, कन्द, मूल, पत्र, तृण, आदिके आहरसे गुजारा करते हैं। कोई नागे, तपस्वी आदि होते हैं। इत्यादि प्रकारसे

देहको दुःखरूप जानके उसे त्यागनेके निमित्तसे साधनाएँ खूब करते हैं ॥ ८१ ॥

८. सो पुद्गल पाहन मूरति करि । गुरु कहि शीश नवावै ॥८२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! सो पुद्गल = जिस शरीरको प्रथम दुःखदाई, बन्धनका घर समझके त्याग देनेका प्रयत्न किया था, और उन्होंके गुरुवा लोगोंने अविचारसे हठात् आत्म-हत्या करके जो शरीरको छोड़ा, सो उसी शरीरके समान आकार-प्रकारके लम्बा-चौड़ा पत्थरके मूर्ति— बड़ी-बड़ी जड़-मूर्ति बना करके, उसी मूर्तिको ही गुरु, तीर्थङ्कर, देव, भगवान्, कहिके बड़ा श्रेष्ठ मान करके भक्ति भावसे झुक-झुकके हे गुरु ! हे गुरु ! कहके प्रार्थना करते हुए जैनी लोग शिर नवाते हैं। ऐसे पत्थरमें शिर पटकते हैं। देखिये ! एक तरफ तो पहिले देहको त्याग करनेके लिये प्रयत्न करते हैं। फिर दूसरे तरफ जड़ पत्थरके मूर्तिका देहके आकार-प्रकार बनाके उसे गुरु मानके शिर नवाते हैं। ऐसे वे मूर्ख बने हैं ॥ ८२ ॥

९. बीतराग सर्व पुद्गलसे । लिखि सो वाणी बाँचै ॥ ८३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैनी लोग कहते हैं कि— उनके पूर्ववर्ति गुरुवा लोग सब, बीतराग = जिनके राग सब बीत गया, वैराग्यवान् भये और, पुद्गलसे = शरीरपरसे उनके सर्व राग, आसक्ति, मोह छूट गया था, इसीसे वे मुक्त भये। और मुक्तिके लिये सबोंको उसी प्रकार देहसे राग हटायके बीतराग होना चाहिये। ऐसे-ऐसे बात कहते हैं, और वही बात ग्रन्थोंमें भी लिख रखे हैं। सोई वाणीकी कथा बाँचते, पढ़ते, दूसरोंको सुना-सुनाके उपदेश देते हैं कि— हे जैनियो ! तुम सब कोई देहसे राग हटायके बीतराग होओ, इत्यादि कहते, सुनते, सुनाते हैं, वही पढ़ाते हैं॥८३॥

१०. पुद्गल शिखर इष्ट कहि आगे । नारि पुरुष मिलि नाचै ॥८४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! फिर दूसरे तरफ

उसके विपरीत, शिखर = पहाड़के चोटीमें, टीलामें, ऊँचे स्थानोंमें, ऐसे ही जगहोंमें जैनियोंने बड़े-बड़े मन्दिर बना रखे हैं। वहाँपर, पुद्गल = पुरुषाकार शरीर काले पत्थरोंके नग्न मूर्ति बना रखे हैं। उसे ही इष्टदेवता भगवान्, गुरु ! कहि-कहिके शिखरमें मूर्तिके आगे स्त्री-पुरुष मिलके खूब प्रेमसे हाव-भाव, कटाक्ष, चला-चलाके नाच-नाचते हैं, गीत गाते हैं, राग-रङ्ग तानकी खूब विस्तार करते हैं। इतना बड़ा भारी देहकी राग आसक्तिमें ये स्वयं पड़े हैं, और दूसरोंको जैसे उपदेश देते हैं, वैसे तो अपने खुद चलते ही नहीं हैं। इसीसे इनकी कभी मुक्ति नहीं होगी। किन्तु, चौरासी योनियोंके नरकमें ही गिरेंगे, वहीं पचते रहेंगे। बिना विवेक ॥ ८४ ॥

११. जेहि चौबिसकी मुक्ति बतावो । जगसों कहो निराशा ॥८५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जैनमतवादी लोगो ! तुम लोग तुम्हारे पूर्वके आचार्य गुरु ऋषभदेवसे लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त जिन चौबीस तिर्थङ्करोंकी बड़ाई, महिमा करते हो, वे जगत् विषयोंसे निराश, उदास, वैरागग्यवान् रहे थे, कहते हो। उन चौबीसोंकी मुक्ति हो गयी, ऐसा बताते हो। मुक्तिके लिये जगत्से निराश रहना चाहिये, ऐसा दूसरोंसे कहते-फिरते हो, परन्तु, वैसे रहनी तुम खुद ही नहीं बनाते हो। उल्टे चालसे चलते हो, अतः बड़े अविचारी बने हो ॥ ८५ ॥

१२. तेहि रथ चढ़ाय रागि कर फेरै । ज्यों नट करै तमाशा ॥८६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जैनियो ! और चौबीस तीर्थङ्कर जिनकी तुम लोग मुक्ति बताते हो, फिर उन्होंकी ही पुतलारूप पत्थरकी बड़ी-बड़ी जड़मूर्ति बनाकर तथा चित्र वा फोटो आदिको सजाकर उसको रथ, पालकी, हाथीकी सवारी आदिमें ऊपर चढ़ायके सज-धजके साथ कीमती शाल-दुशाल ओढ़ाके, रत्न लटकाके बड़े भारी ठाट-बाट, धूम-धामसे, बाजे-गाजेसहित जुलूस निकालके महारागी

बनाकर जगह-जगह घुमाते हैं। फेरा फिराते हैं। बड़े-बड़े शहरोंमें, गाँव, कस्बोंमें रथयात्रा उत्सव मनाके गली-कूँची सड़कपरसे जुलूस निकाल करके कोशोंकी चक्करमें घुमाते-फिराते हैं। जैसे नट, भाँड़, पातुरी बहुत प्रकारसे स्वाँग बनाके विचित्र-विचित्र तमाशा करके देखाते हैं, फिर स्वार्थ सिद्ध करके चले जाते हैं। तैसे ही तुम लोग जैनी भी नटके समान ही स्वाँग बनाके नाच, तमाशा आदि करते फिरते हो। जिनकी मुक्ति बताते हो, फिर उनको ही मोहसे बन्धनोंमें डालके रागीका चित्र बनाके अपने भी महाविषयासक्त रागी बनके तमाशा किया करते हो। अतः तुम लोग बड़े दुर्बुद्धि, अविचारी बने हुए हो ॥ ८६ ॥

१३. क्षुधा पिपासा आदि अष्टदश । दोष कहैं यह त्यागो ॥८७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैनी लोग कहते हैं कि, क्षुधा = भूख और पिपासा = प्यास वा प्राण इत्यादि सब अठारह दोषोंको त्यागो कहा है। उनके अठारह दोषोंके नाम ये हैंः— मिथ्यात्व, अज्ञान, मद, क्रोध, माया, लोभ, रति (राग), अरति (खेद), निद्रा, शोक, अलीक (मिथ्या भाषण), चोरी, मत्सर, भय, प्राणीवध, प्रेम, क्रीड़ा, और हँसना— ये अठारह दोष जीतके तीर्थङ्कर मुक्त हुए। अतः मुक्तिके लिये तुम लोग भी उक्त अठारह दोषोंको त्याग कर देओ। इत्यादि प्रकारसे कहके जैनियोंके गुरुवा लोग शिष्योंको उपदेश देते रहते हैं ॥ ८७ ॥

१४. जेहि कारण यह सन्यो दोषमें । तासो निशि दिन पागो ॥८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! और जिस कारणसे यह अठारह दोषोंमें सब प्राणी, सन्यो = मिले हैं, तासों = उसीमें वा उन्हीं अठारहों दोषोंमें वे खुद ही, निशिदिन = रात-दिन, हरहमेशा, पागो = जकड़े पड़े हैं। मुक्तिके लिये १८ दोषोंको त्यागनेके लिये तो कहते हैं, परन्तु वे स्वयं ही उसीमें फँसे पड़े हैं, बन्धनोंमें ही पड़े हैं, तो भला! उनके चेले लोग कैसे उसको त्यागके मुक्त

होवेंगे ? कभी मुक्त नहीं होवेंगे। क्योकि, जैन लोग हँसते भी हैं, क्रीड़ा करके गाना-बजानादि करते ही हैं, प्रेम भी करते हैं, निद्रा लेके सोते भी हैं। असम्भव बात कहके मिथ्या भाषण भी करते हैं, भय, मत्सर, मद, लोभ, रति, अरति, रखते ही हैं, निजस्वरूपको न जाननेसे अज्ञान उनमें है ही, इत्यादि प्रकारसे अठारहों दोष उनमें भरे पड़े हैं। उसीमें दिन-रात रच-पच हो रहे हैं। फिर कहो तुम्हारी मुक्तिकी बात झूठी हुई कि नहीं ? सरासर इनके बात गलत वा झूठी ही ठहरती है ॥ ८८ ॥

१५. सती देह दुःख पलमें त्यागै । भूत लगै तेहि बूझै ॥ ८९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैनियोंके सम्प्रदायमें भी षट् भेद किये हैं। सो उनके नामः— १. जती। २. सती। ३. ओसवाल। ४. श्रावक। ५. मूँड़िया। और ६. ढोंड़िया। ऐसे छः प्रकारके जैनी लोग होते हैं। उन्हींमेंके दूसरे सती सम्प्रदायके बारेमें यहाँ कहा गया है। सती नामक जैनी लोग तपस्या, व्रत, उपवासादि नाना साधनाएँ करके बहुत कठिन-कठिन दुःख सहन करके कल्पित पतिके नाममें सती हुए। तहाँ आत्म-हत्या करके एक पलमें ही देहको त्याग देते हैं। सोई भ्रम-भूत जैनियोंके पीछे-पीछे लगी है। भूतकालके जैनी गुरुवाने ऐसा ग्रन्थमें लिख दिया कि— जो सती शिष्य लोग देह दुःख सहन करके सती स्त्रीके नाईं पलमें देहको त्याग देंगे, वह चन्द्रशिलामें जाके मुक्त हो जावेंगे, इत्यादि। तेहि = कल्पित भूतरूप वाणीको जैनी लोग बिना विवेक एक-दूसरेसे बूझते, समझते दृढ़ निश्चय कर लेते हैं, फिर भ्रमरूप भूतके फन्दामें पड़के आत्मा-घाती हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

१६. जेहि सुख करि साधन करि त्यागै । सो भुतवा नहीं सूझै ॥ ९० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और जिस मुक्ति सुख प्राप्त करनेके लिये अनेकों कठिन-कठिन साधनाएँ निराहारादि करके दुःख भोगते हुए जैनी लोग आत्म-घाती बनके शरीर त्यागे वा

त्यागते हैं, सो परिणाममें अपराधी, पापी होके कर्म नियम अध्यासके अनुसार चौरासी योनियोंमें जाके नीच गतिको पाते हैं। अरे! उनको विवेक दृष्टि न होनेसे यह कुछ सूझता नहीं कि— सो भूतकालके भ्रमिकोंके वाणी जो है, सोई भ्रम-भूत है। उसमें लगके जो देह त्यागते हैं, वे मुक्तिके बदले बन्धनमें ही पड़के नरकवास चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं। इसीसे, सो भुतवा = वाणीके भ्रम, धोखा, कल्पना ही है। बिना पारख यह उन्हें नहीं सूझता है। अर्थात् वाणीका भूत शिरमें चढ़ा, वे आप ही भूत बने, और जिस मुक्ति सुखके लिये साधनाएँ करके देह त्यागे, सो तो मिली नहीं। आगे, पीछे अध्यासी होके दुःख-ही-दुःख भोगे, और अभी दुःख भोग ही रहे हैं। तो भी उन्हें कुछ दिखता ही नहीं है; ऐसे मूढ़ बने हैं ॥९०॥

१७. दर्शन ज्ञान वीर्य सुख चारी। जीव गुण कहै विचारी ॥९१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैनी लोगोंका कथन ऐसा है कि, दर्शन = देखना, ज्ञान = जानना, वीर्य = शक्ति, बल, पराक्रम वा बिन्दु, और, सुख = स्वयं आनन्द स्वरूप, ये चारोंको जैन मतके विचारकोंने जीवके नित्य गुण कहा है। अब विचार करिये! एक गुणीमें चार तरहका नित्यगुण कहीं रह सकते हैं? ऐसा तो कहीं होता नहीं है। पृथ्वीमें एक ही गन्ध गुण है, और उसके स्वतः बहुतसे गुण नहीं है। जलके रस गुण, तेजके रूप गुण, तथा वायुके समान और विशेष भेदसे स्पर्श और शब्दगुण हैं। उनमें एक ही में चार गुण स्वरूपसे नहीं है। फिर गुण-गुणीका नित्य सम्बन्ध बना रहता है, वह कभी तीन कालमें छूटता नहीं है। फिर जीवके वे चार गुण कैसे? कहाँसे आये? क्या जैनी लोग जीवको स्थूल देहके स्वरूप ही समझते हैं? क्योंकि, दर्शन, वीर्य, और सुख ये तीनों प्रत्यक्षमें स्थूल देहके सम्बन्धमें ही प्रगट होता है। सूक्ष्म देहमात्रमें भी उसका अभाव रहता है। फिर उसको जीवका गुण मानना कितनी बड़ी भूल वा मूर्खताकी बात है। स्थूल

देह तो जड़ तत्त्वोंका कार्य है, इसमें जीवका सम्बन्ध है, तब नाना गुण स्वभाव क्रियादि प्रगट होते हैं। सो ज्ञान-गुणके अतिरिक्त अन्य जीवका गुण मानना सरासर भूल है। इसे सत्सङ्गमें निर्णय करके जानना चाहिये ॥ ९१ ॥

१८. जीव पुदगल सम्बन्ध नहीं जब। तब कहो काके गुण चारी ॥९२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! अब यहाँ जैनियोंसे पूछते हैं कि— हे जैनी लोगो! यह बताओ कि— तुमने प्रथम जीवके नित्य चार गुण जो कहे हो! सो स्थूल देहके सम्बन्धमें दिखता है, और जब या जिस वक्त जीव और, पुदगल=शरीर स्थूल-सूक्ष्मादिका कुछ सम्बन्ध नहीं रहेगा; विदेह मुक्ति स्थिति हो जायगी, तब उस वक्तमें यह चारों गुण किसमें वा किसके पासमें रहेगा? सो खुलासा करके कहो? तहाँ देह सम्बन्ध न रहनेसे विषयके ज्ञान, दर्शन, वीर्य, और सुख ये चारों प्रगट हो नहीं सकते हैं, और नित्य गुणका कभी अभाव नहीं होता है। फिर वह चारों गुण किसके हुये? सो विचारसे कहो? यदि मुक्तिमें भी जीव गया, तो वह चार गुण साथमें रहनेसे, तहाँ दर्शनगुणसे जगत्‌को पूर्ववत् देखा करेगा, विषयज्ञान होनेसे विषय भोगनेकी इच्छा भी करेगा, वीर्यगुण होनेसे सुखके लिये स्त्री-सम्भोग करनेमें भी प्रवृत्त होगा। इस तरह तो जैसा जगत्‌में घर-गृहस्थी बसाया है, तैसी तुम्हारी मुक्ति भी ठहरेगी। अथवा चार गुण न छूटनेसे जीव कभी मुक्त ही नहीं होगा, अतः इस धोखाको छोड़के सत्यासत्य निर्णयको सत्सङ्ग द्वारा समझो-बूझो ॥ ९२ ॥

१९. ऋषभ आदि चौबीस तिर्थङ्कर। ई जो कहैं मोक्ष गामी ॥९३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैन सम्प्रदायमें ऋषभदेव, अजितनाथ, इत्यादिसे लेके अन्तिममें महावीर स्वामी पर्यन्त सब चौबीस तीर्थङ्कर उन्होंके गुरु हुए, ऐसा गिनके उन्हें सर्वश्रेष्ठ

माने हैं। जैनियोंके, ई = यही जो चौबीस तिर्थङ्कर हुए, उन्हें जैन लोग, मोक्ष गामी = मोक्ष हो गये, साधनोंमें गमन करके १८ दोषोंको त्यागके मुक्तिलोकमें चले गये, वे सदाके लिये मुक्त हो गये, ऐसा कहते हैं। परन्तु, दर्शन, ज्ञान, वीर्य, और सुख ये जीवके नित्य चार गुण उन्होंके साथमें भी लगा ही रहा होगा। जिससे मुक्तिके बदले उलटके पुनः बद्धगामी भये होंगे, यही सिद्धान्तमें ठहरता है ॥ ९३ ॥

२०. ई छौ कर्ता क्षय कियो सबनको। अटके सेवक स्वामी! ॥९४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैनी लोगोंने, ई छौ = जीव, पुद्गल, अधर्म, धर्म, काल, और आकाश, यही छहोंको ही, कर्ता = जगत्के आदि मूलकर्ता मान लिये हैं। अतएव वही षट् कर्ताकी कल्पना, धोखाने ऋषभ आदि सबोंको भ्रमायके मनुष्यपद, मुक्तिमार्गसे गिराकर, क्षय = क्षीण, विनाश वा नष्ट-भ्रष्ट किया वा पतित कर दिया। यानी ये कल्पित षट् द्रव्यरूप कर्ताने उसको मानन्दी-कर्ता चौबीसों तिर्थङ्कर उन सबोंको मूलमें ही क्षय कर दिया, जगत् बन्धनमें भ्रमायके डाल दिया। अब उनके वाणीकी भरोसामें रहनेवाले सब जैनियोंका क्षय हो रहा है। इस तरहसे भ्रम, भूलसे धोखामें पड़के, स्वामी = ऋषभदेवादि गुरुवा लोग, तथा सेवक = उनके शिष्य अनुयायी जैनी लोग, सब कोई बिना पारख जड़ाध्यासी होके आवागमनमें पड़े और गर्भवासमें चौरासी योनियोंमें जाके अटक गये, और अभी भी वैसे ही जैनी लोग भूले वा भुलाकर अटक रहे हैं। अनुमान-कल्पनामें पड़के जहाँ-तहाँ भटक रहे हैं। अतएव जैनियोंकी मानी हुयी मुक्ति तो केवल धोखा ही मात्र है, ऐसा जानिये ॥ ९४ ॥

२१. जग उतपति कहैं कियो न काहू। पढ़ि गुनि कहै अनादी ॥९५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैनमतको मानने-

वाले लोग ऐसा कहते हैं कि— इस जगत्को प्रथम किसीने उत्पत्ति नहीं किया है। किन्तु, जगत् स्वयं अनादि है। "अनादि सम्बन्धे च॥" जैन तत्त्वार्थ सूत्र ४१। अध्याय २॥— संसारी जीवोंका अनादि कालका शरीर-सम्बन्ध है, और सादि (बीच-बीचमें) जन्म-मरण रूपसे देह-सम्बन्ध होता ही आता है॥ इत्यादि ग्रन्थोंमें लिखा है। सो ग्रन्थकी वाणी पढ़-गुन करके वही बात निश्चय किये हैं। उसीके आधारसे जगत् अनादि है, कहते हैं। परन्तु, आदि-अनादिका यथार्थ भेद वे जानते ही नहीं हैं। बीच-बीचमें बनने-बिगड़नेवाले कार्यरूप देहको भी अनादि कहनेवाले जैनी लोग अन्यायी, अविचारी ही बने हैं॥ ९५॥

२२. कर्म करे कर्ता नहिं मानै। भये अनीश्वर वादी॥ ९६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और चित्त, बुद्धि, मन, हङ्कार संयुक्त सूक्ष्म और स्थूल देह इन्द्रियादिसे नाना प्रकारसे शुभाशुभ कर्म करते हैं और कर्म करनेवाला कर्ता चैतन्य जीवको ठीक तरहसे नहीं मानते हैं, और दूसरे तरफ वे अनीश्वरवादी भी भये हैं। ईश्वरवादी लोग तो उन्हें नास्तिक कहते हैं। निज चैतन्य-स्वरूपको यथार्थरूपमें नहीं जानते हैं, भ्रम, कल्पनासे और ही कुछ मानते हैं। इसलिये जैनी लोग वास्तवमें नास्तिक ही बने हैं। यहाँ सत्पुरुषार्थसहित सत्यज्ञानका होना ही ईश्वरत्त्व है। कर्म करके जीव कर्ताको भी नहीं माननेवाले पुरुषार्थहीन अज्ञानी, आलसी, निरीश्वर-वादी गाफिल भये हैं, बिना विचार॥ ९६॥

२३. आठ कर्ममें चार बन्ध कहै। चार कहै मुख दीठा॥ ९७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैनी लोगोंने मुख्य आठ प्रकारके कर्म कथन करके कहा है। उस आठ कर्ममें प्रथम चार कर्मः— हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, और विषयासक्ति, इन्हें बन्धन देनेवाले कहा है, और दूसरे पश्चात्के चार कर्मः— दर्शन,

सम्यक ज्ञान, सुख और वैराग्य— इसे मोक्षदाता मुख्य करके मुक्ति स्वरूपको दिखानेवाला कहा है, और आदि बन्ध अर्थात् पुद्गलोंके बन्धनमें–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, और अन्तराय ये आठ कर्म कहा है। उनका विस्तार १४८ भेदोंसे कहा है । इस तरहसे आठ कर्ममें चार बन्धनमें ले जानेवाले और चार मुक्तिका मुख दिखानेवाले कहा है, और अभी वे वैसे ही बता रहे हैं ॥ ९७ ॥

२४. जो जग कर्म किये सो नाहीं । कृतम कर्म करावो भूठा ॥९८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— परन्तु, हे जैनी लोगो ! जो तुम लोग मुक्तिके लिये जगत्में नाना कर्म किये और कराये हो, सो असली मुक्ति तो तुम्हारे सिद्धान्तमें नहीं है। क्योंकि, जीवके पास नित्य चार गुण बने रहनेसे वह मुक्त हो ही नहीं सकता है, और जो-जो जगत्में कर्म किये, सो सब मनुष्य जीवोंने ही किये हैं। सो तुम लोग नरजीवके सत्यस्वरूपको तो पारख करके जानते ही नहीं हो। अथवा जो जगत्में कर्म किये, सो कायम रहे नहीं वा नहीं रहते हैं। अतएव, कृतम = कृत्तिम, बनावटी, नकली, भूठी वाणीके प्रमाणसे चन्द्रमुक्तशिला आदि लोक मानके वहाँ जानेके लिये जो कुछ भी कर्म साधना तुम लोग करते-कराते हो, सो सब सरासर भूठा है। उससे हानिके सिवाय लाभ कुछ भी होनेवाला नहीं है। ऐसा जानके अब तो भी भूठे कर्मका मोह वा पीछा, पक्ष आदिको त्याग करो ॥ ९८ ॥

२५. ये षट द्रव्य केहिको भासै । केहि उपदेश भसावै ? ॥ ९९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जैन मतवादी लोगो ! हम तुमसे पूछते हैं— यह बताओ कि— जीव, पुद्गल, अधर्म, धर्म, काल, आकाश— ये षट्द्रव्य न्यारा-न्यारा तुमने कहा, और नित्य पदार्थ उन्हें माना है । तहाँ जीव न्यारा, पुद्गल =

शरीर न्यारा द्रव्य बताये हो, परन्तु, जीवके सम्बन्ध हुए बिना कहीं देह भया है? कहीं नहीं; और जीवके बिना कहीं देह नित्य रहता है? कभी नहीं। अतः षट्द्रव्य मानना ही भ्रम-भूल है, और यह षट् द्रव्य किसको प्रत्यक्ष हुआ वा भास हुआ? षट् द्रव्य अपने आपको जान ही नहीं सकता है, उसको जानने, माननेवाले सातवाँ द्रव्य, और होना चाहिये। सो कौन है? बताओ? और तुम लोग षट् द्रव्य सत्य है, कहके किसको उपदेश देके, भसावै=बोध वा भास प्रत्यक्ष कराते हो? कहो! तुमने बोध किसको किया? और भास किसको हुआ? वह षट् द्रव्य ही है कि— उससे पृथक् कोई और है? इसका विचारसे निश्चय करके यथार्थ उत्तर बताओ। खाली षट् द्रव्यको ही कल्पनासे नित्य मानके झूठ-मूठकी धोखेमें मत पड़ो ॥ ९९ ॥

२६. सो कर्ता कृतम चीन्है बिना । जहाँ तहाँ दुःख पावै ॥१००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! सो वाणी कल्पनाका कर्ता मनुष्य जीव ही है। मनुष्योंने ही कल्पना करके उक्त षट् द्रव्यको माने, और अनेकों भेदसे वाणीका कथन किये हैं। उसीमें अपने स्वरूपको भूले हैं, और दूसरोंको भी भुलाये हैं। सो षट् द्रव्य आदिका मानन्दीकर्ता नरजीव हैं। किन्तु, कृतम=कल्पित वाणी, नकली, खोटा मानन्दीको विवेक करके चीन्हे बिना यथार्थ भेदको न जानके भ्रमसे वाणी कल्पनाको ही सत्य मान-मानके जहाँ-तहाँ जाके नाना तरहके साधनाएँ करके दुःख ही पाये, और दुःख पा ही रहे हैं। फिर उसी कर्म-कुकर्मके अध्यासवश जहाँ-तहाँ चारखानी चौरासी योनियोंमें जा-जाके दुःख पा रहे हैं, बिना पारख आवागमन चक्रमें पड़े वा पड़ रहे हैं ॥ १०० ॥

२७. मोक्षको धावत बन्धन पावत । ठग सुख लेत चोराई ॥१०१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! कहनेको तो ये

जैनियोंके गुरु-चेले लोग मोक्ष वा नित्य मुक्ति प्राप्ति करनेकी आशा, भरोसाको लेकरके, धावत = नाना कष्टकर साधनाएँ, जप, तप, व्रत, उपवासादिमें दौड़े चले गये, और जा रहे हैं। विवेक न होनेसे उन्हीं सब कर्म-कुकर्मसे जड़ाध्यासी होकर कठिन दृढ़ बन्धनको ही प्राप्त होते हैं, और ठग = मनकी कल्पना तथा जैनी गुरुवा लोग पक्के ठग, धूर्त बनके सुखका लालच देके नरजीवोंकी शान्ति, सन्तोषका सुख, विवेक, विचारादि सद्गुण, हंसपदके धनको धीरेसे चुरायके छिपाय लिये। इसीसे सब दुःख ही पा रहे हैं। अथवा इधरसे ये मोक्षके लिये दौड़ पड़े, रवाना भये, उधर बीचमें ठग मनकी कल्पना वा धूर्त गुरुवा मिले, उन्होंने भ्रमाके जीवन्मुक्तिके सुख-साधनको तो बीचमें ही चुराय लिये, धोखामें ले जाके छिपाय दिये। इसीसे सब जैनी लोग मरनेपर मुक्ति मानके सब तरफसे महान बन्धन चौरासी योनियोंके चक्रमें ही घूम, फिरके पड़ते हैं, बिना विवेक ॥ १०१ ॥

२८. गरे षट फाँस डार डोरियावै। मोक्षमें चोर लुकाई ॥१०२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अरे भाई ! इन जैनियोंके मोक्षमें तो चोर लुका पड़ा है, और वह उनके गलेमें षट् फाँस डालके डोरियाता है वा नचाता है। अर्थात्, चोर = जैनोंके तिर्थङ्कर गुरुवा लोग तथा कल्पना वही चोरके सरीखी लुक-छिपके मोक्ष धाममें जानेके लिये धीरे-धीरे साधनोंमें आगे बढ़ाते गये। उसी तरहसे मोक्ष होनेको बताकर उन्होंने जीवके ज्ञान, विवेक-धनको चुराके उसे, लुकाई = भ्रम-कल्पनामें ले जाके छिपा दिये हैं। फिर मदारी जैसे बन्दरके गलेमें डोरी बाँधके नचाता फिरता है। तैसे ही षट द्रव्योंको नित्य कर्ता बताके वही वाणी कल्पनाका फन्दा षट् फाँसको जैनी अबोध चेलोंके गलेमें वा मनमें वाणीकी भ्रम डालके नाना कर्म साधनोंमें लगाके, डोरियावै = नाच-नचाते हैं वा नचा रहे हैं। सब प्रकारसे दुःख ही दे रहे हैं। तो भी मूर्ख चेले लोग उस भेदको

समझते नहीं हैं। अन्ध-विश्वासी होके बँधे पड़े हैं। ऐसे मोक्षमें ही चोर लुका पड़ा है। यानी मोक्षका आशा बता करके भ्रमा-भ्रमाके जीवोंको आवागमनमें छिपा रहे हैं। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार किये बिना इस भेदको कोई जान नहीं पाते हैं ॥ १०२ ॥

२९. ये ठग पुरवा आचार्य जैन घर । दुःखदिये न चीन्है बैना ॥१०३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये गुरुवा ठग लोग अपनी धूर्तताईसे सब अबोध मनुष्योंको ठगते हुए जैनियोंके गाँव, कस्बा, मुहल्ला और घरोंघरमें भी पहुँच गये, और स्वर्ग, चन्द्रमुक्त-शिला, मुक्ति, आदि ऋद्धि, सिद्धि आदिकी अनेकों लोभ-लालचमें फँसाके खूब ठगे, और उन्होंके, जैन = जय नहीं, ऐसा नाम रख दिये। सोई लोग जैनोंके यहाँ, पूरवा आचार्य = पहिलेके आचार्य ऋषभदेवसे महावीर पर्यन्त सब २४ गिने हैं, वे प्रसिद्ध हुये हैं। वे ही तो मुख्य ठग भये थे। जैनोंके घर-घरमें जाके भुला-भ्रमाके उन्हें नाना तरहसे दुःख दिये और अभी वैसे ही घर-घरमें जाके बहका-बहकाके दुःख दे रहे हैं। तीर्थङ्करोंके वाणी-कल्पना बड़े-बड़े पुस्तकोंमें लिख रखे हैं, वही सुना-सुनाके कल्पना दृढ़ाके बाँध रहे हैं; तथापि उस कल्पित झूठी वाणीको विवेक-पारख न होनेसे जैनी लोग कोई भी चीन्ह नहीं पाते हैं, इसीसे मिथ्या धोखामें ही भूले पड़े हैं, बिना सत्सङ्ग! ॥ १०३ ॥

३०. कहहिं कबीर सो ठग चीन्हे बिनु । दुःखी भये सब जैना ॥१०४॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो! सो वह, ठग = कल्पना, वाणी, मन, और जैन-धर्मोपदेशक गुरुवा लोग ये पक्के ठग वा धूर्त बने हैं। जिन्होंने बहुतोंके जीवन धनको ठग लिया, धोखेमें डालके बहुत तरहसे दुःख दिया। उन ठगोंको विवेक-विचार करके यथार्थ चीन्हें-पहिचाने बिना, उनके कपटके

भेदको जाने बिना, उन ठगोंको ही हितकर मान-मानके विश्वासकर अपने सर्वस्व अर्पण करके सौंप दिये हैं, और ठगोंने भी खूब ठगके चेलोंको दरिद्र बना दिये हैं पारख ज्ञानरूपी धनसे रहित निर्धन हो गये हैं। अतएव जड़ाध्यासी बद्ध होके चारखानी चौरासी योनियोंमें चले गये और जा रहे हैं। इस प्रकारसे सब जैन मतवादी लोग जीतेतक साधनोंको करनेमें फिर मरके जन्मृतिमें पड़के दुःखी भये और परम बेहाल दुःखित हो ही रहे हैं। अर्थात् सोई ठगको ठीक तरहसे न चीन्हके ही सब जैनी लोग भ्रमसे बन्धनोंमें पड़के महा दुःखी भये हैं। अभी वैसे ही दुःखी हो रहे हैं। अतः हित चाहनेवालोंने पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग द्वारा इसके भेदको यथार्थ पहिचान करके भ्रमसे न्यारे हो रहना चाहियै ॥ १०४ ॥

॥ ❋ ॥ षष्ठ--शब्द ॥ ६ ॥ ❋ ॥

१. सन्तो ! प्रेरक सबको भावै !॥ १०५ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे सन्तो ! हे साधु सज्जनो ! संसारमें सब कोई भ्रमिकोंका भाव एक कोई कल्पित, प्रेरक = प्रेरणा करके सबको चलानेवाला, ऐसा परमात्मा, ब्रह्म, खुदादिके तरफ लक्ष लगा है। वे कहते हैं कि— ईश्वर ही हृदयमें रहके सबको प्रेरणा करके चलाता है। तहाँ कृष्णने भगवद् गीतामें अध्याय १८। श्लोक ६१ में कहा भी है किः—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥"— गीता अ० १८।६१ ॥

— हे अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको, अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित है ॥ और रामायणमें— "उर प्रेरक रघुवंश मणि।" इत्यादि कहा है ॥

इस प्रकार प्रेरकरूप ईश्वर, ब्रह्म, आत्मादि और वाणी-कल्पनामें

ही सब कोईका भाव टिका है। उसे ही सब लोग अच्छा समझके प्रेम करते हैं, ऐसे भ्रममें पड़े हैं ॥ १०५ ॥

२. जो पेरे ताहि चीन्हत नाहीं । पेरक और बतावै ॥ टेक ॥ १०६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और कोल्हूमें तेल पेरनेके नाईं— जो वाणी कल्पना, गुरुवा लोग और स्त्रियाँ नरजीवोंके तन-मनको खानी-वाणीकी कोल्हूमें डालके खूब पेरके निचोड़ डालते हैं, अज्ञ पुरुषोंको निकम्मा करके अपने स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं, ताहि = उन्हें तो कोई चीन्हता-पहिचानता नहीं कि— यही काल हैं। नाना तरहके रोचक-भयानक वाणी सुनाय-सुनायके अनेक कर्म-कुकर्म करनेके लिये प्रेरणा करते हैं, और जीवकी सत्तासे मन, बुद्धि ही इन्द्रियोंको चलानेके लिये प्रेरक होते हैं, ईश्वरकी तो कोरी कल्पना ही मात्र किया है। परन्तु, उसको कोई चीन्हते नहीं हैं। भूल करके भ्रमिक लोग और ही कोई, प्रेरक = परमात्मा प्रेरणाकर्ता है, ऐसा बतलाते हैं। जीव स्वयं अखण्ड, नित्य स्वरूप है, कर्म संस्कारके अनुसार अन्तःकरणमें सङ्कल्प-स्फुरणा उठा करता है। फिर ईश्वरका वहाँ क्या काम ? निजस्वरूपको न जाननेवाले ही ईश्वरादि और ही को प्रेरक बताके धोखेमें गरगाफ हो रहे हैं, बिना पारख ॥ १०६ ॥

३. आय परी उरबसी भई जब । ताहि न चीन्है कोई ॥ १०७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंके अन्तःकरणमें रहनेवाली भ्रम, कल्पना, शब्द वा वाणीके रूप धारण करके गुरुवाओंके मुखद्वारासे निकल करके शिष्योंके कानके स्थानमें आयके, परी = वही वाणी घुस पड़ी। जब श्रोत्र द्वारा शब्द भीतर प्रवेश होती भयी, तब वही, उरबसी = हृदयमें दृढ़ निश्चय वा पक्का मजबूत होके बैठ गयी, और वही वाणी मनमोहिनी, सुन्दरी, परी, सबको छलनेवाली उर्वसी अप्सरा भयी। उस मन-कल्पना वाणी-

रूपी इच्छा, मायाको तो निर्णयसे, परखकर कोई चीन्हते वा पहिचानते नहीं हैं। इसीसे वाणी, खानी धारामें बहते हुए गोता खा रहे हैं ॥ १०७ ॥

४. देवलोकमें परी बतावै। सो तो परी न होई ॥ १०८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे सन्तो! और प्रत्यक्षमें असली मनकी परीको न चीन्हके मूर्ख विषयासक्त पुरुषोंने और ही कहीं ऊपर, देवलोक = स्वर्गलोक, इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक आदि देवताओंके देशमें, परी = उर्वसी, रम्भा, मेनका, तिलोत्तमा आदि अप्सरारूप सुन्दरियाँ, नवयुवतियाँ वहाँ सदा रहती हैं। और नाच-गाके, विषय-विलास देके वहाँके देव पुरुषोंको सुख दिया करती हैं, इत्यादि मिथ्या गपोड़ी बातें, पौराणिक लोग बताते हैं। सत्य निर्णयसे स्वर्गादि देवलोक ही असिद्ध है, फिर वहाँ देवता-पुरुष और परी-सुन्दरी स्त्रियाँ कहाँसे होंगी? इस लोकके विषयोंकी बात ही कल्पनासे ऊपर स्वर्गादि लोकमें भी माने हैं, सो सरासर झूठी है। सो उनके माने हुए कथनसे तो वह सच्ची परी वा अप्सरा नहीं हो सकती है। अतः वह परी नहीं है। बिना विचारे झूठी धोखामें गुरुवा लोग स्वयं परी बनके गाफिल पड़े हैं ॥ १०८ ॥

५. भक्तन परी भक्तिमें राखा। योगिन योग समाना ॥ १०९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! वही प्रेरणा करनेवाली वाणी कल्पना जब भक्तोंके कानमें पड़ी, तब भक्तोंने, परी = उसी वाणीको बड़े प्रेमके साथ भाव-भक्तिसे हृदयमें ले जाकर टिकाये हैं। तहाँ विष्णुके श्रवण, मननादि नवधा भक्तिमें तथा सगुण, निर्गुण भक्तिमें, नाम स्मरण, ध्यान, मानसिक पूजा आदि भक्तिमें मन लगाके उसीसे मुक्ति होगी, दया करके भगवान् भक्तको मुक्त कर देंगे, इत्यादि कथन करके तहाँ भक्तिमार्गसे द्वैत सिद्धान्त कायम कर रखे हैं। ऐसे भक्तोंने वाणीको भक्तिमें लगा रखे हैं, और तैसे ही योगियोंने भी समान-विशेषरूपसे वाणीरूपी परीकी

गोदमें ही समायके योग साधनोंका खेल-खेले, उसीमेंसे अष्टाङ्ग योग मार्ग पृथक्-पृथक् बनाये हैं। धारणा, ध्यान, और समाधि लगायके शून्य धोखामें ही समाये। ऐसे योगियोंने योग काण्डकी वाणीका विस्तार कर रखे हैं। उसी उलटी परीकी जालमें सब योगी लोग अरुझे पड़े हैं ॥ १०९ ॥

६. परी पेर सब पण्डित ज्ञानी । ओटैं वेद पुराना ॥ ११० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! फिर दूसरे तरफ बड़े-बड़े शास्त्री, वेदाचारी पण्डित लोग तथा सब ज्ञानी ऋषि, मुनि आदि सिद्ध-साधक लोग भी चार वेद, षट् शास्त्र, अठारह पुराण, आदिकी वाणी, ओटैं = पढ़ते हैं, रटते हुए उसे औंटाते हैं। उसी कल्पित वाणीकी प्रेरणामें सब मोहित होके भ्रममें भूले पड़े हैं। और इधर संसारमें सब लोग उन्हीं पण्डित, ज्ञानियोंकी पेरा-पेरीमें पड़के भ्रमिक हुए, तो वेद, पुराणोंको उलटा-पलटाके पढ़-पढ़ा रहे हैं। अर्थात् वाणीकी प्रेरणासे सब कोई पण्डित और ज्ञानीजन भी वेद, पुराणादिको पढ़ते हैं। तहाँ कर्ता ब्रह्म, ईश्वरादि मान-मानके नष्ट-भ्रष्ट होके बन्धनोंमें ही पड़ जाते हैं। बिना सत्सङ्ग ॥ ११० ॥

७. ब्रह्मा विष्णु महेश पेराने । सुर नर मुनि नहीं बाँचे ॥१११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! वाणी कल्पनाके कोल्हूमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये तीनों भी खूब पेराय गये, तो विवेक-रस सब निकलके नाश हो गया। उन्होंके दिलमें वाणी-कल्पनाकी बहुत प्रेरणा हुई। इसीसे कर्म, उपासना, योगकाण्डकी उन्होंने विस्तार किये हैं, और, सुर = देवता-सत्त्वगुणी, नर = रजोगुणी-पुरुष, मुनि = तमोगुणी-तपस्वी, ये तीनों भी बाँचे नहीं। त्रिगुण माया जाल, वाणी कल्पनाके प्रेरणामें प्रेरित हो पेरायके निज पदसे नष्ट-भ्रष्ट हो बन्धायमान हो गये तहाँ, पेराने = जन्म-मरणादिमें पड़के दुःखी भये, बिना विवेक ॥ १११ ॥

८. परी पेरमें जेर भये सब । तन धर धरके नाचे ॥ ११२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— हे सन्तो ! इस प्रकार ब्रह्मादि, सनकादि, शौनकादि ऋषि गण तथा सुर, नर, मुनि आदि सब कोई मन, कल्पित वाणी और विषयादिकी प्रेरणा, दबाव, पेराई आदिकी दोहरा पेरमें पड़े, तो सबके सब एकदमसे, जेर = जेलखानाके फाँसीरूपी बन्धनमें लटक-लटकके मर गये। जड़ाध्यासी होनेसे उनके जीव एक देह छोड़के दूसरे देहमें गया, फिर दूसरे देह छोड़के तीसरा देह धारण किया, इसी क्रमसे चारखानी चौरासी योनियोंमें नीच-ऊँच, बड़ा-छोटा, नाना देहेंधारण कर-करके विचित्र प्रकारसे त्रिविधि तापको सहन करके जन्म, मरण, गर्भवासमें जाते-आते बहुविधिसे नाचे। और वैसे ही अभी भी सब जीव अध्यास वश नाच रहे हैं। उस परीकी पेरसे छूटना अत्यन्त कठिन हो गया है, बिना सत्सङ्ग ॥ ११२ ॥

९. दश अवतार परीको जाया । फेर जन्मे जो आई ॥ ११३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने प्रथम मत्स्य अवतारसे लेकर दशवाँ कल्कीतक जो वर्णन किये हैं। सो दशों अवतारकी आदि जननी वा माता वाणी कल्पना ही है। परीरूपी वाणीके गर्भसे ही दश अवतार उत्पन्न हो आये। फिर और भी तैंतीस कोटि देवता, चौदह देवता, भूत, प्रेत, बेताल, देवियाँ, इत्यादि और जो-जो कल्पनाके कोखमें आये, सो सब घूम-फिरके जन्में, वाणी द्वारा वर्णन होके जगत्‌में आये हैं। अर्थात् दश अवतारादि जो-जो फिर-फिरायके पुराणोंमें जन्म लेके आये, और फिर भी जो जन्म लेके आवेंगे, उन सबोंकी उत्पत्ति परीरूपी वाणी मायासे खानी संसारमें हुयी। ऐसा जान लीजिये कि—उस वाणीको मनुष्योंने ही बनाया है ॥ ११३ ॥

१०. बिना भगकी परी पुरातम । अद्‌बुद रूप बियाई ॥ ११४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! ऐसे दश अवतारादि सारे संसारके विचित्ररूपको धड़ाधड़ उत्पन्न करनेवाली जगत् जननी-रूपी, परी = वाणी माया जो है, सो पुरातम = प्राचीन कालकी बहुत वर्षोंकी पुरानी विलक्षण रूपवाली है । क्योंकि, वह बिना भगकी है । उस स्त्रीकी, भग = योनि द्वारका तो कहीं पता ही नहीं है । अथवा षट् गुणरूप माना हुआ भगकी चीन्ह भी उस परीमें नहीं है । परन्तु, बिना भगकी पुरातन परी, ऐसी बहुत सन्तानवाली है कि— उसकी सन्तानें अगणित हैं । अरे भाई ! वह अद्‌बुदरूपसे ऐसी बियाई कि— मुखसे ही धड़ाधड़ बालकोंको जन्माती जाती है । ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, खुदा, आदि सब उसके सन्तान मुखसे ही पैदा होके आये हैं । और, अद्‌बुद = आश्चर्यरूप बुद्धिसे परे विराटस्वरूप ब्रह्म एक अद्वैत है । ऐसा एक विचित्र निर्गुण पुत्रको भी उसने जन्माई है । ऐसा वही, परी = वाणी सबकी माता बनी है ॥ ११४ ॥

११. परी पेरमें जेर भये सब । सूझै लाभ न हानी ॥ ११५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! उसी, परी = कल्पित वाणी जो गुरुवा लोगोंके मुखसे निकलके मनुष्योंके कानमें भनक पड़ी, उसीकी प्रेरणा, खैंचाव, झुकावमें आके सब ज्ञानी-अज्ञानी नरजीव नाना प्रकारकी पक्ष, मानन्दीमें लगके, जेर = बद्ध, गाफिल, परवश होते भये । ऐसा होनेपर भी बुद्धि-विचार नष्ट हो जानेसे उन्होंको हमारे लाभ हो रहा है कि,— हानि हो रही है, यह कुछ भी सूझता ही नहीं । वाणी कल्पनासे धोखेमें पड़के नरजीवोंको हित, लाभ तो कुछ होता ही नहीं, सब प्रकारसे हानि ही होती है । परन्तु, विवेक बिना वाणीकी पक्षपातमें पड़े हुए लोगोंको यह बात कुछ दिखता ही नहीं है । वाणी परीकी दबाव प्रेरणामें जो पड़े, सो सब जेर भये, कैदमें पड़ गये । और एकदम अन्धे भी हो जाते

हैं, लाभ-हानि भी उन्हें कुछ सूझती नहीं, मूढ़ ही हो जाते हैं ॥११५॥

१२. जग मिथ्या करि-करि दरशावै । तब परिया खिसियानी ॥११६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे सन्तो! और वेदान्ती लोग वेद-वेदान्तकी वाणी पढ़-पढ़के ब्रह्मज्ञानको दृढ़ करते हैं। तहाँ अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तको प्रतिपादन, वर्णन कर-करके ब्रह्मको सत्य जगत्को मिथ्या कथन करके जगत्को ही व्यापक ब्रह्मरूपमें दरशाते हैं। अर्थात् जगत्को मिथ्या कथन कर-करके ब्रह्मको सत्य दरशाते हैं। परन्तु, वह ब्रह्म तो कुछ दिखता ही नहीं, जगत् ही प्रत्यक्ष दिखता रहता है। तब तो, परिया = वाणीकी भ्रमसे धोखेमें ही पड़ गये, और, खिसियानी = कल्पना क्रोधित होके खिसियाय गयी, तमक गयी, अण्ड-बण्ड बकने लगी। इसी कारणसे जीव अध्यासी होके आवागमन चक्रमें पड़के दुःखी भये, और अभी वैसे ही दुःखी हो रहे हैं ॥ ११६ ॥

१३. परी पेरमें परमहंस भये। खाइन अपने खूसी ॥ ११७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! जब नरजीव सत्सङ्ग, विवेक, विचार तथा सद्बुद्धिको छोड़के परीरूप वाणीकी मानन्दी मिथ्या प्रेरणामें पड़के पेराय गये, दब गये, भ्रमिक हो गये, तो अन्तमें वे परमहंस भये। हंस दशाको त्यागके दुर्दशाको ही ग्रहण कर लिये। बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़, अजगरके समान वृत्ति बनाय लिये। नाम तो परमहंस धराये, परन्तु, काम तो परम भैंससे भी गया-बीता सूअरके समान बर्तने लगे, और अपने खुशीसे चराचर सम्पूर्ण जगत् मेरा ही स्वरूप है, मैं ही सर्वरूप हूँ! विराटरूप हूँ! कहके सब जगत्को ही खा गये, तो भी विराटका पेट नहीं भरा। इसलिये बाहर भी विचार शुद्धाशुद्धका ख्याल छोड़ करके अपने खुशीमें जैसा आया, तैसा खाने लगे। मल, मूत्र, मांस, मछली, मद्य, सड़ी हुई, दुर्गन्धित, मुर्दा, पशु, पक्षी, मनुष्यादि जहाँपर जो मिला, सो खुशीसे ही खा जाते हैं। खाद्याखाद्य, भक्षाभक्ष, कर्तव्या-

कर्तव्य त्याग, ग्रहण आदिकी वे कुछ भी विचार रखते ही नहीं। मूढ़ होके मनमौजसे चलते हैं। बड़े दुर्बुद्धि हो जाते हैं ॥ ११७ ॥

१४. काहूके टोके नहिं बोलै। तब उरबसिया रूसी ॥ ११८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! फिर कभी परमहंस बने हुए ब्रह्मज्ञानी जड़, जाड़, मूढ़के समान गाफिल पड़े रहते हैं। अनिर्वाच्य ब्रह्म धोखेकी दृढ़ता करके, काहूके = किसीके भी, टोके = बुलाने, झकझोरनेसे भी वे कुछ एक शब्द भी नहीं बोलते हैं। बिलकुल मूक जड़वत् हो पड़े रहते हैं। चाहे उन्हें गाली दो, भला-बुरा सुनाओ, मारो-पीटो, तो भी वे कुछ बोलते ही नहीं, तब इसीसे तो, उरबसिया = उनके उर-हृदयमें जो वाणी दृढ़ होके बसी, सो धोखा ही, रूसी = रूठ करके वा अत्यन्त नाराज, बिमुख, क्रोधित हो, तमोगुणसे जड़ाध्यासको विशेष बढ़ायके दृढ़ किये, वही संस्कार उन्हें फिर चौरासीकी मूक, जड़वत् योनियोंमें ले जाके डाल देती है। इस तरह अनेकों जन्मोंके लिये कठिन कैदमें पड़ जाते हैं। अर्थात् जब ब्रह्मज्ञानी किसीके बोलानेसे भी नहीं बोलते हैं, तब जानिये कि— उनकी इष्टदेवी उर्बसिया माया उनसे रूठी हुई है। इसीसे उसके चिन्तामें उसको मनानेकी फिकरमें वे लगे हैं। तहाँ मन, बुद्धि, वाणीके परे ब्रह्म मानके वे मौन हो रहते हैं, बिना पारख ॥ ११८ ॥

१५. कर्म करावै फल फुसलावै। रूप अरूप गर फाँसी ॥ ११९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये गुरुवा लोग वही परीरूप रोचक, भयानक वाणी सुनाय-सुनायके मनुष्योंको कर्म साधनोंमें लगाते हैं। तहाँ नित्य षट् कर्म, नैमित्य कर्म, काम्य कर्म, प्रायश्चित्तादि कर्म तथा जप, तप, तीर्थ, व्रतादि विधि-विधानसे अनेकों कर्म-कुकर्म कराते हैं। उससे, फल = अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष ये चार फलकी प्राप्ति, ऋद्धि, सिद्धि, वाचासिद्धि, मनोकामनाएँ पूर्ण होनेकी,

और चार मुक्ति आदि फल मनमाने प्राप्ति होनेकी आशा, भरोशा, लालच देके, अज्ञानी मनुष्योंको हरतरहसे फुसलाते हैं, भुलाते हुए उनके तन, मन, धनको हरण करके भ्रम धोखेमें डाल देते हैं, और इष्ट देवता, ईश्वरादिको कहीं, रूप = साकार स्वरूप, भिन्न-भिन्न किसिम-किसिमके आकार-प्रकार बताके सगुण उपासनामें लगाते हैं, और कहीं तो, अरूप = निराकार परमात्मा मानके निर्गुण उपासना, योगादि साधनोंमें लगते, और लगाते हैं। ऐसे रूप, अरूप ये दोनों मानन्दीमें मनुष्योंको फँसाके उन्होंके गलेमें वही फाँसी डाल दिये हैं, और अभी वैसे ही फाँसी डाल ही रहे हैं। पारख बिना उन्हें कोई चीन्ह सकते नहीं। रूप = जगत्का विषय, और, अरूप = ब्रह्म आदि वाणीकी विषय, ये दोनों फाँसी जीवके गलेमें पड़ी हैं। जरा वह खैंच गयी कि, जड़ाध्यासी होके मर जाते हैं ॥ ११९ ॥

१६. डाइन होय भ्रतारहि गल दै। आइ परी परकाशी ॥ १२० ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! और, डाइन = डाँकिनी, चुड़ैल, राक्षसीके समान होयके स्त्री और गुरुवा लोगोंके वाणी कल्पनाने नरजीवोंको फुसलाय-फुसलायके नाना कर्म-कुकर्म विषयोंकी और कर्मादि साधनोंकी कार्य कराती है। फिर अपने, भ्रतारहि = भावुक नरजीवोंको वह ही रूप-अरूपकी फाँसी गलेमें लगा देती है, और उसे खैंचके जीवोंको वासनामें लटका-लटकाकर मार डालती है। ऐसे ही अबोध मनुष्योंको हत्या करती हुई वह, परी = स्त्रीरूप वाणी संसारमें आयी है, और भेद छिपाकर ऊपरसे सुन्दर-रूपमें प्रकाशित हो रही है ॥— संसारी लोग कहते हैं कि— डाइन छोटे-छोटे बच्चोंको मारती हैं। परन्तु, यह डाइन तो प्रचण्ड होके जवान अपने भ्रतार वा पतिके गलेमें ही फाँसी लगा देती है, और जीवोंको जहँड़ाके मार डालती हैं। दूसरोंके सन्मुखमें वह परी प्रकाशमें अति सुन्दररूप बनाके आती है। फिर ब्रह्म, ईश्वरादिके गुण गाके बहुतोंको मोहित कर डालती है। फिर अपने वशमें करके उन

सबोंको मौका पाके हत्या कर डालती है। सदा यह ऐसे ही किया करती है। अतएव स्त्री, और गुरुवा लोगोंके वाणी कल्पनासे सावधान होके सदा दूर ही रहना चाहिये ॥ १२० ॥

१७. बिना रूपको एक ढोटौना। गोद लिये सुख भारी ॥१२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे कोई पगली स्त्री बिनारूपका एक पुत्ररूप बालकको मन कल्पनासे ही मानके उसे गोदमें लेके बड़ा भारी सुख मानै, और उस कल्पित बालककी रक्षाके लिये बड़ी बहूसे आशीर्वाद माँगै। परन्तु, अपने पतिको गाली देके खदेड़े, कभी उसे पासमें भी आने न देवे, तो कहिये! उससे उसका क्या लाभ होगा? कुछ नहीं। तैसे ही सिद्धान्तमें परीरूप-सुन्दरी वाणीरूपी स्त्रीके सङ्गसे, बिना रूपको = रूप-रेखा, आकार-प्रकारके बिना ही निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, ऐसा एक ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि, ढोटौना = बालक-पुत्रको भ्रमिकोंने मन कल्पनासे ही उत्पन्न किया है। फिर उसे ध्यान, समाधि आदि द्वारा मानन्दीरूपी गोदमें वा अङ्कमें ले लिये, और फिर मन-ही-मनसे उस प्रिय पुत्रकी गाढ़ी आलिङ्गन, मुख-चुम्बन इत्यादि खेल करके, तहाँ बड़ा भारी परमानन्द, ब्रह्मानन्द आदि महान् आनन्दका सुख मानने लगे। परन्तु, वह सब मनकी मानन्दी झूठी ही है। बिना विचार दीवाने होके धोखेमें भूले पड़े हैं ॥ १२१ ॥

१८. बड़ी बहूसे आशिष माँगै। दै भ्रतारहि गारी ॥ १२२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और वे ही मूर्ख भ्रमिक लोग इधर, भ्रतार = पति, और मालिकरूप जीव, निजस्वरूप नरजीव चैतन्य, नित्य, सत्य, सबके जनैया, मनैया, श्रेष्ठ, वाणी-खानीकी स्थापनकर्ता है। उसे न समझके तुच्छ ठहराकर अल्पज्ञ, अल्प-शक्तिमान्, अज्ञानी, बद्ध, परिच्छिन्न, ना कुछ चीज, दीन, हीन, मलीन, कह-कहके गाली देते हैं, भली-बुरी कहते हैं। इस तरहसे

भ्रताररूप जीवको गाली दे-देके, अपशब्द कहकर उधर चले गये, तो, बड़ी बहू = गुरुवा लोग, जो बड़े ही भ्रमिक होके कल्पनासे-धोखेमें पड़े हैं, ब्रह्मादिके भक्तरूप स्त्री बने हैं, उनके पासमें जाके उनसे शुभ आशीर्वाद मागते हैं। हे गुरु! मेरा मन ईश्वरके भक्तिमें, उपासना, कीर्तन-भजनादिमें लगा रहे। मेरा मानसिक पुत्र चिरञ्जीव रहे, निरोग रहे, ऐसा आशीर्वाद दीजिये! कहते भये। तो गुरुवा लोग बोले कि-- भाई! यह तेरा पुत्र निर्गुण, निराकार है, इसीसे वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, ज्ञानी, मुक्त, एक अद्वैत, सर्वाधार शुद्ध, बुद्ध, ब्रह्म-परमात्मा है। ज्यों-ज्यों यह बोध बढ़ेगा, त्यों-त्यों तुमको अपार सुख देगा; इत्यादि बताके महान् भ्रम-चक्रमें डाल रखे हैं। परन्तु, उससे किसीका कुछ भी हित, कल्याण होनेवाला नहीं है; हकनाहक गाफिलीमें पड़े हैं। उसे परखके जानना चाहिये॥ १२२ ॥

१६. परी चुहानी महा लुकानी। घुँघुट काढ़ि अँधेरे ॥१२३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे स्त्रियाँ महा चपला सुन्दरी होनेके गर्वसे घरमें लुक-छिपके रहती हैं। कभी बाहर सबके सामने आनेके काम पड़ा, तो लम्बी घुँघुट काढ़के मुखमें अन्धेरा किये रहती हैं। यानी पर्दा होनेसे सब कोई मुख नहीं देख पाते हैं, और वे ही स्त्रियाँ घरमें भोजन-रोटी आदि बनाते वक्त चूल्हेके पासमें शिरसे कपड़ा खोलके घुँघुट हटाके बैठती हैं, और स्त्री, कनखी = नेत्रको कानतक नचा-नचाके कटाक्षका इशारा करके विषय-भोगमें खेद-खेदके अपने ही पुत्ररूप भ्रतारको अज्ञानी पशु बनाके हंसपदसे विमुख करके मार डालती हैं, और मार रही हैं। अथवा पुत्रको देखके भ्रतारको, कनखी = कटाक्ष देके आकर्षण करके मारती हैं॥ इसी प्रकार सिद्धान्तमें, परी = वाणी और गुरुवा लोग, चुहानी = चूहाके सरीखी गुप्त चोर और महाधूर्त पाखण्डी बने हैं। उन्होंने महान् भ्रममें लगायके, लुकानी = नरजीवोंको मिथ्या धोखामें ले जाके छिपाय दिये हैं। सत्यज्ञानको छिपायके कल्पनाको

ही प्रकाश किये हैं, और कोई चेले होनेको आते हैं, तो उन्हें कोठरीमें ले जायके चूहे सरीखे छिपके और शिरपरसे दोशाला आदि चद्दर, डालके घुँघुट काढ़के उसीमें गुरु-चेले दोनोंके शिर घुसायके अन्धेरेमें कानके पास मुख लगाकर कोई एक मन्त्र दीक्षा दे देते हैं। ॐरामायनमः फुस, फुस, फूस, करके कानमें तीन फूँक मार देते हैं। उसी मन्त्रका जाप, ध्यानादि साधनासे इच्छा पूर्ण होनेकी आशा लगाय देते हैं। इस तरहसे शिष्योंको धोखा देके कल्पनाके अन्धेरेमें ही रखे रहते हैं। भ्रमका पर्दा कभी खोलने नहीं देते हैं। उल्टाय-पल्टायके गुरुवा लोग स्त्रियोंके सरीखी चाल करते हैं। परी=भ्रम धोखेमें जो पड़े, सो गुरुवा लोग बड़े चुगुलखोर, गप्पी होते हैं, और चूहाके स्त्री चुहानीके तरह चञ्चल, चोर, कपड़कट्ट, भी होते हैं। महाभ्रमिक रहते हैं। सत्यज्ञानको लुकाते हैं, और घुँघुट काढ़के शिरमें कपड़ा ढाँककर तब कहीं मन्त्र कानमें सुनाते हैं। इस तरह मनुष्योंको अन्धेरे अज्ञानमें ही भुलाये रखते हैं। सत्सङ्गसे बिमुख ही बनाये रखते हैं ॥ १२३ ॥

२०. कहहिं कबीर परी कन खीदै। पूत भ्रतारहि मारे ॥ १२४ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— गुरुवा लोग संसारमें, परी=बिना परकी कल्पित वाणीको मनुष्योंके, कन=कानमें उपदेश सुना-सुनाकर और कनखी, शैन वा इशारा दे-देकर जहाँ-तहाँ अनेकों सिद्धान्त, मत-पन्थोंकी साधनोंमें, खीदै=खेद दिये, हाँक दिये वा खदेड़ते हुए दौड़ाके ले गये। तहाँ, पूत=पुत्र, शिष्य, अपनेसे छोटे लोगोंको और, भ्रतार=पति, मालिक, बड़े गुरु बने हुए लोगोंको समेत् वाणी-कल्पनामें लगाके तथा पूत माना हुआ जीवको भ्रताररूपमें ब्रह्मस्वरूप व्यापक ही बनाके निर्बुद्धि, भ्रमिक, जड़ाध्यासी बना-बनाके मनुष्यपदको मारे, नष्ट-भ्रष्टकर बद्ध बनाके मार ही रहे हैं। तो भी बिना विवेक उन्हीं प्रेरकमें सबके प्रेम भाव लगा हुआ

है। वही सबका काल बना है, उसे नहीं पहिचानते हैं। इसीसे चौरासी योनियोंके फन्दोंमें पड़े हुए हैं। मुमुक्षुओंने उसे परख करके त्यागकर न्यारा होना चाहिये। पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्ग करके प्रेरकको चीन्हकर उसकी प्रेरणामें लगना नहीं चाहिये ॥ १२४ ॥

॥ * ॥ सप्तम—शब्द ॥ ७ ॥ * ॥

१. सन्तो ! शब्द न साधै कोई ! ॥ १२५ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं:— हे सन्तो ! हे सत्सङ्गी विचारवानो ! चित्तको शान्त करके सुनिये ! देखिये ! शब्दरूप वाणी जालको साधके कोई भी उसे अपने वश नहीं करते हैं। यानी शब्दको खास करके कोई साधते नहीं हैं। इसीसे शब्द-जालमें पड़के महा दुःख पाते हैं, और पारखी सद्गुरुकी गुरुमुख सारशब्द निर्णयसे और सब शब्दोंकी कसर-खोटको परखना चाहिये। परन्तु, सत्सङ्गमें रहिके ऐसे सत्य-साधना तो कोई भी करते नहीं हैं। इसीसे सब जीव भवबन्धनोंमें ही अरुझे पड़े हैं ॥ १२५ ॥

२. और सकल साधै सब कोई। साधतहीं दुःख होई ॥ टेक ॥ १२६ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे सन्तो ! और शब्दादि विषयोंको साधके मनको स्वाधीन करके वश करना छोड़के, और-और बातकी सकल साधनाएँ तो सब कोई साधते हैं; परन्तु, उन साधनाओंसे तो साधकको साधते ही उल्टा दुःख, सन्ताप, कष्ट-क्लेशादि होने लग जाता है। विषयोंका त्याग न होनेसे आवागमनका दुःख भी नहीं छूटता है। अर्थात् कोई रूप, रस, गन्ध, स्पर्शको साधते हैं, बहुत देरतक एक आसनसे बैठनेका अभ्यास करते हैं, निराहार, फलाहार, दूबाहार, दूधाहारादि करते हैं, रात-रातभर जागते रहनेका अभ्यास भी करते हैं, इत्यादि प्रकारसे और सकल बहिरङ्ग साधनाएँ तो सब कोई मतवादी लोग करते हैं, परन्तु मनकी मानन्दो

वाणी कल्पनाको कोई भी वश नहीं करते हैं। सब वाणी मनुष्य जीवकी ही कल्पना है, ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ मिथ्या भ्रममात्र है। ऐसा पारख करके नहीं जानते हैं। जिससे आगे-पीछे दुःख ही सन्मुख होता है, सो वही साधना किया करते हैं, बिना पारख जड़ासक्त हो रहे हैं ॥ १२६ ॥

३. योगी साधै योग युक्तिसे। तपसी तप दुःखदाई ॥ १२७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! अब कौन-कौन लोग क्या-क्या साधे हैं? सो उस बारेमें बताया जाता है, सुनिये! योगी लोग योग युक्तिसे योग साधना करते हैं। तहाँ वे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, यह अष्टाङ्ग योगोंको साधते हैं। फिर नेती, धोती, वस्ती, कपाली, कुञ्जल, त्राटक, ये षट्क्रिया करते हैं। षट्चक्र भेदन, दशमुद्रा लगाना, राजयोग, हठयोगादि अष्टयोगोंका कष्ट सहते हुए अष्टसिद्धि, नवनिद्धि आदि प्राप्तिकी आशासे नित्य-प्रति योग-युक्तिसे बर्तते हैं, तैसे ही तपस्वी लोग भी स्वर्गादि सुख प्राप्ति, मनोकामना पूर्ण करनेकी नाना इच्छाओंको ले करके दुःखदायी कठोर तपस्याको साधते हैं। तहाँ गर्मीमें पञ्चाग्नि तापते हैं। ठण्डीमें जलशयन करते हैं। वर्षामें खुले मैदानमें रहते हैं। कोई धूम्रपान करते हैं। ठाढ़ेश्वरी, दिगम्बर, उर्धबाहु, नग्न, मौनी, खाकी इत्यादि प्रकारके तपस्वी होते हैं, वे तन, मनको दुःखदाई, कठिन तपमें ही सन्तप्त करके दुःखी होते रहते हैं। बिना विचार बैल, ऊँट, गधा, हाथी, आदिके समान ही नाना साधनोंका बोझा लाद-लादके जड़ाध्यासी होके मर-मरकर उक्त पशु आदि योनियोंको ही प्राप्त होते हैं। शब्द साधना करके निजस्वरूपकी स्थिति न करनेसे ऐसे ही दुर्दशामें पड़े रहते हैं ॥ १२७ ॥

४. ज्ञानी साधै ज्ञान ब्रह्मसों। सो शब्दातीत बताई ॥ १२८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उसी प्रकार

ब्रह्मज्ञानी लोग ब्रह्मसे मिलके तदाकार होनेके लिये ज्ञान साधनाएँ करते हैं। विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, तथा शमादि षट् सम्पत्ति सम्पन्नको ज्ञानके अधिकारी कहा है। फिर वे सप्तज्ञान भूमिकाको साधते हैं। श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरुके द्वारा महावाक्यका श्रवण मननादि करके जीव-ब्रह्मकी एकता मानकर 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं। स्वयं ब्रह्म बनके जगत्से अभिन्न हो जाते हैं। परन्तु, इतने प्रकारसे ब्रह्मज्ञानका कथन शब्दसे ही विस्तार करके फिर अन्तमें सो ब्रह्मको कल्पनासे, शब्दातीत = शब्दसे परे, निःअक्षर वा अवाच्य बताये हैं, और उसी धोखेमें गरगाफ हुए पड़े हैं, उन्होंने यह भी ख्याल नहीं किया कि— शब्दसे जिसको हम बता रहे हैं, सो शब्दातीत कैसे होगा? अतः उसी भ्रम-भूलके चक्करमें पड़के वे नष्ट-भ्रष्ट हुए और हो रहे हैं॥ १२८॥

५. वैरागी जग मिथ्या साधै। सपनेहु सत्त न मानै॥ १२९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! वैरागी = विरक्त संन्यासी, विज्ञानी लोग जगत्को मिथ्या बताके कहते हैं कि— जगत् त्रिकालमें है ही नहीं। जाग्रत्में को कहे? स्वप्नमें भी जगत् झूठा है, सत्य नहीं है, ऐसा मानते हैं, और उसी मिथ्या जगत्में रहिके कैवल्य स्थितिके लिये विज्ञान मार्गकी साधना करते हैं। परमहंस बनके पशुवत् बर्ताव करते हैं। जगत् मिथ्या होनेसे वह सब साधनाएँ भी उनकी मिथ्या ही हुई। परन्तु, सब जगत्को अपना ही स्वरूप मान लेनेसे वे बड़े रागी, आसक्त बने हैं। तहाँ वैरागीका कुछ भी लक्षण नहीं रहा। इसीसे वे भवबन्धनोंमें ही गिर पड़े हैं॥ १२९॥

६. सोई वरण अवरण होय प्रगटै। मिथ्या चितवन ठानै॥१३०॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! और सोई उनकी मनकी कल्पना कभी, वरण = बावन वर्ण-अक्षराकार, साकार ब्रह्म होके प्रगट होता है। जिसे शब्द ब्रह्म, प्रणव (ॐ) ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म, कहते हैं, और कभी वही वाणी कल्पना उलटके, अवरण = अक्षरातीत,

निराकार, निर्गुण ब्रह्म बन जाता है। जिसे शब्दातीत, निःअक्षर, अवाच्य, निरञ्जन ब्रह्म कहते हैं। अतएव सोई वर्णरूप शब्द ही अवरण भ्रम-कल्पनारूप होयके प्रगट हुआ। उसी मिथ्या-मानन्दीका ही भलीभाँति चिन्तवन, मनन, सङ्कल्प-विकल्प करके उसे ही सत्य ब्रह्म स्वरूप ठहराके, ठानै=निश्चय किये-कराये हैं। अतः उन्होंने जो चितवन ठाने हैं, सो मिथ्या है। बिना विवेक, असत्यके पक्षपाती जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं ॥ १३० ॥

७. क्षुधा पिपासा जैनी साधै। जीव दया नहिं जानी ॥ १३१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैनी लोग मूर्खतासे कुछ न खाके पानी भी न पीके, क्षुधा=भूख, पिपासा=प्यासको रोककर उसके कष्ट सहन करनेकी साधना करते हैं। उस उपवासका क्रम बढ़ाते-बढ़ाते निराहार रहते हुए चालिस दिन तक निर्जल रहिके यदि उसी बीचमें भूखके मारे तड़फके मर गये, तो जैनी लोग उसे मुक्त हुआ मानते हैं। ऐसी समझसे तो अकाल वा दुष्कालके समयमें भूखों तड़फके मरनेवाले लोग सब मुक्त ही होके क्या जैनियोंके लोकमें चले जावेंगे? अरे भाई! जैनियोंने असली जीव दयाको तो कुछ जाने ही नहीं हैं। हरतरहसे निज-पर जीवको वे लोग कष्ट ही देते हैं। एक, तो वाहियातमें क्षुधा, तृषा सहिके जैनी लोग जीवको दुःख देते हैं। दूसरा, लुञ्चित क्रियासे शिर, दाढ़ी, मोछ, आदिके बाल हाथसे नोच-नोचके बड़ा कष्ट सहते हैं, और तीसरा, तपस्वी लोग नाना प्रकारके उग्र तपस्या करके अनेकों दुःख सहा करते हैं। इसलिये उन्होंने जीव दयाको रञ्चकमात्र भी नहीं जाने। निज दया और परदया करना ही छोड़ दिये। अतः वे निर्दयी, घातकी बने हैं ॥ १३१ ॥

८. जीवत जीव साधतहिं मारै। मुये मुक्तिको मानी ॥ १३२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैनी लोगोंने जीवित अवस्थामें नाना तरहके कष्टकर, घातक, अनुचित साधनाएँ

करके जीवित जीवको जबरदस्ती मार डाले। अर्थात् जीते जीवको साधना करते हुए ही चालिस दिनतक अन्न-जलका भोजन न देके आत्म-हत्या करके मार दिये, और उस प्रकारसे मृत्यु हो जानेपर उसकी मुक्ति हो गयी, ऐसा मुये मुक्तिको माने हैं। देखिये! वे कितने मूर्ख बने हैं। यदि मरनेपर मुक्ति होवे, तो भूखों मरनेवाले सबोंकी मुक्ति ही हो जावेगी। फिर ज्ञान, ध्यानका प्रयोजन और विशेषता ही कुछ न रही। इसीसे कहा है किः—

"जियत न तरेहु मुयेका तरिहो? जियतहिं जो न तरै॥" बी० शब्द १४॥

"मुये मुक्ति गुरु कहैं स्वारथी, झूठा दै विश्वासा॥" क० भ०॥

ऐसे कुसाधना साधते हुए ही जीवित जीवको मारनेवाले, मृत्यु होनेपर मुक्ति माननेवाले जैनी लोग महाअज्ञानी, आत्मघातकी, पापी ही बने हैं। वे चौरासी योनियोंमें पड़े-पड़े दुःख भोगा करेंगे॥१३२॥

९. मुसलेकी बेपीर साधना। कठिन कहा नहिं जाई॥ १३३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! मुसलेकी=उजड्ड मुसलमानोंकी साधनाको तो क्या पूछते हो? जैसे वे मुसल्ले, चिल-बिल्ले बने हैं, तैसे उनके साधना भी, बेपीर=पीड़ा, दुःख-दर्दको न माननेवाले निर्दयी, काल कसाईके समान कठोर मनवाले बने हैं। वे ऐसे कठिन, मजबूत, कट्टर-क्रूर हिंसक बने हैं कि— दूसरेका कहा हुआ हितकर सत्-शिक्षाको भी नहीं मानते हैं। सत्सङ्गमें भी नहीं जाते हैं। दुष्टताको भी नहीं छोड़ते हैं। पैशाचिक कृत्य करनेमें भी नहीं लजाते हैं। अत्याचार, दुराचार, व्यभिचार, करने-करानेमें तो वे अगुआ बने हैं। इसलिये मुसलमानोंकी बेपीर साधना तो अति कठिन जोर-जुलम करनेवाला है, इतनेसे उनके विशेष कुटिल क्रूर होनेका हाल जान लीजिये! और ज्यादा कहा नहीं जाता है। वे तो हिंसक पशुवत् ही हो रहे हैं॥ १३३॥

१०. कल्मा पढ़ै छुरी पर साधै। मारैं जीव खुदाई॥ १३४॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! और मुसलमान लोग

कहनेको तो कुरानका मूल मन्त्र पाँच कल्माको मानके, पाँच बार कल्मा पढ़ते हैं। और "बिस्मिल्लाह हिर्रहिमाने रहीम" यह शब्द पढ़के तेज, छुरी = खड्गपर हाथ साधते हैं। तथा खुदाईजीवोंके गलेमें धीरे-धीरे छुरी फेरके गला काटके हत्या करके मार डालते हैं। कोई मुसलमान लोग—"बिस्मिल्लाह हिर्रहिमाने रहीम" इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि, खलक वा संसारमें सर्वत्र एक अल्लाह भरा है, उसके बिना कहीं जगह खाली नहीं है। इसीसे आप सब जीवोंपर रहीम वा दया करो, तो आप ही रहीम वा खुदाके नूर हो। परन्तु, इस मतलबको बिलकुल भुलाके वही शब्द बोलके हलाल करते हैं। तहाँ गऊ, बकरी, मुरगी इत्यादि प्राणियोंको जबरन पछाड़के छुरीसे गले रेत-रेतके साँसत देके मार डालते हैं। देखिये! वे काल कसाई खुदाके दुश्मन बनेकी नहीं? अवश्य बने हैं। तहाँ सद्गुरुने बीजक रमैनी ४९ में कहा भी हैः—

बकरी-मुरगी किन्ह फुरमाया? किसके कहै तुम छुरी चलाया? ॥
दर्द न जानहु पीर कहावहु। बैता पढ़ि-पढ़ि जग भरमावहु ॥
साखीः— दिनको रहत हैं रोजा, राति हनत हैं गाय ॥
　　　यह खून वह बन्दगी, क्योंकर खुशी खुदाय? ॥

॥ इत्यादि ॥ बीजक, रमैनी ४९ ॥

—रोजाके व्रत रखते हैं, तब दिनमें जल भी नहीं पीते हैं, फिर रातमें ही निरपराध पशु गाय आदिको मारके हत्यारे बनके मांस खा जाते हैं, और सब प्राणीको खुदाके नूर मानते हैं, फिर उन्हींको दुःख दे-देके मारते हैं। ऐसे वे नादान, अहमक, बने हैं। अतः देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें जाके बदला चुकाके दुःख भोगा करेंगे, बिना दया ॥१३४॥

११. जनकादिक जग सत्य करि साधे। मिथ्या सब सनकादी ॥१३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! प्राचीनकालमें वशिष्ठ, व्यास, जनक राजा, याज्ञवल्क्य, मोरध्वज, रन्तिदेव, इत्यादिक ब्रह्मवादी तथा भक्त भये, गृहस्थाश्रमी रहे। इसीसे जनकादिकोंने

जगत् प्रपञ्चको "सर्वेंखल्विदंब्रह्म" कहिके विश्वकोही सत्य मान करके भक्ति, योग, ज्ञानादिके नाना साधनोंको साधते भये, और विषयानन्द भोगको भी ब्रह्मानन्दके ही अन्तर्गत मानके विषयासक्त, बद्ध हुए हैं, और दूसरे तरफ उसके विपरीत सनकादि, शुकादि, शङ्कराचार्यादि विरक्त, अवधूत, संन्यासियोंने—

"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापर ॥"

—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव-ब्रह्ममें भेद नहीं है। ऐसा कहिके चराचर जगत् सबको मिथ्या कथन किये हैं। अन्तमें दोनों पक्षवालोंकी सिद्धान्त एक ब्रह्मरूप भ्रममें ही ठहराव हुआ है ॥१३५॥

१२. सत्य मिथ्या दोउ जगत कल्पना । भये सबै दुःखबादी ॥१३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और वास्तवमें तो ब्रह्मको सत्य तथा जगत्को मिथ्या कहना, ये दोनों भी नरजीवोंकी कल्पना ही है। परन्तु, कोई ब्रह्मको सत्य-मिथ्यासे विलक्षण मानते हैं। जगत् सबको मिथ्या कल्पनामात्रसे प्रतीत होनेवाला असत्य मानते हैं। तहाँ व्यापक ब्रह्म स्वयं बनके जड़ाध्यासी हो जाते हैं। इसलिये वे सब वेदान्ती लोग सुखरूप ब्रह्मके वादे सब जगत्को दुःखरूप बताके दुःखवादी भ्रमिक होते भये। इस कारणसे वे भ्रमिक लोग सब व्यर्थमें नरजन्म बिताके चौरासी योनियोंके दुःख भोगी भये। जड़-चैतन्यके निर्णय, सारासारके विचार किये बिना सत्य कहना, और मिथ्या कहना, दोनों जगत् जीवोंकी कल्पना है। इसीसे सब दुःखवादी बद्ध होते भये, और बद्ध हो रहे हैं, बिना पारख ॥ १३६ ॥

१३. त्रिगुण आदि सकल मुनि जेते । जग मानै करि स्वामी! ॥१३७॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! रजोगुण ब्रह्मा, सत्त्वगुण विष्णु, और तमोगुण महादेव, ये त्रिगुणियोंसे प्रचलित योगी, ज्ञानी, भक्त कर्मी आदि सकल मतवादी जितने भी ऋषि, मुनिगण हुए हैं, उन सबोंने जगत्के कर्ता, धर्ता, परमेश्वर,

ब्रह्म, परमात्मा जगत्के स्वामी कोई विश्वपति है, ऐसा कल्पना करके माने हैं। कोई तत्त्ववादियोंने तो जगत्मेंके तत्त्वको ही सबके स्वामी वा मालिक करके माने हैं, और मुसलमानोंने खुदाको स्वामी माने हैं। जितने भी षट्दर्शन—९६ पाखण्डके लोग भये हैं, उन सबोंने जगत्कर्ता कोई एक स्वामी अनुमान करके माने हैं। अपने उस धोखेका दास बनके महा बन्धनमें अरुझे और अरुझ रहे हैं, बिना विवेक ॥ १३७ ॥

१४. जे जग छली छिनार छतीसी। ताकी करत गुलामी॥१३८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैसे संसारमें, छिनार = व्यभिचारिणी स्त्री, छतीसी = वेश्या चञ्चल स्वभाववाली, हाव-भाव, कटाक्ष करनेमें चतुर होती हैं। जिसने जगत्में पुरुषोंको छली है, तन, मन, धन और प्राणसमेत् हरण कर रही है, उसीकी बुद्धिहीन, विषयासक्त पुरुष कुत्तेवत् अधीन बनके राँड़के गुलामी किये और कर रहे हैं, भ्रष्ट हो रहे हैं। उसी प्रकार यहाँ सिद्धान्तमें, छिनार-छतीसी = क से क्ष, त्र, ज्ञ तककी ३६ अक्षरोंकी बनी हुई कल्पित झूठी वाणी वेद, शास्त्र, पुराण आदिका विस्तार भया है। जिसने जगत्में मनुष्योंको छली, भ्रमायी, धोखेमें डाली है। मोहिनी वाणीने सबोंके मनको मोहित कर लिया है। छल-कपट फैलाके महाप्रपञ्चमें फँसा दिया है। अविवेकी लोग अब उसी वाणीकी अङ्कमाल करके हृदयरूपी गोदमें टिकाये रखनेके लिये पण्डित गुरुवा लोगोंकी गुलामी करते हैं। शिष्य बनके सब प्रकारसे सेवा, टहल, चाकरी करके विद्या, शास्त्र आदि पढ़ते हैं। ग्रन्थोंके पृष्ठ उलटाय-पलटायके नेत्र भर-भरके ताकते वा देखते जाते हैं, तो भी तृप्त, सन्तुष्ट नहीं होते हैं। वाणीकी गुलामी करके नाना साधनाएँ करते जाते हैं। अन्तमें ब्रह्म बनके होश-हवाश उड़ाकर जड़ाध्यासी होके मर जाते हैं। चौरासी योनियोंमें भटकते रहते हैं, बिना स्थिति ॥ १३८ ॥

१५. जेहि साधै जग दुःखसे छूटै । ताहि न साधै कोई ॥१३८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरु-भक्ति और दृढ़ वैराग्य, ये सद्गुणोंको धारण करके हंस रहनीमें रहिके जड़-चैतन्यका निर्णय करना, पारखी सद्गुरुकी शरणागत होके पारखबोधको हासिल करना और निजपदमें स्थिर रहना। इसे सत्य साधना, मुक्तिकी साधना, कहते हैं। जिस सत्य साधनाके साधनेसे तन, मन, बुद्धि स्ववश, स्थिर होके जगत्‌मेंकी खानी-वाणीकी मायाजालोंसे जीव छूट जाते हैं। अभी जीवन्मुक्त हो जाते हैं। बीजक साखी २७३ में कहा हैः—

"एक साधे सब साधिया, सब साधे एक जाय, ॥
जैसा सींचै मूलको, फूलै फलै अघाय ॥" बीजक साखी २७३॥

—एक मन-मानन्दीको समेटके साधनेसे और सब भी सिमिटके वश होकर सध जाते हैं। एक मनको रोकना छोड़के सब अन्य इन्द्रियोंको साधने लगेगा, तो मन भी उधर ही लग जायगा, और साधना अधूरा हो जायगा। मनको स्थिर करनेसे सब स्थिर हो जावेंगे; जैसा मूलको सींचनेसे वृक्ष फूलेगा, फलेगा, जिसे खायके तृप्ति हो जायगी ॥ तद्वत् इस तरह जिसे साधनेसे पारख विचार करनेसे जगत्‌मेंकी आवागमन दुःखोंसे छुटकारा हो जाती है, उसे तो ये मतवादी लोग कोई भी नहीं साधते हैं। सत्यासत्यकी विवेक भी नहीं करते हैं। इसीसे सदा बद्ध दुःखी ही बने रहते हैं ॥१३९॥

१६. जेहि साधै चौरासी भरमें । फिर-फिर साधै सोई ॥ १४० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और जिस साधनासे वा जिसे साधनेसे खानी-वाणीकी महाजालोंमें अरुझके चारखानी चौरासी योनियोंके जङ्गलमें ही जीव भ्रमते-भटकते हुए जन्म, मरण, गर्भवासमें ही पड़े रहते हैं। उसीको ही, फिर-फिर=बारम्बार, उलट-पलटके, घूम-फिरकर सोई कुसाधनाको साधते रहते

हैं। पञ्चविषयोंको भोगते रहते हैं। कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञानादिमें लगे रहते हैं। अतः उसी भ्रम, भूल और विषयाध्यास-वश फिर भी पशु आदि योनियोंमें जाके त्रिविधि तापोंका असह्य दुःख सहते रहते हैं। बिना पारख इस दुर्दशासे जीव कभी नहीं छूट सकते हैं ॥ १४० ॥

१७. जहाँ जहाँ कर्म साधना साधै। तहाँ तहाँ जाय बिगोई ॥१४१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! अबोध मनुष्य सुख प्राप्ति आदिकी आशासे गुरुवा लोगोंकी दर-बदर षट्दर्शन-९६ पाखण्डोंकी मत, पन्थ-पन्थाईमें चार धाम, ६४ तीर्थोंमें, चार वर्ण, चार आश्रमोंमें, इत्यादि, जहाँ-जहाँ भी जाके षट्कर्म, नवधा भक्ति, अष्टाङ्गयोग, चतुष्टय ज्ञानसाधन, सप्तभूमिका और विज्ञान साधनाएँ इत्यादि नाना साधनोंको साधे और साधते हैं, तहाँ-तहाँपर भ्रम, धोखा, संशय, भूल, आसक्ति आदि कठिन घनचक्रमें जायके पड़े, जड़ाध्यासी होकर निज हंसपद मुक्ति स्थितिसे विमुख होके बिगड़े, नष्ट-भ्रष्ट, पतित होते भये। बिना पारख जन्म-मरणके चक्रमें पड़े हैं॥ अर्थात् जहाँ-जहाँ भी जाके जीव कर्मादि साधना-साधते हैं, तहाँ-तहाँ ही बनावके बदले बिगाड़ होता जाता है। वासनाको बिगाड़के चौरासी योनियोंमें जाके पड़ते हैं, बिना गुरुबोध ॥ १४१ ॥

१८. कहहिं कबीर कोई सन्त जौहरी। खून चिन्हैगा सोई ॥१४२॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो! जैसे जौहरी असली-नकली रत्नोंकी पहिचान करके असलीको ही रख लेते हैं। तैसे ही अनेकों मनुष्य और बहुतेक साधु समाजोंमें कोई बिरले ही पारखी सन्त सत्यन्यायी, विवेकी, सत्य निर्णयी, जौहरीके समान रत्नरूप सकल सिद्धान्तोंके परीक्षक होते हैं। सोई पारखी सन्त गुरु पारखरूपी दिव्य दृष्टिकी प्रतापसे जगत्में प्रचलित द्वैत, अद्वैत, आदि सकल

सिद्धान्तोंकी, खून = निशानी, हद्द, ठहराव, भेदको अच्छी तरहसे चीन्हेंगे, पहिचानेंगे कि— इन सबोंका मानन्दीकर्ता नरजीव ही श्रेष्ठ सत्य है। ब्रह्म, ईश्वरादि जीवकी कल्पनामात्र होनेसे मिथ्या है। ऐसा जानके निजस्वरूप पारख-पद्में स्थिर हो रहेंगे, सोई शब्द विवेकी पारखी जीवन्मुक्त बन्दीछोर हैं। ऐसा जान लीजिये! ॥१४२॥

॥ * ॥ अष्टम—शब्द ॥ ८ ॥ * ॥

१. सन्तो ! मुक्ति यही सब गावै ! ॥ १४३ ॥

टीकाः—श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः—हे सन्तो! हे जिज्ञासुओ! भारतवर्षमें सब कोई पौराणिक अविवेकी, पक्षपाती, मूढ़ गुरुवा लोग बढ़ा-चढ़ाके यही झूठी मुक्तिके ही महिमा गाते हैं। मुये मुक्ति ठहराते हैं। बलिदान, घात, हिंसा करके यज्ञादिमें मारे गये पशुओंको भी मुक्ति बतलाते हैं। यही सब कुकर्म करके मारे गये जीवोंकी मुक्ति हुई कहते हैं। ऐसे-ऐसे स्वार्थी, निर्दयी काल बने और बन रहे हैं, उसे अच्छी तरहसे पहिचान लीजिये ! ॥ १४३ ॥

२. राम कृष्ण अवतार आदि दै। हाथ मरे सो पावै ॥ टेक ॥१४४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और दूसरे तरफ भक्त लोग, अवतारोंके उपासक लोग ऐसे बकवाद करते हैं कि— मच्छ, कच्छादिसे लेकर राम, कृष्ण, परशुराम इत्यादि माने हुए दश अवतारोंके हाथसे जो-जो मरे वा मारे गये, सो सबोंने बिना प्रयास सहज ही मुक्ति पाये। क्योंकि, राम, कृष्णादि परमेश्वरके कला थे, और रावण, कंसादिकोंने द्वेष भावसे भी सदा उनके ही चिन्तन करते रहे, अन्तमें उनके हाथसे वे मारे गये, तो उनके तेज निकलके रामादिमें ही समा गया, इस तरह वे मुक्तहोते भये, इत्यादि कहिके यही सब झूठ-मूठकी मुक्ति गुरुवा लोगोंने गाये हैं, और गा रहे हैं। वैसे बकवादी गुरुवा लोगोंके बातकी कुछ भी ठिकाना लगता ही

नहीं है। क्योंकि, उसी पुराणोंमें एक जगह लिखा है कि— पहले जन्ममें हिरण्याक्षको वराहने मारा, हिरण्यकशिपुको नृसिंहने मारा, तो उनकी मुक्ति कही है। फिर वही दूसरे जन्ममें रावण तथा कुम्भकर्ण हुए, तो उन्हें रामचन्द्रने मारा, तो वहाँ भी मुक्ति कही है। फिर वे ही तीसरे जन्ममें कंस तथा दन्तवक्र अथवा शिशुपाल हुए कहा है। जिन्हें कृष्णने मारा। अब कहिये! ऐसे बार-बार जन्म लेना और दुष्ट होनेसे मार डालना, यह भी कहीं मुक्ति होती है? कभी नहीं। यदि ऐसा ही है, तो कसाई लोग, व्याधा लोग, धीमर लोग, जल्लाद लोग आदि भी तो प्राणियोंको मार-मारके मुक्त ही करते होंगे, ऐसा मानोगे क्या? समाजमें मनुष्योंके हत्यारेको तो पकड़के दण्ड देते हैं, किन्तु, मुक्ति करनेवाला कहिके उसके कोई प्रशंसा नहीं करते हैं, और रामने बालीको छिपके मारा था, समय पायके रामका जीव ही कृष्ण हुआ, और बालीका जीव जरा नामक व्याधा हुआ। सो व्याधाने भी मौका पायके छिपके तीर मारा, वह कृष्णके पैरमें लगा, उसीसे उनकी मृत्यु हुई। इस तरह उसने अपना बदला लिया, इत्यादि पुराणमें वर्णन भया है। इस कथनसे जब स्वयं अवतारी ही मुक्त नहीं हुए, उन्हें भी बदला देना पड़ा। तब फिर उनके हाथसे मरे हुए लोगोंकी मुक्ति काहेको होगी, वे तो बार-बार मौका पायके पुनर्जन्ममें देह धरकरके उन्हीं अवतारीको ही मारा करेंगे, ऐसा ही कर्मका नियमसे न्याय ठहरता है। अतः इन्होंकी कही हुई मुक्ति बिलकुल झूठी है, ऐसा जानिये ॥१४४॥

३. परशुराम बहुबार क्रोध करि। राजन मारो सबहीं ॥ १४५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! दश अवतारोंमें सबसे ज्यादा हिंसक, क्रोधी, घातकी, लड़ाका, परशुराम भया था। ऐसा ग्रन्थोंमें वर्णन भया है कि, राजा सहस्रबाहुके पुत्रोंने आके जमदग्नि मुनिको मार दिया, और धेनु भगाके ले गये। पीछे परशुराम बाहरसे आये और पिताकी हत्या हुई, सुनके वे बहुत क्रोधित

हुये। फिर अस्त्र-शस्त्र लेकर फरसा उठाकर जाके युद्ध करके सहस्त्र-बाहु और उसके सब पुत्रोंको भी मार डाला। इतनेमें भी उनके क्रोध शान्त नहीं हुआ, तो और-और भी राजाओंके यहाँ जा-जाके, लड़-भिड़के उन्हें भी मारे डाला। इसी प्रकार भूमण्डलमें घूम-घूमके सब योद्धा राजाओंको ललकार-ललकारकर छल, बल, कपटसे मार दिया, और मरवाया। उनसे सब क्षत्रिय परास्त हो गये, भयसे क्षत्रिय लोग थर्राके काँप उठे। जो सन्मुखमें लड़ने आये, सो सब मारे गये। इस तरह परशुरामने बहुत बार प्रचण्ड क्रोध कर-करके सब ही क्षत्रिय राजाओंको मार दिया, और दबा दिया, ऐसा कहा गया है ॥ १४५ ॥

४. क्षत्री मारि निःक्षत्री कीन्हों। मुक्ति सुनी नहिं कबहीं ॥१४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और, क्षत्री=शूर, वीर, लड़ाका, जो-जो क्षत्रिय थे, ललकारनेपर जो युद्धमें सन्मुख आये, ऐसे सब क्षत्रियोंको मार-मारके नष्ट कर दिया। एकईस बारतक पृथ्वीकी परिक्रमा करके परशुरामने, निःक्षत्री=क्षत्रिय वीरोंसे रहित भूमिको किया। अर्थात् एकईस बारतक जो-जो लड़नेको आये, उन्हें तो लड़के मार दिया। अतः तब बचे हुए लोग हार मानके २२ वीं बारमें कोई भी उनसे लड़नेको नहीं आये। बल्कि हम आपके शरण हैं, अधीन हैं, दास हैं, हमारी रक्षा करो, कहने आये। इसीसे २१ बार निःक्षत्री किया, ऐसा कहा है। इस तरह उन्होंने बहुत सारा हत्या करके लोगोंको मारे, वे भी तो छठवें, एक अवतार ही कहलाते थे। परन्तु, उन्होंने जिन-जिनको मारे, उन्होंकी मुक्ति भई, ऐसा तो कभी भी आजतक सुननेमें नहीं आया। फिर अवतारियोंके हाथसे मरनेवालोंकी मुक्ति हुई, कहना सरासर झूठा हुआ कि नहीं? अवश्य झूठा गपोड़ा ही हुआ ॥ १४६ ॥

५. बिना क्रोध कोइ मरै न मारैं। मुक्ति क्रोधते होई ॥ १४७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! क्रोध, द्वेष, बैर,

कुबुद्धि आदि विकार उत्पन्न हुए बिना, तो कोई भी मनुष्य युद्धमें अग्रसर होके न किसीको शस्त्र चलाके मारता है, और न अपने ही जाके मरता है, वा मारा जाता है। जीव घात, आत्मघात, परघात, युद्ध आदि सब कुकर्म, क्रोध उठ करके ही पीछेसे होते हैं। तो क्या क्रोधसे किसीकी मुक्ति होती है? ऐसा तो कहीं कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि, तमोगुणके विकारसे क्रोध उत्पन्न होता है, वह बन्धन और नर्कका मूल है। इसीसे क्रोध करके मारने-मरनेसे कभी मुक्ति हो नहीं सकती है। मरना-मारना, युद्ध करना, यह तो हिंसकी, क्रूर, राक्षसी कर्म है। यह सुखदाई अच्छा कर्म ही नहीं है ॥ १४७ ॥

६. काहेको यह काम क्रोधको। त्यागन ईश बताई ॥ १४८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और यदि काम, क्रोधादि कुवृत्ति, कुकर्मसे हित, कल्याण, मुक्ति होती तो, ईश= ज्ञानी लोग उसे त्यागनेको कभी नहीं कहते। परन्तु, वैसा होता नहीं है, इसीसे ज्ञानी लोग सबोंने उसे त्यागनेको कहे, और कह रहे हैं, और फिर तुम्हारा ही माना हुआ ईश्वरने वेदादिमें काम, क्रोधादि दोषोंको त्यागनेको कहा है। यदि उससे मुक्ति होती, तो ऐसा त्यागनेको काहेको बतलाया है। अथवा, जिन्हें तुम लोग ईश्वर, भगवान् करके मानते हो, उन्हीं कृष्णने कहा है, सुनोः—

श्लोकः— "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय १६। २१-२२ ॥

— हे अर्जुन! काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले हैं। अर्थात् अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। इससे इन तीनोंको त्याग देना चाहिये ॥ क्योंकि, हे अर्जुन!

इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त हुआ, अर्थात् काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंसे छूटा हुआ पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है। इससे वह परमगतिको जाता है ॥

इत्यादि प्रमाण शास्त्रोंमें लिखा है। ईश = ज्ञानी, षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त श्रीमान् तथा राम, कृष्ण आदिकोंने काम, क्रोधादिको त्यागनेको बताये हैं। यदि क्रोधसे मुक्ति होती, तो फिर ऐसा क्यों बताये हैं? कि, उससे अहित दुःखके सिवाय किसीका हित, सुख नहीं हो सकता है। इसीसे यह बात सिद्ध हुआ कि— अवतारियोंने क्रोध करके जिन्हें मारा था, उन्होंकी मुक्ति कहना बिलकुल झूठा है ॥१४८॥

७. अपने मुखसे राम कृष्ण कहि। काम क्रोध तजु भाई! ॥१४९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तों! हे भाई! रामचन्द्र, और कृष्णचन्द्र आदि अवतारी माने गये, पुरुषोंने स्वयं अपने मुखसे खुलासा करके कहा है कि— भाई! काम, क्रोधादि दुर्गुण, और कुबुद्धिको परित्याग करो, तभी सुख पाओगे, और हित-कल्याण होगा। इत्यादि जो उपदेश कहा है, सो रामायण, श्रीमद्भागवत, और भगवद्गीता, महाभारत आदिमें प्रसङ्गानुसार विस्तारसे जगह-जगहमें लिखा हुआ है। उसीमेंकी एक-दो बात नीचे लिख दिया जाता है, सुनिये!

रामायण— अरण्य काण्डमें रामने लक्ष्मणके प्रति कहा हैः—

"काम आदि मद दम्भ न जाके। तात! निरन्तर बस मैं ताके ॥"

और नारदके प्रति रामने रामायण अरण्य काण्डमें कहा हैः—

"जनहिं मोरबल निजबल ताहीं। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आहीं ॥"

दोहाः— काम क्रोध लोभादि मद, प्रवल मोहकै धारि ॥
तिन्ह महँ अति दारुन दुःखद, मायारूपी नारि ॥

"काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हरष प्रद बरषा एका ॥
साधु कौन जाके उरदाया। दयाको भूत द्रोह नहिं करई ॥"

॥ इत्यादि, रामायण, अरण्य काण्ड ॥

भरतके प्रति रामने उत्तर काण्डमें कहा हैः—

"काम क्रोध मद्लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥"
"काम वात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त निज छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जो तीनों भाई ! उपजइ सन्निपात दुःखदाई ॥"
॥ इत्यादि, रामायण, अरण्य काण्ड ॥

इस प्रकार रामके मुखके वचन रामायणमें कई जगह लिखा हुआ मिलता है ॥ तैसे ही कृष्णने भी कहा है:—

श्लोकः— "काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ३ । ३७ ॥

—कृष्ण कहते हैं:—हे अर्जुन ! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है । यह ही महाशन अर्थात् अग्निके सदृश भोगोंसे न तृप्त होनेवाला, और बड़ा पापी है । इस विषयमें इसको ही तूँ बैरी जान ॥ ३७ ॥

श्लोकः— "ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ॥
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥" ६३ ॥
॥ भगवद्गीता, अध्याय २ । ६२-६३ ॥

—हे अर्जुन ! मन सहित इन्द्रियोंको वशमें करके स्थिर न होनेसे मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन होता है, और विषयोंको चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है, और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है ॥ और क्रोधसे अविवेक, अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है, और अविवेकसे स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है, और स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है, और बुद्धिके नाश होनेसे यह पुरुष अपने श्रेय साधनसे गिर जाता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

श्लोकः— "शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥
काम क्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ५ । २३ ॥

— कृष्ण कहते हैं:— जो मनुष्य शरीरके नाश होनेसे पहिले ही काम, और क्रोधसे उत्पन्न हुए वेगको सहन करनेमें समर्थ है, अर्थात् काम, क्रोधको जिसने सदाके लिये जीत लिया है, वह मनुष्य इस लोकमें योगी है, और वही सुखी है ॥

इत्यादि कृष्णके मुखसे निकले हुए वचन भगवद्गीता, और भागवतादिमें लिखा हुआ है। इस प्रकारसे तो राम और कृष्णने भी अपने-अपने मुखसे मुख्य करके हे भाई! काम, क्रोधादिको तजनेके लिये ही उपदेश कहा है, सो जान लो! ॥ १४९ ॥

८. मारे मरै मुक्ति होय जो । काहेको दया दृढाई ? ॥ १५० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! यदि लड़ाई करके बहुतोंको मारके, मरनेसे जो मुक्ति हो जावे, और युद्धादिमें मारने मरनेसे जो मुक्ति होवे, तो फिर राम, कृष्ण आदिने दूसरोंको उपदेश देके समझाकर दया पालन करनेके लिये क्यों दृढ़ाये हैं? काम, क्रोधको त्याग करनेके लिये क्यों बताये? अतः दश अवतारादि किसीके भी मारनेसे कोई मुक्त भया नहीं, और मार-मारके मरने-वाला कोई भी कदापि मुक्त नहीं होता है। हिंसाके अध्यासवश बार-बार देह धर-धरके बदला लिया-दिया करता है। सद्गुरुने कहा है:—

साखीः— ४ "जीव मति मारो बापुरा! सबका एकै प्राण ॥
हत्या कबहुँ न छूटि है, जो कोटिन सुनो पुराण ॥
४ जीवघात ना कीजिये, बहुरि लेत वै कान ॥
तीरथ गये न बाँचि हो, जो कोटि हीरा देहु दान ॥"
॥ बीजक, साखी २१२ । २१३ ॥

इसलिये घातकी क्रूर कर्मको सर्वथा परित्याग करके दयादि सद्गुण धारण करना चाहिये ॥ १५० ॥

९. बिना ईश जगमें काहुकी । जन्म मरण नहिं होई ॥ १५१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! और ईश्वरवादी लोग कहते हैं कि— जगत्कर्ता परमेश्वरकी इच्छाशक्ति बिना तो संसारमें एक पत्तामात्र भी हिल नहीं सकता है। इसीसे जगत्में ईश्वरके इच्छा बिना किसी भी जीवकी जन्म वा मरण हो नहीं सकता है। ईश्वरकी प्रेरणारूप सत्तासे ही चारखानी चौरासी योनियोंमें जन्म, मरण, गर्भवास और त्रयताप आदि भोग होता रहता है, ईश्वर सर्वव्यापक परिपूर्ण है। सारी सृष्टिको प्रथम ईश्वरने ही उत्पन्न किया है। कर्मानुसार सब जीवोंको उसीने जन्म-मरणमें डाल रखा है। चारोंखानी चराचरकी मूल कारण ईश्वर है। इसीसे ईश्वर बिना जगत्में किसीका भी जन्म-मरण होता नहीं है, ऐसे कल्पना करके गुरुवा लोगोंने कहा है ॥ १५१ ॥

१०. जो जग उतपति प्रलय ईशते । तो वह मुक्त न कोई ॥१५२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! तहाँ घड़ी भरके लिये जो यदि ऐसा ही है, माना जाय, तो एक ईश्वर कर्तासे स्वाभाविक जगत्की उत्पत्ति और प्रलय होते रहनेसे, तो वह स्वयं ईश्वर और अवतारी लोग तथा जिन-जिन्होंको उन्होंने मारे वे लोग, और सकल जीव कोई भी मुक्त नहीं हुए, और न कभी इस तरहसे मुक्त ही हो सकेंगे। सदा बद्ध होकर आवागमनके ही रहट-घड़ी महाचक्रमें ही पड़े रहेंगे। क्योंकि, स्वाभाविक रीतिसे सर्वत्र उत्पत्ति-प्रलय करनेकी ईश्वरके गुण लगा है, इसीसे तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकता है। ईश्वरकर्ता माननेसे यह अनादिके असाध्य रोग उसके शिरमें लग जाता है। तहाँ मुक्तिकी बात कहना ही झूठा हो जाता है। ईश्वर किसीको मुक्त होने देता ही नहीं है। यदि मुक्ति होने देगा, तो उसके सृष्टि ही नाश हो जायगी। और हे ईश्वरवादी ! यदि तुम ईश्वरसे ही सारे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय मानते हो, तो वह

ईश्वर और तुममेंसे कोई भी कभी मुक्त नहीं होवेंगे। अतः मिथ्या धोखाको त्यागके सत्यासत्यको सत्सङ्गमें ठहरकर ठीक रीतिसे परखो, और भ्रम-भूलको हटाओ। तभी हित होवेगा, सो जानो! ॥ १५२ ॥

११. मारै मरै मुक्ति बतावै। विषयाके अधिकारी ॥ १५३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! जो विषेश वा अधिक ही विषयासक्त हैं, पामर, विषयी, लम्पट, लबार बने हैं, और बाचाल, वाणी-विषयमें भी प्रवीण, धूर्त बने हैं, उन्हीं लोगोंने अपने स्वार्थसिद्धिके वास्ते ही मारै-मरैको मुक्ति बताये हैं। क्योंकि, वे लोग कमजोर लोगोंको मार-मारके उन्होंके धन-सम्पत्ति, स्त्री, जमीन, राज-पाटादि छीनके, लूट-मारकर विषय भोगना चाहते हैं। और बकरादि पशुओंको तो मार-मारके उनकी मुक्ति बताकर मांस ही खा जाते हैं। हिंसक जङ्गली पशुसे भी गये-बीते अधम बने हैं। अज्ञानी लोगोंको भुलाकर यश पानेके लिये और अपना मतलब पूरा करनेके लिये ही पौराणिक गुरुवा लोगोंने यह प्रसिद्ध कर रखा है कि— भगवान्के दशों अवतारोंने जिन-जिन्होंको मारे, उनके हाथसे वा उनके भक्तोंके हाथसे जो मरे, सो बन्धनसे मुक्त हो गये, इत्यादि बताते हैं। और अपने भी भक्त बननेका ढोंग करके जीव-हत्या करते हैं। कहीं यज्ञ, बलिदान आदि कराके पशुको मारते हैं, और कहीं रामलीला, कृष्णकी रासलीला, इत्यादिके नामसे मनमाने व्यभिचार करके विषय भोगते हैं, इसीसे वे विषयोंके अधिकारी चामके कीड़े जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंके कुण्डमें ही गिर पड़े, और अभी उनके अनुयायी वैसे ही कुकर्म करके चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं ॥ १५३ ॥

१२. मारै मरै मुक्ति गावै सब। कहहिं कबीर पुकारी ॥ १५४ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जो सत्यन्यायसे गुरुमुख निर्णय कहा है, सोई श्रीगुरुदयालसाहेब ऊँचे स्वरसे पुकार-

पुकारके जिज्ञासुओंको समझाते हुए कहते हैं कि— हे सन्तो! वे अविचारी, पौराणिक, अवतारवादी गुरुवा लोग सब कोईने वही मारै-मरेको झूठ-मूठसे मुक्ति बताके, उसके ही खूब महिमा बढ़ाके गुण गाये हैं। परन्तु, वह सरासर मिथ्या धोखा है, सद्गुरुने कहा है:—

धर्म करे जहाँ जीव बधतु हैं। अकर्म करै मोरे भाई ! ॥ ५ ॥
जो तोहराको ब्राह्मण कहिये। तो काको कहिये कसाई ॥ बी० श० ४६ ॥

ऐसा तो कसाई राक्षस घातकी लोग भी जीव घात करके मुक्ति बताते हैं। क्या वह मुक्ति हो सकती है? कभी नहीं। अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले लोग भी यज्ञ पशु अश्व आदिको मारके उसका मुक्ति ही बताते थे। अभी देवी आदिके मन्दिरोंमें बलिदानमें पशु-पक्षियोंको मारकर उसको मुक्त किया, ऐसा कहते हैं। आजकल लड़ाका योद्धाओंने फौजके एक टुकड़ी, एक दलका नाम 'मुक्ति सेना' रखे हैं। वे लोगोंको मार-काटके देशको लूटने-छीनने आदिका कुकर्म करते हैं। और युद्धमें मारने-मरनेवालोंकी भी मुक्ति वा स्वर्गादि लोक प्राप्ति होनेका कथन किये हैं। तपस्या, उपवास आदिसे आत्मघात कर-करायके मरनेवालोंकी भी मुक्ति बताये हैं। इस प्रकारसे निज-पर जीवोंको नाना तरहसे मारके मरनेवालोंकी किसी न किसी रूपमें मुक्ति बताके सबोंने उसके गुण ही गाये हैं। परन्तु, वे अधर्मी, पापी, दुष्ट, विषय लम्पट होके हिंसादि कुकर्ममें लगकर महान् बन्धनमें पड़े। और देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें ही गये तथा जा रहे हैं, बिना पारख ॥ १५४ ॥

॥ ❀ ॥ नवम—शब्द ॥ ९ ॥ ❀ ॥

१. सन्तो! राम कहै दुनियाई। कहु कौने गति पाई? ॥टेक॥ १५५॥

टीका:— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं:— हे मुमुक्षु विवेकी सन्तो! संसारमें दुनियाँदारी लोग और वैरागी, उदासी, संन्यासी आदि, साधु लोग सब कोई 'राम-राम' कहते हैं। कोई सीताराम,

सीतारामके रटनेमें लगे हैं। कोई नाम स्मरण, जाप, कीर्तन-भजन करते हैं। कोई "रामनाम सत्त है, सत्त कहै गत्त है।" ऐसा कहते हैं। कोई "बोलो भाई राम! बोलो भाई राम!" चिल्लाते हुए मुर्दा ले जाते हैं। गाँवके लोग परस्पर मिलने पर "रामराम भाऊ! रामराम!" ऐसा कहते हैं। कोई "पट्टू रामराम बोल! पट्टू रामराम बोल!" कहिके शुग्गाको पढ़ाते हैं। भक्त लोग 'हा राम! हा भगवान्!' कहिके पुकारते हैं। इस तरह बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी, ज्ञानी, योगी, भक्त आदि सभीके मुखसे बार-बार राम-नामका पुकारा, स्मरण हुआ करता है। बहुतेरे दुनियाई लोग राम कहते और कहलवाते हैं। परन्तु, यह कहो तो भला! ऐसे 'राम-राम' कहनेमात्रसे किसने गति मुक्ति पाई है? और किसने कल्याण वा सुख पाये हैं? किसीने भी पाये नहीं हैं। अरे! राजा रामकी ही मुक्ति नहीं हुई, तो फिर राम भक्तोंकी क्या मुक्ति होगी? कुछ नहीं! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, शब्द ४० में कहा है:— सुनिये!

"पण्डित! बाद बदे सो झूठा॥ रामके कहे जगत गति पावै। खाँड़ कहै मुख मीठा॥

॥ बीजक, शब्द ४० पूरा शब्द ॥

— पण्डितने जो बाद कथन किया है, सो झूठा है। यदि राम नामके कहनेमात्रसे जगत् जीव मुक्ति पा जावें, तो गुड़-शक्कर पुकारा करनेसे भी मुख मीठा होना चाहिये। जो ऐसा नहीं होता है; इसीसे राम कहनेवाले किसीको भी गति नहीं मिली, और मिलनेवाली भी नहीं है। दुनियाँमें सब तो राम कहते हैं, फिर उनमें कहो, किसने गति पाये? किसीने भी नहीं पाये। अतः मिथ्या भ्रमको छोड़ो। सत्सङ्ग-विचार करके सत्य-सारको जानो॥ १५५॥

२. राजा कहै कहै पुनि वेश्या। कहै चोर औ साहू॥ १५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु सन्तो! राजा अपने राज्य व्यवस्थाके लिये 'राम-राम' किया करता है, और राम कहके ही युद्धमें जाके सैन्यको मारता है। राज-काजमें अक्सर हिन्दू राजा

लोग रामका नाम कहा करते हैं। तैसे प्रजा लोग भी सब राम-ही-राम पुकारते हैं। फिर, वेश्या = रण्डी, पतुरिया, बाजारू औरत भी अपने कुकर्ममें उन्नतिके लिये 'राम-राम' कहती रहती है। हा राम! कोई विषयी पुरुष आवें, भोगें, धन दिया करें, ऐसा चाहती हैं। उसी अपने स्वार्थके लिये वेश्या भी नित्य 'राम-राम' कहती है, और चोर भी 'राम-राम' कहिके चोरी करनेके लिये चल पड़ता है। चोरीमें खूब माल हाथ लगे, हा राम! मैं कभी पकड़ा न जाऊँ, बचा रहूँ! ऐसा मनाता रहता है। चोरी कर्मकी उन्नतिके लिये नित्य प्रति चोर 'राम-राम' कहता है, और साहुकार लोग भी अपने कारोबार बढ़ानेके लिये 'राम-राम' कहा करते हैं। राम-राम भाई साहब! आइये! बैठिये! आपको क्या चाहिये? इत्यादि बात कहते हैं। रोज ही सैकड़ों बार राम-राम कहा करते हैं। परन्तु, मनमें छल, कपट, दगाबाजी, धूर्ताई ही भरी रहती है। कहा हैः—

"मुखमें राम-राम, बगलमें छूरा" और—

"दगाबाज दूना नमैं, चीता चोर कमान। अपने स्वारथ कारणे, हरत औरके प्रान॥"

ऐसी उन्होंकी कपटकी चाल रहती है, और सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने भी कहा है :—

साखीः— "रामहिं राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रोंस॥
सूधा जल पीवै नहीं, खोद पिवनकी हौंस॥"

॥ बीजक, रमैनीके साखी ३३॥

इस तरहसे राम-नामको, राजा भी कहता है, उसीको फिर वेश्या भी कहती है, चोर और साहु भी राम-राम कहते हैं। परन्तु, उससे सुगतिकी लाभ किसीको कुछ भी नहीं होती है॥ १५६॥

३. हरि चरचा हम घर घर देखा। तरत न देखा काहू॥ १५७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और, हरि = विष्णुके अवतार माने हुए राम, कृष्णादिकी कथा, जीवनचरित्र, लीला आदिकी, चर्चा = कथन, वार्तालाप, भजन, कीर्तन, नाम सरण,

पूजा-पाठ, आराधना, भक्ति-भाव, इत्यादि प्रकारसे हरिके गुणकी चर्चा, महिमा, पुकारा होता हुआ, तो हमने हिन्दुओंके घरों-घरमें जाके देखा। सब कोई अपने-अपने भावनाके अनुसार उसीमें लवलीन हो रहे हैं। ऐसा होनेपर भी कोई कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, वञ्चक, लबार, कपटी, धूर्त ही बने हैं। सब अपने-अपने विषय भोगोंकी स्वार्थ सिद्धिमें ही लगे हैं। इसलिये उनमेंसे किसीको भी भवसागरकी महाजाल विकट धारोंसे तरते हुए वा मुक्त होते हुए हमने नहीं देखा। सब जड़ाध्यासी, भ्रमिक होके भवधारामें गोता लगाकर डूबते ही जा रहे हैं, बिना पारख ॥ १५७ ॥

४. गावै बाँचै सन्ध्या तर्पण । माला फेरै कोई ॥ १५८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ये अविवेकी, पक्षपाती, भ्रमिक गुरुवा लोग बड़े पण्डित, पौराणिक, शास्त्री, कथावाचक, उपदेशक, कीर्तनकार, कर्मकाण्डी, इत्यादि बहुरूपिया होयके कहीं तो खूब भजन, कीर्तन, ताल-स्वर, साज-बाजके साथ गाय-गायके सुनाते हैं, और कहींपर तो कथा बाँचके पुराण-रामायण आदिकी कथा सुनाते हैं। तहाँ सद्गुरुने कहा हैः—

"बैठा पण्डित! पढ़ै पुराण। बिनु देखेका करत बखान॥" बी० श० १०१॥

और कोई उपासक लोग त्रिकाल सन्ध्यामें गायत्री आदि मन्त्रोंकी जाप करते हैं। तथा कोई कर्मनिष्ठ ब्राह्मण लोग पितृयोंके लिये पानी देनेका उपक्रममें तर्पण करते-कराते हैं। होम-हवन, बलि-वैश्वदेव, श्राद्ध, जन्मोत्सव, इत्यादि और भी कई कर्म करते रहते हैं। और कोई भक्त लोग तो नाना तरहसे माला फेरते हैं। तहाँ २७ दानोंका सुमिरनी लेते हैं। और १०८ दानोंका अष्टोत्तरी, १००० दानोंका हजारी माला बनायके, उसे कपड़ेमें रखके, गलेमें लटकायके, खटाखट्-खटाखट् मालाके दानोंको फिराया करते हैं। उसे खूब जाप किया, ऐसा समझके गाफिलीमें पड़े रहते हैं। इत्यादि प्रकारसे बहिरङ्ग देखावा, ढोंग, पाखण्ड तो बहुतेक करते हैं,

परन्तु, उससे जीवोंका कुछ भी हित नहीं होता है, व्यर्थमें मनुष्य जन्म गमाते हैं ॥ १५८ ॥

५. मन तो फिरत गली-गलीमें । ये सुमिरन नहिं होई ॥ १५९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! कर्मी, उपासकादि लोगोंका मन तो जहाँ-तहाँ विषयोंकी गली-गलीमें अत्यन्त चञ्चल होके फिरता रहता है । फिर ये बाहर देखावेका सुमिरण, जाप, ध्यानादि क्या कामका होता है ? कुछ नहीं । अरे ! यह तो असली सुमिरण ही नहीं है, खोटी चाल है, बगुला भक्तिके नाईं कपट जाल है । उससे किसीका कभी हित, कल्याण नहीं हो सकती है । हाथमें तो माला फेर रहे हैं, मुखसे कुछ बड़-बड़ा रहे हैं, चारों तरफ शिर घुमा-फिराके नेत्र नचा-नचाके देख रहे हैं, कभी किसीसे बातें भी करते जाते हैं, ऐसे मन तो नाना गली-गलीमें फिर रहा है, फिर यह सच्ची सुमिरण कैसे हो सकती है ? कभी नहीं । यह तो पाखण्ड सरासर धूर्ताई मात्र है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १५९ ॥

६. पण्डित भागवत गीता बाँचै । मन मायाके चेरे ॥ १६० ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और उधर ब्राह्मण पण्डित लोग पुरोहित आदि बनके अपनी जीविका चलाते हैं । तहाँ पण्डितजी ! व्यासासनमें बैठके श्रीमद्भागवत-महापुराण और श्रीमद्भगवद्गीता, वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण, महाभारत, स्कन्धमहापुराण, गरुड़पुराण इत्यादि अठारहपुराण आदि ग्रन्थोंको बाँचते हैं, श्रोतागणोंको नाना प्रकारसे रोचक-भयानक वाणीमें अनेकों कथा सुनाते हैं । तीर्थ, व्रत, दान, पुण्यादिकी महिमा बताके, ब्राह्मणोंको भोजन, दान, दक्षिणा देना चाहिये, ऐसा कहते हैं । उसका बड़ाभारी फल स्वर्गादिमें सुख प्राप्ति बतलाते हैं । परन्तु, वे स्वयं ही तन, मन, धन, स्त्री, पुत्रादिमें आसक्त बद्ध, मनमायाके चेरे बने हैं । चेरे कहिये गुलाम, अधीन, विषयासक्त हो रहे हैं । काम, क्रोधादिके

बहुत सारा विकार उनमें भरा है, मन मलीन हो रहा है, कहा है:—
"मनमलीन तन सदा उदासी, गलमें डिम्भ कपटके फाँसी ॥"
ऐसी हालतमें स्वार्थ सिद्ध करनेके वास्ते ही पोथी-पुराणादि ग्रन्थ बाँचते हैं। अतः उससे हानिके सिवाय किसीकी भी कुछ लाभ नहीं हो सकता है ॥ १६० ॥

७. सुननहारा अपने गम्बके । ज्यों सावज वधिक अहेरे ॥ १६१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! और, सुननहारा = उन पण्डितोंके कथाको सुननेवाले श्रोताजन जो हैं, सो सब लोग तो वक्ताके अपने, गम्बके = मत भीतरके, अपने पार्टीके, पन्थ वा सम्प्रदाय अनुकूलके उनके ही चेले, सेवक वर्ग ही अपने गाँव घरके लोग ही, तो हैं। फिर जैसा चाहे तैसा उलटा-सीधा कथा सुनाके उन्हें भुला-भ्रमा ही देते हैं। तो भी वे मूर्ख लोग 'हाँ जी महाराज !' 'सत्य वचन महाराज !' 'धन्य हो महाराज !' कहि-कहिके उनके कल्पनादि ढोनेका नर-पशु ही बन जाते हैं। श्रोता लोग अपने पक्षके होनेसे वक्ताको मिथ्या कथन करनेमें भी कुछ संकोच रुकावट नहीं होती है। इसीसे जैसे व्याधा वा वधिक लोग जङ्गलमें जाके वंशी बजाकर, चारा छिटकके जालमें, सावज = मृग आदि जानवरोंको फँसाके, अहेरे = शिकार करके मार डालते हैं। तैसे ही, वधिक = गुरुवा लोग, सावज = अज्ञानी पशु-बुद्धिवत् मनुष्योंको नाना तरहके कल्पित वाणीरूपी जालमें फँसा-फँसाके आशा-भरोशा दे-देके शिकार करके वाणीकी तीरसे मार-मारके मनुष्य पदसे गिरा देते हैं। बिना समझ बुद्धिके सब मनुष्य इसी तरहसे मारे जा रहे हैं, बन्धनोंमें ही अरुझे पड़े हैं ॥ १६१ ॥

८. दो दो कहै हाथ नहिं आवै । दुविधामें दोउ जाहिं ॥ १६२ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो !, दो-दो कहै = राम और काम ये दो बात कहते हैं। माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, साकार

निराकार, सगुण-निर्गुण, प्रवृत्ति-निवृत्ति इत्यादि सब कुछ राम ही है, और आत्मारामके सिवाय कुछ भी नहीं है। ऐसा दो प्रकारका कथन करनेसे हाथमें सार तो कुछ भी नहीं आता है, और हे भगवान्! हमें सुख-सम्पत्ति दो, स्त्री-पुत्र दो, राज-पाट दो, स्वर्गादि सुख दो, भुक्ति-मुक्ति दो, ऐसा कहते फिरते हैं। परन्तु, किसीके हाथोंमें वह कुछ भी नहीं आता है। दुविधामें पड़नेसे दोनों तरफ उनके बिगड़ जाते हैं। ज्ञानी-अज्ञानी, दोनों ही दुविधामें जा रहे हैं। खानी-वाणी इसी दोकी दुविधामें सब जड़ाध्यासी होके चारखानीमें गये, तहाँ नर-नारीके दो शरीर धारण करके दुःख ही भोग रहे हैं ॥१६२॥

९. कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! दुविधामें दोउ नाहीं ॥१६३॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं कि— हे मुमुक्षु सन्तो! चित्त लगायके सुनो हो! दुविधामें पड़नेवाले लोगोंकी स्वार्थ और परमार्थ दोनों भी नहीं बनता है। तहाँ कहा हैः—

"दुविधामें दोनों गये, माया मिली न राम ॥"

ईश्वर वा खुदा यह दोनों भी दुविधा भ्रममात्र ही है, और कुछ नहीं है। साकार, निराकार ब्रह्म कहा हुआ भी दुविधा ही है, उसमें सत्य कुछ नहीं है। दुविधामें पड़के नर-नारी दोनों हंस पदमें नहीं ठहरते हैं। इसीसे जीव जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके चक्रमें गिरे, पड़े रहते हैं, बिना पारख ॥ १६३ ॥

॥ ❀ ॥ दशम—शब्द ॥ १० ॥ ❀ ॥

१. सन्तो! बीबी बड़ी पदोड़ी! ॥ १६४ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो! जैसे कोई बीबी-मुस्लिम स्त्री बड़ी पदोड़ी अर्थात् बेधड़क खूब अपान वायु छोड़नेवाली निर्लज्ज हो। फिर अपने पाद करके उसका दोष दूसरेके ऊपर लगावे, ऐसी निर्बुद्धि बेहया हो, चपला हो, तो उसका

सङ्ग करना हानिकारक होता है। तैसे ही सिद्धान्तमें हे सन्तो! बीबी = विचित्र-विचित्र दो तरहकी वाणी, बड़ी भारी चञ्चला होती है। जो कि, पदोड़ी = मुखसे अत्यन्त शब्द करके बोलती हैं, वैखरी वाणीका विस्तार करती हुई बकवाद करती रहती हैं। अथवा बीबी-स्त्रीवत् योगी, ज्ञानी, भक्त, गुरुवा लोग ईश्वर वा खुदाको एक पति मानके उसके, बीबी = उपासक भये। वे बड़े ही बकवादी वैखरी वाणीसे शब्दको पादनेवाले, पदोड़ी = मिथ्यावादी भये हैं। और अभी वैसे ही हो रहे हैं ॥ १६४ ॥

२. पादै आप लगावै औरहि । ऐसी मतिकी भोड़ी ॥ टेक ॥ १६५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! तहाँ वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि समस्त वाणीरूप शब्दोंको तो आप ही मनुष्य जीवोंने भ्रमिक गुरुवा बन-बनके मुखसे पादे वा बोलके कहे हैं। ऐसे शब्द तो आप ही बोलते हैं, परन्तु, उसके जिम्मेदारी और ही कोई कर्ता, परमात्माके ऊपर लगाते हैं। तहाँ कहते हैं कि— वेदको निराकार ईश्वरने बनाया है और कुरानको बेचून खुदाने बोला है, इत्यादि प्रकारसे और ही को शब्द बनानेका दोष लगाते हैं, वेदादिका कर्ता दूसरेको ही बताते हैं। ऐसे मति-बुद्धिके हीन पक्षपाती हठी, शठी भये हैं कि— सच्चाको छिपाके झूठाको ही सच्चा बताते हैं। वाणी कल्पनाको लेके गुरुवा लोग ऐसे मतिके भ्रष्ट और, भोड़ी = ठग वा ठगिनी बने हैं; जो नरजीवोंको हाव-भाव, कटाक्ष आदिसे ठग-ठगके रोचक-भयानक वाणी सुना-सुनाके सत्यानाश कर डालते हैं। अतएव मायारूप गुरुवा लोग ही स्त्रीरूपी यहाँ बड़ी बीबी बने हैं। जो मुखसे पादनेवाले बड़े पदोड़ी वा गपोड़ी बने हैं। वे बड़े ठग होते हैं, ऐसा जानके उन्होंसे दूर ही बचे रहना चाहिये ॥ १६५ ॥

३. एक पाद बीबी जो पादी । भया ब्रह्म अविनाशी ॥ १६६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! उस बीबीने

विचित्र-विचित्र रीतिसे बहुत-बार पादी, उसमें १४ दफेके पादसे सारा वाणी जालका विस्तार हुआ है। कौन-कौन पादसे क्या-क्या उत्पन्न भया है? सो नीचे बताया गया है, सुनिये! बीबी = कल्पित वाणी वा गुरुवा लोगरूपी मायाने प्रथम एक पादँरूप शब्द, जो पादी = जो बात बोलते वा कहते भये। सो उसीसे ॐकार शब्द ही जगदाधिष्ठान, अविनाशी ब्रह्म, सनातन, परमात्मा, जगत्का मूल कारण, कर्ताके रूपमें कथनसे ठहरता भया। अर्थात् एक अविनाशी ब्रह्म सत्य है, यही एक वाणी पहिले ऐसे कहते भये। ब्रह्मको ही विराट पुरुष, चराचर जगत्का कर्ता, कल्पनासे माने हैं। उपनिषद्में ब्रह्मके चार पद कहा है। तीन लोक उसके एक पादमें स्थित है, ऐसा बताया है। यहाँ पादका अर्थ पद, पैर, भाग, अंश, खण्ड आदि होते हैं, ऐसा जानिये!॥ १६६॥

४. तेहि पाद त्रिदेवा उपजे। तेहि पाद चौरासी ॥ १६७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उसी प्रथम पादके भीतर ही ॐकाररूप ब्रह्म कर्ताकी इच्छासे आदिमाया वा मूल प्रकृति उत्पन्न भयी। फिर माया और ब्रह्मके सम्बन्धसे, त्रिदेवा = ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन पुत्र देवतारूपमें उत्पन्न भये हैं। अर्थात् तेहि ॐकार पदरूप जो ब्रह्म कहा है, उसमें बिन्दु मात्राको ब्रह्म कहा है। अर्धमात्रा वही आदिमाया है। अकारमात्रा ब्रह्मा है। उकारमात्रा विष्णु है, और मकारमात्राको महादेव माने हैं। इस प्रकारसे तीन देवोंकी उत्पत्ति और ॐकारमें ही स्थिति कहे हैं। फिर उसी पादरूप शब्द ब्रह्मसे स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषय, तत्त्व, प्रकृति, गुण, इन्द्रियाँ, प्राण, जीवसहित उत्पन्न होके चारखानी, चौरासी योनियोंमें— चौरासी अंगुलका शरीर बनके पिण्डकी उत्पत्ति होती भयी, ऐसा कहे हैं। अथवा त्रिदेवोंसे जगत् चौरासी योनियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होनेका कथन, वर्णन भी उसी कल्पित वाणीसे ही किये हैं। इस प्रकार बिना विचारे वाणीसे कल्पना

बढ़ा-बढ़ाके भ्रम-भूलमें पड़े और पड़ रहे हैं ॥ १६७ ॥

५. एक पादते चारि अष्ट दश । नौ षट आठ बनाई ॥ १६८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! दूसरी वक्तकी गुरुवा लोगरूप मायाकी वाणीरूप एक पादसे वा एक कल्पित शब्दसे एक ईश्वर कर्ता, दूसरी माया, तीसरा त्रिदेव उत्पन्न भये। फिर चारिमें चार वेदोंकी वाणी बनाये । पाँचवाँ स्वसंवेद बना, अथवा भागवत, बना, ऐसा कहे हैं। छठवाँ षट्शास्त्र, षट् मुनियोंने बनाये हैं। सातवाँ सप्तशती गीता बनाये, और सप्त ऋषियोंने भी बहुत-सी वाणी कहे हैं। आठवाँ अष्टाङ्गयोगकी वाणी बनाये हैं। कोई अष्ट प्रतिमादि जड़-पूजामें भी लगे-लगाये हैं। नववाँ नौ व्याकरणकी जटिल वाणी बनाये हैं। दशवाँ कर्मकाण्डकी दश कर्म पद्धति आदि वाणी बनाये हैं। इस प्रकारसे आगे बढ़ाते-बढ़ाते चौदह विद्या, और, अष्ट दश = अठारह पुराण, तथा चौसठ कलाएँ, एक सौ आठ स्मृति, उपनिषद् आदि सब वाणी गुरुवा लोगोंने एक ही पाद वा संस्कृत पदोंमें कल्पनाके आधारसे नानारूपमें बनाये हैं। परन्तु, उसमें पारखबोध कहीं भी नहीं है, इसीसे वह भ्रमानेवाला होनेसे अपानवायुवत् त्याज्य समझके मुमुक्षुओंने त्याग देना चाहिये ॥ १६८ ॥

६. एक पादते सकल साधना । शम दम आदि कराई ॥ १६९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और तीसरा एक पादरूप शब्दसे, पद-पदार्थसे पाँचों मार्गोंकी सम्पूर्ण साधनाओंकी कथन किये हैं। प्रथम कर्म साधनामें नित्य-नैमित्तिकादि षट् कर्म करते रहनेको कहा है। द्वितीय भक्ति साधनामें नवधाभक्ति, सगुण-निर्गुण उपासना, करनेको बताया है। तृतीय योगसाधनामें, शम = मनको वश करके शान्त बराबर स्थिर रखना। दम = दशों इन्द्रियोंको दमन करके दबाये रखना। उपरति = विषयोंके तरफसे उदास, उपराम रहना ! तितिक्षा = साधना, तपस्यामें ठण्डी, गर्मी,

भूख, प्यास आदिको सहन करना। श्रद्धा=गुरुमें और वेद-शास्त्रोंमें निष्ठासे श्रद्धा-भाव रखना। समाधान=शङ्काओंसे रहित होना। इसे शमादि षट् सम्पत्ति, साधन चतुष्टयमें एक साधन कहते हैं। चतुर्थ ज्ञान साधनामें सप्तज्ञान भूमिकामें बढ़ते जानेका अभ्यास करते हैं। पञ्चम विज्ञान साधनामें परमहंस वृत्ति बनानेमें लगे रहते हैं। इत्यादि प्रकारसे सकल साधनाएँ स्वयं भी करते हैं और दूसरे मनुष्योंसे भी कराते हैं। अन्तमें शून्यमें गरगाफ होके धोखेमें पड़के हंसपदसे नष्ट होकर आवागमन चौरासी योनियोंके बन्धनोंमें पड़ जाते हैं, बिना विवेक ॥ १६९ ॥

७. एक पादते चारि अवस्था। आदि अन्त करि गाई ॥ १७० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! फिर चौथी एक पाद वा एक कल्पित वाणीकी पद-पदार्थसे पिण्डमें जीवकी, चार अवस्था=जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया नामसे वर्णन करके कहा है। कर्म, उपासना, योग, ज्ञान करके उसी चार अवस्थाओंके भासमें भासिक जीव सब भूल रहे हैं, और तैसे ही ब्रह्माण्डमें ईश्वरका विराट, हिरण्य गर्भ, अव्याकृत और मूल प्रकृति, ये चार शरीरका क्रमशः उत्पत्ति, पालन, संहार, और सर्वसाक्षिणी नामसे ये चार अवस्थाएँ तथा उसका चार कर्म कल्पना करके कहा है। और, आदि= जगत्की शुरूमें उत्पत्ति ईश्वरकी प्रथम अवस्थासे हुआ है। मध्यमें दूसरी अवस्थामें पालन होता है, और अन्तमें तीसरी अवस्थामें सब जगत्का संहार होके फिर उसी परमेश्वर वा ब्रह्ममें ही जाके मिल जाता है। अतः, आदि=जगत् तथा, अन्त=ब्रह्म है, ऐसा कल्पना करके गुरुवा लोगोंने नाना प्रकारकी वाणीकी गीत गाये हैं। जिसे सुन-सुनके सब लोग उसे ही प्रतीत कर-करके भूले पड़े हैं ॥ १७० ॥

८. एक पादते परमधामलों। सातों पुरी बनाई ॥ १७१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और पाँचवीं एक

पादसे वा वाणी कल्पनासे— ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक, इन्द्रलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, और सातवाँ परमधाम तक सात पुरी सुखका धाम मानन्दी करके वाणी बनाये हैं। अथवा भूर्लोकादि सातलोक सोई ऊपरकी सातपुरी कल्पना करके वाणी बनाये हैं। अथवा पृथ्वीमें भी वैसे ही सात स्थानोंमें सप्तपुरी धर्मक्षेत्र, तीर्थधाम बनाके कायम कर रक्खा है। तहाँ कहा हैः—

श्लोकः— "अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ॥
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिकाः ॥"

—अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, विष्णु वा शिवकाञ्ची, उज्जैन, और द्वारिका, ये सात पुरियोंको मुक्ति देनेवाली धाम कहा है। यह सब एक वाणीकी कल्पनासे मनगढ़न्त बातें बनाये हैं। उसीमें अबोध मनुष्योंको फँसा रखे हैं ॥ १७१ ॥

९. एक पादते सृष्टि सुभाविक । पाँच तत्त्व अविनाशी ॥ १७२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! छठवीं एक पाद वा एक पदके भागरूप वाणीसे यह वर्णन किया कि— पाँचों तत्त्व नित्य अविनाशी हैं, उन तत्त्वोंके ही मिलापसे जड़-चैतन्यमय सृष्टि स्वाभाविक रीतिसे ही उत्पन्न हुआ करता है। तत्त्वोंसे बढ़करके और दूसरा श्रेष्ठ वस्तु ही कोई नहीं है। सिर्फ पाँच तत्त्व ही अविनाशी है, उसीसे स्वाभाविक सृष्टि होती है, ऐसे कथन करके तत्त्ववादी नास्तिक लोगोंने माने हैं। स्वाभाविक सृष्टिके भीतर चैतन्य जीवोंकी भी उत्पत्ति और नाश माननेवाले वे बड़े मूर्ख, अन्यायी, अविचारी बने हैं। अतः जड़ाध्यासी हो सदा चौरासी योनियोंके चक्रमें ही वे फिरा करेंगे ॥ १७२ ॥

१०. एक पादते कर्ता नाहीं । ऐसे उपज विनाशी ॥ १७३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और सातवाँ एक पादसे ऐसा वाणीकी आवाज निकली कि— वाणी-खानी आदिकी कर्ता जीव, शिव, आदि चैतन्य नित्य-सत्य वस्तु कोई भी कुछ कहीं

नहीं है। संसारका मूल कारण शून्यरूप है। समय आनेपर ऐसें ही आप-ही-आप जगत्में जड़-चेतन सब शून्यसे ही उत्पन्न होके आते हैं। फिर शून्यमें ही टिके रहते हैं, और अन्तमें विनाश होके वे सब शून्यमें ही समा जाते हैं। इस जगत्का कोई कर्ता विशेष नहीं है। उपजना-विनसना ऐसे आप ही हुआ करता है। इत्यादि प्रकारसे शून्यवादी लोगोंने शून्यको ही सर्व श्रेष्ठ माने हैं। इसीसे विवेक-विचारको भी शून्य करके शून्यके जड़ाध्यासी हो, फिर शून्यरूप भग-द्वारा शून्य स्थान गर्भवासमें ही प्राप्त होते हैं, जन्मृति दुःख भोगा करते हैं, बिना पारख ॥ १७३ ॥

११. एक पाद बीबी जो पादी। भयो अल्लाह बेचूना ॥ १७४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! आठवाँ दफेके एक पाद बीबीने जो खूब जोरसे भुड़ुर्र-भुड़ुर्र करके पादी, तो मजा क्या पूछते हो? उसीमेंसे एक बेचून, अल्लाहमियाँ प्रगट होता भया। अर्थात् मुस्लिमोंके यहाँ, बीबी = स्त्रीरूप प्यारी वाणीने जो एक पद मुखसे पादी वा बोल-बोलके आवाज़ सुनाई, तो उसी कल्पनासे अल्लाह वा खुदा, बेचून, बेनमून, गोयमगोय है, ऐसे धोखेका कथन होता भया। वही बात बिना विचारे सब मुसलमानोंने मान लिया। इसीसे वे गाफिलिमें पड़े हैं ॥ १७४ ॥

१२. एक पादते दुनिया उपजी। कहै कुन्न फैकूना ॥ १७५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और नववाँ दफेके एक पादसे अर्थात् एक वाणी कल्पनासे मुस्लिमोंके यहाँ विचित्र प्रकारसे दुनियाँ उत्पन्न होती भयी। सो कैसे कि— अल्लाहमियाँने जब पहिली बार बिना मुखके ही गैवसे "कून्न-कून्न" ऐसा शब्द कहा, तो आदमी, जानवर, चिड़िएँ, जमीन, झाड़, पहाड़, नदियाँ, समुद्र, इत्यादि सारी दुनियाँ, एकदमसे भड़-भड़ायके उत्पन्न हुईं। जैसे कोई आदमी सोके जागा हो, वैसे ही अचम्भा हो गया। फिर

जब वा जिस वक्त खुदा अपने मुखसे "फैकून-फैकून" शब्द पुकार-पुकारके कहेगा, तब सारी दुनियाँका फना होके धड़-धड़ायके विनाश वा महाप्रलय (क्यामत) हो जायगी, फिर खुदा अकेला ही रहेगा। इत्यादि वाणी कल्पना मुसलमानोंने कहे हैं, सो झूठी गपोड़ा ही हाँके हैं ॥ १७५ ॥

१३. एक पादते हवा फातमा । भये किताब कुराना ॥ १७६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! दशवाँ दफेका एक पादसे वा वाणीसे, हवा = हव्वा जिसे मामा हव्वा भी कहते हैं । जो हजरत बाबा आदमकी स्त्री थी। उसे मूल प्रकृति वा प्रथम स्त्री भी माने हैं, जो मनुष्य जातिकी माता मानी जाती है, और, फातमा = फ़ातिमा बीबी मुहम्मद साहबकी पुत्री थी, जो हजरत अलीकी पत्नी और हसन तथा हुसैनकी माता थी । हव्वा तथा फातमा बीबीको तुरकोंने श्रेष्ठ माना है । यह बात प्रसिद्ध है । अर्थात् एक पादरूप वाणीसे ही उस बीबी-वाणीके नाम-रूपकी उत्पत्ति भयी है । उसी पाद वा पदसे अर्बी लिपिमें कुरानके चार, किताब = तौरेत, इंजील, जम्बूर और फुर्कान, बनके उत्पन्न होते भये । अर्थात् ऐसे चार नामके चार किताब बनाके उसका नाम कुरान-शरीफ रखे हैं । मुसलमानरूप नरजीवने ही शब्द जोड़-जोड़के उक्त चार किताब बनाये, और पीछे फिर कुरानको खुदाने बनाया है, कहके झूठ-मूठकी महिमा बढ़ाके अपने भूले और दूसरोंको भी भुला रहे हैं, बिना विचार ॥ १७६ ॥

१४. एक पादते रोजा क्यामत । ये काजी रहिमाना ॥ १७७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और ग्यारहवाँ दफेका एक पादरूप वाणी-कल्पनासे मुसलमानोंके यहाँ तीस दिनोंका रोजा वा व्रतका दिन माना गया है, और, क्यामत = कयामत वा महाप्रलयके आखिरी दिनको क्यामत कहते हैं । कयामतके दिन खुदा सब रूहोंका नेकी-बदीकी हिशाब लगाके इन्शाफ करेगा,

नेकीवालोंको बहिस्त और बदीवालोंको दोजखमें भेजेगा, इत्यादि बेहुदी कल्पना किये हैं, रहमान = खुदा ही कयामतके वक्त काजी बनके ये सबोंका हिसाब देखके इन्शाफ करता है, फिर उसे कोई मिटा नहीं सकता है । यह रहमानके बड़ाइकी बात मुसलमान काजी लोगोंने कहे हैं, और कह रहे हैं। मिथ्या धोखा दे-देके लोगोंको भटका रहे हैं ॥ १७७ ॥

१५. एक पादते तबक चौदहैं । एक पाद अल्लाह मुकामा ॥ १७८॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! बारहवाँ दफेके एक पादसे अर्थात् एक वाणी पदकी कल्पनासे ऊपर आशमानमें, तबक = राजसिंहासन रखा हुआ तख्त वा लोक, चौदहैं = चौदह लोकके समान, चौदह तबक शून्य आकाशमें मुस्लिमोंने माने हैं। और वहाँपर सुख सामग्रीकी बहुत-बहुत गप्प हाँके हैं। सब यहाँके भोग वहाँ वर्णन किये हैं। और तेरहवाँ एक पादमें तो खास अल्लाहमियाँके मुकाम मोक्षका धाम ही माने हैं। यों तो लामुकाम, गोयमगोय खुदाको कहा है। खलकमें खालिक भरा है। परन्तु, सो अपने एक पादकी विभूतिमें मुकाम करता है। पाँचवीं मुक्ति हाहूत-हूका मैदानके मुकाममें ही अल्लाहमियाँ रहते हैं। इत्यादि प्रकारसे मिथ्या वाणीकी पसारा कर रखे हैं ॥ १७८ ॥

१६. एक पादते निमाज औ रोजा । दोजख बिहिस्त मुकामा ॥ १७९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और आखिरी चौदहवाँ दफेके एक पादसे अर्थात् एक कल्पित वाणीकी पद वा भागसे मुसलमानोंने पाँच बार पढ़नेका निमाज, और तीस दिनके रोजे-व्रत करनेका दिन बनाये हैं। यानी रोजे रखना, निमाज पढ़ना, इत्यादि नियम लगा रखे हैं। और हिन्दुओंके समान ही दूसरे रूपमें मुसलमानोंने भी, दोजख = नर्क स्थान तथा, बिहिस्त = स्वर्ग सुखका धाम और, मुकाम = ठहरावकी जगह वा नासूत, मलकूत,

जबरूत, लाहूत और हाहूत ऐसे नामसे पाँच प्रकारकी मुक्तिको ही पाँच मुकाम माने हैं। यह सब एक पादसे निकली हुई मुसलमानोंकी वाणीका कल्पना मात्र है। पारख बिना यथार्थ भेद न जानके वे सब लोग उसीमें भूले-भटके और भूले-भुला रहे हैं ॥ १७९ ॥

१७. सुर नर मुनि यति पीर औलिया। सुनत पाद बौराना ॥१८०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— हे सन्तो! घनघोर बड़ा भयङ्कर पादकी गर्जनाको सुन करके अर्थात् भयानक पद वा वाणीको बार-बार, सुन-सुनके सब भयभीत, भ्रमिक हो गये, तहाँ, सुर= देवता सत्त्वगुणी, नर=पुरुष, रजोगुणी, मुनि=मननशील तपस्वी, तमोगुणी, तथा, यति=त्यागी-वैरागी, संन्यासी, आदि साधु, पीर=मुस्लिमोंके गुरु लोग, औलिया=तुरुकोंमेंके सिद्ध फकीर लोग, और पैगम्बर, इत्यादि बहुतेरे लोग तो उस जबरदस्त बड़ा भारी पाद, बार-बारकी तोपके गोले सरीखी वाणीकी तीव्र आवाज सुनते-सुनते ही बौराय गये। उनके होश-हवाश उड़ गया, घबरायके पागल बन गये। उसीकी नकल करके वे सब भी मुखसे वैसे ही शब्द करने लगे। उछलने, कूदने, नाचने, गाने, रोने, कराहने लगे। ऐसे पागलपनामें कर्म-कुकर्म करके भवसागरमें कूद-कूदके मर गये, और मर ही रहे हैं। यानी वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, आदिकी वाणी सुन-सुनके सबलोग भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए वा हो रहे हैं ॥ १८० ॥

१८. बीबी पादत ब्रह्मा आदम। आलम सब अकुलाना ॥१८१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उतनी ही बात नहीं, बीबी=वाणीरूपी उस स्त्रीकी विचित्र चालसे धड़ा-धड़ लगातार निर्लज्ज, निःसङ्कोच होके पादते जानेसे अर्थात् वाणी कल्पना बोलते-बोलते, बढ़ते-बढ़ाते ले जानेसे इधर हिन्दुओंके पूर्वाचार्य गुरु ब्रह्मा, और मुस्लिमोंके पूर्व पुरुष पीर आदम-बाबाके

सहित उन्होंके अनुयायी शिष्य मण्डली तथा, आलम = सारी दुनियाँके लोग सब कोई भ्रमिक होके, अकुलाना = आकुल-व्याकुल हो गये। घबरा करके आव-बाव-बकवाद करके नष्ट-भ्रष्ट हो गये। इस प्रकारसे ब्रह्मा और आदमसे ले करके सब आलम बीबीके पादनेसे अकुलाय गये। नाना चाहना, वासनारूपी दुर्गन्ध उनके नाकरूप हृदयमें भर गयी। अतः जड़ाध्यासी होके दौड़े, तो नरक कुण्ड गर्भवास चौरासी योनियोंमें गिर पड़े। इसी तरह आजतक सब अध्यासी जीव दुःख भोग रहे हैं, बिना पारख ॥ १८१ ॥

१६. बीबी अद्बुद् पादन लागी। मीयाँ सूँघत भये राजी ॥१८२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जब वह विचित्र बीबी अद्बुद्रूपसे भ्वाँक्! भ्वाँक्!! भ्वाँ!!! करके पादने लगी, तो उधर मियाँ नाक लगायके उसे सूँघते हुए राजी-खुशी होते भये। यहाँ विषयासक्ति मोह, ममता ही राजी रखनेमें प्रधान कारण है। विषयी लोग स्त्रीमें बहुत सारे दुर्गुण-दोष रहनेपर भी उसे राजी रखके अपने प्रसन्न रहते हैं, और नरक कुण्डमें ही डूबे पड़े रहते हैं। बिना विचार ॥ इसी तरहसे सिद्धान्तमें, बीबी = स्त्रीरूपी गुरुवा माया और वाणी यह संसारमें, अद्बुद = आश्चर्यमय, बुद्धि-विचारसे हीन, झूठी बातें, पादन लागी = बोलने, कहने, सुनने लगे, कि— निराकार-निर्गुण ब्रह्म, ईश्वर वा खुदा एक कोई मालिक है। उसीकी इच्छा वा मर्जीसे यह संसार बना है, और वही सारे संसारमें भरा पड़ा है। उसीकी दया होवे, तभी सद्गति मुक्ति हो सकती है। इसीसे उसीकी प्रार्थनामें लगे रहो, इत्यादि वाणीका उपदेश नाना तरहसे करने लगे। असम्भव, आश्चर्यकी बात कहने लगे। तहाँपर, मीयाँ = श्रेष्ठ चैतन्य नरजीव अपने स्वरूपको भूलके, भ्रमिक होके, सूँघत = वही दुर्गन्धरूप कुवासनाको बढ़ानेवाली कल्पित वाणी सुन-सुनके उसे दृढ़ करके बड़े राजी-खुशी भये। झूठी कथा सुनके खूब प्रसन्न हो रहे हैं। भूलमें ही पड़े हैं ॥ १८२ ॥

२०. बीबी पादत पण्डित उबरे। उबरे मोलना काजी ॥१८३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और, बीबी=दो-दो प्रकारकी संशय ग्रसित खानी-वाणीकी, पादत=शब्द बोल-बोलके भ्रमिक पण्डित लोग धोखेकी आशा-भरोशा लगा करके भवसागरसे, उबरे=पार उतर-जाना चाहते हैं, किन्तु, मझधारमें जाके डूबके मरते हैं, गर्भवासको प्राप्त होते हैं। साथ ही उनके चेले भी डूबके मर जाते हैं, कोई पार होने नहीं पाते हैं। तैसे ही उधर कुरानके वाणीके भरोसे, या खुदा! या अल्लाह! रटते हुए मौलबी या मुल्ला लोग और काजी लोग भी संसारके दुःखोंसे उबरके पार होना चाहते हैं। परन्तु, अधबीचमें जाके जड़ाध्यासी होके डूब मरते हैं। चौरासी गर्भवासमें ही सब गये, और जा रहे हैं, बिना समझ ॥ १८३ ॥

२१. मुख दै पादै कान दै सूँघै। देखि देखि आवै हाँसी ॥१८४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! संसारमें साधारण लोग सब तो गुदासे पादके नाकसे सूँघते हैं। परन्तु, गुरुवा लोग-रूपी मायाके यहाँ उससे विपरीत बात होती है। सो कैसे कि— गुरुवा लोग मुखसे ही मुख्यरूपसे उपदेशकी वाणी जोर दे-दे करके, पादै=बोलते हैं, वा नाना शब्द सुनाते हैं। और उसी वाणीकी पदोंको सब श्रोता लोग कान दे-देके लक्ष्य लगा करके, सूँघै=सुनते हैं, ग्रहण करते हैं। इनके विचित्र कथनी, गहनी, चाल देख-देख करके मुझे तो एक प्रकारसे हाँसी आती है, हे भाई! क्योंकि, जब गुरुवा लोग, चेला बनाते हैं, तब दोनोंके शिर एक शाल-दोशाला आदि कपड़ेसे ढाँकके तब कहीं कानमें मुँख लगाके मन्त्र फुस-फुसाते हैं, छोकड़ोंके खेल सरीखी करते हैं। यही झूठी तमाशा देखके मुझे हँसी आती है। चेले लोग भी निपट मूर्ख ही बने हैं, कुछ भी भेद समझते ही नहीं हैं ॥ १८४ ॥

२२. दास कबीरके पाद बटोरत। जन्म घनेरे जासी ॥ १८५ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे सन्तो!

दास कबीर = ईश्वर, खुदाके दास, गुलाम बने हुए भ्रमिक, भावुक, भक्त लोग और कर्मी, धर्मी, योगी, ज्ञानी लोग जो हैं, सोई दास कबीर बने हैं। तहाँ काया वीर कबीर जीव भूलसे वाणी कल्पना और विषयोंके दास उसके अधीन बने हैं। उन लोगोंको पारख विवेक न होनेसे पाद वा निकम्बी वाणी और विषय इसीको बटोरते-बटोरते, संग्रह करते-करते जड़ाध्यास कुवासनाको जमा करते-करतेमें ही नर जन्मको व्यर्थ बिताय दिये हैं। देह छूटनेपर चौरासी योनियोंको प्राप्त भये। ऐसे, घनेरे = बहुतेरे नर-जन्म व्यर्थ बीत गया, और बीतता ही जा रहा है, तो भी चेत नहीं होता है। अर्थात् दास कबीर वा बेपारखी मनुष्योंके हृदयमें गुरुबुद्धि न होनेसे सत्यासत्यका विवेक तो वे कुछ करते ही नहीं हैं। पादरूप निकृष्ट वाणी और विषय सुख बटोरते-बटोरतेमें ही अमूल्य नर-जन्मको बिताय देते हैं। और जब-जब नर-जन्ममें आते हैं, तब-तब पाद बटोरतेमें ही आयु पूरा कर देते हैं। फिर मर-मरके चौरासी योनियोंमें ही जाते रहते हैं। ऐसे अनेकों जन्म व्यर्थमें बर्बाद हो जाता है, तो भी पारखी सद्गुरुकी शरण-सत्सङ्गमें आके वे चेतके अपना सुधार नहीं करते हैं। इसी तरह सारे मतवादी जड़ाध्यासी पतित हो-होकर भवबन्धनोंमें ही घूम-फिरके पड़े, और अभी पड़ रहे हैं। अतः मुमुक्षु नरजीवोंने उनके सरीखी पाद बटोरना छोड़के पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग-विचारमें लगना चाहिये। मनुष्य-जन्मकी अमूल्य समयको चूकना नहीं चाहिये, सावधान रहना चाहिये ॥१८५॥

॥ ❀ ॥ एकादश—शब्द ॥ ११ ॥ ❀ ॥

१. हंसा ! परख शब्द टकसार ! ॥ १८६ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब इस अन्तिम शब्दमें नरजीवोंको चेतावनी देते हुए कहते हैं किः— हे हंसा ! हे चैतन्य नरजीवो ! अब तो भी तुम अचेतपनाको छोड़ करके सचेत हो जाओ ! पारखी

साधु गुरुकी टकसारी सत्सङ्गमें ठहर करके, टकसार=सद्ग्रन्थ मूल बीजकको गुरुमुखसे अर्थ सहित श्रवण, मनन करके, वा पढ़-गुनके फिर सार-असार शब्द जालोंको यथार्थ रीतिसे परखो। जीवमुख, मायामुख औरै ब्रह्ममुख वाणीको तथा विषयी लोगोंके शब्दको समेत् गुरुमुख सारशब्दसे निर्णय करके पारख करो। काल, सन्धि, झाँईंका धोखा-भ्रमको छोड़के निजस्वरूपमें स्थिति कायम करो। हे भाई! तुम अपने नीर-क्षीर अलग-अलग करनेकी हंस गुणको क्यों छोड़ बैठे हो, अब तो भी सम्हलो, उस सद्गुणको ग्रहण करो, जड़, चैतन्यका निर्णय जान करके जड़ाध्यासका परित्याग करो। इस तरहसे हे हंसा! हे जीव! टकसारमें रहिके सब शब्दोंका पारख करके जानो ॥ १८६ ॥

२. बिन परखे कोइ पार न पावै। भूला यह संसार ॥ टेक ॥ १८७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! पारखी सद्गुरुकी शरण-सत्सङ्गमें रहिके गुरुमुख वाणीकी विचार करके खानी-वाणी जालोंको ठीक रीतिसे परखके त्याग किये बिना, तो कोई किसीने भी भवसागरसे पार होने नहीं पाये हैं, आवागमनसे छूटे नहीं। कोई पशुवत् यह संसारके पञ्च विषय भोग विलासोंमें ही भूले हैं। कोई कर्ता, धर्ता, ब्रह्म, परमात्मा वा ईश्वर, खुदा, मालिक, सुख-दुःखका दाता अपार है, सर्वत्र व्यापक है, ऐसा मानके यही संशयमें ही सब लोग संसारमें भूले पड़े हैं, और भूल ही रहे हैं। अनुमान, कल्पना, विषयासक्ति आदि विकारमें यह सारा संसारके जीव भूले-भुलाये हुए दुःख भोगके जहाँ-तहाँ भटक रहे हैं, सो उसे ठीक तरहसे परखके त्याग किये बिना कोई भी बन्धन आवागमनसे पार वा छुटकार मुक्ति पाये नहीं हैं, और पार पा नहीं सकते हैं। अर्थात् बीजक ज्ञानको जानकर अन्य सबोंको परखे बिना कोई बन्धनोंसे पार होने नहीं पाये हैं। यह संसार सारा उसी तरह खानी, और वाणीमें भूला पड़ा है। कोई

बिरले ही उस भूलको हटाकर मुक्त होते हैं। अतः भूल-भ्रमको हटानेके लिये सदा सत्सङ्ग-विचार करते रहना चाहिये ॥ १८७ ॥

३. सब सन्तन मिलि पारख कीन्हा । पारख काहु नहिं पाई ॥१८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ब्रह्मादि गुरुवा लोग, सनकादि, सप्तऋषि, नारद, वशिष्ठ, व्यास, वाल्मीकि इत्यादि प्राचीन और अर्वाचीन ऋषि, महर्षि, मुनि, पण्डित, कवि, कोविद, शास्त्री, पौराणिक, वैरागी, भक्त, इत्यादि षट्दर्शनोंके सब महन्त-सन्तोंने अनुमान, कल्पनामें मिलके अपने-अपने बुद्धिके अनुसार पारख वा परीक्षा किये, तो उन्होंने द्वैत, अद्वैत, विसिष्ठाद्वैत आदि नाना सिद्धान्त कल्पना करके ठहराये। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, आदि कोई एकको जगत्का कर्ता सुख-दुःखोंका दाता, और मुक्तिका दाता भी उसीको मान लिये। और उसीकी आशा लगाने लगे। बड़ा भ्रम धोखामें जा पड़े। कहनेको तो सबोंने पारख किये; परन्तु, उन्होंके पारख खरा नहीं भयी, किन्तु, खोटा हुई। निजस्वरूप चैतन्य जीवकी नित्य, सत्यताको अपरोक्ष पारखबोध निर्णय विचार उन किसीने भी जान नहीं पाये। सच्चा गुरुकी टकसार पारख कोईने भी नहीं पाये। इसीसे भ्रमिक होके दूसरोंको भी भ्रमाते-भुलाते रहे, अपने तो भूले ही थे, व्यर्थ ही नरजन्म गमाये, बिना विवेक ॥१८८॥

४. आये थे बैपार करनको । घरहुकी जमा गमाई ॥१८९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे कोई व्यापार करनेको परदेशमें आवे, और भूलमें पड़के घरकी जमा भी खोवे, फिर पीछे पछतायके रोते, शिर पटकते रहि जावे। तैसे ही विदेश-रूप संसारमें घर-बारको छोड़-छोड़के परमार्थिक व्यापारी साधु भेषधारी बन-बनके आये, तो इसलिये थे, कि— त्याग-वैराग्यका, व्यापार = लेन-देन करके अपने धारण करना, और दूसरोंको उपदेश देके धारण कराना, जिससे हित, कल्याण, मुक्ति लाभका मुनाफा

हो, भव-बन्धन छूट जाय, इसीकी आशासे वैराग्यका व्यापार करनेको षट्दर्शनोंकी भेषमें आये थे। परन्तु, वह लाभ तो कुछ भी हुई नहीं। उल्टा घररूप हंसपदको, जमा = साक्षी दशा, विवेक, आदि सद्गुण जो कुछ भी पहिलेसे थोड़ा-बहुत जमा था, सो सब भी भ्रम चक्रमें पड़के एकदम गमा दिये, खो दिये। अर्थात् कहीं ब्रह्म बने, कहीं आत्मा बने, कहीं ईश्वरके अंश जीव दास बने, भक्त, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी बने। तहाँ शून्य वृत्ति करके अचेत, गाफिल वा विभ्रम हो, हृदयरूपी घरकी साक्षी, समझ, ज्ञान-गुणरूपी स्वयंकी जमा, पूँजी भी गमा दिये, वा खोके नष्ट-भ्रष्ट कर-करा दिये, तो उनका व्यापार ही चौपट हो गया, दिवाला निकल गया। जड़ाध्यासी गरीब बनके महा भवबन्धनमें पड़े। फिर दुःखी हो-होके चौरासी योनियोंके चक्रमें जाकर त्रयताप भोगने लगे, इस तरहसे सब लोग कालके गालमें जाके समाये, और समा रहे हैं, बिना पारख ॥ १८९ ॥

५. सब सन्तन मिलि बानी छानी। राम भाग दुइ कीन्हा ॥१९०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो! प्राचीन कालमें एक समयमें बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, महर्षि, देवर्षि, राजर्षि, योगी, ज्ञानी, भक्त, सुर, नर, ये सब लोग एकत्रित हुए। तहाँ सार वस्तुके खोजीके वास्ते उन्होंमें सत्सङ्ग-गोष्ठी होती भयी। महादेव भी उस सभामें आके सभापति भये। तब उन सब सन्तोंने मिलके वेद, शास्त्रादि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सम्पूर्ण वाणीको निर्णय करके छान-बीन किये, तो उसमेंसे सबोंने सम्मति करके एक श्लोक चुन लिये। तहाँ श्लोकमें बत्तीस अक्षर होता है। सो श्लोक महादेवके सन्मुख ले गये। तब महादेवने उसमेंसे तीन भाग किये। दश अक्षर स्वर्गवासी सतोगुणी देवताओंको दे दिया। फिर दश अक्षर मृत्युलोकवासी रजोगुणी मनुष्योंको दे दिया और तीसरा भाग भी दश अक्षर पाताल निवासी तमोगुणी दानवोंको दे दिया। फिर बाकी रहा दो अक्षर 'रा-म' वा "राम" उसे ही सार जानके अपने हृदयमें महादेवने

धारण कर लिया, और पार्वतीके पूछने पर महेशने कहा हैः—
"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने ॥"

तबसे सबोंने 'राम' को ही सार मन्त्र माना, ऐसा कहा है। और रामायणमें भी लिखा है किः—

"राम मन्त्र सबहीं तत सारा। और आहि जगके व्यौहारा ॥"इत्यादि॥

इस तरह सब सन्तोंने मिलके वाणी छान लिये, तो 'राम' शब्दको सार ठहराये। फिर उस राम शब्दमें भी दो भाग किये हैं। सो उसका खुलासा नीचे कहते हैं ॥ १९० ॥

६. रा अक्षर पारख करि लीन्हा। म माया तजि दीन्हा ॥१९१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! उसमें 'रा' और 'म' ये दो अक्षर अलग-अलग दो भाग हुआ। तहाँ "रा" इस अक्षरको उन्होंने पारख करके अक्षर, अविनाशी, ब्रह्म, परमात्मा, आत्माराम, रमैयाराम, ऐसा कल्पना करके मान लिये हैं। यही उनके पहिचान, परीक्षा वा पारख हुई। और 'म' अक्षरको माया, विकारी, प्रकृति, बन्धन, मकार, मानके छोड़ दिये। रा = पुरुष; ब्रह्म, आत्मा, चेतनको कहा है। म = प्रकृति, माया, अनात्मा, जड़को माना है। दोनोंका संयुक्त सम्बन्ध ही राम, विश्व, विराट वा संसार; देहादि समूहका विस्तार प्रगट होता है। अतः तहाँ जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय नहीं हुआ। चराचरमें व्यापक आत्मारामको मानके वे सब जड़ाध्यासी बद्ध भये थे, और अभी वैसे ही बद्ध हो रहे हैं। उनकी खोटी पारखसे कुछ कल्याण उन्होंकी नहीं हुई। बिना गुरु पारख सत्सङ्ग निर्णयके ऐसे ही भ्रम चक्रमें सब पड़े हैं ॥ १९१ ॥

७. राम रतन प्रहलाद पारखी। जिन पारख दृढ़ कीन्हा ॥१९२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! पहले दैत्य कुलोत्पन्न प्रह्लाद नामका एक भक्त हो गया है। सो भक्त प्रह्लाद राम रत्नको परखके सार ठहरानेवाला ऐसा पारखी वा जौहरी हुआ, वह भक्ति-

मार्गके व्यापारीवत् हुआ। जिसने राम नामको ही सत्य सार श्रेष्ठ समझके दृढ़ कर लिया। उसके पारखमें सर्वत्र व्यापक आत्माराम कर्ता पुरुष मालिक रक्षक हैं, ऐसा मानन्दीकी भास दृढ़ हुई थी। मानन्दी कर्ता जीव उस मानन्दीकी हुई भाससे सदैव न्यारा ही रहता है। ऐसा शुद्ध गुरु पारखका बोध उसे हुआ नहीं। इसीसे सगुण-निर्गुण राम कर्ता-परमातमा और ही कोई मान-मानके भ्रम, भूलमें ही पड़ा रहा। बिना विवेक ॥ १९२ ॥

८. इन्द्रासन सुखासन लीन्हा। सार वस्तु नहिं चीन्हा ॥१९३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जब विष्णुने नृसिंहरूपमें आके हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लाद भक्तको वरदान दिया, तो इन्द्रासनके रूपमें सुखका राज्यासन वरदानमें ले लिया, और फिर तो विषयादि भोगोंमें ही मस्त होके पड़ा रहा। इसीसे, सार वस्तु = सत्य चैतन्य जीव निज स्वरूपको प्रह्लादने नहीं चीन्हा। यदि सार वस्तुको पहिचाना होता, तो वह राज्य और इन्द्रासन आदिके विषय भोगोंको क्यों ग्रहण करता? जिसने देहको नाशवान् और विषयोंको विकारी बन्धनका कारण जान लिया है, सो फिर उन्हें स्वीकार करके कदापि आसक्ति बढ़ाता नहीं है, और प्रह्लाद तो विषयासक्त होके जड़ अनुमान, कल्पनाका भक्ति-भाव करता रहा। इसीसे "मैं हंसजीव सत्य सार अखण्ड वस्तु हूँ" यह पारख उसने नहीं चीन्हा। अतः भ्रम बन्धनोंमें ही बद्ध होके आवागमन चौरासी योनियोंमें ही जायके पड़ा, बिना पारख ॥ १९३ ॥

९. शुकदेव मुनि परमपद पायो। आतम लियो न माया ॥१९४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! व्यासपुत्र शुकदेव मुनिको ब्रह्मज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ विशेष करके मानते हैं, और मननशील होनेसे वे मुनि रहे, दिगम्बर अवधूत वृत्तिसे विचरते रहे, उन्हें गर्भज्ञानी भी कहते हैं। मायिक सुख-सम्पत्ति, विषय-भोगादि

संग्रहको उन्होंने नहीं लिया, आत्मज्ञानको ही दृढ़ कर लिया। मैं आत्मा परिपूर्ण व्यापक हूँ! ऐसा मान लिया। सब प्रकारसे आत्माको ग्रहण कर लिया, तथा मायाको नहीं लिया। जिससे शुकदेव मुनिने परमपद वा मुक्ति पा गये; ऐसा माने हैं। परन्तु, मैं आतमा सर्वत्र चराचरमें परिपूर्ण भरा हूँ! व्यापक हूँ! ऐसा माननेसे मायाका त्याग कहाँपर हुआ? बाहरसे मोटी मायाको छोड़के भीतरसे झीनी मायाको तो उन्होंने शिरपर ही चढ़ा रखा था। वाणी कल्पनामें लवलीन थे, इसीसे जड़ाध्यासी होनेसे निर्णयसे उनकी मुक्ति नहीं हुई। जगत्‌रूप ही ब्रह्म हो रहे थे, बिना विवेक ॥ १९४ ॥

१०. परमातम अजप्पा जप चेत्यो । न्यारा भेद न पाया ॥१९५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और मुनि शुकदेवने मानन्दी करके एक आत्माके ऊपर, दूसरा परमात्माका भ्रम-कल्पना भी लगा रखा था। फिर अजपा कहिये, बिना जपे आप-ही-आप होनेवाला जप श्वासोच्छ्वासमें 'सोहं-सोहं' ध्वनि मानके उसमें लक्ष लगाकर वृत्तिको चेताकर चेतते भये। फिर धीरे-धीरे वृत्तिको शून्य करके निर्विकल्प अचेत दशाको प्राप्त होते भये। मैं-ब्रह्म और जगत् एक है, दूसरा कोई कुछ भी नहीं है, ऐसा धोखाको दृढ़ करते भये। मैं सर्वका द्रष्टा-साक्षी चैतन्य जीव सर्व दृश्य भाससे न्यारा हूँ! जड़ और चैतन्य विजातीय नित्य पदार्थ दोनों न्यारा-न्यारा ही है। यह कभी एक नहीं था, एक नहीं भया, और एक होनेवाला भी नहीं है। गुरु पारखके बोध हुए बिना यह न्यारा-न्याराके भेद वा मर्मको उन्होंने जान नहीं पाये। इसीसे ब्रह्मरूपमें सबोंने अपना स्वरूप मानके भ्रमिक भये, और जड़ाध्यासी होनेसे आवागमन चौरासी योनियोंमें पड़ गये, बिना विवेक ॥ १९५ ॥

११. अब सुनि लेब जौहरी मोटे । खरा खोट नहिं बूझा ॥१९६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! हे जिज्ञासुओ!

अभीतक तो ऊपरमें मैंने छोटे-छोटे भक्ति, ज्ञानके व्यापारियोंके बात बताया हूँ। अब जगत्प्रसिद्ध, जगत्गुरु, भगवान्, योगेश्वर कहलानेवाले मोटे-मोटे, जौहरी = भक्ति, योग, ज्ञानके निर्माता बड़े-बड़े गुरुवा लोगोंकी समझकी बात भी मैं आप लोगोंको बतला देता हूँ। सो भी ध्यान लगाके सुन लीजिये !—

दोहाः— "हीरा लाल पुष्पराज पन्ना, नील सरोरुह होय ॥
पञ्च रतनके पारखी, जगमें बिरला कोय ॥"

— हीरा = सत्त्वगुण, लाल = रजोगुण, पन्ना = तमोगुण, पुष्पराज = शुद्धसत्त्वगुण और नील = निर्गुण है। इसी पञ्च रत्नके समान ब्रह्म-परमात्मा है, ऐसा कहिके कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी इन जौहरी लोगोंने उसे सत्य माने हैं, और ब्रह्मको खरा वा सत्य तथा जगत्को खोटा वा असत्य कहे हैं। परन्तु, सो दोनों मानन्दी नरजीवोंकी मिथ्या कल्पनामात्र है। पारखबोध नहीं होनेसे सो इसका यथार्थ भेद उन गुरुवा लोगोंने नहीं बूझा वा समझा नहीं। कहा हैः— साखीः—

नग पषाण जग सकल है। पारख बिरला कोय ॥
नगते उत्तम पारखी। जगमें बिरला होय ॥बी० सा० २९०॥

इसीसे भास, अध्यासमें पड़के गाफिल भये, और हो रहे हैं। उल्टे समझमें पड़े हुए हैं ॥ १९६ ॥

१२. गोरख शम्भु सम औरको योगी। तिनहूँको नहिं सूझा ॥१९७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! प्रथम योगमार्गको प्रगट करनेवाले, शम्भु = महादेव भये हैं। सर्वाङ्ग योग साधनाएँ उन्होंने किया, और कराया। तत्पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथके शिष्य गोरखनाथ प्रसिद्ध महायोगी हो गये। अष्टाङ्ग योगोंको उन्होंने भी भलीभाँति किये। बीजकमें कहा हैः—

"गोरख रसिया योगके, मुये न जारी देह। मास गली माटी मिली, कोरो माजी देह ॥"
"गोरख अटके काल पुर, कौन कहावै साहु ॥"बीजक साखी ४३।४२॥

इस तरह गोरखनाथ, और शम्भुके समान प्रख्यात योग मार्गमें और कौन है? वा कौन भया है? कोई नहीं भया है। परन्तु समाधि लगाके अन्धाधून्द, जड़-मूढ़के नाईं वे महा गाफिलीमें पड़े रहे। उन लोगोंको भी यह धोखा नहीं सूझा। अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये तीनों ही प्रथममें मोटे गुरुवा भये, पारख विवेक बिना सत्यासत्य उन्हें भी नहीं सूझा; जगत्‌रूपमें ही व्यापक आत्मा वा ब्रह्म एक अधिष्ठान मानके वे सब भ्रममें भूले रहे। फिर उनके पीछे उसी प्रकार सब मतवादी लोग वैसे ही भूलते चले आ रहे हैं, बिना गुरुबोध ॥ १९७ ॥

१३. है कोई सन्त जौहरी जगमें। जो यह शब्दहि बूझै ॥१९८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! रत्न परीक्षक जौहरीके समान सकल सिद्धान्तोंके परीक्षक सत्यन्यायी सत्यवक्ता, सत्यनिर्णयी, बन्दीछोर पारखी सन्त महात्मा कायावीर श्रीकबीरसाहेब सद्गुरु प्रथम पारख प्रकाशी जगत्‌में सर्व ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सर्वोपरि हो गये हैं, और आपके अनुयायी पारख बोधवान् कोई-कोई बिरले सन्त सत्यन्यायी अभी भी जगत्‌में कहीं-कहीं मौजूद हैं। आप सत्यनिर्णयका उपदेश देके भ्रम-भूलको परखाके छुड़ाते हैं। जो यह गुरुमुख निर्णय सारशब्दको ठीक तरहसे समझते-बूझते हैं, और दूसरोंको भी समझाते-बुझाते हैं, वे ही पारखी सन्त कल्याणकारी बन्दीछोर कहलाते हैं। जो यह निर्णय शब्दको बूझते नहीं हैं, अनुमान-कल्पनामें पड़े हैं, वे बेपारखी भ्रमिक होते हैं। यह शब्द जालका विस्तार बहुत बड़ा है। काल, सन्धि, झाँई, तत्, त्वं, असि और विषय फन्दा यह चारों तरफ बहुत प्रकारसे फैला हुआ है। सो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें गुरुमुख वाणीसे भली विधिसे परखाये हैं। सो उसी मुताबिक यहाँ भी संक्षेपमें निर्णय दरशा करके ग्यारह शब्दोंमें परखाया गया है। जो यह शब्दके रहस्यको यथार्थ बूझनेवाले पारखी सन्त हैं,

उनके ही सत्सङ्ग-विचार करके सकल भेदको समझना-बूझना चाहिये, पारख बोधको प्राप्त करना चाहिये ! ॥ १९८ ॥

१४. तीनि लोक औ चारि लोक हैं । सकल ठौर तेहि सूझै ॥१९९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! संसारमें उत्तम, मध्यम, कनिष्ट, और रजोगुणी, सत्त्वगुणी, तमोगुणी । योगी, ज्ञानी, भक्त, इत्यादि ऐसे तीन प्रकारके मनुष्य लोग होते हैं । और उनमें पामर, विषयी, जिज्ञासु, तथा मुमुक्षु ऐसे चार प्रकारके लोग भी होते हैं । आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, और ज्ञानी, ऐसे चार प्रकारके मनुष्य लोग भी होते हैं । बाल, कुमार, युवा, और वृद्ध, ऐसे देहके चार पन होते हैं । तथा कर्मी, उपासक, योगी, और ज्ञानी, ऐसे चार तरहके साधक लोग होते हैं । उन गुरुवा लोगोंने, तीनि लोक = ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक । स्वर्ग, मृत्यु, पाताल । अर्ध, ऊर्ध्व, मध्यमें उक्त तीन लोकोंको कल्पनासे माने हैं । और चारि लोक = सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य, नामसे चार मुक्तिका लोक कहा है । अथवा तीन तथा चार दोनोंको मिलायके सब सात स्वर्ग ऊपरमें कल्पना किये हैं । अथवा चार लोक सोई चार वेद बने हैं । और द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत, यह तीन सिद्धान्त उसमेंसे निकाले हैं । इत्यादि सकल ठौर वा समस्त सिद्धान्तोंकी स्थितिके पूर्णज्ञाता पारखी सन्त होते हैं । उनके सत्सङ्गमें जो मनुष्य लगे रहते हैं, तेहि = उन्हें भी वह सब, ठौर-ठिकाना, सूझै = दिखाई देता है या देखनेमें आ जाता है । अर्थात् पारखी सद्गुरुके सारशब्दको जो बूझेंगे, सोई सबोंके स्थिति वा पहुँचको यथार्थ देखेंगे, सारासारके मर्मको पहिचानके निज पारख पदमें स्थिर होवेंगे ॥ १९९ ॥

१५. कहहिं कबीर हम सबको देखा । सबै लोभको धाये ॥२००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहे हैं किः—

साखीः—४ "अलख लखौं अलखै लखौं, लखौं निरञ्जन तोहिं ॥
हौं कबीर सबको लखौं, मोंको लखै न कोहि ॥
४ हम तो लखा तिहुँ लोकमें, तूँ क्यों कहै अलेख ? ॥
सारशब्द जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख ॥"
॥ बीजक, साखी ३५१ । ३५२ ॥

इसीका आशय लेके यहाँ भी कहा है कि—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैंः—हमने पारख करके सबोंके सिद्धान्त, ध्येय, रहनी, रहस्य, चाल-चलन, आदिको एक-एक छान-बीन करके देखा, परन्तु, सार, सत्यबोध उन षट्दर्शनोंमें कहीं भी दिखाई नहीं देता है। ब्रह्मज्ञानी द्रष्टा, साक्षी और व्यापक ब्रह्म बनके जगत्को अद्वैत रूपमें देखते हैं। कहते हैं— हम ब्रह्म हैं, हमने सबको देखा है, सो सब जगत् हमारा ही स्वरूप है। "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" ऐसे धोखेमें भूले हैं, और वेदान्ती ब्रह्मानन्दकी लोभमें पड़े हैं। ज्ञानी-लोग जीव-ब्रह्म एकता करके सायुज्य मुक्तिकी लोभमें धाये हैं। योगी-लोग अष्ट-सिद्धि, नवनिद्धि प्राप्तिकी लोभ और सारूप्य मुक्ति पानेकी झूठी लोभमें पड़े हैं। भक्त-लोग मनोकामना पूर्ण करनेकी, इष्टदेवका साक्षात्कार करनेकी, तथा सामीप्य मुक्ति प्राप्ति आदिकी लोभमें मारे-मारे दौड़ रहे हैं। और कर्मी-लोग सात स्वर्ग प्राप्तिकी, राज, काज, नाज, सुख, सम्पत्ति-प्राप्तिकी लोभमें भटक रहे हैं। विषयी लोग विषयानन्द प्राप्ति, स्त्री, पुत्र, धन, घर, जागीर आदि प्राप्ति करनेकी लोभमें जहाँ-तहाँ धाये और धावन कर ही रहे हैं। इस तरह सब जीवोंके तरफ हमने दृष्टि फिराके देखा, तो सब लोग पञ्चविषयोंके क्षणिक सुख और पाँच तरहके आनन्द प्राप्ति, एवं चार फल, पाँच मुक्ति आदि प्राप्ति करने-करानेके मिथ्या लोभ-लालचमें लगे, आशा लगाके अनेकों साधनोंमें दौड़े, और दौड़ रहे हैं। उसीमें आयु बिताकर चारखानी चौरासी योनियोंमें जाय-जायके पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ २०० ॥

१६. जिन्ह गुरु मिलै तिन्ह परखायो । ठीक ठौर तिन्ह पाये ॥२०१॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीपारखी सन्त महात्मा श्रीगुरुदयालसाहेब विरचित—
मूल ग्यारह शब्द, समाप्तम् ॥ ❀ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब अन्तमें कहते हैंः— हे मुमुक्षु सन्तो ! तम-अज्ञान विनाशी, पारख प्रकाशी, बन्दीछोर, पारखी सद्गुरु, जिन्हें मिले, वा जिन-जिन भाग्यवान् पुरुषोंको पारखी सद्गुरु मिल गये हैं, अथवा जो नरजीव पारखी सद्गुरुकी चरणोंकी शरणमें जायके मिले वा मिलेंगे, उन सब जिज्ञासु शरणागत मनुष्योंको परम दयालु सद्गुरुदेवने सकल भेदको परखा दिये । काल-जालके मर्मको बतला दिये । मुक्ति स्थिति हंसपदको दिखला दिये । सब भ्रम, संशय, धोखाको मिटा दिये हैं । इसीसे उन्होंने, ठीक ठौर= जीवन्मुक्त पारख स्वरूपकी अपरोक्ष स्थितिको प्राप्त कर लिये हैं । अतः कृत-कृत्य हो गये हैं । अथवा जिन्हें अभी भी पारखी सद्गुरु मिलेंगे, जो सत्यन्यायी सद्गुरुके शरणको ग्रहण करेंगे, श्रद्धा-भक्तिके सहित जिज्ञासु होवेंगे, तिन्हें दयालु सद्गुरुदेव सब खानी-वाणीके यम जालोंके सकल भेदको लखाके परखा देवेंगे, सारा सन्देह मिटा देवेंगे । जीवके सत्यस्वरूपका पारखबोध करा देवेंगे । तभी ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेतादि सब गुरुवा लोगोंकी मिथ्या वाणी कल्पना मात्र है, उन सबोंकी मानन्दी करनेवाले चैतन्य नरजीव ही सत्य है, जीवके ऊपर कोई कर्ता मालिक नहीं है । जगत्में जड़ और चैतन्य जीव स्वतः अनादि कालके नित्य, सत्य वस्तु हैं । जीव सब अपने-अपने कर्म अध्यासमें पड़के आवागमनोंमें डोल रहे हैं । मोटी-झीनी मायाकी अध्यास छूटने पर ही स्वयं स्वरूपकी स्थितिमें जीवन्मुक्त हो जाते हैं । ऐसा गुरुमुख निर्णय टकसाररूप बीजककी यथार्थ सत्यज्ञान जान-बूझ, समझ करके फिर वे, ठीक ठौर=स्वयं पारख स्वरूपकी निर्बन्ध मुक्ति स्थितिको पा जावेंगे । अतः सोई स्थितिको प्राप्त करना ही

मुमुक्षुओंका मुख्य कर्तव्य है, उसे इसी नर-जन्ममें अवश्य बना लेना चाहिये। यही मनुष्योंका मुख्य कर्तव्यरूप स्वधर्म है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ २०१ ॥

॥❀॥ टीकाकारकृत अन्त सद्गुरु स्तुति—गुरुवन्दना इत्यादि वर्णन ॥❀॥

सोरठाः— बन्दौं पद त्रयबार। श्रीकबीर पारख धनि ॥
चरण कमल शिरधार। रामस्वरूप गुण गाँउँ सदा ॥ १ ॥
धनि-धनि सद्गुरु देव ! बन्ध छुड़ायो जीवको ॥
परखायो सब भेव। काल जाल मन कल्पना ॥ २ ॥
पारख ज्ञान दिनेश। साहेबकबीर आदि गुरु ! ॥
मेटि दियो भव क्लेश। पारख स्थिति ठहरायके ॥ ३ ॥

साखीः— सर्वोपरि पारखि गुरु ! ज्ञानिनमें संम्राट् ॥
गुरुकबीर अनुयायि तस। मुक्ति लगायो बाट ॥ ४ ॥
पूरणसाहेब पारखी। पूरण पारख रूप ॥
रामस्वरूप भ्रम खोयके। टकसार ज्ञान स्वरूप ॥ ५ ॥
गुरुदयाल तस पारखी। साहेब सन्त सुजान ॥
गुरुवन फन्दा मेटिके। सारशब्द ठहरान ॥ ६ ॥
साखी साक्षी परिचय। कबीर परिचय ग्रन्थ ॥
दूसर ग्यारह शब्द कहि। प्रगट कीन्ह सत पन्थ ॥ ७ ॥
मूल हता टीका किया। भाषामें विस्तार ॥
रामस्वरूप याते सकल। भेद खुलै निर्धार ॥ ८ ॥
ग्यारह शब्द समस्तकी। टीका भो सम्पूर्ण ॥
रामस्वरूप गुरुबोध लहि। धोखा भ्रम हो चूर्ण ॥ ९ ॥
रामरहस गुरु पारखी। पञ्चग्रन्थी कहि दीन्ह ॥
रामस्वरूप बन्दगी करि। पूरण टीका कीन्ह ॥ १० ॥

साखीः— पूरण हंस सन्तोष राम नरू। काशी बालक लाल ! ॥
पारखि रामस्वरूप सकल। सो सब गुरु दयाल ! ॥ ११ ॥

काशी साहेब पारखी। निर्णय ग्रन्थ विस्तार ॥
मुद्रित करि सबको दियो। अमृत ज्ञान भण्डार ॥ १२ ॥

बुरहानपुर यहि नग्रमें। नागझिरी शुभ स्थान ॥
कबीर निर्णय मन्दिर। सन्त विवेकि रहान ॥ १३ ॥

साहेब छोटे बालक। गुरु हमरे आचार्य ॥
चरण शरण हो भेष लै। आज्ञा गुरु शिर धार्य ॥ १४ ॥

श्रीलालसाहेब पारखी। गुरुते अध्ययन कीन्ह ॥
पञ्चग्रन्थी बीजक सकल। गुरुमुख भेदको चीन्ह ॥ १५ ॥

अध्ययन अध्यापन। गुरु सन्मुखते चालू ॥
रामस्वरूप श्रद्धा सहित। गुरु आज्ञाको पालू ॥ १६ ॥

नश्वर काया जगतमें। छूटि गयो गुरु देह ॥
एक दिना हमरेहु तस। छुटि जैहैं तन येह ॥ १७ ॥

करि विचार यहि ओर हम। टीका यहि लिखि दीन्ह ॥
सकल भाव याते खुलैं। सारासारको चीन्ह ॥ १८ ॥

टीकाके आधारते। पढ़ि सुनि गुनि सब सन्त ॥
मर्म यथारथ बोध लै। होवैंगे निर्भ्रान्त ॥ १९ ॥

प्रवीण सन्त जो होय इक। गुरु आसनमें बैठ ॥
धरि टीका सन्मुख पढ़ै। श्रोताके हिय पैठ ॥ २० ॥

नित प्रति सन्ता लेइके। पढ़ना सन्तन चाहि ॥
याद करै सब भावको। पाठ सुनावै ताहि ॥ २१ ॥

समझ शक्ति निज देखिके। लीजे उतना पाठ ॥
धीरज धरि पढ़िये सुजन। हिय सद्गुण धरु आठ ॥ २२ ॥

साखीः— मत मतान्तर बोध हित । पठन पाठन होत ॥
सत्सङ्गत करि जानिये । सन्धि और बहोत ॥ २३ ॥

चञ्चलताको त्यागिये । स्थिरता मनमें धार ॥
स्थितिस्थिरताकेहोयबिन । कोइ न हो भवपार ॥ २४ ॥

कुसङ्गत नहिं लागिये । सद्गुण होवै नाश ॥
बुद्धि विवेक बिगड़ै जब । समूल होय विनाश ॥ २५ ॥

घेरा गुरुवा नारिकी । सोइ कुसङ्गत जान ॥
विषयी कुबुद्धि बावरे । ताको यम पहिचान ॥ २६ ॥

काम क्रोध मद लोभको । करते रहिये कैद्द ॥
ताको दुश्मन जानिये । साधु सद्गुरु वैद ॥ २७ ॥

सद्गुरुके उपदेश गही । लाभ हो सबको प्राप्त ॥
सब बन्धन ताके छुटै । सद्गुण हो पर्याप्त ॥ २८ ॥

निज सत्रूप पिछानिके । सत्य ग्रहण करि लेहु ॥
मनसा वाचा कर्मणा । असत सकल तजि देहु ॥ २९ ॥

जगमें सार असारको । नित प्रति करिये विचार ॥
सावधान रहु सज्जन । कबहुँ न हो अविचार ॥ ३० ॥

सदाशील हिय धारिये । कुशील कठोर निवार ॥
शहन-शीलता नम्रता । नरजीवनमें सार ॥ ३१ ॥

निज-पर दयाको पालिये । निर्दयताको टार ॥
परमारथ मन लाइये । कामादिकको मार ॥ ३२ ॥

धीरज धरना चाहिये । स्वधर्म पालन हेत ॥
घबराहटको छोड़िके । शूर वीरवत खेत ॥ ३३ ॥

जड़ चेतन बिलगायके । करते रहिये विवेक ॥
स्वार्थ बुद्धि उपजावहिं । करै हानि अविवेक ॥ ३४ ॥

— गुरुभक्ति करना चही । गुरु उपकार मनाय ॥
जड़ भक्तिको त्यागिके । गुरुभक्ति ठहराय ॥ ३५ ॥

मनमें दृढ़ वैराग्य हो । राग सकल हो नाश ॥
दुःख सकल मिटावई । मनमें कोइ न आश ॥ ३६ ॥
हंस रहनि सब धारिके । होवै साँचा हंस ॥
पारख पद्में स्थिति भई । जड़ाध्यास विध्वंस ॥ ३७ ॥

हंस पारखी आज ही । जीवनमुक्त प्रत्यक्ष ॥
कारज पूरा हो गया । गुरु साधु पद स्वच्छ ॥ ३८ ॥
सो पद प्राप्ति कारणे । गुरु साधु पद शोध ॥
रामस्वरूप सत्सङ्ग करि । लीजे गुरुमुख बोध ॥ ३९ ॥

बोधहि करनेके लिये । पठन पाठन होत ॥
बोध बिना बिरथा सकल । जन्म अकारथ होत ॥ ४० ॥
बोधकि लक्षण रहनि है । रहनि बिना कस बोध ? ॥
वाणि रटेते काम नहीं । सार ग्रहण करु शोध ॥ ४१ ॥
सोई करिये सन्त जन । अपने होवै काज ॥
वाद्विवाद्तजियेसकल । बनिये हंस सो आज ॥ ४२ ॥
रामस्वरूपदास पर । सद्गुरु दया सो कीन्ह ॥
नागझिरीमें आयके । बीजक मतको चीन्ह ॥ ४३ ॥
बीजक पारख ज्ञान गही । यथामती अनुसार ॥
टीका लिखिया याहिमें । टिप्पनिके आधार ॥ ४४ ॥

श्रीकाशीसाहेब लिखित । टिप्पनि रहि इहिं स्थान ॥
टीकामें सर्वाङ्ग सो । लीन्हा साद्र मान ॥ ४५ ॥
सन्त पढ़ाई मुताविक । लिखि टीका निर्मान ॥
रामस्वरूप भावार्थ सब । याहीमें प्रगटान ॥ ४६

पढ़िये, गुनिये सन्त जन । जीवनके कल्यान ॥
रामस्वरूप पारख मिलै । सकलो भ्रम विनशान ॥ ४७

साखीः— सद्गुरुके गुण गाइये। मानी गुरु उपकार ॥
कृतघ्न दोष न लाइये। गुरुकी दया भव पार ॥ ४८ ॥
पारख बोध प्रकाशिया। सद्गुरु सो प्राचीन ॥
वर्तमान सब पारखी। समता मङ्गल कीन ॥ ४९ ॥
ग्रन्थ पन्थ आधारते। बोध लिये सब शिष्य ॥
बोध भाव कल्याण हो। अहित अभाव करिष्य ॥ ५० ॥
स्वाथ बुद्धि परित्याग करि। परमारथमें लाग ॥
दोष बुद्धि तजि सज्जनो ! सावधान हो जाग ! ॥ ५१ ॥
रामस्वरूपदास अब। कर शिर धरि त्रयबार ॥
साहेब बन्दगी करतहूँ। सद्गुरुके दरबार ॥ ५२ ॥
युग सहस्र ग्रह सम्वत। चैत्र शुक्ल दशमी तिथी ॥
शनिवासर सायं समय। टीका सम्पूरण इति ॥ ५३ ॥
सन् उन्निस सौ बावन। अप्रेल माह सो चार ॥
तारीख दिनसो पाँचवीं। ग्रन्थ समाप्त सुधार ॥ ५४ ॥
रामस्वरूप पारख करु। मल विक्षेपको नाश ॥
नाश करि आवर्णको। पारख स्थिति परकाश ॥ ५५ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीनिर्णयसारादि संयुक्त षट्ग्रन्थे—एकादश शब्द—षष्ठ ग्रन्थस्य-रामस्वरूपदास, अनुवादित- पारख सिद्धान्त दर्शिनी, भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित, सम्पूर्णम् समाप्तम् शुभम् ॥ ६ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरो अर्पण मस्तु ! ॥ ❀ ॥